लालदास कृत

अवध विलास

सम्पादकीय निदेशक
आचार्य गोविन्द प्रसाद साँवल
आचार्य पं० दीनदयाल दीक्षित

काव्य-प्रशस्ति

"उक्तयो लालदासस्य
भूतिमत्य: दिगम्बरे
कविता त्रिलोचनी यस्य
राम विज्ञान दीपिता।"

—आचार्य पं० दीनदयाल दीक्षित

(लालदास की उक्तियाँ दिगम्बर (शिव/दिशाओं में भूतिमान हैं, जिसकी त्रिलोचनी कविता रामविज्ञान से दीप्त है।)

"सरलत्व सलिलमापूर्णे-
ऽवध विलास सरोवरे
सलीलं विलसति विमलं
लालदासोक्ति पंकजम्।"

—गोविन्द प्रसाद साँवल

(सरलता के सलिल से आपूर्ण अवधविलास के सरोवर में लालदास की उक्ति का पंकज लीलापूर्वक विलास कर रहा है।)

मानसोत्तर रामकाव्य परम्परा का

१८ वीं शताब्दी का एक दुर्लभ महाकाव्य

लालदास

कृत

अवध विलास

(सटिप्पण मूल पाठ)

सम्पादक

डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

आचार्य, हिन्दी विभाग

पं० जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा

एवं निदेशक, चन्ददास साहित्य-शोध संस्थान

चन्ददास साहित्य-शोध संस्थान, बाँदा

कृति के प्रेरक
और मनीषा के महर्षि वे
जो मानस की मूर्ति और प्रतिमा गठते थे
गठे हुए पाषाण कला प्रतिमान हो गये।
प्रेरक वे गोविंद शीर्ष सोपान हो गये।

अग्रज आचार्य श्री गोविन्द प्रसाद जी साँवल
की स्नेहिल पुण्य स्मृति में
जिनके साथ 'अवध विलास' का पारायण हुआ
और जो इस कृति को प्रकाशित रूप में नहीं देख सके।
उन्हें श्रद्धांजलि के रूप में समर्पित है।

—चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

आत्म विवृत्त

महापंडित राहुल सांकृत्यायन एवं कैप्टेन शूरबीर सिंह की प्रेरणा से प्राच्य साहित्य एवं संस्कृति के संरक्षण की दिशा में चित्रकूट अंचल तथा अन्य क्षेत्रों से हिन्दी-संस्कृत, प्राकृत, पालि आदि की लगभग दो हजार दुर्लभ पाण्डुलिपियों को अकेले ही खोज कर संस्थान में संग्रहीत कर चुका था। मेरी खोजों से प्रभावित होकर मेरे अभिन्न सहचर कविवर दिनेश देवराज ने अपनी प्रबल आकांक्षा व्यक्त करते हुए मुझसे सांस्कृतिक अंचलों के भ्रमण तथा किसी अज्ञात पाण्डुलिपि को खोजकर लाने के लिए कहा। मैं खोज यात्रा के लिए तैयार हो रहा था इसी बीच वे टिकार (हरदोई) से ठा० हरिबख्श सिंह के लाल वस्त्रों में बंधे लालदास कृत 'अवध विलास' की पाण्डुलिपि को खोज लाये और संस्थान को उपलब्ध कराया।

संस्थान की नियमित गोष्ठियों में अग्रज श्री गोविन्द प्रसाद जी साँवल, पं० अम्बिका प्रसाद मिश्र, पं० भवानी दत्त शास्त्री व्यास, पं० देवराज शास्त्री तथा 'कवितायन' के कुछ साहित्यिक मित्र आते और मैं उन्हें 'अवध विलास' सुनाया करता। रसिक साधना के इस समुद्र में हम सब रत्नों की खोज करते रहते। अध्ययन करते समय जब मुझे पहली बार पता चला कि लालदास संस्कृत के पंडित राजशेखर के काव्यशास्त्रीय उक्ति सम्प्रदाय से परिचित हैं और राजशेखर के 'उक्ति विशेषं काव्यं भाषा या भवतु सा भवतु' को अपने अवध विलास में—

'कवि जन उक्ति विशेष बषानी।
भाषा जैसी तैसी जानी।'

के रूप में अविकल स्वीकार करते हैं, तब मैंने इसकी चर्चा साँवल जी से की और हम दोनों इस काव्य की गहराइयों की ओर जाने लगे। डॉ० वेदप्रकाश द्विवेदी से कवि की रसिक साधना के सम्बन्ध में बातें हुईं। बार-बार पढ़ने से मुझे प्रतीत होने लगा कि यह काव्य हिन्दी के प्रबन्ध-काव्यों में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। निश्चय ही रसिक साधना के साथ ही हिन्दी साहित्य में इस प्रबन्ध का विशिष्ट अवदान विद्वानों से छिपा नहीं रहेगा। संगीत, नाट्य, पिंगल, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों की मूल्यवान सामग्री से युक्त होने के कारण यह ग्रंथ विश्व-कोष होने का भी गौरव रखता है।

तुलसीकृत रामचरितमानस की रचना के ठीक सौ वर्ष बाद 'अवध विलास' की रचना हुई। मानसोत्तर रामकाव्यों में लालदास कृत अवध विलास (सं० १७३२) तथा चंददास कृत 'राम विनोद' (सं० १८०८) खोज में प्राप्त ऐसे प्रबन्ध काव्य हैं जो अपने काव्यादर्श एवं शिल्प में सर्वथा नवीन हैं।

मुल्ला दाऊद से लेकर नूर मोहम्मद तक लगभग सभी प्रेम गाथाएँ अवधी भाषा में हैं। अवधी को परिष्कार तथा साहित्यिक संस्कार प्रदान करने का श्रेय तुलसी के रामचरित मानस को है। अवधी को लोक जीवन के और अधिक निकट लाने में जायसी के पद्मावत ने जो कार्य किया है, उसकी अगली कड़ी के रूप में लालदास के अवध विलास को यह श्रेय प्राप्त होगा।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यों के विकास को देखते हुए अवध विलास की एक अन्य उपलब्धि प्रबन्ध के क्षेत्र में एक नयी शैली का पल्लवन है। संवाद शैली के स्थान पर अन्य पुरुष अथवा कोष शैली का प्रयोग रूपविधान की दृष्टि से इसे विशेष महत्व प्रदान करता है।

पौराणिक कथाओं के अन्तःसूत्र, संगीत, अभिनय, नाटक, आयुर्वेद, व्याकरण, इतिहास, संस्कृति और लोक जीवन की महत्वपूर्ण सामग्री 'अवधविलास' के अध्ययन का एक अन्य रोचक विषय है। विविध विषयों का इतनी प्रचुर मात्रा में उपयोग अन्यत्र नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार यह प्रबन्ध लोक संस्कृति, लोक-जीवन और लोक अभिरुचियों के समन्वय का प्रबन्ध है।

लालदास की अभिव्यंजना शक्ति, शैली और आंचलिकता तथा चित्र विधायिनी प्रतिभा 'अवध विलास' को अपूर्व प्राणवत्ता प्रदान करती है। लालदास आचार्य कोटि के महाकवि हैं। वे शुक, सनकादि, व्यास और वाल्मीकि का ऋण स्वीकार करते हैं। वे हिन्दी के पूर्ववर्ती महान कवि जयदेव, विद्यापति, तुलसी, सूर, केशव से प्रतिस्पर्धा करते हुए सरलत्व का उद्घोष करते हैं—

"गूढ़ काव्य जयदेव कृत तुलसी सूर बखान।
केशव विद्यापति विकट लाल सरल मनमान।"

कवि ने भाषा की सरलता को अक्षुण्ण रखने के लिए अर्थ के झौंर से अपने काव्य को बचाया है—

'जान-बूझ नाहिन धरत कठिन अर्थ के झौंर'

साथ ही वे कवि कर्म की कठिनाई को भी पहचानते हैं—

"कवि जानै कवि की कठिनाई।
व्याउर पीर बाँझ नहिं पाई।"

रसिक साधना के विकास में लालदास कृत 'अवध विलास' का ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है। राम भक्ति की रसिक साधना[1] के संधान एवं गवेषणा से सिद्ध हो चुका है कि यह धारा लोक जीवन में कितनी प्राणवान रही है। अग्रदास[2] इस रसिक साधना के अग्रगण्य संत रहे हैं। लालदास इसी रसिक साधना के भक्त कवि हैं।

---

१. राम भक्ति में रसिक साधना—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह।
२. अग्रदास आगर गुण धीरा। नाभा भगति हरण भय पीरा॥
(चंददास कृत 'भक्तविहार,' हस्त० च० शो० सं० प्रति)

रसिक सन्तों का यह रस समुद्र 'अवध विलास' अवध अंचल से चित्रकूट की ओर प्रवाहित होकर आ गया, लीला की दृष्टि से यह स्वाभाविक ही है। 'अवध विलास' के सम्पादन में जिन विभिन्न प्रतियों एवं हस्तलेखों का उपयोग पाठालोचन के लिए किया गया है, उनमें टिकार (हरदोई) से प्राप्त (चन्ददास शोध संस्थान प्रति) छतरपुर प्रति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रति आदि हैं। इन प्रतियों के उपयोग के लिए मैं स्व० शंकर सिंह, ठा० हरिबख्श सिंह, ठा०बृजराज सिंह, कविवर दिनेश देवराज, डॉ० वेदप्रकाश द्विवेदी, देवेन्द्रनाथ खरे तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पाण्डुलिपि विभाग के अधिकारियों का आभार स्वीकार करता हूँ।

अवध विलास की विभिन्न प्रतियों को प्रतिलिपित करने में मेरी हिन्दी की छात्राओं में श्रीमती विमलेश शुक्ल (एम० ए० हिन्दी, संस्कृत, स्वर्ण पदक विजेता) प्रवक्ता डिग्री कालेज ग्वालियर, कु० आशा निगम (एम० ए० हिन्दी, संस्कृत), कु० सरिता मिश्रा (एम० ए० हिन्दी, अंग्रेजी) तथा कु० मंजू मिश्रा, (एम० ए० हिन्दी), कु० निर्मला व्यास (प्रवक्ता, नेहरू महाविद्यालय बाँदा) का विशेष योगदान अविस्मरणीय है।

पूज्य पितृपाद पं० दीनदयाल दीक्षित और अग्रज श्री गोविन्द प्रसाद साँवल ने मेरे अनुरोध पर लालदास के सम्बन्ध में जो काव्य-प्रशस्ति लिखने की कृपा की है, वह मेरे लिए अत्यन्त सुखद है। डॉ० विद्यानिवास मिश्र (निदेशक, के० एम० इन्स्टीच्यूट, आगरा विश्वविद्यालय, डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० मोहन अवस्थी, डॉ० विद्या चौहान, डॉ० शिवादत्त द्विवेदी, डॉ० मृत्युंजय उपाध्याय, डॉ० रमानाथ त्रिपाठी, बाबू केदारनाथ अग्रवाल, डॉ० विश्वंभरदयाल अवस्थी, डॉ० कृष्णदत्त अवस्थी, डॉ० भगवती प्रसाद सिंह (गोरखपुर) ने सम्पादन की सूचना से प्रसन्नता व्यक्त की तथा इस कार्य की महत्ता को साहित्य के इतिहास की एक आवश्यकता कहकर मुझे प्रेरित किया।

श्रीमती शशिप्रभा दीक्षित, शशिप्रभा तोमर, प्रेमप्रभा तोमर ने भी कई बार अवध विलास के महत्वपूर्ण प्रसंगों को सुनकर विविध प्रकार की सूचनाएँ प्रदान की हैं। एतदर्थ प्रभात्रय के प्रति स्नेहाभार व्यक्त करना स्वाभाविक है।

इतने महत्वपूर्ण महाकवि की कृति का प्रकाशन सम्भव नहीं होता यदि माननीय विश्वनाथ प्रताप सिंह मुख्य मंत्री (उ० प्र०) और साहित्य तथा संस्कृति के प्रति समर्पित विदुषी बहन कपिला वात्स्यायन, सलाहकार सांस्कृतिक मंत्रालय का अपरिमित सहयोग न प्राप्त होता। केन्द्रीय शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय के उपसचिव एन० डी० गुप्त, श्री भवानीशंकर जी शुक्ल, (निदेशक, सांस्कृतिक कार्य उ० प्र०) त्रिभुवन नाथ पाण्डेय एवं डॉ ओमप्रकाश श्रीवास्तव का सहयोग भी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। ग्रंथ के प्रकाशन में डॉ० संतोष दीक्षित, डॉ० उर्मिला दीक्षित, डॉ० विद्या वर्मा, प्रूफ संशोधन में पं० वेदमणि त्रिपाठी, श्री रामप्रसाद शुक्ल "शास्त्री", श्री जगदीश दीक्षित, श्री गोविंद शरणदास का योगदान उल्लेखनीय है।

माननीय प्रभाकांत शुक्ल (कुलपति बुन्देलखंड बि० वि०), डॉ० गोरखनाथ द्विवेदी, प्रो० वासुदेव सिंह, आचार्यप्रवर पं० सीताराम चतुर्वेदी, डॉ० भगीरथ मिश्र, डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित, आचार्य पं० विनय मोहन शर्मा, प्रो० विष्णुकांत शास्त्री, डॉ० वी० राममूर्ति रेणु, डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, डॉ० प्रेमशंकर, डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम', प्राचार्य पं० अयोध्यानाथ शर्मा, डॉ० रघुवंश, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० उदयभान सिंह, आचार्य पं० सिद्धिनाथ मिश्र, डॉ० अशोक प्रभाकर कामथ, डॉ० गजानन नरसिंह साठे, राष्ट्रकवि पं० सोहन लाल द्विवेदी, प्राचार्य बाबूलाल गर्ग, डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पं० वासुदेवप्रसाद दीक्षित, पं० चन्द्रशेषर दुबे, ए० के० सहगल, डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ० अशोक त्रिपाठी, डॉ० इन्दुजा अवस्थी, श्यामनारायण पांण्डेय, डॉ० रामगोपाल गुप्त, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, लल्लनप्रसाद व्यास, डॉ० वचनदेव कुमार, डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल, पं० जयगोपाल मिश्र, हरीकृष्ण, प्रो० धर्मेन्द्र नलिन, महेशचन्द्र द्विवेदी, मुंशीज्ञानसिंह, रामशंकर मिश्र, शक्तिकांत, पं० शिवबालक त्रिपाठी, आदि विद्वानों ने समय-समय पर अनेक प्रकार की सहायता दी है, एतदर्थ इन सबके प्रति हृदय से आभारी हूँ।

वात्सल्य के सप्तर्षि वर्तिका, वर्तुल, व्यंजक, अनामिका, शोभित, आवृत्ति और उन्मेष के अतिरिक्त चि० सुधीर (गुड्डू) की स्नेह-सिंचित स्मृतियाँ भी रचना-यात्रा में प्रेरणा का कार्य करती रहीं।

मध्ययुग में रसिक साधना अत्यन्त प्रभावी रही है। रसिकोपासक राम-सीता के युगलोपासक रहे हैं। इधर गोस्वामी तुलसीदास कृत 'युगल ध्यान पद' की एक दुर्लभ पाण्डुलिपि मुझे चित्रकूट से प्राप्त हुई है, जिससे तुलसी की युगलोपासना और रसिकोपासना भी प्रमाणित होती है। मध्य युग में रसिक साधकों द्वारा देश के विभिन्न अंचलों में रसिक साधना की दीक्षा भी दी जाती थी। संत चंददास ने पदावली के एक पद में इस ओर संकेत किया है—

"आवत संत हमारे जबै जब
रसना रसिक करी रसियन सो अनरस रास निवारे जबै जब।"

(चंददास पदावली, हस्त चं० श० सं० प्रति)

'अवध विलास' इसी रसिक साधना के लीला विलास की एक ऐसी उज्ज्वल विभूति है, जिससे हिन्दी साहित्य का इतिहास अभी तक अपरिचित था। काल की दुर्जेय कारा को तोड़ कर कवि की यह कालजयी कृति अपने कृतित्व के सौरभ से रसिक सहृदयों को निरंतर सुरभित करती रहेगी, इसी संकल्पना के साथ।

—**चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'**

विषय-सूची

का संकल्प (१७६) गणिका का श्रृंगी ऋषि की गुफा में जाना (१७६) गणिका के हाव-भाव एवं उसकी श्रृंगारिक चेष्टाएँ (१७७) श्रृंगी ऋषि का भ्रम से गणिका को कोई मुनि (भक्त) मानना (१७७) भ्रान्ति से गणिका को मुनि मानकर उसके चरण धोने का उपक्रम (१७८) गणिका का रूप अलंकरण (१७८) गणिका द्वारा श्रृंगी ऋषि से मिलाप एवं वतरस (१७६) श्रृंगी ऋषि द्वारा टहल छोड़कर छवि में अटकना (१७६) श्रृंगी ऋषि के पिता द्वारा पुत्र की साधना में विचतन का अनुमान (१७६-१८०) श्रृंगी ऋषि द्वारा गणिका के रूप को मुनि के रूप में वर्णित करना (१८०) श्रृंगी ऋषि के पिता द्वारा श्रृंगी ऋषि को गणिका (मुनि) के पास जाने से मना करना (१८१) ठगिनी द्वारा लौकिक व्यंजनों को यौगिक आस्वाद्य के रूप में प्रस्तुत करने की छल पूर्ण चेष्टाएँ (१८२-१८३) ठगिनी द्वारा श्रृंगारिक हाव-भावों का प्रदर्शन (१८४-१८५) श्रृंगा ऋषि को नगर ले चलने के लिए दूती की एक उक्ति (१८५) एक नौका में सम्पूर्ण वनस्पतियों को लगाना (१८६) विविध वृक्षों एवं पुष्पों की नामावली (१८६-१८७) वनस्पतियों की जातिभेद (१८८) श्रृङ्गी ऋषि का नौका पर आना तथा गंगा के माध्यम से उन्हें अयोध्या लाना (१८८) सौभरि मुनि के ब्याह की कथा (१८६) उद्दालक मुनि के ब्याह की कथा (१८६) नासिकेत के जन्म की कथा (१८६) दशरथ द्वारा श्रृङ्गी ऋषि की पूजा (१६०) विभांड का लोमपाद राजा के पास आना तथा रोष व्यक्त करना (१६०) विभांड का पुनः-प्रसन्न होना (१६१) श्रृङ्गी ऋषि का वन लौट कर पुनः तप में रत होना (१६१)।

अष्टम विश्राम पृ० १६२-२३०

उपासना में अनन्य भाव (१६२) जग की उत्पत्ति (१६२) स्त्री-पुरुष शक्ति एवं शिव के रूप (१६२) देह के प्रकार (१६३) पचीस प्रकृति के नाम (१६४) क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ विवेचन (१६४) ब्रह्म, अविद्या, आत्म विवेचन (१६४) सांख्य-वेदांत दर्शन का विवेचन (१६५) इन्द्रियों के देवताओं का विवेचन (१६५) मुक्ति विवेचन (१६६) माया (१६६) ज्ञान (१६७) दशरथ द्वारा विभिन्न रुचियों एवं क्रीडाओं का देखना (१६७) छन्दों की सूची (१६८-२०२) पर्यायवाची शब्द हरि, सरंग, (२०२) नवग्रहों के देवता (२०३) अमरकोश का परिचय (२०३) पर्याय-वाची सूर्य (२०४) अग्नि (२०५) पवन (२०६) भूमि (२०६) आकाश (२०७) चन्द्र (२०७) देवता (२०८) असुर (२०८) मेघ (२०८) शोभा (२०६) बुद्धि (२०६) वाक (२०६) सदन (२१०) नारायण (२१०) लक्ष्मी (२११) शंभु (२११) उमा (२१२) इन्द्र (२१३) काम (२१४) काम के पंचवाण (२१४) नारी (२१४) मृतिका (२१५) बालक (२१५) समुद्र (२१६) नदी (२१७) कमल (२१८) कोयल (२१८) वृक्ष (२१६) मयूर (२१६) सर्प (२१६) दिग्गज (२१६)पक्षी

भाइयों का अवतरण तथा लक्ष्मी के रूप में सीता का अवतरण (२६२) विराट रूप के सौन्दर्य को देखकर दशरथ का चकित होना तथा स्तुति करना (२६३) विभूति-पाद का निरूपण (२६४-२६५) बाल्य रूप एवं सौन्दर्य का मंजु एवं मनोहारी वर्णन (२६६) रामलला को नृत्य नचाना (२६६) वात्सल्य वर्णन (२६६) परिजन एवं पुरजनों द्वारा रत्न आभूषण का भेंट करना तथा राजा द्वारा उन्हें ही पहनाना (२६७) रामजू के जन्म मंगल का फल (२६७) वाल्मीकि के प्रति आभार (२६७) रामजन्म स्थान की भौगोलिक स्थिति का वर्णन (२६८)।

द्वादश विश्राम पृ० २७०-२९५

वाल्यावस्था में राम का रोना तथा चुप न होना (२ ०) दशरथ द्वारा राजा बलि की कहानी सुनाकर राम को चुप करना (२६०) शुक्र के आँख फूटने की कथा (२७२) विभिन्न प्रासंगिक कथाओं का उल्लेख (२७२) दशरथ द्वारा पुत्र के भविष्य फल की जानकारी (२७) रत्न मंडप की शोभा (२७४) राम का वाल्य-सौन्दर्य (२७५) द्वाद्स सूर्य कथा (२७६) ग्यारह रुद्र उत्पत्ति (२७७) काक भुशुण्डि की कथा (२७७) जन्म तिथि पर तीर्थों का समागम (२७७-२८०) कवि का परिचय विषयक संकेत (२८०-२८१) लक्ष्मी का विरह वर्णन (२८१-२८२) सीता उत्पत्ति प्रसंग (२८४-२८५) सीता के लक्षणों का वर्णन (२८९ से २९०) सीता के रूप सौन्दर्य एवं वाल्य क्रीडाओं का वर्णन (२९१-२९२) सीता की शिक्षा प्रसंग में व्याकरण सम्बन्धी विवेचन(२९३-२९४) जनक की चिन्ता (२९४-२९५)।

त्रयोदश विश्राम पृ०२९६-३१२

आयु का नूतन वर्गीकरण (२९६) बाल्य जीवन का आंगिक एवं अलंकृत वर्णन (२९६-२९८) वाल्य क्रीडाओं का रसात्मक वर्णन (२९८) वात्सल्य प्रेम के अन्तर्गत चिन्ता (२९९) स्वच्छन्द क्रीडा प्रिय बालकों को द्वार से रानी द्वारा खेदना (३००) बालकों द्वारा माताओं की दुर्गति तथा एक सखी द्वारा छुड़ाना (३००) लालदास का तमाशा देखना (३००) लोक रीतियों के अन्तर्गत तिथियों के अनुसार आहार का निषेध (३०१) राम के अध्ययन पीठ के रूप में विद्याकुण्ड का उल्लेख (३०२) चौदह विद्या और चौंसठ कलाओं का उल्लेख (३०३) राम का किशोर काल एवं युद्ध वीरता का उल्लेख (३०३-३०५) कुश्ती के दाँव-पेंच (३०६-३०७) सरयू तट पर राम का वन विहार (३०८) माता द्वारा विविध प्रकार के भोजन कराना (३०९) राम की नित्य लीलाओं में लालदास का भक्त के रूप में साथ-२ रहना (३०९) भोजन एवं व्यंजनों की गणना (३१०) जलक्रीडा (३११-३१२)

अष्टादश विश्राम पृ० ३५९-३७३

एकोनविंशत विश्राम पृ० ३७४-३९०

बीसवाँ विश्राम पृ० ३९१-३९८

———

प्रस्तावना

लालदास तुलसी के समकालीन हैं, यद्यपि रामचरित मानस और अवध विलास के रचनाकाल में लगभग १०० वर्ष का अन्तराल है। तुलसी के उत्तरवर्ती जीवन में लालदास के जीवन के पूर्वार्द्ध का प्रारम्भिक चरण ही रहा होगा। तुलसी के 'रामचरितमानस' से हिन्दू समाज परिचित होने लगा था किन्तु लालदास रामचरितमानस से भिन्न भावभूमि पर जिस रसिक साधना के सूत्र लेकर साधना एवं काव्य के क्षेत्र में आये, वह मर्यादा भक्ति के अतिरिक्त रागात्मिका भक्ति के अधिक निकट थी। शृङ्गार युग की शृङ्गारिक चेतना को लेकर चलने के कारण युगानुरूप एवं शृङ्गारिक वृत्तियों को ऊर्ध्वमुखी करने वाली जो भक्ति धारा थी उसमें न तो निर्गुणियों या सन्तों की कठोर दमनात्मक ऐन्द्रिय साधना थी और न ही नाथ सिद्धों की हठ योग परक साधना। इसमें तुलसी के मर्यादावाद को भी एक नयी रसिक भाव धारा का योग प्रदान किया गया है। इस प्रकार कबीर, सूर, तुलसी से भिन्न रसिक भक्ति धारा को प्रवहमान करने में १८वीं शताब्दी का अवधविलास साधना की एक मनोमयी रसधारा का सम्बल पाकर प्रकट हुआ, जिस रस के प्रवाह में अग्रदास जैसे रसिक अग्रगण्य रह चुके थे। पेरियालवार से लालदास तक यह रसिक धारा जो साकेत की लीला भूमि से अवतरित होकर मिथिला की अमराइयों तथा चित्रकूट की आरण्यक पयस्वनी की प्रमोदमयी धाराओं के साथ प्रवाहित होती रही उसकी उच्छल तरंगें सम्पूर्ण राष्ट्र के जन मानस को रसान्दोलित करती रही। इसी रसिक काव्य धारा की एक अत्यन्त प्रकर्षपूर्ण एवं प्रवेगवती धारा के रूप में लालदास की काव्य साधना भी प्रवाहित हुई जिसमें अनेक वैष्णवी भाव की साधना पद्धतियाँ भी अन्तरवलयित होकर रस की भाँति एकाकार हो उठीं। लालदास कृत अवधविलास रसिक साधना पद्धति को ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिपथगा के रूप में समनुक्रान्त करने वाला ऐतिहासिक महत्व का प्रबन्ध काव्य है जिसमें युगीन देशकाल की सीमाएँ परिलक्षित होती हैं तथा रस की एक आत्यन्तिक अखंडधारा भी सतत रूप में प्रवहमान दिखाई पड़ती है, जिसमें सौन्दर्य, प्रेम, विरह के लीला विलास की चिरंतन भावराशि भी आन्दोलित होती चलती है। रसिक साधना की यह धारा प्राचीन होकर भी १८वीं शताब्दी के शृङ्गारिक युग में विलासगामी नहीं होने पाई तथा रसिकता की यह समुन्नत वृत्ति वासना की पंकिलता से ऊपर उठकर लोक जीवन के लिए मंगल और माधुर्य को प्रदान करती रही। इस वाक् विभूति की

वर्चस्वमयी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक धारा को सर्वाधिक सशक्त बनाने में लालदास और उनके 'अवध विलास' का योगदान साहित्य के इतिहास में सर्वथा अचर्चित रह कर भी साधना और संस्कृति का प्रमुख स्वर प्रतीत होता है ।

रामकाव्य में रसिकोपासना की परम्परा—रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक अग्रदास (१५वीं वी. सा.) हैं, जिन्होंने आगम परम्परा का अनुसरण कर शक्ति और शक्तिमान अर्थात सीता और राम की रतिरस साधना को लीला एवं भक्ति के क्षेत्र में व्यवस्थित एवं प्रतिष्ठापित किया । दार्शनिक दृष्टि से रसिकोपासना अद्वैतवादी होकर भी लीला के क्षेत्र में द्वैत सिद्धान्त को लेकर चलती है तथा मूलरूप से वैष्णवी साधना के समीप है । तांत्रिक साधना का विनियोग भी इस साधना में पाया जाता है । यों तो राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय के लेखक डा० भगवती प्रसाद सिंह ने रसिक सम्प्रदाय के विकास, साधना एवं परम्परा का विस्तार से वर्णन अपने शोध प्रबन्ध में किया है, किन्तु मध्यकालीन रसिक साधना के कदाचित सर्वोच्च कवि लालदास के अवध विलास के अध्ययन से रसिक साधना की परम्परा के जो नये संकेत प्राप्त होते हैं उनके अनुसार इस परम्परा का मूल स्रोत वैष्णव धर्म को माना है । लालदास के अनुसार—

'आदि भक्त जे श्री हरि प्यारी, वंदौं ताहि भक्ति विस्तारी'

कवि ने मंगलाचरण के प्रकरण में इस ओर संकेत किया है मैं उस भक्ति का विस्तार से वर्णन कर रहा हूँ जो आदि भक्ति है तथा जो विष्णु को प्रिय है । इस प्रकार रसिक साधना का मूल स्रोत वैदिक साहित्य प्रतीत होता है । ऋग्वेद के अनुसार—

'इदं विष्णुं विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' से स्पष्ट है कि वहाँ भी त्रिधा पद विष्णु उपलब्ध हैं, जबकि वैदिक भक्ति मूलतः एकेश्वर अखंड अद्वैत एवं अभेद साधना के बीजों से भरी पड़ी है । आदि भक्ति से यह भी संकेत मिलता है कि वैदिक साहित्य में राम अथवा विष्णु परक साधना के सूत्र संगुंफित हैं । राम कथा का मूल स्रोत बाल्मीकि रामायण को माना जाता है, किन्तु यह तथ्य भ्रमका प्रतीत होता है क्योंकि बाल्मीकि ने स्वयं इस कथा को इक्ष्वाकु-वाक् की इच्छाओं से उद्भूत तथा 'रामायण-मितिश्रुतं' (बाल्मीकि रामायण १, ५, १, ३) से रामायण में 'श्रुत' का संकेत किया है । यह संकेत वेद मूलक प्रतीत होता है । इस गुत्थी को तुलसी ने और अधिक सूलझाया है जहाँ वे वेदों में राम कथा के विस्तार का संकेत करते हैं—

"वन्दहु चारिउ वेद, भव वारिध बोहित सरिस ।
जिनहि न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर विशद यश ।।"

तुलसी की यह वेद वन्दना और वेदों में 'रघुबर विशद यश' का संकेत हवा

में उड़ा देने योग्य नहीं है और न ही तुलसी जैसे राम कथा के केन्द्रीय कवि द्वारा यह बात अनजाने में लिखी प्रतीत होती है। तुलसी ने यहाँ तक लिखा है कि—

'वेद तत्व जनु प्रगटेउ चारी' अर्थात् राम और उनके चतुर्विग्रहों का अवतरण वैदिक तत्वों का है। रामकथा की उत्पत्ति में वेदों का साक्ष्य और भी प्रमाण पुष्ट करता चलता है। (तैत्तरीय आरण्यक—५, ८, १३, में राम शब्द का प्रयोग) विशेष विवरण के लिए 'राम विनोद' की भूमिका भाग पृष्ठ २८ से ३२ द्रष्टव्य हैं।

इस प्रकार रसिक भक्ति का विकास वैदिक साहित्य से चलकर वैष्णवी साधना के श्री मद्भागवत में पुष्ट स्वरूप धारण करता है। इतिहास के लम्बे अन्तराल को पार करता हुआ ९वीं शताब्दी में शठकोप आलवार इसे साम्प्रदायिक स्वरूप प्रदान करते हैं।

लगभग ६०० वर्षों तक राम भक्ति की यह रसिक धारा दक्षिण भारत के आलवार सन्तों और वैष्णवाचार्यों की साधना से सम्पुष्ट होती रही। इस रसिक धारा को सम्पुष्ट करने में रामानुजाचार्य (१०१६/१११७ ई०), श्री मध्वाचार्य (११९९ से १३०३ ई०) रामानन्द, राघवानन्द आदि आचार्यों के साथ वल्लभाचार्य का सम्बल पाकर विकसित होती रही। संस्कृत काव्यों में वाल्मीकि रामायण, रघुवंश, उत्तर रामचरित, जानकी हरण (कुमारदास कृत), हनुमन्नाटक में भी रसिकोपासना के बीज विद्यमान हैं। अग्रदास की ध्यान मंजरी ने इस साधना को व्यवस्थित किया। राम काव्य की यह रसिक धारा अपने सुदीर्घ कालीन इतिहास और संस्कृति को लेकर १८वीं शताब्दी में भी गतिशील रही। इस शताब्दी के रसिक रामभक्तों में भगवत रसिक, हित सेवक, हित दामोदर, हित गुलाब, विहारिणीदास, लालदास, चन्ददास और बनादास आदि प्रमुख रामोपासक रसिक कवि हो चुके हैं। लालदास इसी कड़ी के एक महत्वपूर्ण और साधना की दृष्टि से महिमान्वित भक्त साधक के रूप में अपना अस्तित्व लेकर अवतरित होते हैं।

लालदास का जीवन वृत्त—नागरी प्रचारणी सभा की सन् ई० की खोज रिपोर्ट में लालदास नाम के ३ कवियों का उल्लेख हुआ है। वह इस प्रकार हैं—

१. लालदास—अयोध्या निवासी, पहले बरेली में रहते थे। ये १७३२ के लगभग वर्तमान थे। इनके विषय में और कुछ भी ज्ञात नहीं है।

अवध विलास—दे० (ख — ३२) (ज — १९९) (छ — १९० सी०)

बारह मासी —दे० (६-१९० ए)

भरत की बारह मासी—दे० (६-१९० बी)

२. लालदास

आगरा निवासी, बादशाह अकबर के समकालीन सं० १६४३ के लगभग वर्तमान, जाति के वैश्य थे तथा स्वामी ऊधौदास के पुत्र थे।

इतिहास भाषा—(इतिहास सार समुच्चय) दे० (ग — २६)
(ख — १०)

बलि वामन की कथा— दे० (६—१६१)

३. लालदास

मनोहरदास के पुत्र, मालती (मालवा) निवासी थे।

ऊषा कथा—दे० (ज—१७०-ए)

बावन चरित—दे० (ज—१७०-बी)।

प्रथम लालदास जो अवध विलास रचयिता हैं तथा जिन्हें अयोध्या निवासी कहा गया है और बरेली का मूल निवासी कहा गया है वह हमारे आलोच्य कवि लालदास ही हैं। शेष लालदास नाम के दो कवियों के साथ न तो अवध विलास का उल्लेख किया गया है और न ही उनका कोई स्पष्ट काल निर्धारित किया गया है। अस्तु निर्विवाद रूप से इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है।

लालदास कृत अवध विलास की सूचना, नागरी प्रचारिणी खोज रिपोर्ट, हिन्दी साहित्य सम्मेलन खोज रिपोर्ट एवं चन्ददास साहित्य शोध संस्थान की खोज विवरण की प्रकाशित आख्याओं तथा समाचार-पत्रों की टिप्पणियों के अतिरिक्त जिन अन्य ग्रंथों में कवि का नाम तथा विवरण प्राप्त होता है, उनका विवरण निम्न प्रकार है—

(अ) डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने पद्मावत की भूमिका के प्राक्कथन (पृ० सं० ४१ में) में अवधी साहित्य की अनेक कृतियों तथा रचनाओं की एक तालिका दी है जिसमें इस कवि का विवरण इस प्रकार दिया गया है---

क्रमांक—	कवि	कृति	अनुमानित रचनाकाल
२३	लालदास गुप्त	अवध विलास	१६४३ ई०

इसके अतिरिक्त अन्य कोई विवरण इस ग्रंथ में नहीं प्राप्त होता।

(ब) डॉ० भगवती प्रसाद सिंह के 'राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय' (पृ० सं० ५३८) में रसिक साहित्य और उसके निर्माताओं की एक तालिका दी गई है, जिसमें कवि के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण प्राप्त होता है—

क्रमांक	कवि का नाम	समय	रचना	निवास स्थान
१०	लालदास	१६७५ ई०	अवध विलास	अयोध्या

उक्त विवरण के अतिरिक्त अन्य कोई जानकारी कवि के सम्बन्ध में इस ग्रंथ में नहीं प्राप्त होती ।

(स) डॉ० फादर कामिल बुल्के ने 'रामकथा उत्पत्ति और विकास' (पृ० सं० २५२) में कतिपय रामकथा के ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए कवि के सम्बन्ध में इस प्रकार विवरण प्रदान किया है :—

"भक्तिकाल की कुछ अन्य रचनाओं में रामचन्द्रिका, सोढ़ी मेहरबान कृत आदि रामायण (हिन्दी मिश्रित पंजाबी), **'लालदास कृत अवध विलास'** तथा जैनी राम साहित्य की समय सुन्दर की 'सीताराम चौपाई' आदि हैं ।"

उक्त विवरण के अतिरिक्त अन्य कोई विवरण लालदास के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में लालदास एवं लालचदास नाम के कवियों का उल्लेख प्राप्त होता है । आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लालचदास को रायबरेली जिला के हलवाई होने की सम्भावना व्यक्त की है तथा इनका काल सम्वत् १६०० के आस-पास माना है । इनकी कविता को साधारण कोटि की कहा गया है । हिन्दी साहित्य के अन्य इतिहास ग्रन्थों में डॉ० नगेन्द्र कृत 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास', डॉ० रामकुमार वर्मा कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', डा० राममूर्ति शर्मा कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लालदास तथा लालचदास का नामोल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु ऐसी कोई प्रामाणिक जानकारी इन इतिहास ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होती ।

कवि के जीवन-वृत्त का बहिर्साक्ष्य प्रामाणिक रूप में न होने के कारण अन्तः-साक्ष्य के आधार पर उनके जीवन सूत्रों का आकलन किया गया, जो इस प्रकार है । कवि के अवधविलास का रचनाकाल सम्वत् १७३२ पुष्ट एवं प्रमाणित है । 'संवत् सत्रह सो बत्तिस सुध वैशाष सुकाल' लालदास ने अवध विलास में अपने पूर्ववर्ती जयदेव, विद्यापति, तुलसी, सूर तथा केशव का उल्लेख किया है । हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में केशव का काल सं० है । इससे सिद्ध होता है कि केशव लालदास के पूर्ववर्ती कवि हैं । अस्तु लालदास का रचना काल केशव के बाद होना प्रामाणिक सिद्ध होता है ।

लालदास के काव्य में औरंगजेब कालीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है । उनका काव्य तत्कालीन शासन के विरोध में सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण करने वाला है । उदाहरण के लिए कुछ प्रसंग दृष्टव्य है—

औरंगजेब द्वारा तुलादान प्रथा को बन्द करवाना ।[1]

---

१. मुगलकालीन भारत—आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ० ३४६

लालदास ने इस निषेधाज्ञा को तोड़ने के लिए ही राम के जन्म अवसर पर तुलादान का वर्णन किया है।

औरंगजेब के हृदय में संस्कृत के विद्वानों के लिए कोई स्थान नहीं था। उसके शासनकाल में राजदरबार में संस्कृत के विद्वानों के लिए राजसम्मान बन्द हो गया था तथा पाठशालीय शिक्षा व संस्कृत शिक्षा के प्रति उपेक्षा की नीति अपनाई गई थी। पाठशालाओं के स्थान पर मकतब को विशेष प्रोत्साहन दिया गया।

लालदास, तत्कालीन पाठशालाओं और संस्कृत की शासन की उपेक्षा से भली-भाँति परिचित हैं। इसलिए वे सीता को संस्कृत व्याकरण का ज्ञान कराते हैं तथा संस्कृत के अनुवादों के लिए एक पूरे सर्ग का नियोजन करते हैं। सामान्य पाठकों की दृष्टि में ऐसे प्रसंग रस-भंग करने वाले प्रतीत होते हैं किन्तु कवि ने जानबूझ कर शासकीय आदेशों के विरोध में ऐसे प्रकरणों को सम्बद्ध कर दिया है।

सन् १६६६ ई० में औरंगजेब ने हिन्दुस्तान के इस्लामीकरण की अपनी नीति पर पूर्णतः अमल करना प्रारम्भ किया। इस दिशा में हिन्दू धर्म के केन्द्र के रूप में सर्वप्रथम आक्रमण बनारस पर हुआ।[१]

औरंगजेब ने मन्दिरों के विध्वंस का बीड़ा उठाया बल्कि "अपने शासनकाल के प्रारम्भिक दिनों में ही उड़ीसा के कटक से मेदिनीपुर तक के गाँव और नगरों के सभी पदाधिकारियों को आज्ञा भेजी कि पिछले १०-१२ वर्षों में बनाये गये छोटे-बड़े सभी मन्दिर गिरा दिये जाएँ और किसी प्राचीन मन्दिर के जीर्णोद्धार की आज्ञा न दी जाये।"[२] लालदास ने इसी राजाज्ञा के निषेध में अवध विलास में मन्दिरों के निर्माण तथा जीर्णोद्धार के कार्य को तेज करने के लिए कहा तथा मन्दिरों को विध्वंस करने वालों की भर्त्सना की—

बापी कूप तड़ाग तुरावै विप्र गेह देवल भहरावै।[३]

औरंगजेब के शासन में हिन्दू धार्मिक उत्सवों और पर्वों के आयोजन करने में स्वतन्त्र नहीं थे। गोवध को छूट दे दी गई थी। लालदास ने रावण जन्म के अवसर पर श्लेष के द्वारा गायों के रुदन करने, विप्र ऋषियों के मलिन होने तथा देव-विमानों के गतिहीन होने का संकेत किया है। देव-विमानों से कवि का आशय मन्दिरों से उठने वाले विमानों के निकालने के प्रतिबन्ध से है—

गऊ रुदन भे विप्र मलीना, देव-विमान भए गति हीना।[४]

---

१. "Banaras as the centre of Hinduism was the first to feel the weight of his bigotry."
—History of India (Medieval Periods) : Prof. L. Mukherjee, पृष्ठ २४१

२. Crescent in India के हिन्दी रूपान्तर से।

३. अवध विलास, पृ० १६६।   ४. तदुपरि, पृ० ८०

"औरंगजेब के शासनकाल में संगीत की भी उपेक्षा की गई। उसका तो यहाँ तक कहना था कि संगीत की आत्मा की मुक्ति के लिए प्रार्थना करके उसे खूब गहरा गाड़ना।"[१] उसने संगीत को दरबार से निकाल दिया था।

लालदास इस राजाज्ञा के विरोध में संगीत के दरबार और अखाड़े लगाते हैं। इतना ही नहीं तत्कालीन संगीत की उपेक्षा के कारण ही कवि ने सरयू उत्पत्ति के प्रसंग में संगीत विषयक विभिन्न प्रकार की सामग्री का परिचय देकर उसे नष्ट होने से बचाया है।

औरंगजेब के समय में सामन्तों और जागीरदारों से बड़े-बड़े उपहार लेकर उन्हें ओहदे दिये जाते थे। लालदास ने युगीन मनोवृत्ति को रेखांकित किया है—

(अ) बिना उसीला चाकरी।

(ब) जो कर भाव उसीला जागै, ताकी अवस चाकरी लागै।

औरंगजेब के समय में हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया गया था। इस कर के विरोध की ध्वनि लालदास के अवध विलास में पाई जाती है। उनके राम दुष्ट राजाओं से स्वयं कर माँगते हैं तथा कर न देने वालों पर सेना लेकर चढ़ाई करते हैं—

"केउ नृप दुष्ट होइ फिर रहहीं कर नहिं देहिं राम को कहहीं।
तब लै सैन्य चढ़ैं तिन्ह सोहें मारैं दौर-दौर गढ़ मोहैं॥
जोरावरि को पकरि मिलावैं रामराज्य के पायँ लगा वैं।"

औरंगजेब के समय में तुर्कों द्वारा बलात् अपहरण तथा बालकों की चोरी के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। कवि लालदास ने इसी युगीन परिप्रेक्ष्य को व्यक्त करते हुए लिखा है—

"हाथन छुरी तुरक ढढियारे, कटिहै कान जाहु जिन द्वारे।"

मुगलकालीन शासन के अंगों, सेनाओं के प्रकार तथा उसके विभागों के रूपक से अवध विलास के चतुर्दश विश्राम में रामराज्य के वर्णन के अन्तर्गत जो रूपक प्रस्तुत किया गया है, उसमें मुगलकालीन दरबारी संस्कृति का मात्र समानान्तर चित्रण ही नहीं है बल्कि सरकार के विरोध में एक बड़े सरकार का वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए देखें—

"जाको राज सकल ब्रह्मंडा। चौदह भुवन प्रथी नव पंडा।
× × ×
अली उजीर सबै सिरताजा, साहिब पूछ करैं सब काजा।

१. मुगलकालीन भारत, डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृ० ६१६।

फौजदार शंकर सिर ढारा, जाकै इन्द्र बली शिकदारा।

× × ×

कोतवाल जमराज हैं जोरा भैरव ताको फिरत करोरा।

धर्मराज पुनि रहत अमीना, ग्राम देव कानूनगो कीना।

चित्रगुप्त सब कर्मनि लिखई, मुस्तोफी भए कागद दिषहीं।

× × ×

अहदी नव ग्रह रोग अनन्ता, करत जगीर तगीर फिरन्ता।

× × ×

कल्प साह गाड़ी जुग जाकै, हासिल भरे चलत हैं ताकै।

× × ×

और धर्म ताबीन करारा, भक्ति धर्म सो बड़ सरकारा।

'कल्प साह' तथा 'बड़ सरकारा' शब्दों से स्पष्ट है कि यह 'शाह' शाह आलम अर्थात औरंगजेब, जिसका शासन विशाल था, के लिए प्रयुक्त हुआ है।

लालदास ने भक्त को सैनिक कहा है तथा सैनिक शब्दावली 'सावधान' का प्रयोग राम के लिए किया है। इतना ही नहीं राम बाल्यकाल से ही बालू के कोट बनाते हैं। बालकों के साथ फौज बनाकर खेलते हैं। इस प्रकार के वर्णन में तत्कालीन राजनीतिक घटनाचक्र और दबाव को ही व्यंजित किया गया है—

(अ) जब लगि छाप दाग नहिं साँचा, तब लगि भक्त सिपाही काँचा।

अ० वि० पृ० ३१४

(ब) सावधान सब ही समय, लिए धनुष कर तीर।
लाल भक्त की भीर पै, आय परत रघुवीर।

सावधान शब्द से कवि ने अवधान सहित के अतिरिक्त श्लेष से सतर्क (alert) व्यंजना की है। मुगलकालीन छापे तथा युद्ध बिना किसी पूर्व सूचना के आकस्मिक रूप में होते थे, अतः 'सावधान' इसी ओर व्यंजना करता है।

(स) कबहुँक बालू कोट बनावहिं, करि-करि फौजन चढ़ि-चढ़ि धावहिं।

औरंगजेब मूर्तिकला का कट्टर शत्रु था।[1] लालदास ने मूर्तिकला को संरक्षण देने का संकेत दिया है। कवि के शब्दों में—

मूरत दोय राम की गाई, इक प्रतिमा इक शिला बनाई।

तत्कालीन शासन ने हिन्दू तीर्थों पर विभिन्न प्रकार के कर लगाये थे तथा तीर्थाटन पर निषेध भी था। लालदास ने इस राजाज्ञा के विरोध में स्वयं राम के द्वारा तीर्थ यात्रा का प्रस्ताव करवाया है—

---

१. मुगलकालीन शासन, पृ० ५५३।

'हाथी रथ निसान चलाये, तुरही अनत अनंतहिं पाये।
और अनेक लोक हर्षाना, तीरथ न्हान चले मन माना ॥

अवध विलास पृ० १७१

इतना ही नहीं कवि ने इस बात का भी संकेत किया है कि सयाने लोगों द्वारा तीर्थों का निषेध उचित नहीं है। निषेध करने वाला दोषी होता है—

तीरथ जात करत तप दाना, मनै न करत जो लोग सयाना।
जप तप व्रत पूजा मन भाई, लागत दोष मनै करै ताई ॥

तीर्थ यात्रा के लिए प्रस्थान करने वाले राम के प्रति माँ का यह कथन कि राम तुमको किसने भरमा दिया है। क्या तुम बौरा गये हो? इसी शासकीय निषेधाज्ञा की ओर संकेत करते हैं।

(अ) अब अस ज्ञान कहाँ ते पायो। किनि तोहिं पूत धूत भरमायो।

अ० वि० पृ० ३२०

(ब) कौन जतन करि-करि सुत बाने। सोई ये भयो चहत बौराने।

अ० वि० पृ० ३१६

इतना ही नहीं राम के तीर्थाटन से लौट आने पर अवध में बधाइयाँ बजती हैं—

तीरथ करि आए घरहिं बार्जी अवध बधाय।

अ० वि० पृ० ३२१

डोले और पालकियों पर चलना भी मुगलकालीन शासन में निषिद्ध था किन्तु लालदास ने इस निषेधाज्ञा को भी काव्य में भंग करवाया है—

(स) रंग-रंग डोला सुकपाला। अ० वि० १७०

औरंगजेब के काल में राजा द्वारा तिलक किये जाने की प्रथा थी। लालदास इसके विरोध में विप्र द्वारा दिए गये तिलक को अधिक लाभकारी बतलाते हैं—

तिलक विप्र कर फल अधिकाई।

—अ० वि० १७०।

अवध विलास युगीन राजनीतिक चेतना की दृष्टि से औरंगजेब कालीन फरमानों के विरोध में सांस्कृतिक मान्यताओं के समर्थन का काव्य है।

सामासिक संस्कृति की सर्जना के लिए कवि प्रयत्नशील है। वह हिन्दुई और तुर्की के बीच प्रेम को ही सर्वोपरि मानता है—

का तुर्की का हिन्दुई भाव चाहिए साँच।

इतना ही नहीं कवि ने राम के द्वारा सलाम करना भी स्वीकार किया है, और यह शायद राम कथा के इतिहास में कवि कल्पना प्रसूत पहली घटना हो। इस प्रकार लालदास साम्प्रदायिक कट्टरता तथा धर्मान्धता से ग्रस्त नहीं है, किन्तु वे अन्याय व अत्याचार के प्रतिरोध में खड़े होते हैं। गाँव और खेत की सीमा मिटाने वाले, मन्दिर और देवालय तोड़ने वाले, धार्मिक स्वतन्त्रता और मौलिकता में हस्तक्षेप करने वाले औरंगजेब के तत्कालीन शासन की प्रकारान्तर से भर्त्सना भी करते हैं।

अवधविलास की प्रतियों का विवरण

(अ) **चंददास साहित्य शोध संस्थान प्रति**—यह प्रति देवनागरी लिपि में सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध हुई है। इसकी प्राप्ति का स्रोत टिकार, (हरदोई) है। यह प्रति सेमरझाल से टिकार के ठाकुर हरबख्श सिंह के पास आई तथा कवि दिनेश देवराज द्वारा टिकार से बाँदा लाई गई। इस प्रति को 'च' प्रति के नाम से सम्बोधित किया गया है। प्रति प्राचीन कागज पर काली स्याही से अंकित है तथा मूल प्रति की प्रतिलिपि प्रतीत होती है। इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—अवध विलास, पूर्ण पृष्ठ ३७६, सुरक्षा स्थान, चंददास साहित्य शोध संस्थान, बाँदा।

(ब) **छतरपुर प्रति**—यह प्रति छतरपुर से उपलब्ध हुई है। प्रति खंडित प्राचीन कागज पर १४×६ के आकार में देवनागरी लिपि में अंकित है। जिसका प्रतिलिपिकाल १९वीं शताब्दी है। इसे 'छ' प्रति से सम्बोधित किया गया है। यह प्रति डॉ० वेद प्रकाश द्विवेदी के पास है।

(स) **हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रति**—इस प्रति का विवरण इस प्रकार है—अवधविलास, पूर्ण २४.५×१७ लिपिकाल सम्वत् १९६४, आधुनिक मांड पत्र, पृष्ठ संख्या ११३०, प्राप्ति स्रोत डॉ० नवल बिहारी मिश्र, सीतापुर (उ० प्र०)।

सम्पादन कार्य करते समय मैंने इस प्रति का भी अवलोकन किया है। इस प्रति में एक सील अंकित है जिसमें लिखा है—T. BRIJRAJ Singh, Hatia gajipur, Dist, Sitapur. बहुत सम्भव है डॉ० नवल बिहारी मिश्र को यह प्रति ब्रजराज सिंह के यहाँ से प्राप्त हुई हो। तथा ब्रजराज सिंह को यह प्रति गंगाबहादुर सिंह मौजा नवीधानाढ़ (लखनऊ) से मिली थी। सम्प्रति ये प्रति हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नवल बिहारी संग्रहालय के अन्तर्गत सुरक्षित है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार हैं—इति श्री अवधविलासे बुद्धिप्रकासे, सबगुणरासे भक्त हुलासे पापबिनासे कृतलालदासे ग्रन्थ सम्पूर्णताम बीसमो विश्राम /२०/ माघकृष्ण सात सम्वत् १९६४।

लालदास ने 'अवधविलास' की रचना का काल सम्वत् १७३२ बताया है। उन्होंने 'अवधविलास' में इस बात का भी उल्लेख किया है कि सात वर्ष तक अयोध्या

में रहकर यह काव्य लिखा गया है। इससे ज्ञात होता है कि वे सम्वत् १७२५ के आस-पास अयोध्या आ गये थे और इसके पूर्व सम्वत १७१० से १७२५ तक यानी १५ वर्षों तक काशी में रहे जहाँ उन्होंने अपने संस्कृत ज्ञान को पुष्ट किया होगा तथा अनेक प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान को सभाओं के अवगाहन से प्रामाणिक बनाया होगा। "सभा अनेक होत अवगाहा, देशान्तर बहुतै फल आहा।" से भी यह बात प्रमाणित होती है कि उन्होंने देशान्तर भ्रमण के बीच विभिन्न सभाओं का अवगाहन किया था। काशी आने के पूर्व वे सम्वत् १६९८ से १७१० तक यानी लगभग १२ वर्ष विभिन्न तीर्थों में भ्रमण करते रहे और इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन के ३४ वर्ष तीर्थाटन में व्यतीत किये। तीर्थाटन की महिमा करते हुए लालदास नहीं थकते। यह तीर्थ महिमा मात्र पौराणिक मूल्यों से प्रभावित होने के कारण नहीं है बल्कि ज्ञान के क्षितिज को सामान्य घरोंदो से मुक्त करने का एक उपक्रम लिये हुए है। इन्हीं तीर्थटनों ने लालदास को एक व्यापक दृष्टि प्रदान की। इन तीर्थों ने धार्मिक दृष्टि दी। सांस्कृतिक विविधता, लोक संस्कृति एवं परम्पराओं का परिचय, प्रकृति सौंदर्य बोध, एवं प्रकृति के पार जीवन के सत्यों का साक्षात्कार करने का अवसर भी कवि को प्राप्त हुआ।

तीर्थाटन के पीछे कवि ने अपने मूल निवास स्थान को छोड़ दिया। लालदास ने अवधविलास में इस बात का भी उल्लेख किया है कि वे शनि की कुदृष्टि से बचने के लिए तीर्थों की शरण में चले गये—

'जो न मैं तीरथ सरण रहातो, तो शनि मोहिं मार लै जातो।'

कवि के जन्मकाल तथा मृत्यु तिथि का कोई प्रामाणिक विवरण अभी तक नहीं उपलब्ध हो सका। अनुमानतः उनका जन्मकाल सम्वत १६७० के आस-पास एवं निधन काल सम्वत १७५० के आस-पास निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि अवधविलास की रचना के पूर्व कवि ने लगभग ३४ वर्ष विभिन्न तीर्थों में रहकर व्यतीत किये। यदि तीर्थाटन के पूर्व उनकी आयु अनुमानतः ३० वर्ष मान ली जाये तो कवि ने लगभग ६० वर्ष की परिपक्व आयु में अवधविलास की रचना की होगी तथा ग्रन्थ रचना के पश्चात् लगभग २० वर्ष जीवित रहे होंगे।

लालदास की जन्म भूमि—नागरी प्रचारणी सभा खोज रिपोर्ट में लालदास को अयोध्या निवासी तथा इसके पूर्व बरेली का निवासी बताया गया है। वस्तुतः लालदास ने अवध विलास की रचना अवध में रहकर की जैसा कि ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्य से प्रमाणित है "लाल अवध मधि रहि रच्यो अवध विलास रसाल।" इस प्रकार वे अवध में आकर बसे थे किन्तु मूलतः बरेली के रहने वाले प्रतीत होते हैं। इस सम्बन्ध में मेरी मान्यताएँ इस प्रकार हैं—

'भरत की बारहमासी' नामक कृति में कवि ने 'बाँस बरेली' में ही जीवन के नवें वर्ष में रामनाम के उच्चारण का उल्लेख किया है जो कवि की जन्मभूमि का प्रामाणिक संकेतक है—

"नवै साल लोंद की भादौं अगहन गहन पर्‌यो।
बाँस बरेली लालदास ने रामनाम को उच्चर्‌यो।।"

(१) लालदास का जन्म स्थान बरेली ही होना चाहिए क्योंकि ना० प्र० खोज रिपोर्ट में उन्हें बरेली का होना कहा गया है ।

(२) अवधविलास में जिन आञ्चलिक बोलियों के शब्द मिलते हैं उनमें बरेली मण्डल के आञ्चलिक शब्दों की बहुलता है । बाबू, द्वारे, जिनि, बिगवा, गादी आदि शब्द इसी अञ्चल के हैं ।

(३) बरेली बाँसों के लिए प्रसिद्ध है । 'उल्टे बाँस बरेली को' एक कहावत भी प्रचलित है । अवध विलास में कवि ने असुरों की वंश वृद्धि का जो बिम्ब चुना है उसमें बाँसों का ही उपमान चुना गया है 'असुर अनेक बांस सम फूटैं ।' बासों के इस प्राकृतिक बिम्ब को चुनने का कारण कवि का जन्मभूमि के प्रति लगाव भी प्रतीत होता है । यह स्वाभाविक है कि बरेली निवासी कवि अपने नगर की मुख्य प्राकृतिक सम्पत्ति बांसों के प्रतिशाखाओं में फूटने का उल्लेख करे ।

(४) अवध विलास अवध अंचल में रहकर लिखा गया ग्रन्थ है किन्तु उसमें अवधी के अतिरिक्त ब्रज के प्रयोग भी पाये जाते हैं । जो स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं । इसका कारण कवि का जन्मभूमि के प्रति लगाव प्रतीत होता है । बरेली भाषा विज्ञान की दृष्टि से ब्रज के अन्तर्गत आता है अतः अवध विलास की रचना में अवध (ग्रन्थ प्रणयन का स्थान) के कारण अवधी तथा बरेली (कवि की जन्मभूमि) के कारण ब्रज का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है ।

(५) लालदास का नामोल्लेख नेपाल में पाया जाता है । नेपाल बरेली मण्डल के निकट का क्षेत्र है अतः कवि की जन्मभूमि के निकटवर्ती क्षेत्रों में कवि की चर्चा होना स्वाभाविक है ।

(६) लालदास की कृतियों की अधिकांश प्रतिलिपियाँ बरेली के समीपवर्ती क्षेत्रों में उपलब्ध हुई हैं । अस्तु इस दृष्टि से भी बरेली को जन्मभूमि स्वीकार किया जा सकता है ।

उक्त तर्कों के आधार पर कवि की जन्मभूमि बरेली ही सिद्ध होती है । अभी तक कोई ऐसे प्रमाण नहीं प्राप्त हुए जो बरेली जन्मभूमि के विपक्ष में कोई आधार प्रस्तुत करें ।

लालदास के ग्रन्थ के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वे राजशेखर के 'उक्ति विशेष' के सिद्धान्त से परिचित थे । संस्कृत, प्राकृत, अरबी, फारसी तथा

हिन्दी के साहित्य से भली-भाँति परिचित होने के कारण यह कहा जा सकता है कि वे इन भाषाओं के जानकार ही नहीं थे अपितु उनके अधिकारी भी थे। संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों से ली गई उक्तियाँ, संगीत विषयक कवि की जानकारी, संस्कृत के अनुवाद सम्बन्धी प्रकरण, आयुर्वेद व ज्योतिष तथा पिंगल विषयक सामग्री प्रमाणित करती है कि लालदास संस्कृत काव्य शास्त्र, व्याकरण, दर्शन आदि की परम्परा में पुष्ट एवं दीक्षित थे। उन्होंने बहुत सम्भव है किसी ऋषि कुल में विधिवत् शिक्षा भी प्राप्त की हो। वे बुद्धि के विस्तार के लिए गुरुकुल को अपरिहार्य मानते हैं।

कवि के काव्य में प्रयुक्त वैविध्यपूर्ण सामग्री, आचार्यत्व विषयक उनकी स्थापनाएँ तथा जयदेव, सूर, तुलसी, केशव और विद्यापति की प्रतिस्पर्द्धा में सरल काव्य का कवि का उद्घोष यह प्रमाणित करता है कि वे सामान्य श्रेणी के कवियों से अलग राजकवि, पंडित राज और महाकवि श्रेणी को वरण करने वाले विचित्र साहित्य मनीषी थे। शुक, सनकादि, व्यास की परम्परा का अनुधावन करते हैं। महाकवि अपनी प्रतिभा, पांडित्य, वैदुष्य और आचार्यत्व, कवित्व तथा रसिक साधना सभी दृष्टिकोणों से एक समर्थ एवं विशिष्ट प्रतिभा का प्रमाण देते हैं।

लालदास विष्णु भक्त थे। उनकी विष्णु भक्ति अवधविलास से भली-भाँति प्रमाणित हो जाती है। अवधविलास के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे वैश्य जाति के रहे होंगे। इसका सीधा संकेत तो नहीं प्राप्त होता किन्तु निम्नलिखित पंक्ति में 'गुप्त' के श्लेष से इस प्रकार का संकेत ग्रहण किया जा सकता है—'लाल गुप्त इह प्रगट किय अवधविलास बखान'। गुप्त गोपनीय तथा वैश्य जातिवाची श्लेष पद प्रतीत होता है। शनि के दुष्प्रभाव से बचने के लिए उन्होंने विभिन्न तीर्थों में भ्रमण किया था। भ्रमण में ही उन्होंने अवध को अपने वास के लिये चुन लिया तथा अवध की लीलाओं से रसान्दोलित होते रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अवध में ही रहकर रसिक सम्प्रदाय के किसी सिद्ध साधक से पन्थ की दीक्षा ग्रहण करली। इसके पूर्व वे गृहस्थ का जीवन जीते थे। उनके शैशव से लेकर यौवन कालीन जीवन-वृत्त के कोई भी सूत्र हस्तगत नहीं होते। ऐसा प्रतीत होता है लालदास चेतना, स्मृति और कल्पना की विशिष्ट शक्तियों से अपना बौद्धिक विकास इस सीमा तक कर चुके थे कि वे अवधविलास में यह दर्पोक्ति कर सके कि इसमें कौन-सी ऐसी वस्तु है जो उपलब्ध न हो—'सो वे बातें कौन हैं जो नहि अवधविलास'।

लालदास का यह कथन कि सैकड़ों पंडितों का ज्ञान अवधविलास में समाहित है, उनके पांडित्य का ही परोक्ष में सूचन करने वाला है।

'लाल बूझि जो देखिये नहीं अकल को खोज'

---

१. यस्तु तत्र तत्र भाषा विशेषे तेषु प्रबन्धेषु तास्मंतास्म स्वेस स्वतंत्र सः कविराजः।
(काव्य मीमांसा, पृ० १२१)

लालदास ने अपने को राजशेखर की भाँति कविराय (कविराज) कहा है, महाकवि नहीं। कवियों की दस श्रेणियों में छठी श्रेणी में महाकवि आते हैं तथा उनसे उच्च सातवीं श्रेणी में कविराज आते हैं।

लालदास कवि, सहृदय, समीक्षक, आचार्य श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। उनके काव्य में प्रयुक्त भौगोलिक वर्णनों से ज्ञात होता है कि लालदास इन विषयों के भी अच्छे जानकार थे। व्याकरण के सूत्र और वार्तिक जिनके संकेत अवधविलास में किये गये हैं, वे लालदास के व्याकरणविद् होने का प्रमाण देते हैं। उनके काव्य में संस्कृत, प्राकृत, अरबी, फारसी तथा देशी भाषा के सार्थक शब्दों तथा भाषाविषयक उनकी रसात्मक प्रयुक्तियाँ उनके बहुभाषाविद् होने का भी संकेत प्रदान करते हैं। नन्दकेश्वर तथा भरत के नाट्य सिद्धान्तों से लालदास परिचित ही नहीं है, वे नाट्य प्रकरण के अन्तर्गत हस्तक भेद में नन्दकेश्वर तथा संयुक्त हस्ताभिनय में आचार्य भरत का अनुमोदन करते हैं, किन्तु भरत के नाट्य शास्त्र में निर्देशित नृत्य हस्त को लालदास मान्यता नहीं प्रदान करते तथा संयुक्त हस्ताभिनय में नन्दकेश्वर से भी असहमति प्रकट करते हैं। इससे लालदास के पुष्ट आचार्यत्व का भी प्रमाण मिलता है। अवध विलास में संगीत प्रकरण के अन्तर्गत संगीत विषयक सिद्धान्तों, कला अंग, गति, जाति, गृह, प्रस्तार, काल, मारग, क्रिया आदि का निरूपण तथा कोहल, कश्यप और मतंग जैसे संगीत व नाट्यशास्त्र के आचार्यों से लालदास की अनुरक्ति सिद्ध करती है कि उनका सम्बन्ध संगीत के अखाड़ों से भी रहा। अवध भरत-नाट्य और देशी संगीत का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। लालदास की रसिकता तथा संगीत प्रियता को अवध ने ही प्रभावित किया। काव्य रचना के लिए लालदास छन्दो-विधान को अनिवार्य मानते थे तथा गायन के आधार पर काव्य का वर्गीकरण करते हैं व कवि कर्म के प्रति सचेष्ट दिखाई पड़ते हैं। विविध छन्दों का उल्लेख करते हैं जिससे लालदास की सारस्वत साधना पुष्ट होती है। बहुत सम्भव है उन्होंने संस्कृत तथा प्राचीन भारतीय भाषाओं की शिक्षा किसी गुरुकुल में रहकर प्राप्त की हो। वे गुरुकुल को ज्ञान वृद्धि का प्रमुख एवं प्रथम स्रोत मानते हैं। उनके गुरुकुल के अध्ययन ने ही तो सीता के प्रकरण में अनुवाद जैसे नीरस विषय को हठात् जोड़ने को विवश किया है, जो संस्कृत पाठशालीय परम्परा का प्रभाव जान पड़ता है। अवध-विलास से पुष्ट होता है कि लालदास ने कालिदास, माघ, हर्ष एवं दण्डी को अपने अध्ययन का विषय बनाया था। कवि ने एक छन्द में इन ग्रन्थों के पढ़ने वाले की बुद्धि के प्रकर्ष का संकेत किया है।

(अ) 'ऋषिकुल पुनि गुरु ग्रन्थ और संगति देश भ्रमान।
लालबुद्धि विस्तार के कारन पंच प्रमान।

लालदास का ज्ञान समुद्र की तरह फैला हुआ है। वे कूप मण्डूक वृत्ति पर व्यंग करते हैं—'कूपा महि को मेढुका कहै समुद्र की बात।'

वस्तुतः लालदास देशान्तर भ्रमण को पांडित्य की एक कसौटी मानते हैं तथा घर में पोथी पढ़ने वाले व लोक व्यवहार से शून्य व्यक्तियों को पण्डित श्रेणी में नहीं रखते। यह भी ज्ञात होता है कि कवि ने देशान्तर गमन तथा विभिन्न विद्वत सभाओं का अवगाहन भी किया था। घर में ही रहकर रटंत करने वाले पण्डितों की परम्परा से वे भिन्न दिखाई पड़ते हैं तथा देशान्तर भ्रमण की महिमा कहते हुए नहीं थकते—

"बिन देशान्तर पंडित कैसो, ताको कहिब अंध को जैसो,
घर ही महँ तैसे पढ़ि पोथी, देखे किये बिना सब थोथी,
देशान्तर बहुतै फल आहा, सभा अनेक होत अवगाहा।"

लालदास राजाश्रयी प्रवृत्ति के चाटुकार एवं अर्थलोलुप कवियों को फटकारते हैं। राज सभा में बैठकर वक्तृत्व देने वाले चातुर्य पूर्ण काव्य रचना करने वाले कवियों को वे भिक्षुक कहकर भर्त्सना करते हैं—

"तर्क ग्रन्थ करै चतुराई, अपनी सभा बैठि बकताई,
लोभी गुनी खुशामदिवारे, तिन सब लै संसार बिगारै,
जुक्ता जुग्त कहै कछु दाता, भिक्षुक मानि लेय सोइ बाता।"

यहाँ कवि ने 'दाता' से रीतिकालीन आश्रयजनदाताओं की ओर तथा 'भिक्षुक' से दरबारी-चारण वृत्ति वाले-कवियों की ओर संकेत किया है जिससे ज्ञात होता है कि वे रीतिकाल के अन्तर्गत रहकर भी राजश्रयी वृत्ति से दूर रहने वाले संत कवि थे।

रसिक परम्परा के अखाड़ों में लालदास अयोध्या के किस प्राचीन अखाड़े से सम्बद्ध रहे यह कहना तो कठिन है पर अवधबिलास के गहरे अनुशीलन से ऐसे सूत्र मिलते हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि उनका सम्बन्ध कनक भवन अथवा राम जन्म भूमि वाले अखाड़े से रहा होगा। यह अखाड़ा लालदास के समय में सर्वोपरि महत्व का था। लालदास रामजन्म के अवसर पर बधाई देने के लिए सीधे कनक भवन में क्यों न प्रवेश कर जाते। लालदास की दृष्टि से यह प्रवेश उनकी रसिक साधना से सम्बन्धित है। साथ ही उनके रसिक सम्प्रदाय के अखाड़े की ओर भी संकेत करने वाला है। विविध प्रकार के विषयों के वर्णन का कारण उनके संस्कृत काव्यों का अध्ययन तथा राजशेखर की परम्परा से प्रभावित होना लगता है। राजशेखर के 'उक्ति विशेषं काव्यं भाषा या भवतु सा भवतु' का अक्षरशः अनुवाद लालदास ने इस रूप में किया है—

'कवि जन उक्ति विशेष बषानी, भाषा जैसी तैसी जानी।'

इतना ही नहीं राजशेखर ने 'काव्यार्थ योनियों' के रूप में काव्य के वर्णनीय विषयों की ओर संकेत करते हुए यह बताया कि कवि को विभिन्न स्रोतों से वस्तुओं

की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। उसे श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, राजनीति, भूगोल तथा समय विद्या की जानकारी होनी चाहिये। लालदास, राजशेखर की ही भाँति कविराज हैं तथा पंडित राज जगन्नाथ की भाँति पंडितराज भी हैं इसलिए विषयों का वैविध्य एवं वस्तुओं के स्रोत लालदास के लिये सुलभ थे। तभी तो वे इस ग्रन्थ को सर्वातिशय एवं सर्वसार के रूप में प्रस्तुत करने का उद्घोष करते हैं —

'सो वे बातैं कौन हैं, जो नहिं अवध विलास'।

अवध विलास की सर्जना का प्रेरक तत्व लालदास के शुद्ध बुद्ध हृदय में 'राम रस' की दिव्यता की अनुभूति प्रतीत होती है। कवि ने साकेत की पवित्र लीला भूमि को कल्प के रूप में, चुनकर जिस रसिक साधना से भावान्दोलित हुए उसकी दिव्य परिणति अवध विलास काव्य के रूप में हुई। कवि ने इस ओर संकेत किये हैं—

"इह सब मैं अपने मन जाना, तीरथ सेवत होत है ज्ञाना।
सात बरस रह्यो अवधहिं माहीं, जानि पाप किये कछु नाहीं।
तब मम हृदय भई इह बानी, राम धाम की कथा वषानी।"

वस्तुतः कवि के मानस में यह रसत्वपूर्ण छन्दोमयी वाणी दिव्य पावनता से निस्पन्दित हुई। पापशून्यता की सात्विक मनोवृत्तियों से निर्गत होने वाली सारस्वत धारा के रूप में सौन्दर्य का रस समुद्र लेकर लोक हिताय ऋषि मनीषा से उद्भूत हुई। इस प्रकार 'अवध विलास' की सर्जना की प्रेरणा न तो ऐन्द्रिय जिजीविषा है और न ही कोई लौकिक कीर्ति कामना। प्रेरणा का यह दिव्य रूप सामान्य काव्य साधना की भी वस्तु नहीं है। यह दिव्यता आत्यन्तिक साधना की सारगर्भित सरणि को पाकर ही लोक मंगल के लिए आत्मतत्व को लेकर प्रस्तुत हुई।

कथा वस्तु के स्रोत—लालदास ने अवधविलास की कथावस्तु का चयन वाल्मीकि रामायण एवं तुलसीकृत रामचरितमानस से भिन्न भाव-भूमि पर किया है। इस भिन्नता के कारण लालदास की मौलिक प्रतिभा जिसने परम्परागत वस्तु का उपयोग न करके लीक छोड़कर एक नयी शैली को विकसित किया है, विचित्र प्रतीत होती है। वस्तु की भिन्नता का एक दूसरा कारण रुचि भेद भी हो सकता है 'भिन्न-रुचिर्हि लोकः के सिद्धान्त को आधार मानकर कवि ने काव्य का सृजन किया—

'सबकी रुचि नहिं एक सी काहू कछू सोहाय,
ताते मैं बहुमत किये, अवध विलास बनाय।'

स्पष्ट है कि कवि ने वेद त्रयी, सांख्य, योग, पाशुपत इत्यादि अनेक मार्गों को वैष्णवी रसिक साधना से समन्वित किया है। ज्ञान, भक्ति और योग की त्रिबन्ध धारा 'अवध विलास' के सिन्धु में विलीन होती दिखाई पड़ती है। वस्तु की भिन्नता

का एक अन्य कारण लालदास की साधना का साम्प्रदायिक स्वरूप भी है। रसिकों के लिये यह कथा विशेष रसोपजीवी होगी, इसका संकेत भी कवि ने किया है—

'लाल रसिक जे होहिंगे पढ़िहैं अवध विलास।

उपर्युक्त कारणों से ही लालदास अवधविलास की नयी कथा भूमिका का सृजन करते हैं।

अवधविलास वस्तुविन्यास के क्षेत्र में सर्वथा विलक्षण है। ऐसा क्यों ? प्रायः लोक जीवन में तुलसी की रामकथा फैल चुकी थी। लालदास तुलसी के कृतित्व से परिचित थे। तुलसी के परवर्ती चन्दवरदाई (चन्ददास) की रामकथा 'रामविनोद' रामचरितमानस की अपेक्षा राष्ट्रीय जीवन एवं सांस्कृतिक संकट को लेकर चलने वाली है। रूपक-प्रधान होकर भी वह कथा के ढाँचे में तुलसी की परम्परा को लेकर चलती है, किन्तु अवधविलास की कथा राम कथा के क्षेत्र को पहली बार अतिक्रान्त करती है। नये रूप बन्ध को लेकर चकाचौंध करने वाली तथा सामान्य पाठक को अटपटी प्रतीत होने वाली कथा एक चैतन्य प्रबन्धकार की प्रस्तावना है।

भाषा की सरलता, सामान्य ग्रामीण जनता की मानसिकता को मूर्त करने की लालदास की अपूर्व क्षमता, रामकथा की परम्परित वस्तु में विन्यास की काट-छाँट, रूपबन्ध के नये प्रयोग, मौलिकता आदि के कारण लालदास तुलसी से भिन्न व्यक्तित्व लेकर आते हैं। वे वाल्मीकि, तुलसी के प्रति आस्थावान होकर भी कथा के पल्लवन तथा नूतन शैली की प्रयोगवत्ता में पूरे रामकाव्य धारा के कवियों से अलग अस्तित्व लिए हुए है।

एक बड़ी बात यह है कि लालदास ने लीक से हटकर अवधविलास की कथा का चयन किया है, जिसमें रसिक भक्ति की भावना, विशुद्ध कवि की सौन्दर्य सर्जना और कलाकार की कल्पना की समग्रता मूर्तिमन्त हुई है।

रामकथा के मार्ग में लालदास ने पहली बार एक विशेष प्रकार का अतिक्रम किया है। जबकि कथा के मार्ग में थोड़ा भी अतिक्रम न करने का निर्देश आचार्यों ने किया है।[१] आनन्द वर्धन के अनुसार रामायण आदि जो प्रायः सिद्धरस महाकाव्य हैं उनकी आश्रित कथाओं में रस-विरोध की अपनी इच्छा कवियों को न भिड़ानी चाहिए।[२] लालदास ने रामकाव्य की परम्परागत कथा के प्रख्यात वृत्तों में परिवर्तन न करके उन्हें मूलतः छोड़कर नूतन प्रसंगों का पल्लवन किया है। उन्होंने इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं की और न ही तुलसी की लीक को पीटने का काम किया है।

१. कथामार्गे न चाल्पोऽप्यतिक्रमः। —ध्वन्यालोक, पृ० ३३५.

२. सन्ति सिद्धरस परख्या ये च रामायणादय,
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधनी। —ध्वन्यालोक पृ० ३३५.

"रसिकों के अनुसार वास्तव में न तो सीता का हरण हुआ था और न स्वयं ब्रह्म राम ने एक तुच्छ राक्षस के वध के लिए धनुष बाण ही धारण किया। यह जगत को दिखाने के लिए एक नाटक मात्र था।"[१] लालदास इसी मान्यता को लेकर चलते हैं। उनके अनुसार सीता-हरण, रावण-वध, लंका-दहन आदि मायावी प्रसंग हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि राम कहीं आते जाते नहीं, वे नित्य हृदय साकेत में विहार करते हैं। कवि ने जहाँ-कहीं राम-कथा के इन परम्परित प्रसंगो का संकेत किया है वह केवल कवि परम्परा के निर्वाह हेतु। कवि ने इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है—

"मो मत राम गए नहि कतहूँ, और कविन्ह की कही कहत हूँ।"

कवि का यह स्वमत निरूपण सिद्ध करता है कि वे राम-कथा के प्रति एक निजी दर्शन तथा एक पृथक दृष्टिकोण लेकर चलते हैं। अन्य कवियों से भिन्नता का संकेत भी कवि ने किया है। इस संदर्भ में उनके कृतित्व का एक विशिष्ट पक्ष और भी उजागर होता है।

कवि की नव-नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा ने नूतन विचित्रताओं के आधान हेतु 'अवधविलास' की रचना की तथा उन प्रसंगों को राम कथा में पहली बार लाया गया जो प्राचीन महाकवियों द्वारा अदृष्ट रहे हैं। लालदास अवधविलास की कथा के वैचित्र्य के प्रति पूरा संज्ञान रखते हैं। बे अनुभव करते हैं कि उनकी यह कथा उन लोगों को अटपटी तथा विचित्र लगेगी जो अदृष्ट, अपठित, अल्पज्ञात तथा अश्रुत हैं। किन्तु उन्होंने यह भी संकेत किया है कि पंडित जनों द्वारा कथा प्रसंग की प्रवीणता को पहचाना जायगा—

(अ) अदृष्ट बात अपठित अश्रुत अल्प ज्ञान जेहि देह।
ताकौं अवधविलास रस अटपट लगिहैं एह॥

(ब) पण्डित हैं सो जानिहैं कथा प्रसंग प्रवीन।
मूरख मन महि मानिहैं लाल कहा इह कीन।

कथा वस्तु प्रबन्ध काव्य का प्रतिपाद्य होता है, जिसकी सिद्धि के लिए कवि विभिन्न कथाओं का आधार ग्रहण करता है। कवि की जीवन विषयक प्रतिबद्धता कथा के परिष्कार में प्रमुख भूमिका रखती है। कवि कथा के उस अंश का परिष्कार कर देता है जिससे उसके प्रतिपाद्य की सिद्धि नहीं होती। कथावस्तु के संचयन में कवि की रस-दृष्टि भी सहायक होती है। लालदास ने अवधविलास की वस्तु के गठन में प्रख्यात राम कथा के अनेक अंशों का परिहार किया है तथा रामेतर कथाओं

१. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, पृ० २८३-२६७

के विशेष अंशों को अपनी वस्तु के अनुकूल उपजीव्य बनाया है। रसिक साधना से प्रभावित होने के कारण कवि ने राम को चित्रकूट तक पहुँचा कर पुनः इन्हें अयोध्या वापस करा दिया। इस प्रकार हृदय-साकेत में होने वाली लीलाओं का आनन्द तथा रस बोध ही कवि का मुख्य प्रतिपाद्य प्रतीत होता है।

अधिकारिक कथा के साथ प्रासंगिक कथाओं की अवतारणाएँ की गयी हैं। प्रासंगिक कथाओं में कवि ने कहीं संकेत, कहीं नामोल्लेख, कहीं बिम्ब विधान, कहीं प्रसंग मात्र से उन कथाओं का संकेत किया है। पूरे प्रबन्ध में प्रासंगिक कथाओं का नियोजन प्रकरण वक्रता का सौन्दर्य लिये हुए है। इस प्रबन्ध-समुद्र में प्रासंगिक कथाओं की तरंग-मालाएँ पूरे वेग के साथ प्रसरित और समाहित होती हैं।

कथावस्तु में वर्ण्य विषयों की व्यापकता और उनके साधनभूत स्रोतों का संकेत कवि ने किया है—

(अ) "बहुत कथा बहु ग्रन्थ की उक्ति अनूठ अनंत।"

(ब) "ग्रन्थ ग्रन्थ परसत करत लेत ग्रन्थ की छांह
लाल कछुक अनुभव कहत राम कृपा की वाँह।"

तुलसी के 'नाना पुराण निगमागम' की भाँति लालदास का 'अवधविलास' ग्रन्थ 'परसत' से साधनभूत स्रोतों का संकेत करता है तथा तुलसी के 'क्वचिदन्यतोऽपि' की भाँति 'लाल कछुक अनुभव कहत' कवि की निजी अनुभूतियों की अभिव्यंजना का संकेतक है।

लालदास ने विभिन्न ग्रन्थों की छाया को ग्रहण किया है, जिसका संकेत कवि ने स्वयं किया है—

"ग्रन्थ-ग्रन्थ परसत करत, लेत ग्रन्थ की छाँह।"

कवि ने मूल स्रोतों के ग्रहण का संकेत अन्यत्र भी किया है। इस प्रकार के ग्रहण को न तो अपहरण कहा जा सकता है और न निन्द्य। राजशेखर का मत है कि भिन्न-भिन्न अर्थ वाले अनेक पादों को एक पाद से मिला कर अर्थ संगति कर देना हरण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसमें एक प्रकार का कवि प्रतिभा जन्य कवित्व ही रहता है। एक पदहीन श्लोक के समान ही कुछ पादों का प्रयोग करना हरण अथवा स्वीकरण नहीं कहे जा सकते। कभी-कभी किसी काव्य रचना में पद के एक भाग का परिवर्तन कर देना भी हरण या स्वीकरण नहीं कहा जा सकता। छन्द के सम्पूर्ण वाक्यों को ग्रहण कर उसको भिन्न रूप देकर प्रस्तुत करना भी स्वीकरण या हरण नहीं है। अन्य कवियों द्वारा रचित काव्य को स्वकीय बनाने का प्रयास ही हरण कहलाता है। लालदास के अवध विलास में एक बड़ी मात्रा में संस्कृत के श्लोकों, नीति कथनों एवं पौराणिक सिद्धान्तों को ग्रहण किया गया है। किन्तु

इस ग्रहण के पीछे कवि का दृष्टिकोण अपने काव्य को सम्प्रेषणीय बनाना तथा लोक-जीवन के निकट लाना रहा है। कवि के अनुसार—

"मूल बिना न प्रसिद्धैं बानी।"

अर्थात् मौलिकता के बिना वाणी कभी प्रसिद्ध नहीं हो सकती। लालदास ने जहाँ कहीं वस्तु का ग्रहण किया है उन्होंने मूल स्रोतों का संदर्भ भी दिया है। अन्य कवियों की भाँति मूल स्रोतों का सर्वनाश नहीं किया। इस प्रकार प्रबन्ध के क्षेत्र में संदर्भ का संकेत करके गवेषणात्मक शैली को अपनाया है। उदाहरण के लिए—

पारिजात दर्पन भरत रागार्नव है एक,
संगीतार्णव नृत्य निर्णय औरहु ग्रन्थ अनेक।"

— अ० वि०, पृ० ५५.

"नायक हैं अनुकूल क्षत्र पुनि सठ धृष्ठ बषानि,
लक्षण हैं **रस मंजरी** ते तेंह लीजेहु जानि।"

—अ० वि०, पृ० २२८

परम्परागत नीति कथनों को जहाँ कहीं ग्रहण किया गया है, वहीं उन्होंने वर्णन कौशल, नीति चातुर्य और विदग्ध प्रयोगों से एक नई स्फूर्ति भर दी है। इस प्रकार वह कथन न तो पिष्टपेषण बनता है और न ही किसी प्राचीन नीति कथन अथवा सूक्ति का अपहरण। उदाहरण के लिए महाकवि मंखक का एक श्लोक देखें—

बिना न साहित्य विदा परत्र
गुणः कथञ्चित् प्रथते कवीनाम्।
आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव
विस्तार मन्यत्र न तैल बिन्दुः॥

प्रस्तुत श्लोक में 'तैल बिन्दु' शब्द का प्रयोग किया गया है। तैल विन्दु विस्तार के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। लालदास ने इस छाया को ग्रहण किया किन्तु संदर्भ उनका अलग है। वे अयोध्या की उत्पत्ति और उसके विस्तार के अर्थ में तेल बूँद के दृष्टांत को चुनते हैं—

तेल बिन्दु जल माँहि जिमि परत करत विस्तार
तैसे अवनी पर अवध धरतहिं भई अपार।

—अ० वि० पृ० ३७.

जहाँ तक छाया अथवा संस्पर्श का प्रश्न है। हिन्दी के प्रख्यात कवि तुलसी ने प्राचीन आख्यानकों तथा प्रसंगों से कम प्रभाव नहीं ग्रहण किया किन्तु लालदास इस अर्थ में विशिष्ट प्रतीत होते हैं। उनका क्षेत्र काव्यशास्त्रीय परिधि से लेकर

काव्येतर विषयों तक फैला हुआ है। वे मात्र वेद, पुराण, स्मृति, महाभारत और गीता को ही संदर्भ ग्रन्थ के रूप में नहीं चुनते। वे रस और नायिका भेद के लिए भानुदत्त कृत 'रसतरंगणी' को आधार बनाते हैं तो संगीत विषयक निरूपण में संगीतार्णव, संगीत पारिजात आदि ग्रन्थों का संदर्भ देते हैं। आयुर्वेद व्याकरण, ज्योतिष आदि के संदर्भ भी पुष्ट तथा प्रामाणिक हैं।

प्रबन्ध संगठन एवं मौलिकता

लालदास ने 'अवधविलास' में जिस कथावस्तु का चयन किया है, उन घटनाओं को रसिक साधना के अनुकूल प्रभावी बनाना चाहा है। कवि ने इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत रसिकोपासना के अनुकूल रसात्मक स्थलों का चयन किया है। रामकाव्य की परम्परागत कथावस्तु की प्रख्यात घटनाओं को रसात्मकता एवं रसिकोपासना के दार्शनिक आधार पर चयन किया गया है—उदाहरण के लिए लालदास ने 'भरत मिलन' जैसे भावात्मक प्रसंग को छोड़ दिया है और इस कथा के परित्याग के औचित्य को तर्कपूर्वक प्रस्तुत किया है—

'रोवन मरन भरत की बातैं
कहि न उदास होत मन यातै।'

'शोक' जीवन की उत्साह वृत्ति के विपरीत है, आनन्द की वृत्ति को खण्डित करने वाला है। अस्तु कवि ने दशरथ के मरण (मरन), रानियों के विलाप (रोवन), भरत के प्रायश्चित आदि के उदासीन प्रसंगों को कथ्य का विषय नहीं बनाया। वस्तुतः रसिक साधकों के भक्ति मार्ग में आनन्द, सौन्दर्य की माधुर्यपरक साधना ही प्रस्तुत की गई हैं, अस्तु रसिक साधना के दर्शन के प्रतिकूल होने के कारण परम्परित रामकथा की उक्त घटनाओं को कवि ने छोड़ दिया है।

करुण और क्षोभ के क्षणों में जीवन की जो गहरी संवेदनाएँ मानव हृदय को स्पर्श करती हैं तथा संवेगों को द्रवित करती हैं, ऐसे क्षणों की अभिव्यक्ति किसी रचनाकार की स्थाई शक्ति बन जाती है। 'अवध विलास' में ऐसे प्रसगों का सर्वथा अभाव तो नहीं है, किन्तु कदाचित् कवि ने जानबूझ कर क्षोभ और शोक के प्रसंगों को छोड़ दिया है। रसिक सम्प्रदाय में ऐसे प्रसंगों को तथा शोकमूलक रसनिष्पत्ति के सन्निवेश को न तो कोई छूट है और न कवि को ही यह अभीष्ट है। वहाँ तो एकमात्र आनन्दानुभूति एवं माधुर्य वृत्ति का ही एकान्तिक वर्चस्व है।

लालदास के व्यक्तित्व में विनोदप्रियता परिलक्षित होती है। यह विनोदप्रियता उनके काव्य में भी एक सार्थक चोट उत्पन्न करती है। दुष्टों के दलन के प्रसंग में कवि ने जानबूझ कर एक हास्य विनोद उत्पन्न किया है। ऐसे अवसरों पर लोकजीवन आनन्द की अनुभूति करता है। दुष्ट व्यक्तियों के दलन के प्रसंगों में लोक-

जीवन को आनन्दित करने की पद्धति में जिस विनोद की अभिव्यक्ति कवि ने की है, वह लोकोक्तियों के भीतर से फूटता है।

कवि ने लक्ष्मण-परशुराम तथा राम और परशुराम संवाद जैसे लोकप्रिय प्रसंगों को अवधविलास में नहीं रखा और इसका कारण 'अवतार के प्रति अवमानना' बताया है —

'परसराम अवतार है रामहु हैं अवतार
ताते मैं इहाँ ना करे लाल हास विस्तार।'

लक्ष्मण द्वारा परशुराम पर व्यंग बाण चलाना तथा खिल्ली उड़ाना, तुलसी द्वारा एक सीमा तक परशुराम के प्रति क्वचित् हीनता को व्यंजित करता है। किन्तु लालदास इस क्षेत्र में अधिक मर्यादित दिखाई पड़ते हैं। वे परशुराम जैसे पराक्रमी एवं तपस्वी-मनस्वी-शिवभक्त के प्रति हास्य-व्यंग का विस्तार उचित नहीं समझते और तुलसी की इस विनोद वृत्ति पर किंचित् व्यंग्य भी करते हैं। लालदास की रसिक-साधना शैवागम से प्रभावित है, अतएव वे विष्णुभक्त होने के साथ ही शिवभक्त भी हैं। पौराणिक ग्रन्थों में परशुराम को भी अवतार के रूप में मान्यता प्राप्त है। अस्तु मर्यादा की दृष्टि से परशुराम को हास्य-व्यंग्य का विषय बनाना लालदास को अभीष्ट नहीं है।

अतिख्यात वस्तु को पुनरावृत्ति एवं परम्परित अनुकृति से बचाने के लिए कथावस्तु में काट-छाँट करते हैं। केवट और भरद्वाज की कथाओं को कवि ने अतिख्यात कह कर छोड़ दिया है।

'केवट अरु भरद्वाज कहानी
ए मैं कहि न सबनि की जानी।'

वनवास की कथा को छोड़ने का कारण कवि ने नामौचित्य एवं नाम के अनुकूल वस्तु के चयन के सिद्धान्त को बताया है। लालदास के अनुसार 'वनवास' की कथा 'अवधविलास' के नामौचित्य एवं दर्शन-सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है—

'जो होनी है बात कहुँ आगम लाल प्रकास
अवधविलासहिं नाम महिं भलो नहिं वनवास।'

वस्तु की सीमा का निर्धारण ग्रन्थ के नाम के औचित्य पर आधारित है। रसिक सम्प्रदाय और दर्शन के अनुकूल कथावस्तु में काट-छाँट तथा नूतन प्रसंगों की उद्भावनाएँ की गई हैं। रसिक साधना के अनुसार सीता और राम सदैव अवध में ही निवास करते रहते हैं, वे अन्यत्र नहीं जाते। लालदास ने इसी ओर संकेत किया है—

अ—'मम मत राम गए नहिं कतहूँ
और कविन्ह की कही कहत हूँ ।'

ब—'सदा राम सीता सहित रहत हैं अवधहिं माँहि ।
लाल लंक वन वंक मंहि आए गए कछु नाहिं ।'

लालदास के अनुसार वनवास, सीताहरण, लंका दहन आदि प्रसंग मायाविक हैं । ये प्रसंग राम की कथा में प्रक्षिप्त हैं । हृदय-साकेत में होने वाली नित्य लीला के प्रतिकूल हैं—

'वनोवास सीताहरण लंक दहन नृप वास
ए माया के ख्याल हैं राम हैं लाल निराश ।'

लालदास ने कथावस्तु के संयोजन के औचित्य पर बलिष्ठ तर्क दिये हैं तथा अपनी मान्यताओं के प्रति अपनी दृढ़ आस्थाओं को पूरे सामर्थ्य के साथ अभिव्यक्ति दी है ।

अन्तःसाक्ष्य के अनुसार—शनि के कुप्रभाव से कवि को विक्षेप हुआ । यदि वह इस विक्षेप से मुक्त रहता और अवधविलास की रचना के बीच उसका रचनाकार अपनी कला के उत्कर्ष में जाकर इसे अपेक्षित विस्तार दे सकता तो कितना महत्व-पूर्ण होता । कवि ने इस ओर संकेत किया है—

'जो मोहिं शनि विक्षेप न करतो । तो मैं अधिक ग्रन्थ करि धरतो ।'

जहाँ वे सीमा का संकेत करते हैं वहीं वे अपनी कृति की शक्ति से भी परिचित हैं—

'सो वे बातें कौन हैं जो नहि अवधविलास ।'

कवि की यह महत्वाकांक्षा कि रामनाम की भाँति अवधविलास खेतों-खलि-हानों और गाँवों की चौपालों तक फैल जाये न केवल कवि का स्वप्न मात्र है वरन् उसके पीछे कवि की सामाजिक जनवादी चेतना भी दिखाई पड़ती है—

'रामनाम ज्यों जगत में, ग्रन्थ चले सब ठौर ।'

गाँव की चौपालों में 'अवधविलास' की कथाएँ तुलसी के मानस की भाँति लोकप्रिय हो सकेंगी, ऐसी सम्भावना की जा सकती है । काल की सीमाएँ रसिक-साधना के समुद्र को जन-जन तक पहुँचाने में समय ले सकती हैं, किन्तु उसकी विराट परिव्याप्ति की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

प्रबन्ध निर्वाह-प्रसंग पल्लवन

अवध विलास में प्रबन्ध के निर्वाह के लिये कवि ने प्रसंगों का पल्लवन किया

है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि कथा प्रवाह खंडित हो गया, किन्तु आगे बढ़ते ही कवि एक ऐसे प्रसंग का सूत्रपात कर देता है, जिससे पिछले प्रसंग की शृंखला जुड़ जाती है तथा एक विचित्र रस की अनुभूति होने लगती है। इस प्रकार का विलक्षण प्रबन्ध निर्वाह शायद ही किसी प्रबन्धकार ने किया हो। नयी कथा का पल्लवन श्रोता को आबद्ध कर लेता है। लालदास ने समय-प्रसंग पाकर बातों के विस्तार का संकेत किया है—

'समय प्रस्ताव प्रसंगहिं पाई।'

विवरण का वैविध्य है पर प्रवाह खंडित नहीं होता। अवध-विलास की अधिकारी कथावस्तु रामचरितमानस (तुलसीकृत), रामविनोद (चंददास कृत) की भाँति रामकाव्य की सम्पूर्ण कथा को लेकर नहीं चलती, अतः इनकी अपेक्षा विस्तार में संकुचित है, किन्तु घनत्व में अधिक रसात्मक है। प्रासंगिक कथाओं में अधिकारिक कथा को संपोषित किया गया है। उदाहरण के लिए अयोध्या में सरयू की उत्पत्ति, जिसमें शिव के द्वारा नृत्य, संगीत के माध्यम से विविध भाव-भक्ति। यह सरयू नदी राम के लिए नाव-नवरिया के काम आवेगी, उनके विहार के लिए—

'सूरजवंश रसिक समुदायी।
खेलत नाव नवार बनायी।।'

अस्तु सरयू की उत्पत्ति की प्रासंगिक कथा रसिकों की 'नाव-नवारी' मे जुड़कर अधिकारिक कथा की सहायक सिद्ध होती है। इसी प्रकार अन्य घटनाएँ भी हैं।

अवध विलास की अधिकारिक कथा न तो व्यक्ति प्रधान है और न ही नायक के सम्पूर्ण जीवनवृत्त पर आधारित है। अस्तु रामकथा के परिचित पाठकों को अवध विलास की कथावस्तु खंडित अथवा अत्यल्प प्रतीत होगी। किन्तु विचार-पूर्वक इस प्रबन्ध का अनुशीलन आवश्यक है। कवि ने इस ओर सतर्क रहने का संकेत किया है—

'पंडित हैं सो जानिहैं कथा प्रसंग प्रवीन।
मूरख मन महि मानिहैं लाल कहा इह कीन।'

वस्तुतः अवधविलास का कथानक जिन प्रसंगों से पल्लवित हुआ है, वह अत्यन्त प्रवीणतापूर्वक अनुबन्धित है। कवि के अनुसार उसे कथा प्रसंगों में प्रवीण पण्डित जन ही जान सकेंगे। कवि का यह कथन अवधविलास के कथात्मक सूत्रों के संगुम्फन की ओर संकेत करने वाला है। सामान्य व्यक्ति इस कथा पर आश्चर्य

व्यक्त करते हुए इसे 'अटपटी' मान सकते हैं। लालदास सतर्क होकर इसी ओर निर्देश करते हैं—

> 'अदृष्ट बात अपठित सदा अल्पज्ञान जेहि देह।
> ताको अवधविलास रस अटपट लगिहैं एह ।।'

वस्तुतः इस अटपटेपन का कारण यह है कि कवि ने इस प्रबन्ध को परम्परागत प्रबन्धों से भिन्न ढाँचे में गढ़ा है। इसमें 'अवध का विलास' ही अधिकारिक वस्तु है तथा अन्य प्रासंगिक कथाएँ इसी विलास की पूरक हैं। यही कारण है कि कवि ने रामजन्म, रावण जन्म, सीता जन्म की कथा को लेकर राम और सीता तथा रावण के बाल्य वर्णन के प्रसंगों को विस्तार दिया है तथा राम-सीता के परिणय तथा उनकी रसात्मक लीलाओं का विलास ही मुख्य कथा का विषय बनाया गया है। अवध विलास में मानस के 'अयोध्याकांड' तक की कथा-वस्तु को प्रमुख रूप से लिया गया है। किन्तु एक भिन्न भावभूमि में। तुलसी की परम्परा से स्वतन्त्र रसिकोपासना के अनुकूल इस कथा ने अपना स्वरूप संवारा है।

कथावस्तु की दृष्टि से अवध विलास न तो रघुवंश, बुद्धचरित, विक्रमांकदेव चरित तथा रामचरितमानस आदि प्रबन्धों की भाँति व्यक्तिप्रधान है और न ही कुमार संभव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध आदि की भाँति घटना प्रधान प्रबन्ध है। यह अवध के विलास को विलसित करने वाला एक गीतात्मक प्रबन्ध है। अपनी शैली में सर्वथा नवीन और मौलिक है। यह घटना प्रधान न होकर लीला प्रधान है। 'सूरसागर' भी लीलापरक प्रबन्धकाव्य है, किन्तु 'अवधविलास' लीलापरक होकर भी 'सूरसागर' की पद शैली से सर्वथा भिन्न है। शैली की दृष्टि से मौलिक और उदात्त नवीन तथा भव्य शैली का सूत्रपात करने वाला प्रतीत होता है। गीतात्मक प्रबन्धों की ऐसी शैली लालदास के पूर्व साहित्य की विधा के रूप में कहीं अन्यत्र पाई जाती हो, ऐसी जानकारी अभी तक नहीं मिली।

इस प्रबन्ध का कार्य रावण-वध नहीं प्रतीत होता, हृदय अवध की आनन्द की मंगल वृत्ति ही इसका कार्य है। इसी आनन्द की मंगल वृत्ति के लिए रस की अवतारणा होती है। रसिक ही इसके मर्म को जानते हैं। यह विलास अत्यन्त गोप्य है और रसिक जनों के लिए ही सुलभ है। 'रामजन्म' इस 'अवध विलास' की रसधारा का प्रारम्भ है। राम और सीता का परिणय ही इस कथा का रस परिपाक है और राम सीता का नित्य संयोग ही उसकी फलश्रुति है।

इस कथा को कवि ने २० विश्रामों में संयोजित किया है। सर्ग, कांड अथवा अध्याय के स्थान पर 'विश्राम' का प्रयोग सप्रयोजन है। कवि ने इस 'अवध-विलास' के विश्राम सहित गायन का संकेत किया है—

'जो या अवध विलास को गावै करि विश्राम ।'

विश्राम से कवि का आशय श्रम रहित या सुखपूर्वक गायन से है । आनन्द की इस रसात्मक प्रक्रिया को कवि कष्ट साध्य नहीं बनाना चाहता तथा विश्राम (सुख) सहित इसका रसास्वादन कराना चाहता है । 'विश्राम' पद के श्लेष से कवि ने इस ओर भी संकेत किया है कि इस अवध विलास का गायन 'विश्राम' (विराम) पूर्वक किया जाये अर्थात् 'अवध विलास' के लीलापरक विलास के बीच-बीच विराम भी हैं. ऐसे विश्रामस्थलों से यह पूरा प्रन्बध भरा पड़ा है । ऐसे स्थल असम्बद्ध प्रतीत होते हैं, तथा उन प्रसंगों में विश्राम (विराम) होता चलता है । उदाहरण के लिए 'सरयू' की उत्पत्ति के पूर्व राग-रागनियों के नाम, भेद गिनाए हैं, आनन्द के हेतु अन्य प्रसंगों में छंदों की एक लम्बी सूची गणों का फल आदि कथन इसी प्रकार के विश्राम हैं, जहाँ भावक को मुख्य कथा से हटकर प्रासंगिक विषयों में विश्राम का अवसर मिलता है । इसी प्रकार के विश्राम शृंगी ऋषि के आश्रम में विविध व्यंजनों की तालिका तथा राम विवाह के अवसर पर दहेज में दी जाने वाली वस्तुओं के वर्णन में, सीता के विवाह के पूर्व जनक के द्वारा तैयारियों के वर्णन में दी गई सूची, सीता के अध्ययन के प्रसंग में संस्कृत के अनुवादों की तालिका आदि ऐसे ही विश्राम के स्थल हैं, जिनमें थोड़ी देर को पाठक मुख्य कथा के रस से अलग होकर खाद्य पदार्थों की विविधता, छंदों के वैचित्र्य, संगीत के भेदों प्रभेदों आदि में रमता है । इस प्रकार के विश्राम कथा के प्रवाह में बाधक नहीं बनते, रुचि वैचित्र्य के पूरक लगते हैं । इस प्रकार 'विश्राम गायन' की शैली उनके प्रबन्ध में प्रयुक्त हुई है । प्रसंगों को सम्बद्ध करने में कोष शैली, पर्याय शैली, सूत्र शैली, वार्ता शैली का प्रयोग लालदास द्वारा किया गया है । लालदास ने जहाँ कहीं तालिकाएँ दी हैं, वस्तुओं के नाम गिनाए हैं अथवा विविध प्रकार की जानकारियाँ दी हैं, वहाँ इतिवृत्तात्मक अंशों की बहुलता है । किन्तु वस्तु वर्णन कौशल से कवि ने ऐसे अंशों को रसात्मकता प्रदान की है । उनका यह नैपुण्य परम्परायुक्त प्रसंगों को नवीनता प्रदान करता है । उदाहरण के लिए ऋषि शृंगी लौकिक व्यंजनों से अपरिचित हैं । एक कामिनी जो उन्हें तप से विरत कर पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए नगर की ओर लाना चाहती है, वह लौकिक व्यंजनों को छलपूर्वक साधुजनों के आस्वाद्य एवं मूलकन्द आदि के रूप में प्रस्तुत करती है ।

भाषा—लालदास ने हिन्दी की प्रकृति को एक पहचान दी है । शुद्धता, सरलता, लोकव्यवहार में प्रयुक्त शब्दावली की सामर्थ्य और जन-प्रेषणीयता उनकी भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं । कवि ने तो भाषा के क्षेत्र में गर्वोक्ति करते हुए अवध विलास को भाषा का सीमान्त कहा है । कवि ने चेतना की जागृति की उच्चतम स्थिति में कठिन अर्थों से काव्य को बचाने का काम किया है । वैसे वे अर्थों के समर्थ, सिद्ध

कवि थे। एक अर्थ सिद्ध कवि का अर्थ-सारल्य के लिए किया गया भाषायिक प्रयत्न निश्चय ही भाषा-आन्दोलन के क्षेत्र की एक विशिष्ट उपलब्धि है। मध्यकाल में पृथ्वीराज रासो के कवि चन्दवरदाई, जो चंददास से अभिन्न है, ने भाषा के निर्माण में एक अत्यन्त विशिष्ट कार्य रासो की भाषा-भंगिमाओं के द्वारा किया था, जिसकी ओर विद्वानों और भाषा वैज्ञानिकों का ध्यान नहीं गया। लालदास में चन्ददास जैसी भाषा की युगान्तकारी प्रयोगधर्मिता भले ही न हो, किन्तु अवधी को चुनकर उसकी अभिव्यंजना शक्ति की वृद्धि की दिशा में देशी भाषा को कवि ने काव्योपयुक्त बनाया है। शब्दों के गढ़ने में सच्चे कवि की भाँति लालदास ने श्रम किया है। आँचलिकता और बोलचाल की भाषा को कवित्व प्रदान करने में अवध-विलास को जिस हद तक सफलता मिली है, वह विलक्षण है।

लालदास ने भाषा के एक गुण 'प्रगट' की ओर संकेत किया है। 'प्रगट' से कवि का आशय चाक्षुष बिम्ब-विधान अथवा प्रत्यक्षीकरण से है। बिम्ब विधान में लौकिक दृष्टांत तथा दृश्यों और वस्तुओं के माध्यम से आध्यात्मिक प्रसंगों का कथन मूर्तता की दृष्टि से किया गया है। उदाहरण के लिए—

> ''पावक को धुन कबहुँ न खाई, कंचन को लागत नहि काई
> रसना दधि घृत खात मिठाई, ताको नहि लागत चिकनाई,
> ज्यों जल पंछि रहत जल माहीं, अंग पंछि भीजत कहुँ नाहीं।''

उक्त प्रसंग में निर्लेप वृत्ति का लौकिक दृष्टांतों द्वारा मूर्त विधान कवि की भाषा की गोचरता को भास्वर करता है। बिम्बों में ऐन्द्रियता के कारण मूर्तता बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए कामजन्य चेष्टाओं एवं मनोमुद्राओं का बिम्ब विधान देखें—

> ''अंगिरावत ऊँचे भुज तानै, ऐंचत मानहु काम कमानै
> राखति एकहि अलक झुलाई, सोहति मुख पर लगति सुहाई
> मोहत बदन जम्हात अमोला, सम्पुट कनक रतन जनु खोला।''

बिम्ब विधान में श्रृंगार के अनुभाव जहाँ रसात्मकता उत्पन्न करते हैं, वहीं अलंकारिक चेष्टाऐं बिम्ब प्रतिबिम्ब प्रदान करती हैं।

लालदास के बिम्बों की दूसरी सहजता ग्राम्य संस्कृति की जीवन्तता है। असुरों को लातों से मार-मार कर पछाड़ा जाता है; मानो कुम्हार माटी को लताड़ता है—

> ''मारत लातन्ह असुर पछारी, माटी मनहुँ कुहार लतारी।'

कुम्हार द्वारा माटी का लताड़ना नितान्त ग्राम्य जीवन का आंचलिक बिम्ब

है। इसी प्रकार दुष्टों के संहार में सिर और पैर को मिला दिया गया है, मानो धोबी नये वस्त्रों को निचोड़ रहा है—

"गोड़ मूड़ गहि कटि गर जोरे, रजक नए जनु बसन निचोरे।"

ये बिम्ब इतने जीवन्त तथा दृश्य साम्य वाले हैं जिससे कवि की पैनी पकड़, समर्थ ग्राम्य शब्दावली एवं मूर्तिमन्त दृश्यावली सभी एक साथ चाक्षुप हो उठती है। ऐसे बिम्बों से कवि का लोक मानस के प्रति अन्तरंग अनुराग भी अभिव्यंजित हो उठता है। कुम्हार, धोबी ग्राम्य संस्कृति की आँचलिकता को आज भी जीवन्त बनाते हैं। अपनी परम्पराओं, लोक मान्यताओं एवं नैसर्गिक आदतों से कुम्हार के आँवे और धोबी के ताल के घाट अपने आस-पास एक लोक जीवन को लेकर चलते हैं। लालदास ने जिस अनुराग और आत्मीयता से गँवई-गाँव के इन बिम्बों को आत्मद्रव्य से सिंचित किया है, वह लोक-संस्कृति की एक स्थायी निधि है।

लालदास पर एक सहज आरोप प्रकृति की उपेक्षा का लगाया जा सकता है। रसिक-साधना प्रकृति सौंदर्य से साधक को वंचित नहीं करती, किन्तु उसका सौंदर्य रसात्मकता में परिणत होता है। यह रस की व्याप्ति नीरस बाँस की पत्तियों में रस की खोज कर लेता है। उपेक्षित वन्य जीवन में रमणीयता का संचार होने लगता है। चीड़ के उदास जंगल जीवन की बातें करने लगते हैं। लालदास का सौंदर्य-चेता केवल राम-सीता की छवि का ही पान नहीं करता वह प्रकृति के भीतर प्रेम और पीड़ा का दर्शन करता है, और उल्लसित होता है। असुरों की आँतों और नसों को पकड़कर तोड़ा जा रहा है, चीरा जा रहा है। एक शरीर अनेकधा विभक्त हो रहा है। दानवी विस्तार बाँस की शाखाओं-प्रशाखाओं की अभि-वृद्धि से व्यक्त किया गया है। वानस्पतिक जगत से चुना गया बाँस का ये वंश-विस्तार दानवी शक्तियों की विस्तारवादी आक्रामकता का सूचक है। नीरसता भी व्यंग्य है। रसिकता का अभिप्रेत भी अभिव्यंजित हो गया है। कवि के शब्दों में—

"चीरे पकरि आँत नस टूटे। असुर अनेक बाँस सम फूटे।"

भाषा पर कवि के असाधारण अधिकार का बोध ऐसे स्थलों को पढ़ने से होता है जहाँ वह एक ओर सरलता की ऊँचाइयों को छूती है दूसरी ओर शब्द और ध्वनि की विशिष्ट पद मैत्री दिखाई पड़ती है। अपने कथन के समर्थन में कवि का एक छन्द रखना चाहेंगे—

"ऋषि शृंगी भृंगी भयो, फिरत पद्मिनी संग।"

पढ़ने में यह पंक्ति सरल और सहज प्रतीत होती है किन्तु शृंगी और भृंगी शब्दों के मर्म से कवि ने शृंगार और शब्द के नैपुण्य का जैसा उत्कृष्ट उदाहरण

दिया है वह विरल है। शृंगी और भृंगी से कवि ने शृंगार की निष्पत्ति की ओर संकेत किया है—

"शृंगार भृगांरौ" उणादि सूत्र से शृ (हिंसायाम्) धातु से आरम्भ, नुभ्, गुरु तथा ह्रस्व का निपातन करने पर शृंगार शब्द सिद्ध होता है। मेदिनी कोष में 'शृंग' का अर्थ 'सींग तथा, शृंगार' दोनों बताये गये हैं।[1] विश्वनाथ कविराज ने 'शृंग' का अर्थ 'मन्मथोद्भेद' अर्थात् काम के अंकुरण से किया है। साहित्य दर्पण के टीकाकार श्रीमद् जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने शृंग का विवेचन करते हुए —"शृंगः" शृणाति दशमदशया हन्ति कामुकान् इति तथोक्तम्।" (जो प्राण लेता है अर्थात् वियोग की दसवीं दशा मरण ही शृंग है।) इस प्रकार कवि के द्वारा प्रयुक्त शृंगी जहाँ एक ओर सींग से जन्मने वाले शृंगी ऋषि का संकेतक है, वहीं वह कामपरक अर्थ में काम के अंकुरण का श्लेषार्थ देता है। कैसी अद्भुत सामर्थ्य है शब्दों में। शृंगी से कवि ने दोहरा तीर चलाया है, जो ऋषि है वही काम से पीड़ित हो रहा है, भृंगी भी कम अर्थोत्कर्ष नहीं लिये है। 'भृंगी' एक ओर भ्रमर के लिए, दूसरी ओर योग के भृंगी दशा के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार तथा श्लेषार्थ विधान की क्षमता प्रमाणित होती है। यह बात और है कि कवि का उद्देश्य सर्वत्र अर्थों का चमत्कार दिखाना नहीं है। अर्थ के झुंड के विपरीत सरल अर्थ कवि का अभिप्रेत है।

लालदास के अनुसार देशी, प्राकृत, संस्कृत, फारसी, अरबी तथा अन्य भाषाओं में जहाँ जैसी आवश्यकता हो, कवि को रचना करनी चाहिए—

"देसी, प्राकृत, संस्कृत, फारसी, अरबी आनि,
जहँ-जहँ जाकी लाल कहि भाषा सबही जानि।"

कवि के इस कथन की पुष्टि अवधविलास में प्रयुक्त विभिन्न भाषाओं की क्षमता से भी प्रमाणित हो जाती है। साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि कवि चार-पाँच भाषाओं में अर्थ-विवेचन में कुशल रहा है। एक ही अर्थ कहीं संस्कृत में सुकवि की सुन्दर रचना का विषय बनता है, कहीं कोई अर्थ प्राकृत भाषा में तथा कोई अर्थ देशी शब्दावली में सटीक व्यंजना देता है। कवि का यह कथन कि जहाँ जिस भाषा की आवश्यकता हो उसका प्रयोग करना चाहिए, निश्चय ही कवि का भाषायिक सामर्थ्य का जीवन्त दस्तावेज है।

लालदास ने भाषा की सरलता पर बल दिया है—

---

१. शृंगे प्रभुत्वे शिखरे चिन्हे क्रीडाम्बुक यन्त्रकम्।
विषाणोत्कर्षयोश्चाथ शृंगः स्यात्कूर्चशीर्षके
स्त्री विधायां स्वर्ण मीन भेदयोर्ऋषभौषधौ।

'कठिन काव्य चहि संस्कृत भाषा चहिए शुद्ध' । यहाँ 'शुद्ध' कठिन के विपरीत प्रयोग किया गया है अतः सरलता के अर्थ में प्रयुक्त है । कवि ने हिन्दी के प्रख्यात कवियों की तुलना में अपने काव्य को सरल बनाने का उद्घोष किया है—

"गूढ़ काव्य जयदेव कृत तुलसी सूर बखान
केशव विद्यापति विकट लाल सरल मन मान ।"

जयदेव को 'गूढ़' कहा है । गूढ़ से कवि का आशय गूढ़ार्थ-व्यंग्यार्थ से है । तुलसी और सूर के काव्य को 'बखान' कहा गया है । 'बखान' से कवि का आशय पाण्डित्य पूर्ण प्रबन्ध रचना से है । केशव और विद्यापति को 'विकट' कहा गया है । विकट से कवि का आशय इन कवियों के काव्य बन्ध के स्फुट (विकट) बन्ध होने से है । 'विकट' काव्यशास्त्रीय शब्द है जो मृदु (कोमल) बन्ध के विपरीत है । विकट से दीर्घ सामासिक और गौड़ी रीति का संकेत किया गया है । यदि विकट का प्रयोग जटिल अथवा कठिन का संकेतक होता तो 'केशव को कठिन काव्य का प्रेत' होने का सन्दर्भ लिया जा सकता था, किन्तु लालदास ने विकट का प्रयोग केशव और विद्यापति दोनों के लिए किया है । विद्यापति को कठिन अर्थ में विकट कहने का कोई औचित्य नहीं है और न कवि का ऐसा अभिप्रेत ही है । 'विकट' से कवि का आशय 'उदारता' नामक काव्यगुण की ओर है ।

आचार्य वामन ने उदारता को विकटत्व स्वरूप कहकर उसकी गणना शब्द गुणों में की है । उनकी दृष्टि में ग्राम्यता के अभाव में उदारता नामक अर्थगुण होता है । उदारता गुण का लक्षण रचना बन्ध की विकटता है, जिसके द्वारा काव्य रचना के पद नृत्य करते हुए सहृदय जनों के सम्मुख उपस्थित होते हैं । भरत मुनि ने उदारता को अनेक भावों से संयुक्त, दिव्य भावों से व्याप्त तथा शृंगारादि अद्भुत रसों से चेष्टित माना है । भोजराज के शब्दों में विकटाक्षर बन्धत्व का ही नाम औदार्य है । अग्नि पुराण में श्लाघ्य विशेषणों से युक्त उत्तानपदता को उदारता कहा गया है । 'उदारता' (विकट) एक प्रकार का अर्थ गुण है । वाक्य अपने अर्थ द्वारा ही गुण व्यञ्जक होते हैं ।

आचार्य कवि केशव ने वाणी वन्दना के प्रसंग में वाणी की उदारता की ओर संकेत किया है साथ ही यह भी ध्वनित किया है कि कवि में उदार मति होनी चाहिये । 'वानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति उदित उदार कौन की भई' इस प्रकार केशव ने वाणी के उदार गुण की ओर स्वयं संकेत किया है । यही उदारता काव्य शास्त्र में विकट कहलाती है । इस प्रकार से लालदास ने केशव

और विद्यापति को विकट कह कर उनके काव्य गुण की ओर ही संकेत किया है। इन कवियों की तुलना में लालदास ने अपनी शैली को सरल कहा है।

भाषा और भावों की आंतरिक संगति से लालदास समर्थ प्रभाव छोड़ते हैं। वृंदा के वियोग में विष्णु का विलाप कितना मार्मिक है। यह मार्मिकता कवि की कारुणिक वृत्ति के साथ छन्द की विरह व्यञ्जक ध्वनियों के द्रावक प्रभाव से और भी संवेदनशील हो उठती है। शोक को व्यञ्जित करने वाली ध्वनियों से मानसिक मनोमूर्तियाँ बिम्बित हो उठती हैं—

'हा वृन्दा हा वृन्दा वृन्दा। मोहि तजि कहाँ गई मुख चन्दा।'

शब्दों के प्रयोग में लालदास कुशल शिल्पी हैं जो मानस प्रतिमाओं का निर्माण करते हैं। भाषा की सरलता, अर्थ के झुंडों से काव्य को बचाती है किन्तु अर्थ शून्यता कहीं नहीं है। अत्यन्त समर्थ अर्थ हैं। हाँ अर्थों के तर्क जाल नहीं हैं। भाषा की इस सरलीकरण की प्रवृत्ति की ओर कवि ने संकेत किया है—

जान बूझ नाहिन धरत कठिन अर्थ के झौंर।।

लालदास न तो वाणी को अत्यन्त गूढ़वती बनाना चाहते हैं और न ही अत्यन्त पारदर्शी (Transparent)। वे कला भारती का सौन्दर्य नागरी के अर्द्ध उन्मीलित उरोजों से उपमित करते हैं—

गूढ़हिं भली न प्रकासहीं बानी लाल विचार।
जिमि कुच प्रगट न गुप्त ही राखत नागरि नार।।

कवि ने कवियों द्वारा रचे गये ग्रन्थों तथा छन्द बंध रचनाओं व कोक काव्य पिंगल को अपनी रचना का आदर्श नहीं बनाया। तुलसी ने "कवि न होऊँ नहिं चतुर प्रवीना' कहकर अपने सहज आत्म लाघव का परिचय दिया है। लालदास ने भी उसी परम्परा में कहा है—

"छंद बंध कछु भेद न जानों। केवल एकइ नाम बखानौं।।
कोक काव्य पिंगल की रचना। बिनु हरिनाम व्यथा सब बचना।।"

भाषा के सम्बन्ध में भाषा को लालदास व्याकरण सम्मत बनाने के पक्ष में हैं। वे भाषा को नाम सम्बन्ध से जोड़कर ही स्वीकार करते हैं—

"का जो ग्रन्थ कविन रचि राखा। नाम सम्बन्ध भली सोइ भाषा"

नाम संबन्ध से कवि का आशय काव्य को तात्विक उत्कर्ष प्रदान करने तथा श्लिष्ट अर्थ में नाम संबन्ध का आशय भाषा में अर्थवान, शब्दों के प्रयोग से है। क्योंकि विभक्ति से रहित, धातु से वर्जित, अर्थवान शब्द रूप को नाम कहा जाता है। कृदन्त, तद्धित व समास वाले सविभक्तिक शब्द भी नाम संज्ञक होते हैं।

विभक्तिरहितं, धातुवर्जितं, चार्थवच्छब्दरूपं नामोच्यते ।
कृत्तद्धित समासाश्च नामसंज्ञका भवंति ।

(सारस्वत)

लालदास की भाषा व्याकरणिक शुद्धता पर आधारित होने के कारण सरल होकर भी संस्कारित है, अर्थों की जटिलता से मुक्त होकर भी अर्थ को प्रकर्ष प्रदान करने वाली है। उनकी भाषा की मूल शक्ति देशी है। देशी भाषा के संबन्ध में मैक्समूलर ने विचार करते हुए उसे आंचलिक शब्दों वाली बताया है।[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भारतीय अनार्य भाषाओं से आये शब्दों को देशी शब्द कहा है।[2] डॉ० भोलानाथ तिवारी देशज शब्द उन्हें कहते हैं जो तत्सम, तद्भव, विदेशी तीन में से किसी में न हों अर्थात् उनकी उत्पत्ति का पता न हो, जो उसी क्षेत्र में जन्मे हों।[3] हेमचन्द्र के अनुसार, 'ये लक्षणे न सिद्धा न प्रसिद्धा संस्कृताभिधानेषु' जो लक्षण द्वारा संस्कृत से सिद्ध न हो पाते हों और न ही संस्कृत के अभिधान में आते हैं, वे प्रायः देशज या देशी शब्द कहलाते हैं। लालदास ने 'देशी, प्राकृत, संस्कृत, फारसी, अरबी आन' कहकर भाषा दर्शन में 'देसी' को प्राथमिकता प्रदान की है। उनकी 'देशी' अवधी का आंचलिक रूप है, तुलसी और जायसी की अवधी से भिन्न। तुलसी की अवधी संस्कारित होकर भी पूर्ववर्ती प्रभावों से मुक्त नहीं है तथा अवधी का साहित्यिक मानक देती है। लालदास की अवधी परम्परागत अवधी के प्रभावों से मुक्त होकर आंचलिक शब्द सम्पदा से युक्त होने के कारण क्षेत्रीय बोलियों तथा लोक भाषाओं को प्रसार देती चलती है। जायसी की अवधी से लालदास की अवधी इस अर्थ में भिन्न है कि वह दो विभिन्न क्षेत्रों की आंचलिक बोलियों का प्रतिनिधित्व करती है। अवधी का ठेठ रूप दोनों में है किन्तु लालदास की अवधी बोली विज्ञान की दृष्टि से अधिक जीवंत और प्रसरणशील है।

जायसी की ठेठ अवधी से लालदास की अवधी संस्कार प्रधान रूप लेकर आती है। आंचलिकता जायसी और लालदास दोनों की अवधी में है। किन्तु दोनों के स्वरूप में भिन्नता है। लालदास की अवधी संस्कृत के तत्सम रूपों से ढलकर देशज की ओर चलने वाली अवधी है। जायसी की अवधी लोकजीवन से निकल कर आने वाली है, संस्कृत परम्परा से सीधा उसका सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार तुलसी की अवधी साहित्यिक संस्कारों से युक्त है, किन्तु लालदास की अवधी में

---

१. F. Maxmular—'The Science of Language, Translated by Dr- Udai Narain Tiwari, page 116
२. डा० धीरेन्द्र वर्मा "हिन्दी भाषा का इतिहास' पृष्ठ ६०
३. डा० भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ ४०४

साहित्यिक संस्कारों के अतिरिक्त देशी शब्द सम्पदा भी भरपूर है, जो अपनी अलग पहचान बनाती है। उदाहरण के लिए देखें—

(अ) जायसी—विरह न आपु सम्हारै मैल चीर सिर रुख
पिउ पिउ करत रात दिन जस पपिहा मुख सूख।

(ब) तुलसी—रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन नवरंग॥

(स) लालदास—पिउ-पिउ पल-पल रटत नैन बहत जलधार
सपेनेहुँ माँह बिरहनी जिन सिरजै करतार।

लालदास ने भाषा को देशी साँचे में ढालने का सफल प्रयत्न किया है। कवि के अनुसार ज्ञानी कवि अपने-अपने क्षेत्र की देशी बोली में ग्रन्थों की रचना करते हैं। प्राचीन ग्रन्थों का आश्रय तो लिया जा सकता है किन्तु उसे विस्तार अपनी ही भाषा में देना चाहिए—

"अपने-अपने देश की बानी। ग्रन्थ अनेक करत कवि ज्ञानी।
ग्रन्थहिं देखि ग्रन्थ कवि करहीं। अपनी भाषा लै बिस्तरहीं।"

लालदास ने विभिन्न ग्रन्थों की छाया का संस्पर्श करते हुए अवधी एवं ब्रज का आंचलिक स्वरूप अपने काव्य में प्रयुक्त किया है। ग्रामीण भावों को व्यंजित करने वाली भाषा देशी होने के कारण सरल, मधुर, मौलिक एवं व्यंजना शक्ति से भरपूर है—

"जैसे भैंस परै अरिरानी"

लालदास का संस्कृत शब्द भंडार भी प्रचुर एवं समृद्ध है। उन्होंने अनेक शब्दों के पर्यायवाची भी दिये हैं जो अमरकोश[१] के आधार पर, दिये गये हैं। तथा सीता के अध्ययन के प्रकरण में संस्कृत के पूरे के पूरे वाक्यों के अनुवाद कवि के संस्कृत भाषा के अधिकार को प्रमाणित करते हैं। उदाहरण के लिए—

बहुत **बहुतरम स्वलपम्** थोरा, फूट **सभग्नम जुक्तं** जोरा।
दाबि **गोपै उद्गम** उलटा, सोहैं **अभिमुख उन्मुख** पलटा।

पूरी की पूरी पंक्ति के अनुवाद भी लालदास ने किये हैं। एक उदारण देखिए—

तव अस्माकं यशो ददासि। तुम हमको जस देत हो आसि।

---

१. अब सुन अमरकोष के नामा, कहत हों कछु इक अर्थ के कामा।
—अवधविलास, अष्टम विश्राम/२०३

ओज-दीप्त क्रियाओं से युद्ध के बिम्ब सजीव हो उठते हैं। क्रियापदों की विशेष आवृत्तियों तथा क्रियाओं की मालाओं से युद्ध की बदलती हुई मुद्राएँ चाक्षुष बिम्बों में मूर्त हो उठती हैं। ऐसे प्रसंगों में ओजपरक भाषा एक अलग प्रभाव छोड़ती है। उदाहरण के लिए—

"झटकैं लटकैं पग हाथ धरैं। अटकैं पटकैं फटकैं न डरैं।
इक इक्क को पंच लगै कबहूँ। नहिं राजकुमार गिरैं तबहूँ।
उझकैं झझकैं झहराइ चलैं। जुरिकै मुरिकैं तर डारि मलैं।
उलटैं पलटैं छपटैं धरसों। नहिं जानि परैं निकसैं कर सों।"

क्रियाओं के द्वारा मल्ल (कुश्ती) के दाँव-पेंच गोचर होने लगते हैं। बिम्ब-विधान में क्रियापद प्रधान भाषा का विशेष हाथ है।

भाषा की सरलता अनायास नहीं है। कवि द्वारा यह सायास है। 'जानि-बूझ नाहिन धरत, कठिन अर्थ के झौंर' से स्पष्ट है कि कवि ने सरलता को ध्यान में रखते हुए कठिन अर्थों से काव्य को दुरूह होने से बचाया है। इस प्रकार सरलता लालदास की काव्य भाषा की एक अन्य विशेषता है। जयदेव, सूर, तुलसी, विद्यापति और केशव सभी को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने अपने काव्य को सरल बनाने का प्रयत्न किया है। सरलता के कारण लालदास का काव्य रसास्वाद में सहृदयों के चित्त को द्रवित करता है। माधुर्य व्यंजक वर्णों वाली उपनागरिका एवं कोमला-वृत्ति उनके काव्य-गुण और वृत्तियों में प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुई है। वैसे ओज-प्रकाशक वर्णों से समन्वित पौरुषा वृत्ति का भी अभाव नहीं है। उदाहरण के लिए—

(अ) कोमला वृत्ति

सइसवता सिय वरणि न जाता, वय किशोर कस होहिं विधाता।
कोमल चरण लाल रंग भीने, नाउन कबहुँ न जावक दीनै।
नयन विशाल सहज कजरारे, काजर कबहुँ न देत निहारै।
कदली अर्भ गर्भ की ओभा, बिनु मंजन रंजन तनु सोभा।

(ब) पौरुषा वृत्ति

फिरैं चक्र दंडा जनु च्चाक चंडा, फिरै व्योम भारी अपारै मझारी।
पिवैं दूध कच्चे मनो वाघ बच्चे, हुँकारैं झनक्कैं ज्यों बाधा ठनक्कैं।
भुजा पेट मीजैं ह्वै गरमी पसीजैं, ताडै चटाका जो बाजैं पटाका।
करैं लोट पोटा ढरैं जानु गोटा,

लालदास ने भाषा के क्षेत्र में नवीन शब्दों को गढ़ने का भी कार्य किया है उदाहरण के लिए अध्ययन के स्थान पर—अध्येन शब्द का प्रयोग।

अध्ययन के स्थान पर अध्येन का प्रयोग चिन्त्य है। वैयाकरण भी इस प्रयोग से चिन्तित हो सकते हैं किन्तु यह शब्द व्याकरण से भी सिद्ध होता है। इस सम्बन्ध में आचार्य पं० दीनदयाल दीक्षित का अभिमत इस प्रकार है—

'इङ अध्ययने सन्दोणादयः सूत्र से नञ् प्रत्यय होने से इ न हुआ। गुणः सूत्र से इ को ए गुण करने पर एन हुआ। अधि उपसर्ग एन के पूर्व होने पर अधि एन हुआ। 'इयं स्वरे यः इकोयणचि सूत्र से इ को य करने पर अध् य् एन में स्वरहीन परेण संयोज्यम से ध् य् को ए में मिला देने से अध्येन शब्द सिद्ध होता है। कवि का यह नूतन शब्द है।'

नाद (संगीत) को कविता का प्रमुख तत्व स्वीकार करके लालदास ने कविता को संगीत से जोड़ने का प्रयत्न किया है। कविता और संगीत को पास लाने का काम १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस में प्रभाववादी आन्दोलन को बताया जाता है। लालदास ने १७वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध और १८वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में कविता और संगीत को पास लाने का जो काम किया है, उसका ऐतिहासिक महत्व भी है। संगीत से लालदास की विशेष अभिरुचि अवधविलास में सरयू की उत्पत्ति के प्रसंग में विशद रूप से संगीत के विश्लेषण से भली-भाँति प्रमाणित है। लालदास ने उत्तम कविता में गायन के तत्वों का होना आवश्यक माना है—

> कवि गायन उत्तम गुनी, मध्यम गानहिं जान।
> कविता है गावै नहीं, ताहि कनिष्ट बखान।''

लालदास ने निश्चय ही संगीत और काव्य का जो सूत्र बन्धन किया है वह वैदिक ऋचाओं से पुष्ट है एवं उसके सूत्र राजशेखर कृत 'काव्य मीमांसा' में भी पाये जाते हैं।

अवधविलास की काव्य पंक्तियों में मृदंग, पखावज, ताल आदि वाद्यों की ध्वनियों को अन्तर्निविष्ट किया है। उदाहरण के लिए 'तत-धिधि थुं थुं नं, ना प्रेरे।'

इसी प्रकार नृत्य के बोलों को कवि ने अन्तर्निविष्ट किया है। उदाहरण के लिए (अ) धेई-धेई थुंग-थुंग ततकारा, (ब) 'तक तक दिग-दिग किटि-किटि दंद।'

संगीत विषयक तात्विक निरूपण में लालदास को इस हद तक सफलता मिली है कि उन्हें संगीत का आचार्य भी कहा जा सकता है। लालदास ने कई स्थानों में 'ख्याल' शब्द का प्रयोग किया है, जो श्लेष से ख्याल संगीत की ओर संकेत करता है। 'ध्रुपद' की जोड़ में खुसरो ने 'ख्याल' का आविष्कार किया था। प्रायः भक्तों ने पारम्परिक ध्रुपद शैली का ही अनुवर्तन किया है किन्तु लालदास ख्याल गायकी के भी गुणी प्रतीत होते हैं। ख्याल शैली के उन्नायकों में जौनपुर के शर्की सुल्तान इब्राहीम शाह और उनके पौत्र हुसैन शाह ने विशेष योग दिया है। ख्याल गायिकी

में पंजाब के शोरेटप्पा और अवध के नवाबों ने ठुमरी का प्रचलन किया है। रीति-युगीन भक्तों ने ठुमरी को भी भक्ति संगीत के अन्तर्गत स्वीकार किया है।[१]

भरत ने केवल चार अलंकारों का ही उल्लेख किया है—उपमा, रूपक, दीपक और यमक।[२] भरत के अनुसार अलंकार तो केवल चार हैं किन्तु लक्षण छत्तीस हैं। लालदास ने अलंकारों के निरूपण में 'अपन्हुति' 'आक्षेप' 'चित्र' और 'समाहित' को प्रमुख अलंकार बताया है। किन्तु काव्य में अन्य अलंकारों के होने का भी उल्लेख किया है—

"अपन्हुति और आक्षेप हैं चित्र समाहित आनि
अलंकार बहु काव्य के औरहु लीजै जानि।"

लालदास का यह वर्गीकरण उनके काव्यशास्त्र विषयक आचार्यत्व का सूचक है। भरत की भाँति उन्होंने भी चार प्रमुख अलंकार माने हैं किन्तु भरत से सर्वथा भिन्न। लालदास ने चार अलंकारों की मान्यता के साथ ही अन्य आचार्यों द्वारा विवेचित अलंकारों को भी मान्यता प्रदान की है। 'अलंकार बहु काव्य के' से उनका संकेत इसी ओर है।

विलक्षण प्रतिभा के कवि लालदास के काव्य में अलंकारों का प्रयोग आंचलिकता को उजागर करने तथा रसबोध को दीप्त करने के लिए किया गया है। उदाहरण के लिए दृष्टांत का एक प्रयोग देखिये—

"जैसे भैंस परै अररानी, कीच मचाय बिगारै पानी।
तैसें कथा बिगारैं बादी, पंछी जा भल नीर सुवादी।"

उक्त पंक्तियों में भैंस का अर्राने तथा पानी में कीच मचाने के दृष्टांत से कथा के रस में व्याघात डालने वाले वादियों की व्यंजना की है तथा पक्षी के नीर का स्वाद लेकर जल को गंदला न करने का दृष्टांत देकर रस साधना के अनुशीलन का बिम्ब प्रस्तुत किया है। इस प्रकार अलंकार उनके काव्य के रसत्व के संचार में सहायक सिद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए एक रूपक देखें—

मन्दिर घट भए जल जुवति रामचन्द्र भए चन्द्र
चक्रित चकोर नृप के नयन देखि लाल आनन्द।[३]

१, 'ठुमरी तो गावै ठिकानी'

—"मीता ग्रन्थावली', सं० डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित

२. षट् त्रिशत् लक्षण येवं काव्यबन्धेषु निर्दिशेत्।

—नाट्यशास्त्र, जिल्द २, षोडश अध्याय का अनुबन्ध ५,

३. अवधविलास, दो० ४१८ पृ० ३००

"अपन्हुति' का एक उदाहरण देखें—

सुन्दर वेनी बनी रसाला। ताहि कहै इक जटा विसाला।
महा अमोल जराय को टीका। ताहि कहै किए तिलक सुनीका।
कानन्ह की वीरैं छवि छाई। ताको मुद्रा कहत बताई।

+ + + +

कुच उतंग श्रीफल से सोहैं। हिए पूजा के संपुट दोहै
केशरि चंदन अंग लगाए। ताहि कहै तन भसम चढ़ाए
पहिरे चीर सुरंग निहारे। अति विचित्र वल्कल तन धारे।"

चित्र या मूर्ति में जो रेखा की वक्रता है, अर्थात जो दृश्य, स्पर्श अथवा स्थूल है वही यदि काव्य में आकर उक्ति की वक्रता का परम सूक्ष्म रूप ले लेती है तो क्या हमारी बुद्धि उसे पकड़ नहीं सकती। गोचर, अनुभव से पाया हुआ सूक्ष्म बोध क्या वहाँ हमारा सहायक नहीं होता।[१] लालदास ने उक्तियों का आश्रय लेकर भारती को सरलीकृत किया है।[२] लालदास की उक्तियों की अभिशंसा करते हुए उन्हें 'त्रिलोचनी कविता की विभूति' कहा गया है।[३] वस्तुतः उक्ति जब परिहास का अवसर पाती है तो व्यंगोक्तियों के रूप में फूट पड़ती है। लालदास की उक्तियाँ व्यंग भी करती हैं और परिहास भी। व्यंग के अवसर पर वे वक्रोक्तिधर्मी हो जाती हैं। परिहास के अवसर पर वे विद्रूपताओं तथा विसंगतियों को अपना लक्ष्य बनाती हैं। उदाहरण के लिए—

लाल विधाता बावरो कहि समुझावै कौन
नैंनन को काजर दियो कानन को दियो सोन।"

उक्ति में व्यंग की प्रधानता है। व्यंग भी सामान्य नहीं है। विधाता की उल्टी खोपड़ी पर व्यंग करते हुए सृष्टि के वैचित्र्य को कवि ने व्यंग्य का विषय बनाया है। वैसे तो नेत्रों में काजल की ही शोभा है और कानों में स्वर्ण कुंडल ही सौंदर्य की मुद्राओं को संवर्द्धित करते पाये गये हैं। किन्तु कवि ने यहाँ पर दृश्य के सामने कालिमा (काजल) तथा श्रव्य (कान) के सामने ध्वनि विहीन स्वर्ण का अनौचित्य व्यंजित किया है। अपेक्षित वस्तु का परिहार एवं अनपेक्षित वस्तु का साक्षात् व्यंग्य का विषय है।

---

१. उक्ति के सम्बन्ध में सच्चिदानन्द वात्स्यायन की एक टिप्पणी।

२. उक्ति विशेष माश्रित्य भारती सरलाकृता।
—श्री गोविन्द प्रसाद साँवल कृत लालदास विषयक काव्य प्रशस्ति से उद्धृत।

३. 'उक्तयो लालदासस्य भूतिमत्यः दिगम्बरे। कविता त्रिलोचनी यस्य राम विज्ञान दीपिता।'—आचार्य पं० दीनदयाल दीक्षित।

परिहास के अवसर पर लालदास की उक्तियाँ एक नई भंगिमा लेकर आती हैं। इस समय कवि शरारती मुद्रा में होता है। बुद्धि को शैतानी सूझती है। किन्तु यह शैतानी चाहे जितनी नटखट हो, उसके पीछे बचकानापन न होकर एक सार्थक चोट होती है। उदाहरण के लिए जालंधर का प्रसंग लिया जा सकता है, विधाता सागर के घर जालंधर का नामकरण करने के लिए आमंत्रित किये गये हैं। सागर (समुद्र) ने ब्रह्मा का यथोचित सम्मान किया है, किन्तु ब्रह्मा की लोभवृत्ति में और बढ़ोत्तरी हुई है। उन्हें आशा है कि नामकरण के पश्चात् मेरे पौरोहित्य कर्म के लिए मुझे सागर के द्वारा और रत्न मिलेंगे। किन्तु जालंधर को शैतानी सूझी और वह विधाता की दाढ़ी को खिलौना समझकर खींचने लगा। यहाँ तक कि ब्रह्मा के प्राण निकलने लगे और जालंधर दाढ़ी को और-और-और खींचता ही गया। प्राण बचाना मुश्किल हो गया। ब्रह्मा ने सागर से कहा 'कौन-सी दुश्मनी भुना रहे हो ?' सागर तो अनुत्तरित रहा पर जालंधर ने ब्रह्मा से तपाक से कहा 'अब क्या लेना चाहते हैं ? हमारे पिता सागर के चौदह रत्न तो पहले ही ले लिए गये। लक्ष्मी जैसी सुन्दर बहन को तो आपने ब्याह लिया, यदि साले और बहनोई के सम्बन्ध का संकोच न होता तो मैं आपको नामकरण के बदले में पौरोहित्य कर्म हेतु कुछ और इनाम देता।' ब्रह्मा भगे, धोती खिसक गई। प्राण सटपटाये, पूरा का पूरा प्रसंग पुरोहितों की लोभवृत्ति पर अच्छा खासा परिहास का वातावरण उपस्थित करता है। सम्पूर्ण प्रसंग को लालदास की उक्तियों ने मार्मिक एवं विदग्ध बना दिया है। उक्तियों के द्वारा जन्में हुए परिहास और विनोद का चित्र देखिये—

याको नाम धरन विधि कीजै, अपनो नेग चार कछु लीजै।
देव नृपति बनिता गुरु बाला, वैद्य जोतिषी चुगल कराला।
छूँछ हाथ कहुँ मिलै जु कोई, कारज कबहुँ सिद्ध नहिं होई।
ब्रह्मा लै बैठे मन फूली, दाढ़ी रही पेट पर झूली।
ब्रह्मा तन लरिका सैतानी, चितयो निडर बिरावत मानी।
खेलत किलकि-किलकि रुचि बाढ़ी, परि गई आये हाथ महँ दाढ़ी।
ऐंचें पकरि खिलौना जाना, ब्रह्मा प्रान गए करि माना।
आयु हमार बरस सौ पावा, अबहीं काल कहाँ ते आवा।
दाढ़ी पकरि जबहिं शिशु ऐंचा, ब्रह्मा जानि जीव जनु घैंचा।
जीव छाँडि दक्षिना हम छाँड़ी, कौन बलाइ भई मुहिं आड़ी।
मोहिं तोहिं बैर भयो कब बाढ़ा, इह तैं बैर कहाँ कहु काढ़ा।
तेरे रतन नहीं कोउ मेरे, तोहि मथत मैं रह्यो न नेरे।
चले नाम धरि अति विततानें, धोती खोंसत खँसत पराने।
चितवति फिरि-फिरि विधि पछतावैं, जिनि कहुँ दुष्ट जलंधर आवैं।

उक्ति विशेष से आशय है लोकवाणी से विचित्र विशेष प्रभावकारी कथन। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में काव्य विद्या के १८ अधिकरणों का उल्लेख किया है, और उसमें उक्ति गर्भ के औक्तिक अधिकरण का नाम लिया है—तत्र कवि रहस्यं सस्त्राक्षा: समान्नासीत् औक्तिक मुक्ति गर्भा: ।[1]

राजशेखर का कहना है कि शास्त्र और काव्य में अर्थ और शब्द तो वे ही रहते हैं, फिर भी उक्ति विशेष ही काव्य होता है—

अर्थ निवेशास्त एव शब्दास्त एव परिणमन्तोऽपि
उक्ति विशेष: काव्यम् भाषा या भवति या भवतु ।"[2]

इस प्रकार आचार्य राजशेखर शास्त्रों से भिन्न उक्ति विशेष में काव्यत्व मानते हैं। इस समस्या पर भट्टनायक ने भी विचार किया है—"शास्त्र शब्द प्रधान होता है और आख्यान अर्थ प्रधान। किन्तु काव्य में शब्द और अर्थ दोनों गुणीभूत हो जाते हैं और व्यापार की प्रधानता हो जाती है।"[3] यायावरीय राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी ने भी पाल्यकीर्ति की भाँति उक्ति विशेष को काव्य में महत्ता प्रदान की है। लालदास की विचक्षण बुद्धि ने उक्ति विशेष के आश्रय से सामान्य वस्तुओं के वर्णन में भी निपुणता का परिचय दिया है।

'शृंगार प्रकाश' के दशम प्रकाश में भोज ने शास्त्र और इतिहास को क्रमश: शब्द और अर्थप्रधान कहा है और काव्य को उक्ति प्रधान बताया है—

तेषूक्ति प्रधानं काव्यं—शब्द प्रधानं शास्त्रं—अर्थ प्रधान इतिहास: ।"[4]

भोज काव्य को उक्ति प्रधान कहते हैं। उनके इस कथन में राजशेखर का ही प्रभाव प्रतिबिम्बित होता है। लालदास भी राजशेखर के "उक्ति विशेष: काव्यं" से परिचित ही नहीं हैं, वरन् उक्ति को काव्य मानने वाले राजशेखर के मत से कवि की अनुगामिता भी सिद्ध होती है—

'कवि जन उक्ति विशेष बखानी, भाषा जैसी तैसी जानी।'

इतना ही नहीं कवि ने काव्य चिंतन करते हुए उक्ति विशेष के आधार पर ही कवियों का वर्गीकरण किया है तथा उक्ति की मौलिकता और नवीनता के आधार पर ही कवि को उत्तम कोटि का होना बताया है—

उत्तम कवि नई उक्ति बनावै।

---

१. काव्य मीमांसा, पृ० १
२. कर्पूर मंजरी (काव्यमाला) पृ० ६
३. नाट्य शास्त्र (गायकवाड़ द्वितीय भाग) पृष्ठ २९८
४. शृंगार प्रकाश द्वितीय भाग पृष्ठ ३८३-४

अवध विलास लालदास की उक्तियों का विलास है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

(अ) नामचोर है प्रगट विशेषा, संचित पापहिं हरत अशेषा।

'चोर' के रूपक में 'नाम' महिमा के अन्तर्गत कवि ने विशेषोक्ति की है। नाम ऐसा चोर है जो प्रकट रूप से व्यक्तियों के समस्त संचित पापों को चुरा लेता है। चोर की प्रकृति और गुण-धर्म के विपरीत कवि ने उसे प्रकट होने वाला तथा विशेष पाप वाला बताया है। इस प्रकार उक्ति का बाँकापन दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण देखें—

"और धर्म सब सैन्य समाना, राजा राम नाम करि जाना।"

अन्य धर्मों को सेना तथा राम नाम को राजा कह कर कवि ने नाम की स्वाधीनता की ओर तथा अन्य धर्मों की पराधीनता की ओर संकेत किया है। यह भी विशेषोक्ति कहलायेगी।

लालदास के काव्य में प्रकृत चारुता का कारण कथन-शैली की वक्रता ही है। विल्हण की भाँति लालदास में रस और उक्ति दोनों की समान स्थिति है। उक्तियों के कारण उनकी शैली विदग्ध हो गई है। उक्ति के कारण अर्थ में विलक्षणता उत्पन्न होती है। रसिक-साधक होने के कारण रस भी उनके काव्य का प्रमुख अंग है। रस की तरंगें उक्ति के विलास के साथ क्रीड़ा करती दिखाई देती हैं।

कवि ने 'उक्ति अनूठ अनंत' से अनंत प्रकार की उक्तियों की रचना का संकेत किया है। इससे स्पष्ट है कि कवि उक्ति को अलंकार के क्षेत्र में सीमित न मानकर उसे रस, अर्थ, गुण आदि क्षेत्रों से भी सम्बंधित करता है।

विभिन्न सूचियों को आधार मानकर लालदास ने विभिन्न काव्य सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को भी समन्वय प्रदान किया है। वे 'उक्ति विशेष' की महिमा स्वीकार करते हैं किन्तु 'ध्वनि' के अस्तित्व को मानते हैं, वक्रता पर बल देते हैं।

कवि ने वाणी के चार प्रकार बताये हैं—

(१) परा, (२) पश्यन्ति, (३) मध्यमा, (४) बैखरी।

प्रथम तीन प्रत्यक्ष का विषय नहीं हो पाते। 'चतुर्थ बैखरी' ही श्रवण का विषय बनती है। जो शब्द हमें सुनाई पड़ते हैं, उसके दो अंग होते हैं—

(१) ध्वनि, (२) स्फोट।

ध्वनियों के द्वारा स्फुटित होने वाला अर्थ भाग स्फोट कहलाता है। इसी स्फोट को लेकर वैयाकरणों ने ध्वनि सिद्धांत की आधारशिला तैयार की है।

लालदास प्रतीयमान अर्थ में विशेषता का आधान करने वाले हैं। प्रतीयमान को कवि ने अंगना के अर्ध मुकुलित उरोजों से उपमित किया है। वैसे वे क्लिष्ट अर्थ से काव्य को बचाने पर बल देते हैं। किन्तु प्रतीयमान अर्थ में रसादि ध्वनियों के प्रयोगों में दक्ष हैं। रस-प्रधान काव्य की रचना में ध्वनि का वैशिष्ट्य स्वाभाविक है। ध्वनि सम्प्रदाय रस-सम्प्रदाय का सहचर रहा है।

ध्वनि सम्प्रदायवादिता के कुछ संकेत लालदास में मिलते हैं। वैसे वे उक्ति-मार्ग के भी समर्थक हैं। ध्वनि सम्प्रदायवादी ध्वनि काव्य को कुछ खुले और कुछ ढके स्तनों की उपमा से व्यक्त करते रहे हैं। ध्वन्यालोक में कहा गया है कि ध्वनि काव्य उस प्रतीयमान अर्थ को कहते हैं जो कामिनी कुच के समान निपुणता पूर्वक प्रत्यभिज्ञ हो —

नान्ध्री पयोधर इवातितरां प्रकाशः
नो गुर्जरी स्तन इवातितरां निगूढ़ः।
अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चिद्ः।
प्राकाश्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः॥

(आंध्र देश की स्त्रियों के स्तनों के समान जो अर्थ अत्यन्तखुला हुआ होता है वह अच्छा नहीं होता और न वह अर्थ अच्छा होता है जो गुजरात की स्त्रियों के स्तनों के समान बिल्कुल छिपा हुआ हो। मरहट्ट (महाराष्ट्र) देश की स्त्रियों के स्तनों के समान वाणी का जो अर्थ कुछ खुला और कुछ छिपा होता है, वही शोभादायक होता है।)

लालदास ने ध्वनिवादियों के इसी प्रसिद्ध सिद्धान्त वाक्य को आधार मानकर प्रतीयमान अर्थ की ओर संकेत किया है—

"गूढ़हिं भली न प्रकाश ही बानी लाल बिचारि।"
जिमि कुच प्रगट न गुप्त ही राखति नागरि नारि॥"

—अवध विलास पृष्ठ ७

कवि प्रतीयमान अर्थ को ही काव्य की आत्मा स्वीकार करता है।

बिहारी ने "वह चितवनि औरे कछू जेहि बस होत सुजान" कहकर चितवन की भिन्नता से काव्य की वक्रता की ओर संकेत किया है। लालदास भी "काजर सबहीं देत हैं, चितवनि में है फेर" कहकर 'काजल' से काव्य के सहज अलंकरण और 'चितवनि के फेर' से वाणी की वक्र भंगिमाओं की ओर संकेत किया है। जिससे प्रतीत होता है कि कवि वक्रोक्ति को भी महत्व प्रदान करता है। एक अन्य स्थान पर भी—"नवनि साँच बोले सुविचक्षण।" कहकर कवि ने 'विचक्षण' से विलक्षण वाणी प्रयोग करने का संकेत किया है। वाणी का वैलक्षण्य ही वक्रोक्ति है। कवि ने उक्ति विशेष की महिमा को तो स्वीकार ही किया है, वाणी के वैलक्षण्यों को उक्ति विशेष में गतार्थ किया है।

लालदास रुचिभेद की संभावनाओं से परिचित हैं और विभिन्न रुचियों के विनियोग के कारण उनके आचार्यत्व के क्षेत्र में भी समन्वय की भावना दृष्टिगोचर होती है। लालदास ने 'अवध विलास' में आचार्यत्व का अन्तर्भाव किया है। छंद-शास्त्रीय, नायिकाभेद, पिंगल एवं संगीत निरूपण आदि की विशेष सामग्री पायी जाती है।

लालदास का पिंगल ज्ञान पुष्ट है किन्तु वे भक्ति से प्रेरित होने के कारण पिंगल व पाण्डित्य को प्राथमिकता नहीं प्रदान करते। फिर भी प्रबन्ध के बीच अवसर निकालकर गणागण वर्णन, गणागण देवता-वर्णन, गणागण जाति-वर्णन, गणागण फलाफल वर्णन, लघु गुरु भेद वर्णन, दग्धाक्षर निर्देश आदि का उल्लेख करके अपने पिंगल विषयक ज्ञान और रुचि को प्रमाणित किया है। पिंगल शास्त्र के अनुसार छन्दों के तीन भेद हैं (१) सम (२) अर्धसम और (३) विषम। लालदास ने लगभग बावन प्रकार के छन्दों की गणना कराई है। लघु गुरु की स्थितियों के परिवर्तन से छन्द शास्त्र में छन्दों के अनेक भेद हो सकते हैं। इस ओर कवि ने संकेत किया है। छन्दों के जो नाम कवि ने गिनाये हैं उस परिगणन के पीछे संस्कृत, प्राकृत की छन्दशास्त्र की परम्परा को हिन्दी में जीवित रखने की चेष्टा दिखाई पड़ती है। साथ ही तत्कालीन समय तक प्रचलित छन्दों को स्वीकृति प्रदान करना भी कवि का उद्देश्य रहा है। लालदास द्वारा उल्लिखित छन्द छन्दशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं। पिंगल में छन्दों का वर्णन किया गया है। कवि ने पिंगल में वर्णित छन्दों में से कुछ के नामोल्लेख का संकेत किया है—

'ते सब छन्द हैं पिंगल गाये। कहत हौं कछुक नाम सुनि पाये॥' लालदास द्वारा उल्लिखित छन्दों की विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं। कवि ने विज्जोहा छन्द का उल्लेख किया है। पिंगल सूत्र, छन्दोमञ्जरी, वृत्तरत्नाकर में विज्जोहा का निरूपण नहीं है। प्राकृत पिंगल सूत्र में विज्जोहा का लक्षण बताया गया है। एक रगण और एक लघु अर्थात् ग ल-ग ल। लालदास ने विज्जोहा का उल्लेख किया है ऐसा प्रतीत होता है कि कवि प्राकृत के इस छन्द से परिचित था। प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा के एक दूसरे छन्द गाहा, गाथा का भी उल्लेख कवि ने किया है। गाथा एक प्रकार के ऐसे अनुक्त छन्द हैं जिनके लक्षण शास्त्र में अनुपलब्ध हैं। कवि ने लोक प्रचलित छन्दों को चुनकर छन्दों के क्षेत्र को लोक-व्यवहार से भी जोड़ने की चेष्टा की है। इसी प्रकार लालदास ने 'प्रिया' नाम के छन्द का उल्लेख किया है। प्राकृत पिंगल सूत्र में प्रिया नाम से तीन अक्षर वाले छन्द का निरूपण किया गया है। छन्द कौस्तुभ और छन्दोमञ्जरी में 'प्रियस' नाम भी दिया गया है।

लालदास के आचार्यत्व में उदाहरण-विस्तार पद्धति को नहीं अपनाया गया। गणनात्मक पद्धति का आश्रय लिया गया है। वैसे आचार्यत्व का व्यावहारिक पक्ष

उदाहरणों में अधिक मुखर होता है। कवि उदाहरणों के वर्णन में अधिक रुचि नहीं लेता क्योंकि उसके सामने ग्रन्थ के विस्तार-भय की चिन्ता है। सचमुच कवि ने जितने क्षेत्रों को चुना है यदि उनके उदाहरणों को भी लेता तो इस ग्रन्थ का विस्तार अधिक हो जाता। कवि के अनुसार—

"उदाहरण सब छंद के कहते लाल बनाइ।
बीचहि अवध-विलास के कथा और बढ़ि जाइ।"

लालदास ने प्रमुख रूप से नायिकाओं के आठ प्रकार माने हैं तथा नायकों के चार प्रकार। शारदातनय ने रुद्रभट्ट के मतानुसार कुल ३८४ नायिकाओं की संख्या मानी है। लालदास ने केशव[1] की भाँति कुल संख्या ३६० स्वीकार की है।

लाल नायिका आठ हहिं नायक चारि प्रकार।
भेद तीन सै साठि हैं कौन करै विस्तार।[2]

लालदास ने नायिकाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है। जाति के अनुसार—पद्मिनी, चित्रणी, शंखिनी, हस्तिनी। कवि ने इनके लक्षणों का भी निर्धारण किया है। वय क्रम के अनुसार एक दूसरा वर्गीकरण भी कवि ने किया है जो इस प्रकार है—कन्या ७ वर्ष, गौरी १३ वर्ष, बाला २० वर्ष, तरुणी ३० वर्ष, प्रौढ़ा ४० वर्ष, वृद्धा ५० वर्ष। यह वर्गीकरण आचार्य देव के वर्गीकरण से भिन्न है।

लालदास ने नायिकाओं का वर्गीकरण तीन प्रकार बताया है—स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया की तीन विधियाँ बताई हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। मुग्धा को कवि ने बाल-वधू, मध्या को सयानी और प्रौढ़ा को यौवन-वती कहा है। कवि ने इनके लक्षण भी बताये हैं। स्वकीया के अन्तर्गत दो प्रमुख भेदों की चर्चा कवि ने की है—ज्ञात यौवना और अज्ञात यौवना। पुनः स्वकीया और परकीया के दो-दो भेद बताये हैं—ऊढ़ा और अनूढ़ा। यह वर्गीकरण आचार्य भिखारीदास के शृंगार-निर्णय से मिलता है।

मध्या तथा प्रौढ़ा के चार-चार भेद अर्थात् आठ प्रकार बताये हैं। परकीया के अन्तर्गत छः अन्य भेदों का उल्लेख किया गया है। मुदिता, गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना। लालदास का यह वर्गीकरण मतिरामकृत रसराज से मिलता है।

---

१. प्रकट तीन सौ साठ त्रिय केशव दास बखानि।
—रसिक प्रिया ७/३८

२. अवध-विलास पृष्ठ २२८

कवि परम्परा के अनुसार लालदास ने अष्ट-नायिकाओं का नामोल्लेख किया है—

प्रोषित पतिका, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता, वासक-शय्या, स्वाधीन भर्तृका और अभिसारिका, कवि ने इनके लक्षण भी बताये हैं। केशव ने अपने वर्गीकरण में अभिसन्धिता का नामोल्लेख किया है। लालदास ने इसे कलहान्तरिता कहा है। केशव ने जिसे स्वाधीन पतिका कहा है लालदास ने उसे स्वाधीन भर्तृका की संज्ञा दी है। केशव की उत्कला को लालदास ने उत्कण्ठिता कहा है। नायिका निरूपण के अतिरिक्त लालदास ने नायकों का वर्गीकरण चार प्रकार का बताया है—अनुकूल, छल, शठ और धृष्ठ। केशव ने जिसे दक्षिण नायक कहा है लालदास ने उसे अनुकूल कहा है। लालदास के नायिका भेद निरूपण का आधार भानुदत्त (ई० १४५०—१५००) कृत रसमञ्जरी है। कवि ने स्वयं इस ओर संकेत किया है—

'लक्षण है रसमञ्जरी ते तहँ लीजेहु जानि'

लालदास केशव, देव, चन्ददास, भिखारीदास, मतिराम की भाँति नायिका भेद के एक प्रामाणिक आचार्य सिद्ध होते हैं। उनका वर्गीकरण विस्तार-वादी अति से बचाने वाला तथा व्यवस्थित प्रतीत होता है।

लालदास ने काव्य के क्षेत्र को विशाल बनाया है। उन्होंने व्याकरण, छंद, कोष, अर्थ, इतिहास, ज्योतिष, लोक-व्यवहार, तर्क, आयुर्वेद, संगीत आदि विषयों को काव्य के क्षेत्र में प्रौढ़ि एवं परिष्कृति-प्रदान की है।

ज्योतिष के अन्तर्गत नवग्रहों के क्षेत्र विवेचित किये हैं। सूर्य, खुरासान का राजा है, चन्द्र हिमालय का, मंगल तुर्क देश का, बुध रूस का, गुरु चीन का, शनि हिन्दुस्तान का राजा बताया गया है। राहु और केतु का स्थान बताने में कवि ने असमर्थता व्यक्त की है।

लालदास ने साठक ज्योतिष के एक प्राचीन ग्रन्थ के अनुसार प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, खरनन्दन, मन्मथ, विश्वावसु आदि अनेक सम्बतसरों का नामोल्लेख भी किया है।

ग्रहों की स्वक्षेत्रीय उच्च एवं निम्न स्थितियों का विवेचन, ऋतु, मास, तिथियों के काल क्रमानुसार फलादेश का संकेत करके ज्योतिष की जानकारी से सर्व-साधारण को परिचित कराया है। यद्यपि ज्योतिष विषयक विवेचन परम्परित है किन्तु उक्त विवरण से यह भली-भाँति प्रमाणित हो जाता है कि लालदास की बहु-ज्ञता में ज्योतिष भी एक प्रमुख तत्व रहा है। उन्होंने अवध-विलास में राशि गणित का भी उल्लेख किया है।

पकवानों की तालिका, दहेज में दी जाने वाली वस्तुओं की सूची, जन-जातियों की तालिका आदि प्रसंग ऐसे हैं जो शुद्ध काव्यत्व की दृष्टि से निराश करते हैं किन्तु ऐसे प्रसंगों से ज्ञान की तुष्टि होती है तथा विभिन्न रुचियों का प्रतिपादन होता है ।

जायसी ने पद्मावत में विषयों की सूची देने में कोई कसर नहीं उठा रखी पर लालदास उनसे भी आगे हैं । उन्होंने वनस्पतियों, पौधों, व्यंजनों, वस्त्रों, आयुधों आदि के ही नाम नहीं गिनाये बल्कि छंदों, हस्तमुद्राओं, नाटक आदि की सूक्ष्मतम जानकारियों से अपनी कविता को लैस किया है । छंदशास्त्र ही क्या समूचा पिंगल अवध-विलास में प्रकारान्तर से व्यक्त हो गया है । व्याकरण की सामग्री, ज्योतिष की जानकारी, आयुर्वेद के ग्रन्थों के आधार पर रोगों का नामकरण आदि-आदि अवध-विलास में समा गया है । कवि ने ठीक ही कहा है 'सो वें बातैं कौन हैं जो नहिं अवधविलास' । यह इस प्रकार से है जैसे एक विश्वकोष (Pocket Encyclopaedia) हो ।

लालदास काव्यशास्त्र के पंडित थे । उनके काव्य में काव्य-शास्त्रीय बिम्ब इस धारणा को पुष्टि प्रदान करते हैं—

'धनिक मनिक जो देते हैं ताहि तनक कर मानि । अर्थात धनिक व्यक्तियों द्वारा यदि मणियों का भी दान कर दिया जाय तो उसे भक्त-जन तनक करके मानते हैं । इन पंक्तियों में 'धनिक' 'मनिक' और 'तनक' में श्लेष से कवि दशरूपककार धनञ्जय के व्याख्याता आचार्य 'धनिक' की ओर संकेत कर रहा है । 'धनिक' के अनुसार—"अपनी अल्पाधिक सत्ता के कारण जब सूक्ष्मातीत वस्तुएँ भी शब्दों से प्रतिपादित हो सकती हैं तो शान्त रस उस प्रतिपादन से कैसे वंचित रह सकता है ।"[१]

शान्त रस के वन्ध में आचार्य 'धनिक' ने जिस अल्पाधिक शब्द का प्रयोग किया है उसी के लिए लालदास ने मनिक और तनकशब्द का प्रयोग किया है । तनक अल्प के लिए और मनिक अधिक के लिए प्रयुक्त किया है । तनिक से आशय रंचमात्र या अल्पता से है । 'मनिक' से आशय मन (परिमाण वाची) से है जो 'तनक' की अपेक्षा अधिक होता है । इस प्रकार कवि ने आचार्य 'धनिक' का स्मरण करके काव्य-शास्त्रीय परंपराओं के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है ।

लालदास के काव्य में भावुकता तुलसी की भाँति अपनी गम्भीरता लेकर आती है किन्तु उनके मार्मिक स्थल तुलसी से भिन्न हैं । लालदास भावुक स्थलों में वचन-वक्रता को नहीं छोड़ पाते । तुलसी जिन प्रसंगों में अधिक मार्मिक हैं लालदास उन प्रसंगों को छूते तक नहीं । लालदास की मार्मिकता में एक अनूठापन, कल्पना का नैपुण्य, आंचलिकता और भंगिमाओं की मौलिकता बहुत अधिक प्रभावोत्पादक

---

१. काव्य सर्जना और काव्यास्वाद—डॉ० वेंकट शर्मा, पृ० ५८३

है। उदाहरण के लिए एक स्थल देखें—पुरवधुओं ने राम को ब्याह के अवसर पर देखा। लालदास में मार्मिकता है। तुलसी की पुरवधुएँ राम के रूप को देखकर मुग्ध होती हैं। लालदास की पुरवधुएँ इस अवसर पर सौन्दर्य की प्रतिक्रिया को विभिन्न मानसिक भावदशाओं से व्यक्त करती हैं। उनकी कामनाएँ लोक संस्कृति के साथ गहरे अनुराग से अनुरंजित हैं। तुलसी के बाद उसी प्रसंग पर उससे अधिक रसात्मक प्रसंग की अवतारणा कठिन काम था। सौंदर्य व्यापारों के बिम्ब विधान में लालदास सफलता की एक अलग ऊँचाई लिए हुए हैं। पारिवारिक स्नेह-बंध की नींव पर यह दाम्पत्य-विलास तुलसी से सर्वथा भिन्न मनोजगत लेकर व्यक्त हुआ है। सौन्दर्यजन्य प्रभाव की प्रतिक्रिया लालदास में तुलसी से कितनी भिन्न, मौलिक तथा मार्मिक है देखें—

(अ) "देखति राम लखन छवि जोहीं। बिसरि गई घर के मग मोही।।
जिन्ह के ए वै आहि धों कैसे। धन्य देश जहँ के नर अैसे।।"

(ब) "ब्याही देखि-देखि पछिताहीं। दइ अस वर हम कहँ दए नाहीं।।
कन्या कहै कहा अब करिए। कौन भाँति ऐसे वर वरिए।।
गौनें की रहीं मौनहि सबरी। अब तो होनहारि होइ निबरी।।
जो लरकौरि रही हैं तेई। दइ अस पूत विधाता देई।।"

लालदास ने एक ओर श्रृंगारिक विलास चेष्टाओं को चित्रित किया है, दूसरी ओर इसके विपरीत गुण-धर्म वाली योग की भावानुभूतियों को व्यंजित किया है। श्रृंगार और शांत रस की विरोधी भाव-स्थितियों का अद्भुत चित्रण है। योगी के लिए सामान्य श्रृंगारिक प्रसाधनों, आस्वाद्यों में कोई रुचि नहीं होती और न ही ये प्रसाधन भक्ति रस की निष्पत्ति के कारण बन पाते हैं। किन्तु यहाँ श्रृंगार के आस्वाद्य में भ्रांति के चमत्कार से योग रस को व्यक्त किया गया है। श्रृंगार के आलोक में योग की झाँकियाँ दिखाना कवि का इष्ट है।

प्रचण्ड तप साधक श्रृंगी के इन्द्रिय-क्षोभ के लिए कवि ने कालिदास की उर्वशी के सौंदर्य वर्णन की भाँति ठगनी की विलास चेष्टाओं की शक्तिशाली व्यंजनाएँ की हैं। कुमारसम्भव में भगवान शंकर की समाधि भंग होने पर पार्वती ने उनके कंठ में माला पहना दी और उसी समय कामदेव ने भी सम्मोहन नामक अचूक बाण धनुष पर चढ़ा लिया। पार्वती को देखकर शिव की संयमशील वृत्तियाँ चंचल हो उठीं। जैसे चन्द्रमा के निकलने पर समुद्र में ज्वार आ जाता है। पार्वती के अनवद्य रूप-सौंदर्य को देखकर भगवान शिव का इन्द्रिय-क्षोभ चित्रित किया गया है। लालदास ने भी विषय विलास से विमुख श्रृंगी ऋषि को इन्द्रिय-क्षोभ से प्रभावित करने के लिए रति और काम की जिन मुद्राओं को ठगनी के माध्यम से व्यक्त

किया है वह अप्सराओं के सौंदर्य विलास से कम मादक नहीं है। निश्चय ही इस श्रृंगार बिलास को पढ़ कर न केवल सम्भार की पूर्णता का परिचय मिलता है बल्कि लालदास के सौंदर्य वर्णन के प्रतिमानों में मल्लिनाथ द्वारा वर्णित सौंदर्य के प्राकृतिक उपादान भी समाविष्ट दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए कवि गौर ललाट पर बिन्दी लगाते हुए नायिका को इस रूप में व्यक्त करता है मानो वह कमल करों से चन्द्र की पूजा करने जा रही हो। कवि ने यहाँ कमल, चन्द्रमा और मुख सौंदर्य को एकत्र कर दिया है। मल्लिनाथ के अनुसार सौंदर्य की पूर्णता चन्द्रमा, कमल तथा मुख सौंदर्य लक्ष्मी के निवास स्थान हैं। लालदास के शब्दों में—

"गौर ललाट देत जब बिन्दा, कमल करन मन पूजत चंदा ।।[१]

श्रृंगी के श्रृंगार के उद्दीपन के लिए नारी सौन्दर्य का विभाव पक्ष के रूप में वर्णन सौन्दरानन्द के दशमसर्ग में अप्सराओं तथा हिमालय की तलहटी में विहार करती किन्नरियों के सौन्दर्य वर्णन तथा बुद्धचरित में रमणियों के सौन्दर्य वर्णन से कम प्रभावी नहीं है। लालदास के शब्दों में—

"सुन्दर नारि रूप गुनवंती। काम केलि जानत बहु भंती ।।
अधर मधुर रस करे न पाना। तिन्ह के जन्म वृथा करि जाना ।।

सुखद त्रियन के रूप, जिन्ह नहिं देखे नैंन भरि
ते विधि कीन्हें कूप, मुखहिं बिवर चुंबन बिना ।।

मुनि कहूँ देखि प्रेम अनुरागी। अपने बा न चलावन लागी ।।
अँगिरावति ऊँचे भुज तानैं। अैंचति मानहुँ काम कमानैं ।।
राखति एकहु अलक भुलाई। सोहति मुख पर लगति सुहाई ।।
मोहत बदन जँभात अमोला। संपुट कनक रतन जनु खोला ।।
आरसि लै दृग अंजन बनावति। मानहु बान सिलीमुख लावति ।।"[२]

लालदास जहाँ कहीं अवसर मिलता है रमणियों के सौन्दर्य की सराहना करते हैं। कविता की भंगिमा को सुन्दरियों की चितवन से रूपायित करते हैं।[३] बिना नारी के पुरुष के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं।[४] इस प्रकार उनकी कविता सौन्दर्य के स्वाभाविक विकास को लेकर चलती है। वह कला को जीवन और सौन्दर्य की ओर

१. अवध विलास, पृ० १७६।
२. तदुपरि, पृ० १७६।
३. लाल सुकवि जुवती सबै कवित नयन तिन्ह केर।
काजर सबही देति हैं चितवनि में है फेर ।।—अवध विलास, पृ० २२४
४. नारी प्यारी जीय कै न्यारी करी न जात।
नारी के न्यारे भये नारी छूटि ही जात ।। —अवध विलास, पृ० १३६

उन्मुख करती है तथा उसे पतन के विपरीत ले चलती है। लालदास अन्य संतों की भाँति नारी की निंदा नहीं करते।

कवि संयोग को ही जीवन का सुखद पक्ष मानता है। दाम्पत्य एवं संयोग शृंगार के प्रकर्ष की महत्ता का गायन करता है—

प्रीतम मिले रहैं इक ठौरा। याते-बड़ो नहीं सुख औरा।

कौन नहीं चाहेगा कि उसका प्रेमास्पद उसके निकट रहे। कवि ने सुखद संयोग को ही स्वर्ग और मोक्ष की संज्ञा दी है। स्त्री के बिना जीवन की सार्थकता को अस्वीकार करते हैं—मिहरी बिन मुये भले जीवत भले न लाल।

बाल्य सौन्दर्य की मनोहारिता में लोक मंगल के शकुन भी अलकरण हो गये हैं—

'सोहत बघ नख मणि घन भितर। अर्ध चन्द्र जनु उडगन अन्तर ॥
राजत जंत्र-मंत्र जुत भूषन। अंग-अंग कछु लगैं न दूषन ॥
मंत्रि महातन्ह दीन्ह सुपारी। लै-लै गर बाँधिन्ह महतारी ॥

बाल्यसौन्दर्य के लालित्य में लघुता ने और भी प्राण पिरो दिये हैं—

"छुटे-छुटे हाँथनि धनुहिन मोटी। छुटि-छुटि कटिन्ह कटारी छोटी ॥
छोटे-छोटे तीर तरकसी सोही। लघु तरवारि ललित मन मोही ॥
छोटि-छोटि ढाल स्याम रंग जोती। कनक फुलन्ह पर नग मणि मोती ॥'

राम के रूप को देखकर जनक की मुग्धता ठीक वैसे ही है जैसे निशंक गज छवि के पंक में फँस कर गिर पड़े, पुनः उस सौन्दर्य से पृथक् न हो सके—

"गौर स्याम छवि पंक मृदुल मनोहर माधुरी
नृप मन गज निहसंक गिरे गरू निकसे नहीं ॥"

अवध-विलास लीला प्रधान प्रबन्ध है, लीलापरक होने के कारण यह आनन्द का समुद्र है। कवि ने इसे नवरस का कन्द कहा है—

कहत सुनत सब कहँ सुखद, है नव रस को कन्द।
लाल अवध लीला रची, ललित मनोहर छन्द ॥

नवरस के कन्द से कवि का आशय परम्परित काव्य के नव रसों से है, साथ ही नवरस देह की नवखण्ड भूमि से भी सम्बन्धित है, जो लीला के निमित्त है। जायसी ने 'नव पौरी पर दसवँ दुआरा' कहकर इसी ओर संकेत किया है। लालदास ने भी लीला के निमित्त 'नवरस को कन्द' कहकर रसिक भक्त के हृदय साकेत में होने वाली नित्य लीला का संकेत किया है। इस प्रकार अवध-विलास में रसिक कवि लालदास ने रसों का निवंधन शृंगार रस को अंगी मानकर तथा वीर, शांत, अद्भुत,

हास्य, करुण आदि को अंग रूप में स्वीकार किया है। लालदास नौ प्रधान भावों को रसत्व का अधिकार देते हुए साहित्य में नौ रसों की स्वीकृति देते हैं —

करुणा हास शृंगार भय अद्‌भुत वीर सकाम।
रुद्र विभत्स औ शांति हैं ए नव रस के नाम।।

भोज, दण्डी, लोल्लट सभी स्थायी भाव के प्रकर्ष को रस मानते हैं। वह कवि में, काव्य में, रसिक में रहता है।

लालदास ने काव्य रस की अभिव्यक्ति हेतु नाना प्रकार के भावों के आंगिक, वाचिक, और सात्विक अभिनयों से स्थायी भावों की व्यञ्जना की है। भावों के अन्तर्गत संचारियों के सन्निवेश में कवि को अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है। शृंगार और विरह के भावों की व्यञ्जना में नाना प्रकार के संचारी भावों की सक्षम अभिव्यक्ति रससिद्ध कवि के स्वरूप को उजागर करती है। रतिभाव के अन्तर्गत विभिन्न मानसिक दशाओं की व्यञ्जना का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

"फुलवा लीन्ह बैठि जेहि छहियाँ। मुंदरी मोरि गिरी तेहि ठहियाँ।।
छल करि फिरि कीन्ही चतुराई। देखे प्रान नाथ पुनि आई।।
चितवनि चलनि कहनि मृदु सोही। लीला ललित देखि सिय मोही।।
वन मृग खग बैठे तिन्ह धाई। देत उठाइ-उठाइ भगाई।।
सिय तहँ देखि-देखि मृग देही। जाहि समीप बहाने एही।।
बेर-बेर एहि मिस मग आवत। करि-करि चरित चोप चित लावत।।"

मानव जीवन के मौलिक भाव प्रेम अथवा राग की विशिष्ट व्यंजना लालदास ने की है। फ्रायड काम को जीवन की मूल वृत्ति मानता है, जो लैङ्गिकता अथवा योनि भावना से लेकर चलता है तथा जीवनेच्छा का मूल राग या आकर्षण को मानता है। लालदास का शृङ्गार राम और सीता के युगल रूप तथा छवि माधुरी पर केन्द्रित है। रसिकों के लिए अवध-विलास विशेष अध्येतव्य है क्योंकि कवि ने इसमें रसिक साधना के सिद्धान्तों को रसमयी वाणी से अभिव्यक्ति दी है। रस का निवास रसिक जनों में ही होता है। इस रस को शृङ्गार कहते हैं क्योंकि यह संस्कृति के उच्च शृङ्गों तक ले चलने वाला होता है—'येन शृङ्गं रीयते स शृंगारः' राम और सीता इस शृङ्गार रस के युगल रूप हैं। कवि ने शृङ्गार रस के अन्तर्गत हृदय को आप्लावित करने वाले भावों को रस का विषय बनाया है। शृङ्गार रस का एक उद्धरण पर्याप्त होगा—

लैकर पुहुप जो करति बषाना। पियहि सराहति फूल बहाना।।
पाइ अस फूल सदा रस चाषी। हार बनाय हिए पर राषी।।

भरि-भरि भेंटति बाँह सुभागी । झूलति सषि कैं हिय गर लागी ।।
फुलवा लैन कतहुँ नहिं जाइब । याही बेर प्रात पुनि आइब ।।
पीत पितांबर साँवरे अंगा । घन दामिनि जनु सोहत अंगा ।।
बरसत सुधारूप धुनि हासा । नाचत सियमन मयुर हुलासा ।।

करुण दृश्य व्यापारों में कवि की रुचि विशेष नहीं है। वह विषाद के स्थान पर आनन्द का उपासक है किन्तु जहाँ कहीं करुण दृश्यों का चित्रण किया है उसमें प्रेम और विरह की मार्मिक व्यंजनाएँ हुई हैं। ऐसे स्थलों में कवि का संवेदन अत्यन्त हार्दिक बन पड़ा है। शान्ता का माँ से करुण विलाप हो अथवा बृन्दा के बिछोह में विष्णु का विलाप हो सभी करुण होकर लोकाभिमुख है। इस करुणा ने विषाद के स्थान पर जीवन के प्रति एक नया उत्साह पैदा किया है। करुणा से आशा और प्रेम की नयी किरणें फूटती दिखाई पड़ती हैं। शांता का माँ से किया गया विलाप करुणा की मूल मनोवृत्ति को द्रवित करने वाला है। लोक जीवन में बहन के लिए एक भाई की पीड़ा और मायके के प्रति ममत्व का कैसा हृदय-विदारक एवं मार्मिक चित्रण कवि ने किया है—

"शांता दौरि लागि गर रोई । मइया भल हिय वज्र की पोई ।।
भल तैं मोंहि डारि ही दीन्ही । एकहु बेर खबरि नहीं लीनी ।।
पशु पक्षी जड़ होत है केऊ । अपने जने संभारत तेऊ ।।
भाइउ मोंहि न दीन्ह विधाते । तौ का मोंहि लिवाइ न जाते ।।"

हास्य की मूल प्रवृत्ति भी मानव की प्रवृत्ति है। कवि ने हास्य से सम्बद्ध मनोवेग, विनोद का सुन्दर वर्णन किया है। व्यंग पूर्ण उक्तियाँ सामाजिक विसंगतियों पर चोट करती हैं। सीता स्वयंवर के अवसर पर राजाओं की शिव-धनुष तोड़ने की असमर्थता तथा उनकी शारीरिक दुर्दशा का चित्रण हास्य-व्यंग्य का अच्छा उदाहरण है—

"काहू के गर्व रह्यो मन माहीं । हल्यो न धनुष उखरि गई बाहीं ।
केउ चातुर आतुर होइ छूट्यो । चाप सों अढुकि टेहुना फूट्यो ।
आयो कोउ बकत-झुकत लगि सुखरी । धनुष छुअत पुतहंडी उखरी ।
आयो कोउ कहत दूर हो सबहीं । टंगरी टूट बैठि गयो तबहीं ।"

शान्त और भक्ति की अविरल धाराएँ अवध-बिलास के समुद्र में अपने सम्पूर्ण लीला विलास के साथ विलसित होती हैं। शृङ्गार, जो भक्ति से भावित है वही अवध-विलास का प्रतिपाद्य रस है। अन्य समस्त रस धाराओं के रूप में इस काव्य-समुद्र में अपना पर्यवसान करते हैं तथा रस साधना को समृद्ध बनाते हैं।

बाल्य जीवन की स्वाभाविक चेष्टाओं का सूक्ष्म निरीक्षण लालदास की

प्रतिभा का प्रसाद लेकर आता है। सूर ने जिन चेष्टाओं का वर्णन बाल्य लीलाओं के अन्तर्गत किया है लालदास ने उनसे भिन्न चेष्टाओं को विलास का विषय बनाया है। उनके वात्सल्य प्रेम की परिधि नवीन है। रसिक साधना के अन्तर्गत बाल-लीलाओं का वर्णन भक्ति के सोपानों पर आधारित है। बाल्य वर्णन की मार्मिकता और वास्तविकता हृदय को स्पर्श करती है। बाल्य प्रवृत्ति का जैसा सहज और स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है वह चित्ताकर्षक है। उसमें सूर के तोतलेपन की मनुहार ही नहीं है, कहीं स्वभावजन्य सहजता है और कहीं शिशुरक्षा की स्वाभाविक चिंतना। वात्सल्यजन्य चिंता का युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में चित्रण सर्वथा नवीन एवं मौलिक है—

(अ) "चाबत पान है ज्ञान भायाने। पीक मुषन्ह बाहेर लपटाने।
अलबल गलबल बात कहाँही। कछु समुझी कछु समुझि न जाहीं।

(ब) "मैया कहति लेति हिय लाई। महलनि मँह खेलहु वलि जाई।
बाहर जात करत हहु खेला। जोगिया धरि करिहै पुनि चेला।
बगिया मैं बंदरा है आए। लरिकन को फारत मुँह बाए।
नदिया में घोंघा है व्याने। तँह जनि जाहु कहूँ बिनि स्याने।
हाथन्ह छुरी तुरिक दढ़ियारे। कटिहैं कान जाहु जिनि द्वारे।"

पुत्र विछोह की कल्पना से मातृ-हृदय में करुण वात्सल्य की जो धारा प्रवाहित हुई है, उसमें किसी रानी का विलाप न होकर किसी ग्राम्य-संस्कृति में पली हुई नारी का विलाप व्यंजित हो उठा है—

"हम जीयत खेलहु घर खाहू। हमरे मुए कहूँ पुनि जाहू।
जब तब तुहि गति करब हमारी। तीरथ हाड़ जोइ कहुँ डारी।
कस न अबहिं अपने संग लाई। तीरथ माता पितहिं कराई।"

बाल लीलाओं के अन्तर्गत वात्सल्य की रसमयी मनोमूर्तियों के चित्रण में कवि का हृदय नृत्य कर उठता है। विभिन्न रसों की वैचित्र्यपूर्ण संधियाँ भी हैं। जहाँ कहीं रसान्तर है, वहाँ वे प्रधानरस को विच्छिन्न होने से बचाते हैं और विरोधी रसों के चमत्कार से प्रबंधचारुता और कला को प्रकर्ष प्रदान करते हैं। रस-व्यञ्जना का वैभव अनुभावों के विधान एवं जन साधारण के लिए भावों की सहज प्रेषणीयता पर आधारित है।

चरित्र निरूपण

राम—आदि कवि वाल्मीकि के राम महामानव हैं। तुलसी के राम साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। केशव के राम पुराण-पुरुष हैं। चन्ददास के राम आतम

राम से अभिन्न होकर गुरु गोविन्द एवं शिव, कृष्ण के अभेद रूप हैं। लालदास के राम रसिकों के रस-विग्रह रूप हैं। वे निरन्तर हृदय साकेत में निवास करते हैं। वे निराले हैं। कवि ने उन्हें 'राम हैं लाल निराल' कहकर उनकी विशिष्टता को व्यंजित किया है।

बाल्यकाल से ही लालदास के राम कुश्ती लड़ने, सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करने, बालू के किले ढहाने, शत्रु राजाओं से कर लेने आदि की क्रीड़ाओं में निमग्न दिखाई पड़ते हैं। राम की बाल-लीलाओं में तत्कालीन युगीन एवं राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभावांकन सर्वथा नवीन है।

लालदास के राम सौन्दर्य और रस के साक्षात् विग्रह हैं। वे धनुष तोड़ने के लिए तथा सीता को वरण करने के लिए कृत संकल्प हैं। तुलसी के राम विश्वामित्र के निर्देश से धनुष तोड़ने के लिए तैयार होते हैं परन्तु लालदास के राम सीता के सौन्दर्य से अभिभूत होकर धनुष तोड़ने को स्वतः कृत संकल्प हैं। इतना ही नहीं वे तो यहाँ तक कि यदि कोई उनसे भी बलिष्ठ आ जाये तो उससे भी सीता को छुड़ाने के लिए प्रस्तुत हैं—

"लछिमन मोर होत मन ऐसा। कहत हौं तोहि सुनहु कछु जैसा ॥
चढ़हिं न धनुष और पै काही। तोरब मैं हि बियाहब याही ॥
जो पै कोउ अवर बली आवै। लेहु छुड़ाइ आन नहि पावै।"

अवध से बनवास की ओर जाते समय लालदास के राम तुलसी के राम की तरह वीतरागी नहीं हैं। वे अवधपुरी के स्नेह से व्यथित हैं तथा उनके लोचन आँसुओं से भरे हुए हैं—

अवधपुरी के वासी जेते। हो रहे सबै उदासी तेते ॥
यह कहि राम नयन भरि आये। कहत न करत बनत पछिताये।[१]

तुलसी के राम वचन वद्ध कराके वन को भेजे जाते हैं। लालदास के राम वन गमन का उपक्रम स्वयं करते हैं और उसके लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ तैयार करते हैं। उदाहरण के लिए रामचरितमानस में मंथरा के द्वारा कैकेयी को प्रेरित कराकर हठात राम को वन दिया जाता है, लालदास के राम १४ वर्ष वन जाने के लिए कैकेयी को स्वयं प्रेरित तथा सन्तुष्ट करते हैं।

लालदास के राम रस स्वरूप हैं, भक्तजनों के हितार्थ वे धनुष-धारण करने वाले हैं। रसिक भक्तों के राम का वह धनुर्धर रूप तुलसी के राम का ही साधारणीकृत रूप हो सकता है। तुलसी की मर्यादा भक्ति भी रसिक साधना में अपना रंग

१. अवध विलास पृष्ठ, ३८४

घोल चुकी थी। लालदास भी मर्यादा के बिना धर्म और धर्म के बिना परलोक को असंभव बताते हैं—'मर्यादा बिनु धर्म न कोई। धर्म बिना परलोक न होई।'

कवि ने राम के चरित के माधुर्य पक्ष को विशेष रूप से उद्‌घाटित किया है। राम धीर ललित कोटि के नायक हैं तथा कवि ने उन्हें 'बहुनायक' के रूप में चित्रित किया है। 'बहुनायक' से कवि का आशय यह है कि राम अनेक सखियों और रसिक भक्तों के स्वामी हैं। 'सिय करि देत तिन्हहिं बहुनायक' कहकर कवि ने इसी ओर संकेत किया है। राम काल के भी काल हैं, वे महाकाल हैं—

—राम काल के काल हैं, माता जानति नाहिं।'

कवि ने राम का विश्वरूप भी चित्रित किया है—

"तब दसरथ मुष चुंबन चाहे। विश्वरूप तब दरसहिं पाए।"

लालदास के राम बनवास, सीताहरण, लंकादहन आदि मायिक कार्यों से पृथक् तथा निराले हैं—

'बनोवास सीताहरण लंकदहन नृप काल।
ए माया के ख्याल हैं राम हैं लाल निराल।'

सीता

सीता बैकुण्ठ की 'ठकुराइन' है, उसकी रंचमात्र शोभा ही तीनों लोकों के सौन्दर्य का कारण है—

"रंचक शोभा जासु की तीनि लोक रहि छाइ,
ठकुराइन बैकुंठ की बसी जनकपुर आइ।"

सीता का बाल्य-सौन्दर्य विकास के नियमों को तोड़ता हुआ असामान्य एवं असाधारण गति से विकसित होता है। रूप, शील, गुण और लज्जा उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं, मानो मूलधन के साथ ब्याज साधारण ब्याज-सा नहीं वरन् चक्रवृद्धि ब्याज बढ़ रहा है—

"बालक बढ़त एक दिन जाहीं, सीता बढ़त घरी इक माहीं।
और बरष लगि शिशु तन चढ़ई, सीता एक मास महँ बढ़ई।
तनु छवि चढ़त होत सुषदाई, जैसे चन्द्र कला अधिकाई।
रूप शील गुण लाज सु अंगा, जनु दिन बढ़त ब्याज धन संगा।"

बाल लीलाओं में सीता गुड्डा-गुड़िया के खेल में राम की और स्वयं की आकृति की रचना करती हैं—

'गूडा गूडि करति जब लीला। रामाकृति स्वाक्रति गुण शीला।'

बाल्य जीवन से ही भावी नायक के प्रति अनुराग का अंकुरण मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है।

सीता की सखियों को यह अधिकार है कि वे स्वयं क्रीड़ा की अधिष्ठात्री को क्रीड़ा से वंचित कर दें। मजे की बात तो यह है कि सीता का कोई अपराध भी नहीं है जिसके लिए उसे क्रीड़ा के आनन्द से वंचित किया जा रहा है। वंचित करने का कारण यह है कि सीता विशालाक्षी है। बड़ी आँखों के कारण वे आँख-मिचौनी के समय आँख के किसी कोने से दृश्य और अदृश्य के सम्पूर्ण परिदृश्य को दृष्टिगत कर लेती हैं। सखियों की अंगुलियाँ छोटी हैं। अंगुलियों के अनुपात में सीता की आँखें बड़ी हैं। सौन्दर्य की कैसी मनोरम व्यंजना है—

"और षेल सषि संग षिलावति, एक षेल सिय को बिलगावति।
बैठति नैन मुंदावति बाला, सषि कर लघु सिय नैन विशाला।"

सीता के सौन्दर्य वर्णन में आंगिक शोभा का सम्भार भी विशिष्ट है। मुख पर छुटी हुई अलक ऐसी प्रतीत होती है मानो चन्द्रमा पर अहिशावक (साँपों के शिशु) क्रीड़ा कर रहे हों—

"मुख पर अलक ललित इहि भावक, जनु शशि पर खेलत अहिशावक।"

वस्तुतः अलकें 'ललित' भाव की भावक हैं। 'ललित' और 'भावक' दोनों पद काव्यशास्त्रीय महत्व के हैं।

सीता के अमित सौन्दर्य को उसके यौवन की आभा को लालदास ने सर्वथा नये उपमानों से उपमित किया है। सर्वथा नये उपमान चुनने का प्रयोजन कवि की मौलिकता एवं उसके पूर्ववर्ती महाकवि तुलसी की 'सब उपमा कवि रहे जुठारी' की चुनौती को स्वीकार करना भी प्रतीत होता है। अनिर्वचनीय एवं अनुपमेय सौन्दर्य के लिये कवि ने काव्यशास्त्रीय एवं अन्तरिक्ष की अरुणिम आभा के विम्बों का प्रयोग किया है—

'जौवन के आगम बदन फिरे वर्ण गति चाल।
जैसे अम्बर रवि उदय भई लालिमा लाल॥"[१]

सौन्दर्य के नूतन उपमान के रूप में कविता की वृत्तियों को प्रस्तुत किया गया है। यह अमूर्त विधान कितना मौलिक है। वर्ण वृत्ति और कला वृत्ति द्विविध कविता के प्रकारों और उसके उत्कर्ष से सीता के सौन्दर्य को व्यंजित करने में काव्य प्रक्रिया की व्यंजना वृत्तियों को चुनकर लालदास ने तुलसी की 'सब उपमा कवि रहे जुठारी' की चुनौती को स्वीकार किया तथा जूठी उपमा न देकर सर्वथा अनूठी उपमा दी है।

---

१. अवध-विलास पृष्ठ २६४, दोहा ४११

वर्ण, गति, चाल सभी काव्य रचना की प्रक्रिया से सम्बन्धित प्रविधियाँ हैं। इस प्रकार काव्य संरचना के विम्ब से सौन्दर्य की उद्भावना सर्वथा नव्य है। पुष्प-वाटिका प्रसंग में सीता राम को देखकर विमुग्ध होती हैं, घर जाने की सुधि भूल जाती हैं, सखियाँ चिन्तित होती हैं। वस्तुतः अनुभूति की प्रवणता में, पूर्वराग की एकरसता में समय का वस्तुनिष्ठ अस्तित्व नहीं रहता। एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि विरह में समय काटे नहीं कटता और सुखद संयोग में समय कैसे बीत जाता है; इसका परिज्ञान ही नहीं रहता। तुलसी ने 'गहरु' शब्द से इसकी व्यंजना की है।

दिनकर ने 'उर्वशी' में इसी भाव को अभिव्यक्ति दी है—

'जब से हम तुम मिले न जाने क्या हो गया समय को—
लय होता जा रहा मरुद् गति से अतीत गह्वर में।'

कवि लालदास ने इस अवसर पर अत्यन्त कोमल भावों की अभिव्यंजना की है—

'चितवनि चलनि कहनि मृदु सोही। लीला ललित देषि सिय मोही।'

लालदास की सीता स्वयंवर के प्रसंग में पूर्ववर्ती राम काव्यों की सीता से भिन्न भावभूमि पर चित्रित की गई है। वह राम को वरण करने का संकल्प लेकर आती हैं उसके वचन में तेज है।[1] अनुराग में सतीत्व है किन्तु प्रेम की व्याकुलता सर्वोपरि है। राम धनुष तोड़ें अथवा नहीं किन्तु राम ही जानकी के वर हैं। प्रेम की यह संकल्पना जो धनुष तोड़ने के प्रतिबन्ध को शिथिल करती है एक सीमा तक आरोपित मर्यादावाद का खडन करती है। राग और प्रणय के क्षेत्र में इस प्रकार की मर्यादा को अमंगलकारी मानकर कवि ने प्रकारान्तर से अप्रतिबन्धित प्रेम को मांगलिक और सृजनात्मक स्वीकार किया है जो नैतिकता की अपेक्षा मनोविकारों को मूल में रखकर किये गये चरित्र विश्लेषण का प्रयत्न प्रतीत होता है। लालदास की सीता पूर्वराग से महाराग तक सर्वत्र प्रेम की व्याकुलता से ओत-प्रोत है।

सीता की प्रेम विषयक मानसिकता नारी हृदय की सम्पूर्ण समर्पण प्रवृत्ति की पोषक हैं, किन्तु वह लोक मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती। स्वच्छंद मानसिकता और लोक मर्यादा का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त मार्मिक एवं नारी संवेदना को व्यक्त करने वाला है—

"बिन ही धनुष बरन मन कहई। समुझि पिता पनु सकुचि रहैई।
और सृष्टि अपने बस कीनी। बनिता विधि परवस कर दीनी।
जौ वर करौ अपने मत रोपी। धर्म म्रजाद जाइ जग लोपी।
माता-पिता करैं तस होई। अवला नाम धर्‍यो त्रिय सोई।"

---

१. मेरे तो वर राम भयो री।

सीता लोक-रीति का पालन करती हैं वह सुन्दर वर पाने के लिए माघ स्नान करती हैं, किन्तु ये लोक-रीतियाँ उसे जड़ नहीं बनातीं क्योंकि सीता जो लोक परम्पराओं का संरक्षण करती दिखाई देती है वही स्वयंवर के अवसर पर पिता के द्वारा किये हुए प्रण—धनुष तोड़ने के प्रतिबन्ध का शिथिलीकरण करती है। किन्तु नियति संकल्प को मनोनुकूलता प्रदान करती है। राम ही धनुष तोड़ते हैं और राम ही सीता का वरण करते हैं। देश, कुल, व्यवहार, परम्पराओं की सम्पूर्णता के साथ सीता का विवाह सम्पन्न होता है। दूल्हा और दुल्हन परस्पर मुदित-हर्षित होकर क्रीड़ा करते हैं। सखियाँ हँसती हुई रूप रस का अनुभावन करती हुई एक दूसरे के ऊपर भाव-विभोर होकर गिर पड़ती हैं—

"दूलह दुलहिनी दुधा भाँति मोद मन हँसि षेलहीं।
देषि-देषि सषि परत हँसि-हँसि रूप रस सुष रेलहीं।"

सीता सम्पूर्णतः प्रिय के लिए समर्पण करती हैं। द्वैत से अद्वैत स्थापित करती हैं। प्रिय की छाया बन जाती हैं। इतना ही नहीं वे प्रियतम के साथ वनवास में शीत और धूप सभी कुछ सहने को तैयार हैं। प्रियतम के अभाव में इन्द्रलोक की भी कदर्थना करती हैं—

"प्रीतम संग बनवास भल सहब सीत औ घाम।
लाल पियारे पीय बिनु इन्द्रलोक केहि काम।"

रसिक भक्त लालदास ने सीता को मातृ भाव से आराधना का विषय बनाया है। उनका भक्त कवि नख शिख शोभा को वर्णन करने में असमर्थ है। यह असमर्थता कवि की विवशता और भक्त का सामर्थ्य है—

"नख-शिख शोभा देह की लाल अनूपम जाहि।
सीता माता जगत की कैसे बरणों ताहि।"

रावण

रावण खलनायक के रूप में चित्रित है। अन्य राम कथाओं में सीधे रावण के अत्याचारों का वर्णन किया गया है। लालदास ने अवध-विलास में रावण का बाल्य-वर्णन भी किया है। इस प्रकार खलनायक के चरित्र के विकास में कवि के द्वारा की गई पहल मौलिक तथा नवीन है। रावण रेंगते हुये चलता है किन्तु उसका रेंगना सूर के कृष्ण के घुटनों के बल चलने से सर्वथा विपरीत है। वह पूजा करने वाले पण्डितों का पानी गिरा देता है। इतना ही नहीं विप्रों के द्वारा गोद लेने पर तिलक मिटा देता है, जनेऊ तोड़ देता है। तुलसी का पौधा बढ़ने नहीं पाता वह खोदकर फेंक देता है। पोथी को फाड़कर फेंक देता है। घंटा और शंख फोड़ देता है। देव मूर्तियों का भंजन कर देता है। इस प्रकार रावण के बाल्य चरित्र के माध्यम से कवि ने भंजनशील एवं उद्दण्ड चरित्र का बीजारोपण किया है।

लालदास का रावण सिंहलद्वीप स्थित हिंडुगिरि (हिन्दगिर) में जन्मता है। सेरीराम में सिंहलद्वीप में रावण द्वारा तपस्या का उल्लेख प्राप्त होता है। अवध विलास का रावण 'पउम चरियम' के रावण से भिन्न है। पउम चरियम का रावण जिनम न्दिरों का जीर्णोद्धार करता है किन्तु अवध विलास के रावण के जन्म के समय देवल भहराने लगते हैं तथा देव विमान (मन्दिरों से उठने वाले विमान) गतिहीन होने लगते हैं।

रावण वैभवशाली, साम्राज्यवादी, अहम्-ग्रस्त चरित्र के रूप में विकसित किया गया है। वह राज्य विस्तार के लिए प्रयत्नशील है। रावण के चरित्र के माध्यम से तत्कालीन औरंगजेबकालीन परिस्थितियों को प्रतिध्वनित किया गया है।

'देस-देस महिं परी लराई, ठौर ठौर ऊठी अगिलाई।'

कवि का यह संकेत कि रावण के जन्मकाल के समय प्रान्तों-प्रान्तों में युद्ध छिड़ गये तथा स्थान-स्थान में महाप्रलय की ज्वालाएँ प्रज्ज्वलित हो उठीं। वस्तुत: औरंगजेब के काल में यही ताण्डवीय स्थिति थी। जिसको प्रकारान्तर से कवि ने रावण की समकालीन परिस्थितियों से व्यंजित किया है। इस प्रकार चरित्र निरूपण में लालदास की सांस्कृतिक चिन्ता भी मुखर उठी हुई है।

रामकथा के प्रख्यात चरित्रों के अतिरिक्त कवि ने रामेतर कथाओं के चरित्रों को भी चुना है। उन चरित्रों के पीछे कवि का दृष्टिकोण लोभ, छल, काम, मोह आदि की वृत्तियों को उद्घाटित करना प्रतीत होता है। रसात्मकता में जो प्रवृत्तियाँ बाधक होती हैं, उन प्रवृत्तियों के भेदों-प्रभेदों पर भी कवि ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है। उदाहरण के लिए काम एवं छल की वृत्ति को विश्लेषित करने के लिए 'वृंदा' के प्रसंग को लिया है।

वृन्दा के साथ विष्णु द्वारा किये गये छल में एक ऐसी मानसिकता है जिसमें प्रेम का पल्लवन किया गया है। जालंधर के द्वारा पार्वती के साथ किये गये छल में काम वृत्ति का विवेचन किया गया है। ठगनी के द्वारा शृंगी ऋषि को द्रवित कराने में ऋषि जीवन में काम के संचरण की प्रस्तावना है। इस प्रकार मनोविज्ञान की किसी प्रवृत्ति अथवा मनोविकार को लेकर उसके भीतर से निर्गत होने वाली मनोवृत्तियों का सूक्ष्म विश्लेषण कराने के लिए कवि ने विविध प्रसंगों का संयोजन किया है। इतना ही नहीं किसी प्रवृत्ति विशेष के भेदों-प्रभेदों पर भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया गया है। उदाहरण के लिए 'छल' की वृत्ति को विश्लेषित करने के लिए कवि ने 'वृन्दा' के प्रसंग को लिया है। शिव की पत्नी पार्वती को जालंधर छलना चाहता है, किन्तु पार्वती स्वतः संवेद्य छल की वृत्ति को पहचान

जाती हैं, दूसरी ओर जालंधर की पत्नी 'वृंदा' को विष्णु द्वारा छला जाता है। वह भी सती है किन्तु वह छल की वृत्ति को स्वतः नहीं पहचान पाती। योग के साथ सत्य (सतीत्व) चैतन्य रहता है। आसुरी वृत्तियों के साथ सत्य मूर्छित हो जाता है। वृंदा छली जाती है किन्तु पार्वती चैतन्य तथा शिवत्व से पूर्ण हैं, अतः छल से बच जाती हैं। चरित्र के माध्यम से साधना की विभिन्न स्थितियों को उजागर किया गया है।

दार्शनिक चिंतन—दार्शनिक सिद्धान्तों तथा मान्यताओं का विवेचन किसी कवि के दार्शनिक होने का सूचक नहीं है। लालदास ने जीवन और जगत के व्यापक सम्बन्धों को जिस दृष्टि से देखा है, उसकी क्षमता पर ही उनके दार्शनिक होने का गौरव निहित है। अधिकांश स्थलों में तो भारतीय दर्शनों के सिद्धान्तों का ही अनुगमन किया गया है। हिन्दी कवियों में तुलसी, सूर और चंद (चंददास=चंदवरदाई) का एक दर्शन है। लालदास का भी एक निजी दर्शन है। वह रामभक्ति को रसिक साधना से सम्बन्धित है, वैसे उनके दर्शन में विभिन्न दर्शनों का समन्वय भी प्राप्त होता है।

रसिक शब्द के सम्बन्ध में कविराज पं० गोपीनाथ महामहोपाध्याय का यह कथन मार्मिक है—

"भारतीय भक्ति साधना के अत्यन्त निगूढ़ प्रदेश में इस भागवती लीला का सन्धान मिलता है। जो भक्ति को केवल भावरूप से नहीं पहचानते हैं किन्तु रस रूप से उसका साक्षात्कार कर सकते हैं, भक्ति रस के आस्वादन के अधिकारी वे ही हैं। जिनके चित्त में इस प्रकार की योग्यता उत्पन्न होती है, वे ही रसिक भक्त हैं। अन्य भक्त, भक्ति सम्पन्न होते हुए भी रसिक पद वाच्य नहीं होते।"

लालदास रसिक साधना के क्षेत्र में लीला प्रवेश के अधिकारी हैं। वे जन्म की बधाई से लेकर लीला-विहार में सखी दास के रूप में सर्वत्र साथ रहते हैं। वे साकेत के कनक-भवन में राम-जन्म की बधाई के अवसर पर सीधे महल में प्रवेश कर जाते हैं। मिथिला की परिणय अमराइयों में, चित्रकूट की कामद प्रमोद बिहार की ललित लुनाई में सर्वत्र लीला में अन्तरंग सखी के रूप में वे रसिक लीलाओं का अवगाहन करते हैं। राम जन्म के अवसर पर वे बधाई के लिए पहुँचते हैं तथा अविचल भक्ति का वर प्राप्त करते हैं—

'लाल ता दिन राम जू की भक्ति अवचल पाइया'।[1] इतना ही नहीं उनके तन की ताप और मन की पीड़ा भी मिट जाती है—

गयो सीत के नीर ज्यों तन की मन की पीर।
कृपा दृष्टि कर लाल पर जब चितए रघुबीर।[1]

---

१. अवध विलास, पृ० २५६

राम के विवाह के अवसर पर भोजन के बीच लालदास हवा करने का काम करते हैं—

'जेंवत राम प्रसादहिं आसा । करत बतास लाल तहँ दासा ।'[1]

चित्रकूट में लालदास राम-सीता को गंगोदक पिलाने का काम करते हैं—

'जेंवहिं राम सिया रुचि मानी । प्यावैं लाल गंगोदक आनी' ।[2]

लालदास ने रसिक भक्ति को आदिभक्ति की संज्ञा प्रदान की है। आदि रस अथवा आदिभक्ति कहने का आशय यह है कि सृष्टि के आदि से प्रकृति पुरुष का चिरंतन प्रेम जीवात्मा और परमात्मा का शाश्वत प्रणय-विलास रहा है। प्रीति का मनोराग ही रसिक साधना का प्राण-बिन्दु है। इसी विशिष्ट राग (प्रेम) को रस साधना के रूप में रसिक भक्तों, कवियों एवं आचार्यों ने अपनी साधना का विषय बनाया। इसी रसाब्धि ने लालदास जैसे रसिक को भाव-मुग्ध करके रसिक साधना के गोप्य रस का अधिकारी बनाया। कवि की रसिक साधना का यह समुद्र ही अवध-विलास के रूप में प्रवहमान हो उठा।

कवि ने नवधा भक्ति के साथ दशधा प्रेमाभक्ति को भी स्वीकार किया है तथा दशधा को आचार्य वल्लभ द्वारा प्रतिपादित न मानकर 'शुक' द्वारा स्थापित बताया है—

'ए नव भक्ति नेम महिं राषा। दशईं प्रेम भक्ति शुक भाषा'

लालदास की भक्ति में अनन्यता, रसिकता, कैंकर्य, सखी भावना का अत्यन्त ललित रूप चित्रित हुआ है।

रसिक साधक लालदास अवध में बसकर सरयू तट पर गंगोदक का पान करते हैं तथा रसिक साधना की लीलाओं में प्रविष्टि पाने के अधिकारी बन जाते हैं। वे दिव्य दम्पति की सेवा तथा युगलछवि माधुरी का रसास्वादन करते हैं। सांसारिक विषयभोगों से विरत होकर वे सच्चे अर्थों में 'दास' हो जाते हैं।

लालदास की वृत्तियों का दार्शनिक आधार रसिक साधना है उन्हें राम सीता की युगल झाँकी ही अभीष्ट है। ज्ञान, भक्ति और योग की साधनाओं को रसिक साधना से सम्बन्धित किया गया है। विभिन्न रुचियों के अनुकूल विभिन्न दर्शन प्रणालियों का विनियोग भी कवि ने किया है। ब्रह्म, पुनर्जन्म, जगत, साधना,

---

१. अवध विलास पृ० ३६५।

२. तदुपरि पृ० ३९२।

मुक्ति आदि विषयों की ओर संकेत करके रसिक साधना के मार्ग को अपनाने को कहा है।

लालदास एक ओर बौद्ध दर्शन के अनुसार सभी वस्तुओं को क्षणिक मानते हैं दूसरी ओर शैव दर्शन के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार सृष्टि के पुरुष और स्त्रियों को शिव और पार्वती का तद्रूप मानते हैं। इस प्रकार दार्शनिक विभिन्नताओं को एक विचित्र समीकरण में आबद्ध किया है।

'रूप अनित यौवन अनित, लाल अनित धनधाम' कह कर लालदास ने **बौद्ध** दर्शन के अनुसार पदार्थ के अनित्य रूप को स्वीकृति दी है। वहीं सम्पूर्ण जगत को शिव और शक्ति से अभेद प्रदान किया है। शिव को आत्मरूप तथा पार्वती को—नारी रूप स्वीकार किया गया है। शिव दृष्टि में—

'आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्निर्वृत्त चिद्विभुः।
अनिरुद्धेच्छा प्रसरः प्रसरद्दक्क्रियः शिवः।। इति

प्रत्यभिज्ञा हृदय के अनुसार शक्ति का स्पन्दन ही जगत है—'पराशक्ति रूपा चितिरेव भगवती शक्तिः शिव भट्टारकाः भिन्न तदनन्त जगतात्मना स्फुरन्ति।'

लालदास बौद्ध दर्शन से भी प्रभावित हैं। शोक के प्रसंगों को छोड़ने के पीछे बौद्ध प्रभाव परिलक्षित होता है। अवतारों की वन्दना क्रम में कवि ने बुद्ध को भी अवतार के रूप में स्वीकृति प्रदान की है—

'बौद्ध रूप प्रभु जज्ञ छिड़ाये'

इतना ही नहीं लालदास के राम वैराग्य लेना चाहते हैं इस प्रसंग में भी बौद्धप्रभाव है। युद्ध और हिंसा के चित्रों से विरति के पीछे बौद्ध चेतना ही परिलक्षित होती है। लालदास ने जीवों के वध न करने तथा प्राणिमात्र के प्रति दया का भी संकेत किया है—

(अ) **हिंसा** जीव जानि नहिं करहीं। **दया धर्म** दिन-दिन मन धरहीं।

(ब) धन्य देश **जहँ दया बखाना**।

बौद्ध गाथाओं का प्रभाव भी अवध-विलास पर परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए—दहरा च हि वृद्धा च ये बाला ये च पण्डिता।
अड्ढा चेव दलिद्दा च सब्बे मच्चुपरायणा।

—प्राकृत गाथा/४

(बालक और वृद्ध, मूर्ख और पंडित, धनी और दरिद्र सबों का मरण निश्चित है।)

प्राकृत गाथा के इस भाव को लालदास ने यथावत ग्रहण किया है—

'बालक वृद्ध युवा नहिं छाजै, सब पर काल दण्ड लै गाजै ।।'

इसी प्रकार एक दूसरा प्रभावचित्र भी द्रष्टव्य है—

'यथा सरणमादित्तं वारिना परिनिष्ठये'

—दशरथ जातक/६

लालदास ने दशरथ जातक के अनुसार निम्न नीति कथन किया है—

'जो पै पानी तात है तऊ बुझावत आग'

सांख्य और वेदान्त दोनों को लेकर कवि चलता है। पुरुष और प्रकृति के संयोग से सृष्टि का उद्भव बताया गया है। यह सिद्धान्त सांख्य के निकट है। दूसरी ओर पंचीकृत, अपंचीकृत विवेचन के कारण वे वेदान्तवादी प्रतीत होते हैं।

शैव दर्शन में सृष्टि को ईश्वर की इच्छा का परिणाम कहा गया है।[१] लालदास ने सृष्टि की सर्जना अनायास, बिना ईश्वर की इच्छा के ही बताई है—

"पुरुष प्रकृति ते जग भयो बिन इच्छा अनयास
दूरहिं ते रवि फटिक जिमि पावक लाल प्रकास।"

सांख्य दर्शन भी प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि को स्वीकार करता है।[२] देह की रचना में कवि ने पंचतत्ववादी (पंचीकरण) सिद्धान्त को स्वीकार किया है—

अमिले तत्व अपंचकृत मिले पंचकृत होत।
सूक्ष्म स्थूल द्वै देह है प्रकृत पचीस सब होत।।

—अ० वि० १६३।

पंचतत्वों तथा प्रत्येक की पंच विकृतियों अथवा लिप्साओं से शरीर के समूह की रचना हुई है। पंचीकृत विश्लेषण इस प्रकार है—

(१) पृथ्वी—अस्थि, मांस, नस, त्वचा, केश
(२) नीर—रेत, रक्त, पित्त, लार, स्वेद
(३) पावक—आलस, कान्ति, क्षुधा, तृष्णा, निद्रा
(४) वायु—धावन, चलन, संकोच, प्रसारण उत्तम
(५) आकाश—कंठ, उदर, कटि, हृदय, शीश

इन्द्रियों को विषयभोग का साधन तथा देह को भोग का स्थान बताया गया है। मन और बुद्धि दोनों भोक्ता तथा कर्म को कारण बताया गया है।

लालदास आत्मा को चेतन और नित्य मानते हैं। जड़ और अनित्य को अनात्मा कहते हैं।

---

१. सर्ग इच्छा का है परिणाम – कामायनी

२. पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य
षङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृत सर्गः।

—सांख्य कारिका, ईश्वरकृष, कारिका, २१।

जड़ अनित्य अन आत्मा ताहि आत्मा मान।
गौर श्याम स्थूल कृश इहइ लाल अज्ञान। —अ० वि० १६४

शंकराचार्य के प्रसिद्ध दार्शनिक सूत्र "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" की भाँति लालदास भी "साँचा ब्रह्म झूठ है मात्रा" (अ० वि० १६५) के सिद्धांत का अनुगमन करते हैं। कवि के अनुसार अज्ञान ही सत्य हो ढक देता है, जैसे बादल सूर्य को—

"जल सिवार सूरज घन छाए, तैसेइ ज्ञान अज्ञान छिपाए। —अ०वि० १६५

कर्मों का परिशोधन ही निष्काम कर्म की आधारशिला है। निष्काम कर्म के लिये कर्मों से मुक्ति को कवि ने नहीं स्वीकार किया। अहम् से रहित बुद्धि को कर्म का स्पर्श नहीं लगता। अतः अहंकार शून्य व्यक्ति के लिए पाप का विधान नहीं हैं। कोई कार्य अथवा घटना पाप और पुण्य का कारण नहीं है। केवल मनोवेगों से संयुक्त दृष्टि भेद के कारण ही भिन्न भावों की अनुभूति होती है। उदाहरण के लिए पुरुष जिस अंग से प्रिया का आलिंगन करता है, उसी अंग से दुहिता को भेंटता है। आलिंगन और मिलन पाप-पुण्य का कारण नहीं बनता। भाव की भिन्नता के कारण ही एक में प्रणय और दूसरे में वात्सल्य की अनुभूति होती है—

जाही अंग त्रिया संग लेटा, ताहि अङ्ग सुता कहँ भेंटा।
तौ कहु पाप लग्यौ नहीं जाना, उह कन्या, उह त्रिय करि माना।—अ० वि० १६६

पुरुष और नारी की रचना के सम्बन्ध में कवि का दार्शनिक चिन्तन महत्व का है। स्त्री-पुरुष को एक ही आत्मा के दो रूप स्वीकार करते हैं तथा संसार के प्रत्येक स्त्री और पुरुष को शिव और शक्ति का रूप बताते हैं। उनका दर्शन अर्ध-नारीश्वर को स्वीकार करता है। इस दर्शन के अनुसार पुरुष और स्त्री दो पृथक जैविकी रचना न होकर एक ही रचना के दो परिदृश्य हैं। एक ही प्राण दो शरीर में इस प्रकार व्याप्त हो गया है, जैसे उपवन में फूल और वायु में गंध।[1] मुक्ति के सम्बन्ध में कवि की धारणा नितान्त मनोवैज्ञानिक है। कवि के अनुसार आशा और भय के विनष्ट होने पर भक्ति की अनुभूति की जा सकती है। मुक्ति का सम्बन्ध आकाश और पाताल से नहीं है—

नहीं मुक्ति पाताल में, नहीं मुक्ति आकाश।
लाल मुक्ति जल - थल नहीं, मुक्ति आस भय नाश।

कवि के अनुसार रूप, यौवन, धन, सम्पत्ति, देह, सुख, दुख सभी अनित्य हैं। नित्य और शाश्वत तो एकमात्र राम हैं, जो सत्य से अभिन्न है—

---

१. एक प्राण ही व्याप्त हुआ है दो शरीर में,
उपवन में ज्यों पुष्प गंध बहता समीर में,
—अभिशप्त शिला, चर्या सर्ग,—डा० 'ललित' दीक्षित

रूप अनित, जौवन अनित, लाल अनित धन धाम ।
देह अनित, सुख दुख अनित, नित्य एक सत राम ।

सुख और दुःख की एक सीमा है । पाप और पुण्य की एक रेखा है, किन्तु एक ऐसी परिधि है जिसके पार यह सब मिथ्या प्रतीत होते हैं । सत्य, चैतन्य, आनन्द ही जीवन के उत्कर्ष हैं ।

मूल्यांकन

पूर्ववर्ती रामकाव्य परम्परा से भिन्न भावभूमि एवं कलात्मकता के लिए लालदास सर्वथा मौलिक कवि हैं । रसिक साधना पद्धति को आधार बनाकर राम-काव्य के क्षेत्र में प्रबन्ध रचना के लिए लालदास समूची राम काव्य परम्परा में विलक्षण हैं । अवध-विलास में पद्मावत और रामचन्द्रिका जैसा वस्तु वैविध्य है । दरबारी संस्कृति से भिन्न लोकाभिमुख संस्कृति को कवि ने आधार बनाया है । मुस्लिम सभ्यता और शासन के युग में अवध-विलास की रचना का एक ऐतिहासिक महत्व यह है कि वह मुगल दरबार के विलास की वस्तु नहीं है ।

रसिकों के रंजन के साथ इस काव्य की सीमा रुचि वैभिन्य को लेकर लिखे जाने के कारण विविध संस्कृतियों के अनुशीलन में सहायक सिद्ध होती है । महाकाव्य की परिधि को विषय-विस्तार प्रदान करने की दृष्टि से इस काव्य का विशेष महत्व है । काव्यशास्त्र, आयुर्वेद, संगीत, ज्योतिष, पिंगल आदि की महत्वपूर्ण सामग्री से संयुक्त होने के कारण इस ग्रन्थ को व्यापक महत्ता प्रदान की जा सकती है ।

रामकथा के प्रति लालदास का एक विशिष्ट चिन्तन है जो अन्य रामकथा के कवियों से भिन्न है तथा रसिक साधना के अनुकूल है । कवि के शब्दों में—

'मो मत राम गये नहिं कतहूँ और कबिन की कही कहत हूँ'

कवि का रामकथा के क्षेत्र में निजी मत बहुत महत्व का है तथा पूर्ववर्ती परम्परा से स्वतन्त्र दृष्टिकोण लेकर चलने वाला है । लालदास रामकथा के क्षेत्र में तुलसी और केशव के प्रतिद्वन्दी नहीं हैं । वे वाल्मीकि के प्रति अपरिमित आदर व्यक्त करते हैं, तुलसी के प्रति सम्मान, किन्तु रसिक साधना की दार्शनिक भिन्नता के कारण वे पूर्ववर्ती कवियों से सर्वथा भिन्न मार्ग का चयन करते हैं ।

लालदास के अवध-विलास की सार्थकता न तो परम्परा के अनुधावन में है और न ही तुलसी द्वारा चुनी गयी कथा के अनुसरण में है, उसका उत्कर्ष राम के चरित में रसत्व की सम्भावनाओं की सौकुमार्य पूर्ण कल्पनाओं तथा उक्ति विशेष के द्वारा जनजीवन की संप्रेषणीयता के आलोक में है । लालदास के धर्म भजन में राष्ट्र की मुक्ति का स्वप्न भी है । वे मध्ययुग की रसिक भक्ति धारा के सच्चे सैनिक संत हैं—

जब लगि छाप दाग नहिं साँचा । तब लगि भक्त सिपाही काँचा ।

लालदास में व्यञ्जना-व्यापार की विधाएँ भी कम नहीं हैं । कभी जड़ वस्तुओं में चैतन्य का आरोप किया गया है कभी पशु-जगत में मानव-व्यवहार का आरोपण किया गया है । लालदास ने कहीं-कहीं पुराने शिल्पियों द्वारा प्रयुक्त रंगों का भी प्रयोग किया है, किन्तु उनके चित्र नवीन हैं । पुराना सोना है किन्तु अलंकरण में नवोन्मेष है । प्राचीन दर्शन कवि प्रतिभा के योग से नवोन्मेष पा जाता है ।

प्रबन्ध की मानसिक योजना के पीछे अवध-विलास के शिल्प को संस्कार प्रदान करने का कार्य भी कवि द्वारा किया गया है । टिलयार्ड के अनुसार—

'महाकाव्यकार को बहुसंख्यक जनसमूह की तरफ से बोलने वाला तथा दावा करने वाला होना चाहिए ।' लालदास ने भी बहुमत का संकेत करते हुए अवध-विलास को बहुसंख्यक जनजीवन का प्रतिनिधि महाकाव्य बनाने का दावा किया है—ताते मैं बहुमत रचे अवध-विलास बनाय ।[२]

खेतों खलिहानों में काम करने वाले मजदूरों और खेतिहर किसानों के बीच यह ग्रन्थ राम नाम की भाँति प्रचलित हो सके, 'राम नाम ज्यों जगत में ग्रन्थ चलै सब ठौर' कवि की यह चिन्ता नितान्त मौलिक तथा मानवीय है । इसके लिये कवि ने लोक संस्कृति को गहरी संवेदना के साथ चित्रित किया है ।

लालदास की कविता की जड़ें लोक जीवन और ग्राम्य संस्कृति की संवेदनशील परम्पराओं से गहराई के साथ सम्पृक्त होने के कारण बहुत ही मजबूत है । नारी-जाति के प्रति कवि की संवेदनशीलता ऊँचे दर्जे की है—

और सृष्टि अपने बस कीनी । बनिता विधि परवस कर दीनी ।

सामान्य एवं निर्धन आस्थावान भक्तों के प्रति कवि का हृदय कारुणिक चीत्कार कर उठता है—

"लरिका भूख मरत घर माँही । मूठी भरे चवैना नाहीं ।
बैठी त्रिया रहति मन मारे । फाटे चीर शरीर उघारे ।
घर महिं मृत कपास न वासन । गिरे परे घर रहत उपासन ।"

ग्राम्य संवेदना के इन करुण चित्रों में भारतीय संस्कृति की आत्मा प्रतिमूर्त हो उठी है । कला और कविता की सर्वोच्च सार्थकता लेकर लालदास की कविता गाँवों की चौपालों तक अपनी आंचलिकता की थापें देती रहेगी । काल की सीमाएँ 'अवध-विलास' के इस समुद्र को जन-जीवन तक फैलने से रोकने में असमर्थ होगा । तुलसी की चौपाइयों की भाँति लालदास की चौपाइयाँ भी कालान्तर में अपनी अनुगूँज से लोक संवेदना को संवेदित करती हुई विराट मानवता को आन्दोलित करती रहेंगी ।

———

लालदास कृत 'अवध विलास' की हस्तलिखित पाण्डुलिपि
सं० १७३२ का एक पृष्ठ ।

लालदास कृत 'अवधविलास' की पाण्डुलिपि सं० १७३२ का एक पृष्ठ ।
टिकार (हरदोई) से प्राप्त यह प्रति सम्प्रति चंददास साहित्य शोध
संस्थान, बाँदा के हस्तलिखित संग्रहालय में उपलब्ध है ।

अवधविलास

:–: प्रथम विश्राम :–:

सो०— बन्दौ हरि अवतार भक्त काज जे बपु धरे ।
दूरि कियो भू भार असुर मार सुर सुष दये ।। १ ।।

दोहा— पंगु चरन गूँगे बचन नैन अंध लहै लाल ।
बंध्या सुत बधिरे श्रवन जो हरि होंहि दयाल ।। २ ।।

श्वेतबसनधर चन्द्र सम बदन प्रसन भुज चारि ।
विघन हरन मंगल करन लाल विष्णु उर धारि ।। ३ ।।

लाल भक्त भगवन्त की कृपा कछू जो होइ ।
सज्जन मनरंजन कथा कहौं सुनै सब कोइ ।। ४ ।।

कृष्न जथा बृज महिं सदा करत बिहार प्रकास ।
तैसें सीताराम को नित ही अवधबिलास ।। ५ ।।

अद्भुत अवधबिलास इह कहत जथा मति लाल ।
जा महिं सीताराम की सुन्दर कथा रसाल ।। ६ ।।

पाद टिप्पणियाँ :—

१. ग्रन्थारम्भ में हरि अवतार की वन्दना लालदास की विष्णु भक्ति की मांगलिक प्रस्तावना के रूप में इष्ट का स्तवन करती है । ग्रन्थारम्भ में अनुबन्धचतुष्टय—विषय, प्रयोजन, अधिकारी तथा सम्बन्ध—का निरूपण किया गया है ।

४. सज्जन मनरंजन कथा=साधुजनों के रंजन की कथा ।

६. कथा रसाल=रसवंती कथा । रूप गोस्वामी के अनुसार 'रसाल' नामक आस्वाद्य रस भक्तों के अंतःकरण में अपूर्व चमत्कार की उत्पत्ति करता है । महाकवि चंददास ने भी कथा के साथ रसाल विशेषण का प्रयोग किया है—

"लीला ललित रसाल कथा बरनौ रघुनायक"

चंददास कृत रामविनोद, सं० डा० चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित, पृ० २

कवि पंडित गायन जती भक्त रसिक नृप दास ।
बीर बैद्य जोतिषि बिरहि तहँ पढ़ि अवधबिलास ।।७।।
कहत सुनत सब कहँ सुखद है नवरस को कंद ।
लाल अवध लीला रची ललित मनोहर छद ।।८।।
करुणा हास शृंगार भय अद्भुत बीर सकाम ।
रुद्र विभत्स औ शांति हैं ए नव रस के नाम ।।९।।
वेद उक्त अनुभव जुगत ज्ञान रतन की षानि ।
लाल गुप्त इह प्रगट किय अवधबिलास बषानि ।।१०।।
अवधबिलास समुद्र है साधु साहु तट जाहि ।
रतन कथा रघुबीर की लाल बहुत ता माँहि ।।११।।
लाल स्वच्छ त्रैलोकि को दर्पन अवधबिलास ।
जो जैसो होइ देखिहैं ता कहँ तैसो भास ।।१२।।

---

७. प्रस्तुत दोहे में ग्रन्थ के पाठाधिकारी के व्याज से वर्ण्य-विषयों की ओर संकेत किया गया है ।

पाठान्तर : गाइन (छ० प्रति) । गायन (गै+ल्युट्) गवैया (गायक), संस्कृत-हिन्दी कोश, वा० रा० आप्टे, पृ० ३४३ ।

८. ललित=कवि के हृदय में उद्वेलित होने वाले भावों को शब्दों के द्वारा प्रकट करने वाली ललित वस्तु का ही नाम कविता है । (भारतीय साहित्यशास्त्र, पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० २०)

नवरस को कंद=नवरसों का मूल । 'कंद' शब्द श्लेषार्थी है । यह मूल, बादल तथा 'तुल्यदेहितुल्य' के अवान्तर 'कंद' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । राजशेखर ने 'कन्द' को कन्दल रूपों में परिवर्तन अर्थात् समष्टि रूप से निर्दिष्ट अर्थ का व्यष्टि रूप से वर्णन करना कहा है, (भारतीय साहित्यशास्त्र, पं० बलदेव उपाध्याय पृ० ३८२) । आचार्य गोविन्दप्रसाद सांवल के अनुसार लालदास ने नवरसों का निरूपण 'कंद' रूप में किया है अर्थात् विभिन्न अर्थों में संगुफित पदों को सरल करके उन्हें एक अर्थ से सरलता प्रदान किया है ।

१०. गुप्त=साकेत धाम की नित्य लीला को अत्यन्त गोपनीय कहा गया है—
'गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं च सर्वदा ।—हनुमत्संहिता—७ ।१५।

१२. दर्पण की स्वच्छता पर प्रतिबिंबन की स्पष्टता निर्भर करती है । त्रैलोक्य का सत्य अवधविलास के दर्पण में प्रतिभासित होता है । प्रस्तुत दोहे में 'दर्पन' और 'भास' दोनों दार्शनिक अर्थ बोध के साथ काव्यशास्त्रीय संकेत से भी युक्त हैं । जगत ब्रह्म का भास हैं; इसके अतिरिक्त—दर्पन से साहित्यदर्पण और भास से भाष्य की ध्वनि भी कवि के अभिप्रेत में, अभिव्यक्ति चारुता में अभिवृद्धि करती है ।

सब के रुचि नहिं एक है काहू कछू सुहाय।
तातैं मैं बहुमत रचे अवधबिलास बनाय ॥१३॥
प्रगटेउ अवधबिलास धन विद्या ज्ञान अपार।
खुले खजाने राम के लाल हृदय भंडार ॥१४॥
राग रंग रति राम सों नव रस ज्ञान प्रकास।
जस प्रभुता जग महिं चहै तौ पढ़ु अवधबिलास ॥१५॥
कोउ काहू की बात सुनि लगै सराहन ताहि।
अवधबिलास है इन्ह पढ़ेउ तौ का अचरज आहि ॥१६॥
भक्तह्नु कहँ है भक्ति इह रसिकह्नु को रस रूप।
ज्ञानी को है ज्ञानमय अवधबिलास अनूप ॥१७॥
बहुत कथा बहु ग्रन्थ की उक्ति अनूठ अनंत।
पढ़िहै जो सो होइहैं कहत लाल गुणवंत ॥१८॥

---

१३. प्रस्तुत दोहा छ० प्रति में अनुपलब्ध है। 'सबकी रुचि ०० बनाय' में रुचि वैचित्र्य के समवाय का संकेत है। रुचि भेद के कारण वेदत्रयी, साङ्ख्य, योग, पाशुपत, वैष्णव इत्यादि अनेक मार्ग हैं। कवि ने ज्ञान, भक्ति, रसिक साधना पद्धतियों की समायोजना की है। पुष्पदंत विरचित 'शिवमहिम्न स्तोत्र' में रुचि वैचित्र्य के समन्वय का संकेत किया गया है—

"त्रयी साङ्ख्यं योग : पशुपति मतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नानापथ जुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥"

१५. राग रंग रति राम सो=लालदास ने राग रंग रति से रागात्मिका भक्ति की ओर संकेत किया है। रागमयी भक्ति का विवेचन रूपगोस्वामी ने निम्न प्रकार किया है—"इष्टे स्वारसिको रागः परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः सा ऽत्र रागात्मिकोदिता।
विराजन्तीमभिव्यक्तिं व्रजवासीजनादिषु
रागात्मिका मनुसृता या सा रागानुगोच्यते।"

• हरिभक्तिरसामृत सिन्धु, पूर्व० द्वि० लहरी ६०, ६२

१८. प्रस्तुत दोहे में 'उक्ति अनूठ' और 'गुणवन्त' दोनों शब्द काव्यशास्त्रीय महत्व के हैं। कवि ने इन पदों से वक्रोक्ति मार्ग का संकेत किया है। 'बहुत कथा बहुग्रन्थ की' पंक्ति पढ़ते ही तुलसी की 'नानापुराण निगमागम' का स्मरण सहज ही हो उठता है।

काहे को बहुतै बहै पोथी भार अनेक ।
सब गुनमय किन राखिए अवधबिलासहि एक ॥१९॥

रबिबंशी रघुबंश जे लवकुश बंश प्रकास ।
तिन्ह कहँ लाल बिशेष तैं पढ़िबे अवधबिलास ॥२०॥

पोथी अवधबिलास की पढ़तहिं सुनत सुहात ।
आइ मिलत हैं बहुत जहँ लाल बात पर बात ॥२१॥

कमलन्ह ज्यों रुचिमानि अलितजि तजिआन निवास ।
लाल रसिक जे होंहिगे पढ़िहैं अवधबिलास ॥२२॥

---

१९. सबगुनमय—सर्वगुणोपेत । गुन (गुण) श्लेषार्थ से वक्रत्व का संकेत है । 'गुण' ही वक्रत्व का आधार होता है । वक्रोक्तिधर्मी होने के कारण कवि ने इसे 'गुनमय' कहा है । 'गुन' श्लेष के माध्यम से रज्जु अर्थ में व्यंग्य है । भक्तिमार्ग में भक्तों का अभीष्ट ईश्वर विषयक रति है, न कि मोक्ष ।

२०. 'रविवंशी रघुबंश लवकुश बंश' से रवि (सूर्य), रघु (महाराज रघु) लवकुश वंश के क्रमिक वंशानुक्रम का संकेत है । 'रविवंशी' सूर्यवंशी कुल का ही संकेतक न होकर रसिक सम्प्रदाय के रविवंशी साधकों के लिए प्रयुक्त हुआ है । सखी-भावावेशी रसिक-साधक सीता की अंशभूता और अंगभूता बालसखी, निमिवंश कुमारियों से अभिन्न मानते हैं और सखा भावावेशी रसिक साधक अपने को रघुवंशी कुमारों का प्रतिरूप मानते हैं ।

२१. बात पर बात—प्रसंग पर प्रसंग । प्रबन्ध में कवि ने शब्द का मूल आश्रय लेकर प्रसंग परिवर्तन तथा विभिन्न प्रसंगों में ज्ञान, नीति, जीवनदर्शन को अनुबंधित करने की ओर संकेत किया है ।

२२. श्री गोविन्दभाष्य में श्री बलदेव विद्याभूषण ने रागानुगा भक्ति को 'रुचि भक्ति' कहा है—

'रुचि भक्तिर्माधुर्यज्ञान प्रवृत्ता, विधिभक्तिरैश्वर्य ज्ञान प्रवृत्ता । रुचिरत्र रागः । तदनुगता भक्तिः रुचि भक्तिः । अथवा रुचिपूर्णाभक्तिः रुचिभक्तिः इयमेव 'रागानुगा ।' इति गदिता ।

'रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना,' भुवनेश्वरनाथ मिश्र प्रभात, पृ० ८.

जो या अवधबिलास को गावैं करि बिश्राम ।
ताके हिय महँ होइकै सुनत हैं सीताराम ।।२३।।

बचन रचन सुक ता रतन कुन्दन कल इतिहास ।
लाल हेम कूटक रचेउ भूषण अवधबिलास ।।२४।।

आभूषण है भक्त को राम दाम गुन हीर ।
लाल अलंकृत देषि कै रीझत हैं रघुबीर ।।२५।।

ग्रन्थ ग्रन्थ परसत करत लेत ग्रन्थ की छांह ।
लाल कोइक अनुभव कहत राम कृपा की बाँह ।।२६।।

---

२३. गावै=गायन । चरित (लीला) परक काव्यों के लिए गायन ही अभीष्ट एवं निर्दिष्ट है । तुलसी ने भी 'गावहिं जे यहि चरित संभारे' से चरित के गायन का स्पष्ट निर्देश किया है । विश्राम= विश्रम का अपभ्रंश=विगत श्रम । श्लेषार्थ, सर्ग । कवि ने सर्ग (कांड) के स्थान पर 'विश्राम' का प्रयोग किया है । लीला के सूत्रधार के रूप में लीलानायक राम और सीता का चरितगायक के अन्तः में अधिष्ठित होकर अपनी लीला का श्रवण रसिक साधना की अद्वैत उपलब्धि है ।

२४. हेम कूटक – 'हेमकूट' पर्वत हिमवान, हिमालय तथा भारत के उत्तर की ओर स्थित माना गया है । कतिपय विद्वानों ने इसे नेपाल तथा तिब्बत का पर्वत बताया है । (काव्यमीमांसा) केदारनाथ शर्मा सारस्वत, पृ० ३१९ । हेमकूट पर्वत अद्भुत व्यापारों एवं विलक्षण दृश्यों का पर्वत है । महाकवि कालिदास ने (शाकुन्तल, अंक ७/१२ में) हेमकूट पर्वत पर होने वाले अद्भुत व्यापारों का चित्रण किया है । लालदास ने अवधविलास को अद्भुत व्यापारों वाला हेमकूटक कहा है ।
पाठान्तरः वचन रचन मुक्ता रतन (छ० प्रति) । बचन रचन सुक ता रतन— सुकता से कवि ने शुकदेव एवं इतिहास से श्रीमद्भागवत की कथा की ओर संकेत किया है । 'सुकता' से सूक्तियों के अर्थ की व्यंजना भी ध्वनित होती है ।

२६. ग्रन्थ ग्रन्थ परसत=विभिन्न ग्रन्थों का स्पर्श । तुलसी ने भी 'नानापुराण निगमागम सम्मतं' कहकर विभिन्न ग्रन्थों के स्पर्श का संकेत किया है । काव्य रचना में वस्तु-संस्पर्श का उल्लेख आचार्य आनन्दवर्धन ने भी किया है ।
ग्रन्थ की छाँह=ग्रन्थों की छाया । कवि ने अवधविलास ग्रन्थ के प्रणयन में विभिन्न ग्रन्थों की छाया को स्वीकार किया है । छाया से कवि का आशय अर्थ क्रान्ति से है । आनन्दवर्धन ने पूर्व छाया ग्रहण करने वाले कवियों को निन्दनीय नहीं माना—

> "यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किंचित्
> स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते
> अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्
> सुकविरुपनिबध्नन्निन्द्यतां नोपयाति ।"

ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत,—टी० आचार्य विश्वेश्वर, पृ० ३६२
कोइक अनुभव=कुछ एक अनुभव । तुलसी ने भी 'क्वचिदन्यतोपि' से कुछ अन्य का संकेत किया है । 'क्वचिदन्यतोपि' से महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने प्राकृत कवि स्वायंभू की ओर तथा आचार्य गोविंदप्रसाद सांवल ने कवि—पत्नी 'रत्ना' की ओर संकेत किया है ।

रामायण शत कोटि हैं रामहि जानत ताहि ।
कै कोउ जानै संत जन राम जनावैं जाहि ।।२७।।

स्वारथ परमारथ सवै बानी लाल प्रकास ।
सो वे बातैं कौन हैं जो नहिं अवधबिलास ।।२८।।

बशीकरन मोहन क्रषन शत्रु दवन गुण एक ।
सद्य मन्त्र संसार महिं अवधबिलास है एक ।।२९।।

परा नाभि पश्यमा हृदय मधिमा कंठहिं माँहिं ।
बाहर प्रगट सु बैषरी बानी चारि कहाँहिं ।।३०।।

एक आरषी मानुषी वैषरि दोइ प्रमान ।
आरष कहिए संस्कृत भाषा मानुषि जानि ।।३१।।

सुद्ध प्रगट लौकिक बचन सुनि समुझै सब कोइ ।
कठिन काव्य चहि संस्कृत भाषा कहिए सोइ ।।३२।।

---

२७. रामकथा की अपरिमितता का संकेत है । तुलसी ने 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' कहकर रामकथा की अनंतता को स्वीकार किया है ।

२८. महाभारत के 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्' की भाँति लालदास भी अवध विलास को सार्वकालिक एवं सर्वात्मभुक्तिपरक ग्रन्थ मानते हैं ।

३०. वाणी के चार भेद हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी । वाक्तत्ववेत्ताओं के अनुसार वाणी की 'परावस्था' तुरीयावस्था है । उस अवस्था में द्वैत बुद्धि का सर्वथा अभाव हो जाता है । भर्तृहरि ने वाक्यपदीय (१/११४) में परा वाणी को अविवेच्य माना है । हेलाराज ने वाक्यपदीय (१/१४४) में परा वाणी को सामान्य व्यवहार से परे माना है । 'पश्यन्ती' स्वप्रकाशरूप एवं लोक-व्यवहारातीत कही गई है । उसमें भेद और क्रम नहीं होता तथा वह अन्तःस्थल में विद्यमान रहने के कारण निराकार किन्तु असंख्य प्रकार की मानी गई है । मध्यमा वाणी अन्तः संकल्प रूप है जिसका उपादान कारण 'बुद्धि' है । 'वैखरी' कण्ठ और तालु आदि स्थानों में वायु के विकृत होने से वर्णों का रूप धारण करती है । वैखरी श्रवण का विषय है—

वैखरी वाक्प्रयोक्तृणां प्राणवृत्ति निबंधिनी । (भर्तृहरि, वाक्यपदीय १/१४४)
विखर इति देहेऽन्द्रिय संघात उच्यते, तत्र भवा वैखरी ।।

(जयन्त, न्यायमंजरी, आ० ६, पृष्ठ ३४३)

३२. **पाठान्तर :** कठिन सबद नहि संस्कृत (छ० प्रति)
कठिन काव्य जो संस्कृत (स० प्रति)

देसी प्राकृत संस्कृत पारसि आरबि आन ।
जहँ जहँ जाको लाल कहि भाषा सब ही जान ॥३३॥
इहै जानि वाणी बिमल कहत लाल सुध बुद्ध ।
कठिन काव्य चहि संस्कृत भाषा चहिए शुद्ध ॥३४॥
गूढ़हि भली न प्रकासही बानी लाल बिचारि ।
जिमि कुच प्रगट न गुप्त ही राखति नागरि नारि ॥३५॥
जानि बूझि नाहिन धरत कठिन अर्थ के झौर ।
राम नाम ज्यों जगत महिं ग्रन्थ चलै सब ठौर ॥३६॥
गूढ़ काव्य जयदेव कवि तुलसी सूर बषान ।
केशव विद्यापति बिकट लाल सरल मन मान ॥३७॥

---

३३. लालदास ने अवधविलास में देशी, प्राकृत, संस्कृत, फारसी, अरबी एवं अन्य भाषाओं के प्रयोग का उल्लेख किया है ।

३५. गूढ़हि भली ······ नागरि नारि=नागरि नारि के अर्धमुकुलित उरोजों के सौन्दर्य से वाणी के कलात्मक अभिव्यंजन का संकेत । भाव साम्य के लिये द्रष्टव्य है—'अध उघरे सोहत बहुत कुच कच कवि के बैन ।'

३६. जानिबूझि······सब ठौर=जान बूझकर कठिन अर्थ के झुण्ड को काव्य में धारण नहीं किया गया । लालदास को विश्वास है कि उनकी लेखन शैली कठिन न होने के कारण राम नाम की भाँति सर्वत्र लोकप्रिय होगी । अर्थ के झौंर=अर्थ के झुण्ड । आचार्य गोविन्द प्रसाद साँवल के अनुसार लालदास ने 'अर्थ के झौर' से काव्यशास्त्रीय 'माणिक्य पुञ्ज' के परित्याग का संकेत किया है । राजशेखर के अनुसार 'तुल्यदेहितुल्य' के आठ अवान्तर भेदों में 'माणिक्य पुञ्ज' भी एक है । 'माणिक्य पुञ्ज' में बहुत अर्थों का एकत्र उपसंहार होता है । कवि लालदास ने अपने काव्य को अर्थ के झौर ('माणिक्य पुञ्ज') से बचाने का संकेत किया है ।

३७. गूढ़ काव्य जयदेव कवि=लालदास ने कोमलकांत पदावली के कवि जयदेव के काव्य को गूढ़ काव्य (गुह्य=रहस्यात्मक) की संज्ञा दी है । जयदेव के गीत-गोविन्द की महामहोपाध्याय शंकर मिश्र विरचित टीका, हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज करते समय चित्रकूट से संस्कृत के विद्वान पं० रामावतार पयासी जी के द्वारा मुझे प्राप्त हुयी । इस प्रति के टीकाकार ने भी जयदेव को पांडित्यपूर्ण कवि कहा है । गीत गोविन्द की रस मन्जरी टीका, हस्त० चंददास शोध संस्थान प्रति । तुलसी सूर बषान=लाल दास ने तुलसी और सूर को बषान करने वाला कवि कहा है । बषान से कवि का आशय पांडित्यपूर्ण रचना से है कवि ने अन्यत्र भी इस बषान का संकेत किया है—'लाल प्रसंगहि पाइ कै पन्डित करैं बषान' अवध विलास, प्रथम विश्राम, दो० ६७ केशव विद्यापति विकट=लालदास के अनुसार केशव और विद्यापति दोनों विकट (कठिन) दुरूह कवि हैं ।

बातैं सब ब्रह्माण्ड की रची लाल मन आनि ।
विश्वरूप ज्यों विश्वमय अवधबिलासहिं जानि ।।३८।।

अदृष्ट बात अपठित अश्रुत अल्प ज्ञान जेहि देह ।
ताकौं अवधविलास रस अटपट लगिहैं एह ।।३९।।

पंडित हैं सो जानिहैं कथा प्रसंग प्रवीन ।
मूरष मनमहिं मानिहैं लाल कहा इह कौन ।।४०।

तीरथ औधि जो अवध है राम अवधि अवतार ।
तैसैं भाषा की अवधि अवधबिलास अपार ।।४१।।

दोइ देह हैं अवध के सूक्षम स्थूल प्रकास ।
धाम रूप स्थूल है सूक्षम अवधबिलास ।।४२।।

जो या अवधबिलास कौं अवधहिं जानै कोइ ।
ताकों सुनतहिं होत है अवध गये फल सोइ ।।४३।।

---

३९. रस अटपट—अदृष्ट, अपठित एवं अश्रुत होने के कारण 'अवध विलास' की रसानुभूति अल्पज्ञों को अटपटी लगने वाली हो सकती है । रस का अटपटापन लालदास के आचार्यत्व का संकेत करता है । केशव ने रसदोषों में 'अनरस' का उल्लेख किया है । रस दोष में 'रस अटपट' का नूतन उल्लेख लालदास ने ही किया है ।

४०. कहा इह कौन=कवि को आशंका है कि अवधविलास की वस्तु के नवीन प्रसंगो, प्रबन्ध प्रवीणता एवं कवि वक्रता पर मूर्खजन विस्मय प्रकट करेंगे ।

पंडित हैं............प्रसंग प्रवीन=लालदास ने काव्यरीति का संकेत किया है और काव्यरीति से विज्ञ पंडित और प्रवीनजनों के लिये अपनी कविता के मर्म जानने का संकेत किया है । रीतिकालीन स्वच्छन्द प्रेमधारा के ठाकुर कवि ने भी 'पंडित लोक प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावैं' कहकर इसी ओर संकेत किया है ।

४१. भाषा की अवधि=भाषा में लिखे गए काव्यों में सर्वोत्कृष्ट । अन्तर्राष्ट्रीय कवि एवं समीक्षक डॉ० रणजीत ने 'भाषा की अवधि' पर टिप्पणी करते हुये इसे कवि द्वारा भाषायिक जड़ता के विरुद्ध गतिशील भाषा का काव्य माना जाने का संकेत किया है ।

४३. 'सुनतहिं' के स्थान पर पं० शिवबालक त्रिपाठी द्वारा प्रस्तावित पाठ 'तुरतहिं' ।

नव बिशाल दृढ़ गुन भर्‌यों पतित पार कर काज ।
लाल सिन्धु संसार महिं अवधबिलास जहाज ॥४४॥
सय पण्डित सय साधु को जेतो संग बषान ।
तेतो अवधबिलास के लाल पढ़त होइ ज्ञान ॥४५॥
संवत सत्रह सय बतिस सुदि बैशाष सुकाल ।
लाल अवध मधि रहि रच्यो अवधबिलास रसाल ॥४६॥

चौ०—प्रथमहिं गुरु गणपति शिर नाऊँ । पुनि हरि हर सरस्वती मनाऊँ ॥
जौं ए कृपा कटाक्षन हेरैं । तौ कछु ज्ञान होइ जिय मेरैं ॥
ब्रह्मा वेद आदि महामाया । प्रणऊँ ताहि जगत जिन्ह जाया ॥
सनक सनातन सनत कुमारा । और सनंदन चारि प्रकारा ॥
बालक रूप रहैं ब्रह्म ज्ञानी । जीवन मुक्त निरा अभिमानी ॥
आदि भक्त जे श्री हरि प्यारी । बंदौ ताहि भक्ति बिस्तारी ॥
प्रणऊँ पारषद प्रभु के संगी । हरि समान बपु रूप सुधंगी ॥
बंदौ[१] चारि मुक्ति हैं सोई । पावत भक्त और नहिं कोई ॥
इक सालोक समीप सुहाई । सारूपा साजोज्य कहाई ॥
इन्द्रादिक हैं देवता जेते । मो पर कृपा करहु सब तेते ॥

---

४४. नव विशाल००जहाज=पतित के लिये संसार-सिन्धु के बीच 'अवधविलास' एक नूतन, सुदृढ़, विशाल एवं मूल्यवान जहाज है। श्लेष से पतित (अर्थ भ्रष्ट) से बचाने के लिये शब्द-सिन्धु के बीच अवधविलास नव (प्रबन्धवक्ता को नूतन शैली में लिखा गया) विशाल (अपरिमत) दृढ़ गुन (काव्य गुणों की दृढ़ता से युक्त) जहाज (भक्ति यान) है। गुन शब्द रज्जुवाची है। मध्यकाल में नावों को बाँधने के लिये रस्सी (गुण) का प्रयोग होता था।

४५. सय=शत (सैकड़ों)

४६. ग्रंथ का रचना काल—सं० १७३२, वैशाष, सुदी कहा है।
'सुकाल' से कवि का आशय ज्योतिष सम्मत तिथि अथवा दोषहीन तिथि अक्षय तृतीया से है। अवध=अयोध्या में रहकर अवधविलास काव्य की रचना की। अयोध्या रसिक साधना के सन्तों का केन्द्र रहा है। अयोध्या में सप्तवर्षीय निवास एवं वहीं पर अवधविलास की रचना का संकेत एक अन्य स्थान पर भी कवि ने किया है—

"सप्त बरष रह्यो अवधहिं मांही। जानि पाप कोए कछु नाहीं।
तब मम हृदय भई इह बानी। राम धाम की कथा बखानी।"

दोहा ४७ के अन्तर्गत—१बन्दौ...तेते=वन्दना प्रकरण के अन्तर्गत लालदास ने विभिन्न प्रकार के भक्तोंको अपनी नामावली में रखा है। पाणिनि की भांति लालदास भक्तों की श्रेणी में अर्जुन को लाते हैं। वे वैदिक इन्द्र की भी वंदना करते हैं। 'नारद भक्ति-सूत्र' (अ० ५) में उल्लिखित भक्तों एवं रामभक्त रसिक साधकों का उल्लेख कवि की रसिक साधना का भी परिणाम प्रतीत होता है।

होहु दयाल दशों दिगपाला । गृह तिथि पंचतत्व यम काला ॥
चारि षानि के जे जत प्रानी । सिद्ध साधु मूरष अरु ज्ञानी ॥
अंडज स्वेदज जरायुज जाना । उद्भिज षानि ए चारि बषाना ॥
औध बिलास कथा मनमानी । वर्णो ताहि देहु मोहिं बानी ॥
नारद व्यास बशिष्ठ बषाना । पारासर शुकदेव सयाना ॥
भरद्वाज रिषि बाल्मीक मुनि । कश्यप विश्वामित्र अत्रि गुनि ॥
गौतम सौनक औरु पुलस्ति । सौभरि सुर गुरु शुक्र अगस्ति ॥
दुर्बासा भृगु च्यवन सुदामा । इन सबहिनि कहँ करौ प्रनामा ॥
ध्रुव प्रहलाद भक्त शिरताजा । अंबरीष रुकमंगद राजा ॥
बलि गज भरत औ जनक बिदेही । भक्त विभीषण राम सनेही ॥
बंदौं हनूमान दुषबाधक । राम भक्त सबही सुष साधक ॥
अर्जुन ऊधव बिदुर समेता । रामानन्द आदि भए जेता ॥
बंदौ गोप गोपिका[२] नारी । बन कुंजनि हरि संग बिहारी ॥
बिल्व मंगल जयदेव सयाना । चन्द्रहास हरि कैं मनमाना ॥
जिन्ह के हियें राम विश्रामा । तिन्ह कों करत हैं लाल प्रनामा ॥
पंडित[३] जे बक्ता कविराई । अरु जे कथा सुनैं मन लाई ॥
तिन्ह सौं बिनय करौं कर जोरी । सुनि मम ग्रन्थ देहु जिनि षोरी ॥
जौं कहुँ चूक मोहि कछु पारी । तौ तुम लीजेहु ताहि सुधारी ॥

---

२ गोप गोपिका=गोपी-भाव वैष्णव रस साधना की आन्तरिक भावपरक उदात्त कल्पना ही नहीं प्रेम और मदन साधना की समर्पण भाव-भक्ति का प्रतीक है। हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, १/२/६०-६१ में गोपियों की भक्ति को रागात्मिका भक्ति में रखा गया है–

"विराजन्तीमभिव्यक्तिम् व्रजवासि जनादिषु ।
रागात्मिका मनुसृता या सा रागानुगोच्यते ॥"

३ पंडित, जे...सुधारी= पण्डित, वक्ता, कविराज और भावकों से कवि का यह निवेदन कि इस काव्य में यदि कहीं कोई चूक रह गई हो तो उसके लिए मुझे दोषी न ठहराया जाय, वरन् उसे सुधार लिया जाय। ऐसी विनयोक्ति की परिपाटी कवियों में चली आ रही है। जायसी ने भी ऐसी उक्तियाँ की हैं—

"औ बिनती पंडितन्ह सो भजा । टूट सँवारेहु मेरएहु सजा ॥
हौं सब कबिन्ह केर पछिलगा । किछु कहि चला तबल दइ डगा ॥"

पदमावत, स्तुतिखण्ड, जायसी, पृ २, सं. वासुदेवशरण अग्रवाल

जे बिगरे पर काज सुधारै । ते अपनों परलोक उधारै ॥

दोहा— ज्ञानी गुन सुनिबो करैं पंडित करैं बिचार ।
मूरष लाल भले नहीं झगरा करैं कि मार ॥४७॥

चौ०— बालक[1] बात कहत तुतराई । मात पिता कौं लगति सुहाई ॥
तैसें ज्ञानहीन मम बानी । सुनि रीझहिंगे पंडित ज्ञानी ॥
कुटिल कुमति दूषक अभिमानी । श्वान समान तिनहिं करि जानी ॥
बनचर गृह आरंभ न ठानैं । तोरि तारि औरन्ह के जानै ॥
जैसे भैंसि परै अररानी । कीच मचाइ बिगारै पानी ॥
तैसें कथा बिगारैं बादी । पंक्षिअ जा भल नीर सुबादी ॥
श्रोता चारि प्रकार निरूपा । सिंह श्वान चलनी सत सूपा ॥

दोहा— गुन को निंदै निगुंनी जोगहि जुवती जाति ।
घृत को निंदै मद्यपा[2] चोर चाँदनी राति ॥ ४८॥

चौ०— का घटे चंद चोर जो निंदा । और तो सब जग करत है बंदा ॥
कबि जानैं कबि की कठिनाई[1] । ब्यावरि पीर बाँझ नहिं पाई ॥
सुकबि[2] सोइ हरि नाम बषानै । कबि जो लोक बेद मन आनै ॥
कुकबि[3] झूठ बोलै नहिं लाजै । मूरष बकै मरै बेकाजै ॥

दोहा ४८के अन्तर्गत—

१ बालक बात सुहाई=तोतली वाणी में कही गयी बात भी माता पिता के लिये प्रिय लगती है । तुलसी ने ऐसा ही भाव व्यक्त किया है—

जौं बालक कहि तोतरि बाता । सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥
(मानस, बालकांड, पृ० ३२)

पाठान्तर : २ मद्दिया (छ० प्रति)

दोहा ४९ के अन्तर्गत—

१ कवि जानैं कवि की कठिनाई=कवि कर्म की कठिनाई कवि ही जानते हैं ।

२ सुकवि सोई हरि नाम बषानै=कवित्व की कसौटी समष्टि हित चिंतन (हरिनाम) को स्वीकार किया है । केशव ने भी उत्तम हरिरस लीन (कविप्रिया, चतुर्थ प्रभाव छन्द १-२) कहा है । तुलसी ने 'कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।' कहकर इसी ओर संकेत किया है ।

३ कुकवि बेकाजे=कुकवि के सम्बन्ध में कवि का यह कथन कि कुकवित्व तो साक्षात मरण है, आचार्य भामह का समानधर्मी लगता है—

"अकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।
कुकवित्वं पुनः साक्षात् मृतिमाहुर्मनीषिणः ॥"
—काव्यालंकार १/१२ (भामह)

लालदास ने आचार्य भामह के अधर्म, व्याधये तथा दण्डनाय को क्रमशः बेकाज (अकार्य), मरै (मृत्यु) बकै (दण्डित होना) क्रियाओं के रूप में व्यक्त किया है ।

कबि जन[३] उक्ति बिशेष बषानो । भाषा जैसी तैसी जानी ।।

दोहा — दूषन भूषन काव्य के गन औ अगन अनेक ।
लघु दीरघ शुद्धा अशुध मैं नहिं जानत एक ।।४९।।

चौ० — दस अवतार[१] धरौं मन माहीं । सुमिरत बिघ्न बिलय होइ जाहीं ।।
मच्छ रूप करि बेद उधारा । कूरम होइ रतन बिस्तारा ।।
सागर मथत धरा जब कांषी । अपनी कठिन पीठ पर राषी ।।
अद्‌भुत रूप बराह बनाए । बूड़त धरनि दंत धरि ल्याए ।।
होइ नृसिंह जु असुर संहारा । काटि कष्ट प्रहलाद उबारा ।।
बावन रूप अनूप बनावा । छल करि बलि पाताल पठावा ।।
परसुराम क्षत्री नहिं राषा । माता मारि पिता पन भाषा ।।
रामचन्द रावन बध कीन्हा । इन्द्रादिकन अभय पद दीन्हा ।।
हलधर कृष्न कला अधिकारा । कंस केशि चाणूर संघारा ।।
बौध रूप प्रभु जज्ञ छिड़ाए[२] । जैन अहिंसा धर्म दृढ़ाए ।।
कल्कि[३] रूप कलियुग के अन्ता । जग रक्षा करिहैं भगवन्ता ।।
सतयुग श्वेत बरण अवतारा । त्रेता अरुण रंग तन धारा ।।
द्वापर पीत रूप हरि सोहैं । कलियुग श्याम वरण मन मोहैं ।।
सतयुग मच्छ कच्छ भए सूकर । बावन सिंह रूप हरि जू कर ।।
त्रेता परशुराम श्री रामा । द्वापर कृष्न एक सुष धामा ।।

---

३ कविजन···जानी=उक्ति विशेष ही काव्य हैं, भाषा जो हो सो हो । लालदास की यह काव्य चिन्तना राजशेखर की निम्न पंक्ति का शब्दशः अनुवाद है—'उक्ति विशेषः काव्यं भाषा या भवति सा भवतु' (कर्पूरमञ्जरी (काव्यमाला) पृ० ९)

दोहा ५० के अन्तर्गत—

१ दश अवतार – मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध कल्कि, नामक दश अवतार। बुद्ध एवं जिनेद्र के रूप में जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान महावीर स्वामी को एवं बुद्ध के रूप में बुद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध को अवतारों के रूप में स्वीकृत कर लालदास ने भले ही शास्त्रीय परम्परा का नितांत अनुगमन न किया हो किन्तु धर्म विषयक अपनी मानसिक उदारता का परिचय दिया है ।

२ जज्ञ छिड़ाये=यज्ञों का छुड़ाना । यहाँ कवि का आशय बौद्ध धर्म द्वारा वैदिक यज्ञों में पशुओं की बलि के छुड़वाने से है ।

३ कल्कि – (कल्क+णिन्+इन्)=कल्किन्—विष्णु का अन्तिम और दसवाँ अवतार । जयदेव ने कल्कि अवतार का निर्देश किया है, 'म्लेच्छनिवह निधने कलयसि करवालम् धूमकेतुमिव किमपि करालम्, केशवधृतकल्कि शरीर जय जगदीश हरे ।' (गीत गोविन्द, १/१०, हस्तलेख, च० शो० सं० प्रति)

कलियुग बुद्ध कल्कि हैं दोई । जुग जुग एहि अनुक्रम दस होई ।।

दोहा— या बिधि ए अवतार प्रभु करत रहत हैं ख्याल ।
देखि भुलाने सुर असुर पार न पाए लाल[४] ।।५०।।

चौ०—नवधा[१] भक्ति के नव हैं प्रकारा । जाके करत मिटत संसारा ।।
जन्म कर्म हरि जू के नाना । श्रवन सुनैं नित कथा पुराना ।।
कीरतनं गुन कीरति भाषै । सुमिरन हरि मूरति मन राषै ।।
सेवन चरण करै नित पूजा । प्रतिमा रामहिं भेद न दूजा ।।
अर्चन मन्दिर रचना करई । केशरि चंदन हरि कहँ भरई ।।
बन्दन भक्ति जाहि को नामा । बारम्बार जु करै प्रनामा ।।
मथुरा आदि धाम हैं जेते । दासि भक्त देषै जाइ तेते ।
हरि कै काज टहल करै जोई । दासा तन कहियत है सोई ।।
प्रभु कै संग निरंतर रहिये । सषा भक्ति ताही सौं कहिये ।।
तन मन धन हरि जू कौं देई । भक्ति निबेदन कहियतु एई ।।
ए नव भक्ति नेम महि राषा । दशई प्रेम भक्ति[२] शुक भाषा ।।
माधव[३] रामानुज आचारज । विष्नु स्वामि निंबारक आरज ।।

बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म में आत्मसात् हो गया है । विश्ववन्धु ने गाँधी जी के मत को इसी सन्दर्भ में उद्धत किया है —It is my definite opinion that the essential part of teachings of Budha now forms an integral part of Hinduism"—लार्ड बुद्धएण्ड बुद्धिज्म, थ्रू हिन्दू आइज पृ. २८—३९

पाठान्तर : ४—दोहा न० ५० के बाद छ० प्रति में निम्नलिखित दोहा उपलब्ध होता है—श्रवन कीर्तन विष्णु को सुमिरन सेवन चरन ।
अर्चन वंदन दासि सखि आत्म समर्पन करन ।

दोहा ५५ के अन्तर्गत—

१ नवधा=अध्यात्म रामायण में भक्ति को 'नव विद्या', भागवत ७/५/२ में नवलक्षणा, तुलसी के मानस में 'नवधा', चन्ददास कौशिवसिद्धिसारंगाध्यावली (हस्त० चं० शो० सं० प्रति) में 'नूतन नवधा' की संज्ञा दी गई है । लालदास की नवधा भागवत की नवलक्षणा से अभिन्न है—

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणम् पाद सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ।।" (भागवत)

२ प्रेम भक्ति=प्रेमा भक्ति । प्रेम-लक्षणा भक्ति का चरम उत्कर्ष दाम्पत्य भावना में है । यह रसिकोपासना के सर्वथा अनुकूल है । लालदास प्रेमाभक्ति का स्रोत वल्लभाचार्य से न मानकर शुकदेव से मानते हैं ।

३ माधव…आरज= वैष्णव वेदान्त के आचार्यों का उल्लेख किया गया है–रामानुज (११वीं शती) का विशिष्टाद्वैत, निम्बार्क (१२वीं शती) का द्वैताद्वैत, मध्वाचार्य (१३वीं शती) का द्वैत, एवं विष्णुस्वामि के शुद्धाद्वैत का संकेत सांप्रदायिक समन्वय का भी सूचक है ।

दोहा— श्रवन भक्ति सालोकदा मनन समीपा देत ।
निद्धिध्यास सारूपता श्रैसा जो जिहि हेत[४] ।।५१।।

चौ०— नवधा करत मिलत भगवाना । ब्रह्म ज्ञान इन्ह गर्भ समाना ।
जैसें काहूँ धेनु भुलावा । वच्छल[१] दूध धोव संग आवा ।।
तैसें हृदय भक्ति जब आई । मुक्ति ज्ञान बैठे सब पाई ।।
जोग जज्ञ तीरथ ब्रत दाना । इनि कैं बस नाहिन भगवाना ।।
प्रेम सहित गावै नर जोई । ताकैं राम सहज बस होई ।।
जुग जुग सदा भक्ति बिस्तारा । बारि बरन[२] सब को अधिकारा ।।
ऊँच नीच अन्तर नहिं कोई । हरि कहुँ भजत हरिहि सम होई ।।
जोग यज्ञ तप अति कठिनाई । भक्ति करत कछु जानि न जाई ।।
तातें सबहिं छाड़िए आसा । भक्ति बिना भव कटै न पासा ।।

दोहा— ज्ञान दीप है भक्ति मनि उभय प्रकास कराहिं ।
विषय पवन दीपक बुझै मनि कौं कछु भय नाहिं ।।५२।।
ज्ञान पुरुष अरु भक्ति त्रिय माया गनिका भाइ ।
त्रिय को त्रिय मोहै कहा पुरुषहिं देत डिगाइ ।।५३।।

चौ० भक्त वेष धरि पाप जु करई । ताको दोष कह्यो नहिं परई ।।
और ठौर के पातक जेते । तीरथ पाइ नास होइ तेते ।।
तीरथ माहि करै जो कोई । सो अघ बज्र लेप सम होई ।।
साकतपन[१] जे कर्म कमाए । भक्त होइ ततकाल नसाए ।।

दोहा ५२ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : ४ छ० प्रति में दोहा न० ५१ के स्थान पर निम्न दोहा पाया जाता है—
"चारि सम्प्रदा के जितै भक्त जगत महिं होइ ।
ते मो लाल गरीब पर कृपा करहु सब कोइ ।।"

पाठान्तर : १ बछरा दूध धोव संग आवा (छ० प्रति)

पाठान्तर : २ चारि बरन सबको अधिकारा । (छ० प्रति)

५२ ज्ञान दीप······भय नाहिं=ज्ञान और भक्ति मणि के रूपक में तुलसी का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

दोहा ५४ के अन्तर्गत—

१ साकतपन······कमाए=बामाचार के कारण शाक्तों कीनिन्दा की गई है । कबीर ने भी शाक्तों की निन्दा करते हुए वैष्णव का समर्थन किया है—

अ. "वैष्णों को छपरी भली, ना साकत बड़ गाउँ ।"

ब. "साकत मरहिं सन्त सभि जीवहिं
राम रसायनु रसना पीवहिं ।"

फिरि कोउ पाप करै जो जानी । सो निहपाप होइ नहिं प्रानी ॥
इंद्रियजीत[२] मम होत परायन । गीता माहिं कह्यो नारायन ॥
जनम जनम करि करि तप साधा । ताकरि दूरि भए अपराधा ॥
ए नारद के बचन प्रमानो । तब हरि भक्त होत है प्रानी ॥

दोहा— लाल बड़ाई भक्त कर मैं ही नहिं कछु कीन्ह ।
नारद शिव सनकादिकन्ह सदा अधिकता दीन्ह ॥५४॥

चौ०—इन्ह नव महि जाको जोइ भावै । एकउ जनम एक होइ आवै ॥
तो जानहु ता सम नहिं कोई । पूज्य भयो सबहिन्ह कैं सोई ॥
मैं मूरष कछु नाहिं बिवेका । रामचरित गुन आहि अनेका ॥
तिन्हहिं कह्यो चाहत हौं ऐसे । बवना चंद्र[१] गह्यो चहै जैसे ॥
पुनि मेरी मूरषता कैसी । सत कबि[२] सुनि लीजै अब तैसी ॥
महाति सिंधु भरेउ अवगाहै । भुजबल बिना पार गयो चाहै ॥
जैसे नैन हीन होइ कोई । देख्यों चहै सकल जग सोई ॥
पर्वत पंगु चढ़ै कहु कैसें । मैं हरि चरित कह्यो चहूं तैसें ॥
मूक बोलि जानत नहिं जाथा । पढ़ेउ चहै पिंगल गुन गाथा ॥
ज्यों षद्योत धरै अहंकारा । करन चहै सब जग उजियारा ॥
जैसे रंक मनोरथ करई । कारज एक कछू नहिं सरई ॥
पक्षी गरुड़ गगन के माहीं । कौने भाँति मशक तहाँ जाहीं ॥
शुक सनकादि[३] व्यास से गावत । तिन्हहिं देषि मैं हूँ अनुधावत ॥
बरषा ऋतु बरषै जलधारा । अस को गनै बूंद गनहारा ॥
ज्यों बालक प्रतिबिम्ब निहारै । पकरेउ ताहि सकै नहिं पारै ॥
जल पताल नहिं हाथ समानी । रजु बिनु सठ पीयो चहै पानी ॥
जैसे मूढ़ गगन तजि धरनी । चाहत चढ़ेउ बिना निहसरनी ॥
तैसे मैं मूरख बल हीना । बिन ही बल बहु आरम्भ कीना ॥

पाठान्तर : २ 'इन्द्रियजीत ··· प्रानी' ये पंक्तियाँ छ० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

दोहा ५५ के अन्तर्गत—

१ बवना चन्द्र गह्यो चहै जैसे=लालदास का यह आत्मलाघव महाकवि कालिदास के 'प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः' की भाँति विनम्रता व्यक्त करता है ।

२ सत कवि=कवि कोटि विशेष

३ शुक सनकादि···अनुधावत=कविने अपने को शुक, सनकादि और व्यास का अनुधावन करने वाला कहा है ।

कागद[४] जौं बसुधा सब करिए । मसिहांनी लै सागर धरिए ।।
गिरि काजर ता मांहि मिलावै । लेषनि सब बनराइ बनावै ।।
गणपति सरसुति लिषहिं बनाई । हरि के गुन तउ लिषेहि न जाई ।।
दोहा— शेष पार पावै नहीं बेदहु बैठे हारि ।
सो अब लाल कहा कहै एक जीभ बिस्तारि ।।५५।।
चौ०— अब सुनि लेहु बीनती मोरी । सब संतन सों कहों कर जोरी ।।
मैं परतन्त्र रहत जग माहीं । कहन करन समरथ कछु नाहीं ।।
जीव जंत्र कठपुतरी समाना । करता प्रेरक श्री भगवाना ।।
जेहि जेहि भाँति बजाइ नचावत । सोइ सोइ नाच जीव दिषरावत ।।
जेइ जेइ बचन जीभ अनुरागत । सो कछु दोष मोहिं नहिं लागत ।।
मैं बाजन सम आहि बिचारा । जानत रहइ बजावनहारा ।।
जहाँ तहाँ चलि जात अनाथा । रथ बस रहत सारथी हाथा ।।
नाव नहीं कछु स्वबस बसाई । केवट लिये जाइ तहाँ जाई ।।
जैसे बृषभ नांक रजु धारा । जहँ अँचै तहँ जाइ बिचारा ।।
ब्रह्मादिक हैं करत कछु काजा । सो सब आप करावत काजा ।।
छंद बंध कछु भेद न जानौं । केवल एकइ नाम बषानौं ।।
कोक काव्य पिंगल की रचना । बिनु हरि नाम बृथा सब बचना ।।
पिंगल गन अरु अगन बिबेका । गुरु लघु के कहे भेद अनेका ।।
आदि त्रिगुरु[१] ताहि मगन बषाना । तीनि आदि लघु नगनहिं जाना ।।

---

४ कागद जौ···लिषेहि न जाई=कवि की इन पंक्तियों में पुष्पदन्त के निम्न श्लोक का भावानुवाद है—

"असित गिरि समंस्यात्कज्जलं सिन्धु पात्रे
सुर तरु वर शाखा लेखनीपत्र मुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।"

कबीर में भी ऐसा भाव मिलता है—

"सात समंद की मसि करौं लेखनि सब बनराइ ।
धरती सब कागर करौं हरि गुण लिख्या न जाइ ।"

जायसी ने भी इसी भावकी अभिव्यक्ति की है—

"सात सरग जौं कागर करई । धरती सात समुद्र मसि भरई ।"

दोहा ५६ के अन्तर्गत—

१ आदि त्रिगुरु···तगन सुआहो=गणों की गणना का उल्लेख किया गया है । रसिक गोविन्द ने भी गणों की गणना का विवेचन किया है—

भगन आदि गुरु एकहिं होई । यगन एक लघु आदिहिं सोई ॥
रगन मध्य लघु होइ सो जानव । मध्य गुरू ताहि जगनहि मानव ॥
सगन अंत गुरु कहियतु ताही । अंत होइ लघु तगन सु आही ॥

दोहा — मगन भगन औ यगन नगन सुभ गन लाल बिचारि ।
रगन जगन औ सगन गन तगन ए अगन निवारि ॥५६॥

चौ० — मगन[१] देवता भूमि भनीजै । फल श्री संपति अचलहिं दीजै ॥
भगन चंद्र जस देत बड़ाई । यगन देव जल वृद्धि कराई ॥
रगन अग्नि भय करै जु मरना । जगन देव रवि रोगहि करना ॥
सगन वायु परदेस बहावै । नाग नगन सुष भोग करावै ॥
तगन व्योम निहफल करि राषै । गन फल लाल जु पिंगल भाषै ॥
हे करै हानि झ जुद्ध करावै । नासै ण नारि घ आयु घटावै ॥
घकर अघोर ज र करै रोगी । अनभल होइ भष करै जोगी ॥
दग्धाक्षर कवि आठ बिचारै । गीत कबित मुषि इन्हहिं नधारै ॥

---

५६. अथ गनागन कवित्त--

श्री गोविन्द मगन त्रिगुरु छिति श्री अनेक सही
आदि लघु सो यगन जल वृद्धि मान ।
बीच एक लघु सो तौ रगन अंगनि दाह
गुरु अंत सगन पवन सोभा मै निदान ।
जामै लघु अंत सो ही तगन गगन सून्य
जहाँ गुरु मध्य सों जगन रवि प्रोडैं प्रान ।
आदि गुरु भगन को स्वामी ससि जस फल
नगन त्रिलघु नाग देत वर बुद्धि दान ।
रसिक गोविन्द कृत पिंगल, पृ० 2, हस्त० चन्ददास सा० शो० सं० प्रति ।

दोहा ५७ के अन्तर्गत—

१ मगनदेवता ······जोगी—गण फलों का विवेचन किया गया है । संस्कृत काव्य शास्त्र में गणफलों का विवेचन उपलब्ध होता है । लालदास में निम्न पक्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है । "लक्ष्मीमस्त्रिगुरुः क्षिति वितनुते भः पूर्वगःश्चन्द्रमाः, कीर्तिं योभ्युदयं पयः प्रथमलो नः सर्प आयु स्त्रिलो, वायुःसौंत्य गुर्विदेश गमनं शून्यं नभस्तोंतलों, रोग्निर्मध्यलघुर्मतिं दिनमणिर्मध्ये गुरुर्जोरुजं ॥"
जनार्दन बुध विरचित 'वृत्तरत्नाकर टीका' नामक हस्तलिखित प्रति के मुख्यपृष्ठ पर अंकित किसी प्राचीन ग्रन्थ का एक छन्द । (हस्तलेख, चंददास सा० शो० सं० प्रति)

दोहा— संजोगी[1] के आदि जो जुत बिसर्ग अनुस्वार ।
दीरघ कहँ गुरु कहत कवि चरन अंत गुरु धार ।।५७।।

ककुकि जो अक्षर तीन लघु नव अक्षर गुरु जानि ।
लघु के आगे होइ गुरु लघुहू को गुरु मानि ।।५८।।

अंध बधिर और पंगु इक नगन मृतक तजि चाल ।
पंच दोष[1] ए काव्य के कवि जन कहत हैं लाल ।।५९।।

अपन्हुति और आक्षेप हैं चित्र समाहित आनि ।
अलंकार बहु काव्य के औरहु लीजे जानि ।।६०।।

---

५७. १ संजोगी... गुरुधार = प्रस्तुत दोहे के भाव साम्य के लिये निम्न श्लोक को देखें —

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत् ।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ।।

छ० प्रति में दोहा ५७ के बाद निम्न दोहा प्राप्त होता है—

जाति स्वभाव विभावना उत्प्रेक्षा अश्लेष ।
भास विरोधा उक्ति क्रम उपमा भूषन लेष ।।

यह दोहा चं० प्रति में नहीं है ।

५९. १पंचदोष–लालदास ने दोष निरूपण के अन्तर्गत पांच काव्य दोषों का नामोल्लेख किया है—अंध, वधिर, पंगु, नग्न, मृतक । केशव ने 'कविप्रिया' में नग्नदोष का उल्लेख किया हैं । पं० विश्वनाथ मिश्र इसे केशव की मौलिक उद्भावना के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं (केशव गंथावली, प्रथमखंड, पृ० १०२) । डॉ० किशोरीलाल गुप्त ने अलंकार हीन और रसहीन रचना को नग्नदोष के अन्तर्गत लिया है । (रीति कवियों की मौलिक देन, पृ० १०८) । लालदास ने काव्यदोषों में नगन(नग्न) के अस्तित्व को स्वीकार किया है । लालदास ने 'पंगु' और 'मृतक' के नाम गिनाये हैं । आचार्य सूरति मिश्र के 'काव्य सिद्धान्त' में भी 'पंगु' और 'मृतक' को काव्य दोष कहा गया है । डॉ० भगीरथ मिश्र ने इन दोषों को मम्मट कृत 'काव्य प्रकाश' से इतर बताया है । (हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ११४) ।

६०. अपन्हुति, आक्षेप, चित्र, और समाहित को लालदास ने प्रमुख अलंकार माना है । अन्य अलंकारों का विकास इन्हीं के द्वारा हुआ ।

गूढा[1] गाहा[2] सोरठा दोहा कबित जो बात ।
राम नाम जामें परै अगुन सगुन होइ जात ॥६१॥

चारि चरण को दोहरा[1] मात्रा धरै बिचार ।
तेरह पुनि ग्यारह करै पुनि तेरह पुनि ग्यार ॥६२॥

चौ०— का जौं ग्रन्थ कबिन रचि राषा । नाम संबध भलौ सोइ भाषा ॥
व्यंजन पाक बहुत बिधि कीने । रंग सुरंग अनेकन दीनें ॥
देखत के जु मनोहर नीके । एक लोन बिनु लागत फीके ॥
तैसें नाम बिना सब बानो । सीषै सुनै ताहि नहिं ज्ञानी ॥
बेद पुरान स्मृति अस भाषा । नाम[1] अधिक नामी तैं राषा ॥
ज्ञान ध्यान करि जोगहि कोई । जब हरि मिलै मुक्त तब होई ॥
नाम जो अंत काल कहि आवै । तबहीं ता छिन मुक्तिहिं पावै ॥
सेत बांधि[2] उतरे जब रामा । पर्वत तरे लिषत ही नामा ॥

---

६१. १ गूढा=छंद विशेष का नाम

२ गाहा=गाहा का लक्षण आचार्य सुखदेव मिश्र ने इस प्रकार बताया है—

"बारह मात्रा पहिले ही दूजे अठारह जानि ।
तीजे बारह पाँच दस चौथे गाहा मानि ॥"

(पिंगल, सुखदेव, हस्त०चंददास शो० सं० प्रति)

सुखदेव ने 'गाहा' के अतिरिक्त इसी के नाम से मिलता 'गाहू' छंद भी बताया है और इसका लक्षण इस प्रकार बताया है—

"पूरुब उत्तर अरध हूँ सत्ताइस कल आन ।
छठवों गण लघु दल दुहूँ गाहू छंद बषानि ॥"

'गाहा' के भेदों में गाहा, प्रथम गाहा, विगाहा, दुग्गाहा आदि का नाम मिलता है ।

६२. १ दोहरा=दोहा छंद । लालदास ने दोहरा को चार चरण वाला तथा १३, ११ के विश्राम वाला छंद कहा है, जो दोहा से अभिन्न है ।

दोहा ६३ के अन्तर्गत—

१ नाम अधिक नामी ते राषा—लालदास की इस पंक्ति में तुलसी का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

२ सेत बांधि…नामा—सेतुबंध प्रकरण में नल-नील द्वारा पत्थर तैराने के प्रसंग में कवि ने एक नूतन उद्भावना की है और पत्थरों के तैरने का कारण पत्थरों पर राम नाम का अंकित होना बताया है ।

जन्म पाइ हरि नाम अज्ञानी । एकउ बेर कहे जेहि प्रानी ।।
मुक्ति गमन प्रति होइ हुसिआरा । फेंट बांधि सो भयो तयारा ।।
नाम चोर[३] है प्रगट विशेषा । संचित पापहिं हरत अशेषा ।।
नाम है कामधेनु चिंतामनि । औषधि नाम हरत सब रोगनि ।।
नाम सदा सब जुग महिं जाना । कलियुग महिं कछु अधिक बषाना ।।
अचरज[४] एक होत मन आहे । नरकन्ह जीव जातु हैं काहे ।।
नरक निवारन नाम तो हइए । जोभउ बस है जाकरि कहिए ।।

दोहा— राम मंत्र द्वै अक्षरी सर्व मंत्र फल देत ।।
राम नाम तैं अधिक जप नहिं पृथिवी तल हेत ।।६३।।

चौ०— शेषनाग धीमंत अपारा । मुष हजार ताकै अधिकारा ।।
दोइ हजार जीभ सब जानैं । जीभ जीभ नव नाम बषानैं ।।
केते युग बीते गुन गावत । अजहूँ नाम पार नहिं पावत ।।
अभय भएइ जे राम निवाजे । बलि पताल ध्रुव मेरु बिराजे ।।
जिन्ह जिन्ह नाम लीन्ह चित लाई । सोइ हरि ही महँ गए समाई ।।
जब लगि शिव नहिं नाम सुनावै । काशिउ मरे मुक्ति नहिं पावै ।।
का जो धर्म बहुत बिधि साधे । एक नाम के बिनु आराधे ।।
सकल धर्म को नाम है राजा । नाम प्रताप सफल सब काजा ।।
नाम छांड़ि जो रामहिं चाहै । तो कहँ भेंट राम सों आहै ।।
कौनउ बस्तु जो कहूँ हिराई । नामहिं तैं षोजत पै पाई ।।
काहू कहँ गुहरावत कोई । नाम सुनत चितवत फिरि सोई ।।
नामाधीन रहत हरि ऐसें । नाग मंत्र बस होत हैं जैसें ।।
और धर्म सब सैन्य समाना । राजा राम नाम करि जाना ।।

दोहा— रामायण शत कोटि के अंश किये निहसंक ।
महादेव हृदये धरे राम नाम द्वै अंक ।।६४।।

चौ०— जन प्रहलाद नाम जब लीना । अग्नि सर्प बिष दुष्टन दीना ।।
नाम प्रताप अभय सुष पाए । एकहु दुष कोउ निकट न आए ।।
जब गज नाम लीन्ह दुष पाई । आपहिं तब धाए अकुताई ।।
नक्र चक्र सों मारि बिदारा । बूड़त गज को कीन्ह उधारा ।।

---

६३. ३ नाम चोर=नाम माहात्म्य में नाम चोर का रूपक विशेषोक्ति के सौन्दर्य से युक्त है ।

४ पाठान्तर : अचरज एक..........पृथ्वी तल हेत । ये पंक्तियाँ ह० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

नाम निरन्तर जप करि जावै । त्रिविध ताप नहिं पाप बियापै ॥
काइक बचन मानसिक होई । तीनि प्रकार पाप हैं सोई ॥
आधिभूत आध्यातम जानो । आधि दैव लै ताप बषानो ॥
जानि अजानि नाम जिन्ह लीनों । ता कहँ बिष्नु अभय पद दीनों ॥
बिधि औ निषेध नाम के किंकर । पार्वती सौं भाषा शंकर ॥
नाम लिये तिन्ह सब बिधि साधा । नाम तजे लागत अपराधा ॥
तातैं नाम निरन्तर लीजै । बिधि निषेध मन कछुहिं न दीजै ॥
बिधि कहिए जे उत्तम धर्मा । है जु निषेध पाप के कर्मा ॥
बिधि तैं स्वर्ग लोक कहँ जैए । करै निषेध नर्क कहँ लहिए ॥
नाम लेइ अरु फेरै माला । स्वर्ग नर्क तैं रहै निराला ॥
जाइ वैकुंठ बिराजै सोई । बेद पुराण कहत सब कोई ॥

दोहा-- एक भाव करि हरि भजै छाँड़ि और सब आस ॥
अनायास बैकुंठ मैं लाल होत है बास ॥६५॥

चौ०—अैसो है नाम राम को भाई । सत संगति बिनु ताहि न पाई ॥
बिनु सत संगति होइ न ज्ञाना । ऊधव सों भाष्यो भगवाना ॥
केतो करहु सयानप कोई । बिनु उपदेस ज्ञान नहिं होई ॥
सत संगति पावत बड़ भागी । जातैं होहिं राम अनुरागी ॥
राजा जदु संगति जब आये । मत चौबीस दत्त समुझाये ॥
भूमि अकास बायु अरु पानी । सूरज अग्नि चंद्रमा जानी ॥
पादप सिंधु भ्रमर मृग राषा । हस्ती मीन पतंग जो भाषा ॥
चील्ह कपोत सर्प सरकारा । कन्या अजगर देह विकारा ॥
वेश्या बालक अरु मधु माषी । केउ औगुन केउ गुन के साषी ॥
जनक बिदेह कियो सत संगा । नव जोगेश्वर पाइ प्रसंगा ॥

दोहा— कवि हरि पिप्पलायन द्रविण हविर्होत्र परबुद्ध ।
करभाजन अंतरिक्ष चमस नव जोगेश्वर सुद्ध ॥६६॥

चौ०— संगति साधु भए तजि क्रोधा । बालक बहुत प्रहलाद प्रबोधा ॥

जन्म पाइ हरि नाम अज्ञानी । एकउ बेर कहे जेहि प्रानी ।।
मुक्ति गमन प्रति होइ हुसिआरा । फेंट बांधि सो भयो तयारा ।।
नाम चोर[३] है प्रगट विशेषा । संचित पापहिं हरत अशेषा ।।
नाम है कामधेनु चिंतामनि । औषधि नाम हरत सब रोगनि ।।
नाम सदा सब जुग महिं जाना । कलियुग महिं कछु अधिक बषाना ।।
अचरज[४] एक होत मन आहे । नरकन्ह जीव जातु हैं काहे ।।
नरक निवारन नाम तो हइए । जीभउ बस है जाकरि कहिए ।।

दोहा— राम मंत्र द्वै अक्षरो सर्व मंत्र फल देत ।।
राम नाम तें अधिक जप नहिं पृथिवी तल हेत ।।६३।।

चौ०— शेषनाग धीमंत अपारा । मुष हजार ताकै अधिकारा ।।
दोइ हजार जीभ सब जानैं । जीभ जीभ नव नाम बषानैं ।।
केते युग बीते गुन गावत । अजहूँ नाम पार नहिं पावत ।।
अभय भएइ जे राम निवाजे । बलि पताल ध्रुव मेरु बिराजे ।।
जिन्ह जिन्ह नाम लीन्ह चित लाई । सोइ हरि ही महँ गए समाई ।।
जब लगि शिव नहिं नाम सुनावै । काशिउ मरे मुक्ति नहिं पावै ।।
का जो धर्म बहुत बिधि साधे । एक नाम के बिनु आराधे ।।
सकल धर्म को नाम है राजा । नाम प्रताप सफल सब काजा ।।
नाम छांड़ि जो रामहिं चाहै । तो कहँ भेंट राम सों आहै ।।
कौनउ बस्तु जो कहूँ हिराई । नामहिं तैं षोजत पै पाई ।।
काहू कहँ गुहरावत कोई । नाम सुनत चितवत फिरि सोई ।।
नामाधीन रहत हरि ऐसें । नाग मंत्र बस होत हैं जैसें ।।
और धर्म सब सैन्य समाना । राजा राम नाम करि जाना ।।

दोहा— रामायण शत कोटि के अंश किये निहसंक ।
महादेव हृदये धरे राम नाम द्वै अंक ।।६४।।

चौ०— जन प्रहलाद नाम जब लीना । अग्नि सर्प बिष दुष्टन दीना ।।
नाम प्रताप अभय सुष पाए । एकहु दुष कोउ निकट न आए ।।
जब गज नाम लीन्ह दुष पाई । आपहिं तब धाए अकुताई ।।
नक्र चक्र सों मारि बिदारा । बूड़त गज को कीन्ह उधारा ।।

---

६३. ३ नाम चोर=नाम माहात्म्य में नाम चोर का रूपक विशेषोक्ति के सौन्दर्य से युक्त है ।

४ पाठान्तर : अचरज एक..........पृथ्वी तल हेत । ये पंक्तियाँ छ० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

नाम निरन्तर जप करि जापै । त्रिविध ताप नहिं पाप बियापै ॥
काइक बचन मानसिक होई । तीनि प्रकार पाप हैं सोई ॥
आधिभूत आध्यातम जानी । आधि दैव त्रैताप बषानी ॥
जानि अजानि नाम जिन्ह लीनों । ता कहँ बिष्नु अभय पद दीनों ॥
बिधि औ निषेध नाम के किंकर । पार्वती सौं भाषा शंकर ॥
नाम लिये तिन्ह सब बिधि साधा । नाम तजे लागत अपराधा ॥
तातैं नाम निरन्तर लीजै । बिधि निषेध मन कछुहिं न दीजै ॥
बिधि कहिए जे उत्तम धर्मा । है जु निषेध पाप के कर्मा ॥
बिधि तैं स्वर्ग लोक कहँ जैए । करै निषेध नर्क कहँ लहिए ॥
नाम लेइ अरु फेरै माला । स्वर्ग नर्क तैं रहै निराला ॥
जाइ बैकुंठ बिराजै सोई । बेद पुराण कहत सब कोई ॥

दोहा— एक भाव करि हरि भजै छाँड़ि और सब आस ॥
अनायास बैकुंठ मैं लाल होत है बास ॥६५॥

चौ०—अैसो है नाम राम को भाई । सत संगति बिनु ताहि न पाई ॥
बिनु सत संगति होइ न ज्ञाना । ऊधव सों भाष्यो भगवाना ॥
केतो करहु सयानप कोई । बिनु उपदेस ज्ञान नहिं होई ॥
सत संगति पावत बड़ भागी । जातैं होहिं राम अनुरागी ॥
राजा जदु संगति जब आये । मत चौबीस दत्त समुझाये ॥
भूमि अकास बायु अरु पानी । सूरज अग्नि चंद्रमा जानी ॥
पादप सिंधु भ्रमर मृग राषा । हस्ती मीन पतंग जो भाषा ॥
चील्ह कपोत सर्प सरकारा । कन्या अजगर देह बिकारा ॥
बेश्या बालक अरु मधु माषी । केउ औगुन केउ गुन के साषी ॥
जनक बिदेह कियो सत संगा । नव जोगेश्वर पाइ प्रसंगा ॥

दोहा— कवि हरि पिप्पलायन द्रविण हविर्होत्र परबुद्ध ।
करभाजन अंतरिक्ष चमस नव जोगेश्वर सुद्ध ॥६६॥

चौ०—संगति साधु भए तजि क्रोधा । बालक बहुत प्रह्लाद प्रबोधा ॥

रहु गन नृप संगति सुष पावा । जब जड़ भरत[1] ज्ञान समुझावा ।।
पूरब साधु संग कियो नारद । भए भक्त अति परम बिशारद ।।
ध्रुव नृप जाइ अभय पद बैशा । नारद संग पाइ उपदेशा ।।
शिव संगति जब कीन्ह भवानी । अमर भई त्रैलोक बषानी ।।
संगति कपिल देव बिष्याता । मुक्त भई देवहूती[2] माता ।।
व्यास[3] पास बैठे शुकदेऊ । गर्भहिं महिं पाए सब भेऊ ।।
काकभुसुंड गरुड़ समुझाए । ज्ञान बिबेक भक्ति तिन्ह पाए ।।
ब्रह्मा प्रथम कमल पर बासा । नारायण ताहि ज्ञान प्रकासा ।।
सनकादिक संशय उपजावा । हंस रूप हरि भेद बतावा ।।
पंडित ब्यास भये जग जागा । चारि बेद के किये बिभागा ।।
अन्तर जलनि तहूँ नहिं जाई । तब नारद हरि भक्ति दृढ़ाई ।।

दोहा— चारि बेद हैं कांड त्रय कर्म भक्ति अरु ज्ञान ।
लाल प्रसंगहि पाइ कै पण्डित करैं बषान[4] ।।६७।।

दोहा ६७ के अन्तर्गत—

१ जड़भरत—जड़ भरत और राजा रहूगण की कथा श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के दसवें अध्याय से १३वें अध्याय तक विस्तार से वर्णित है । भागवत के अनुसार जड़ के समान होने से जड़ भरत कहलाए । शिवसिद्धसौरगी (चंददास) में समाधि के प्रकारों में जड़ समाधि भी एक भेद बताया गया है । बहुत संभव है जड़ समाधि में रहने के कारण ही भरत को जड़ भरत कहा गया हो । भागवत के अनुसार राजा रहूगण सिन्धु सौवीर देश के स्वामी थे जिन्होंने अपनी पालकी में जड़भरत को कहार के रूप में रखा था । बाद में जड़भरत ने करुणा से द्रवीभूत होकर राजा रहूगण को आत्मतत्व का बोध कराया ।

२ देवहूती—देवहुती को कपिल द्वारा भक्तियोग की शिक्षा, महदादि भिन्न-भिन्न तत्वों की उत्पत्ति का वर्णन एवं मोक्ष प्राप्त करने का उल्लेख श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के २६वें अध्याय से ३३वें अध्याय तक विस्तारपूर्वक वर्णित है ।

३ व्यास पास……स्वर्ग सिधाए—साधु संगति के प्रभाव को पुष्ट करने के लिये कवि ने शुकदेव, व्यास, जाज्वलि, सुरथ, नहुष आदि की कथाओं की ओर संकेत किया है ।

४ **पाठान्तर :** प्रस्तुत दोहा छ० प्रति में अनुपलब्ध है ।

चौ०— बिप्र एक निर्धन पछितायो । रथ कैं धर्कें गिरेउ दुष पायो ॥
मरन रचेउ मन महिं करि क्रोधा । सियार रूप होइ इंद्र प्रबोधा ॥
चन्दन चंद नहीं तस शीतल । जस शीतल सतसंग महीतल ॥
जाज्वलि कैं समता बुधि आई । तुलाधार की संगति पाई ॥
राजा सुरथ बैश्य कछु पावा । मार्कंडेय की संगति आवा ॥
नृपति नहूष रहे बन माहीं । श्रापित सर्प रूप सुष नाहीं ॥
हरषे भीम युधिष्ठिर आए । संगति करि फिरि स्वर्ग सिधाए ॥
पुत्र शोक मन अति उपजाए । चित्रकेतु[1] संगति सुष पाए ॥
पाए शुक बक्ता शिरताजा । संगति तरे परीक्षित[2] राजा ॥
साधु कपोत देखि उपकारी । गयो बधिक तरि जाल निवारी ॥
पाउंर[3] अधम लेत रह्यो पंथा । आयो हरन ऋषिन्ह की कंथा ॥

दोहा— कश्यप[4] विश्वामित्र अरु गौतम अत्रि भारद्वाज ।
लाल बशिष्ठ औ जमदग्नि सप्तै ते ऋषिराज ॥६८॥

चौ०— तब मुनि मिलि उपदेसा ताही । घर पूँछो कोउ साझी आही ॥
गयो दौरि घर बात बिचारी । पूँछे मात पिता सुत नारी ॥
रहत हौं मैं जिन कर्मनि माहीं । तिन महिं तुम साझो किधौं नाहीं ॥
तब बोले सबही घरबासी । हम कहा जानैं कर्म उदासी ॥
खान पान के साझी तेरे । पाप पुन्य के हम नहिं नेरे ॥

दोहा ६८ के अन्तर्गत—

१ चित्रकेतु—पुत्र शोक में डूबे हुए चित्रकेतु को महर्षि अङ्गिरा और देवर्षि नारद द्वारा आत्मबोध प्रदान किया गया । यह कथा श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में वर्णित है ।

२ परीक्षित—शृङ्गी ऋषि के शाप के कारण परीक्षित की मृत्यु का निर्धारण तथा मृत्यु काल में शुकदेव द्वारा आत्मज्ञान प्रदान करने की कथा श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के अठारवें तथा उन्नीसवें अध्याय में वर्णित है ।

३ पाउंर=पामर

४ कवि ने सप्तर्षि मंडल के ऋषियों के नाम इस प्रकार दिये हैं—कश्यप, विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, जमदग्नि यह तालिका शतपथ ब्राह्मण के अनुसार है । महाभारत में सप्तर्षियों के नाम इस प्रकार है—मरीचि अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ ।
कश्यप…ऋषिराज—प्रस्तुत दोहा छ० प्रति में नहीं है ।

इह सुनि दौरि षोजि रिषि लीन्हे । तुम तौ मोहिं कृतारथ कीन्हे ॥
संगति पाइ भयो ताहि ज्ञाना । छाड़ेउ पाप धर्म मन माना ॥
बिप्र गेह[1] जन्मेउँ हौं स्वामी । भयो वधिक दुष संगति गामी ॥
अब कछु कृपा करहु मुनिराई । जेहिं प्रसाद उत्तम गति पाई ॥
तब मुनि तत्व मन्त्र पकरावा[2] । छुद्र जानि जप मरा करावा ॥
बैठउ दृढ़ मति करि अति गाढ़ी । जामा धूरि वलमिका बाढ़ी ॥
ताहि जपत तप करत बहुत दिन । आए मुनि फिरि देषि सुद्ध मन ॥
अब कहु राम राम अस भाषा । बाल्मीकि मुनि नामहिं राषा ॥

दोहा— मुनि प्रसाद भइ मति विमल रह्यो शेष अवतार ।
रामायण लागेउ करन लाल तरन संसार ॥६९॥

चौ०— रिषि एक च्यवन[1] महा तपकारी । गंग जमुन जल मध्य बिहारी ॥
धीमर जाल मच्छ कहुँ डारा । तामहिं आइ महामुनि पारा ॥
मच्छ सहित बाहर जब आवा । रिषिहिं देषि केवट भय पावा ॥
मुनि कछु दुष मन महिं नहिं ल्याए । दया धर्म बहु भाँति सुनाए ॥
केवट मच्छ कच्छ समुदाई । गये स्वर्ग तरि संगति पाई ॥
मुई पिंगला[2] दिषि दुष पाए । भरतरि को गोरष समुझाए ॥

दोहा ६९ के अन्तर्गत—

१ रामायण के रचयिता वाल्मीकि को लालदास ने शेष-अवतार कहा है। उनके दस्यु होने की कथा लालदास को मान्य है। तपस्या से उनके शरीर का वाल्मीक होना भी कवि ने स्वीकार किया है। लालदास ने उन्हें 'विप्र गेह जन्मेउ' से विप्र कुल का माना है। भक्तमाल (कवित्त ७२) में बाल्मीकि को श्वपच और चंददास कृत 'भक्तविहार' (हिन्दी सा० सम्मेलन की हस्त० प्रति), तथा 'रामविनोद' (चंददास शो० सं० प्रति) में उनके विप्र होने की पुष्टि की गई है। धर्मोत्तर पुराण (अध्याय ७४, ३८) के अनुसार वाल्मीकि को विष्णु के रूप में मान्य कहा गया है। हिन्द चीन में वाल्मीकि मंदिर में वाल्मीकि की मूर्ति तथा उनके विष्णु-अवतार होने का शिलालेख मिला है वह भारत में प्रचलित विश्वास पर आधारित है। (रामकथा उत्पत्ति और विकास, स्व. डा. बुल्के, पृ० ४६)।

२ **पाठान्तर :** तव मुनि ताहि मंत पकरावा (छ० प्रति)

दोहा ७० के अन्तर्गत—

१ च्यवन—च्यवन द्वारा केवट, मच्छ, कच्छ के प्रति करुणा का व्यवहार वर्णित है।
२ पिंगला—विदेह नगर की एक प्राचीन गणिका।

जनकपुरी[३] गनिका गुनवन्ती । रूप अपार भरी धनमंती ।।
ज्ञानी एक भ्रमत तहाँ आयो । नृप दूतन्ह सुचोर करि पायो ।।
मारत ताहि जु लीन्ह छड़ाई । करि सतसंग मुक्त भई जाई ।।
और अनेक साधू की संगति । उपजो सुमति भई सबकी गति ।।
आगे मुक्त भए हैं जेते । जानहु सतसंगति तैं तेते ।।
औरउ मुक्त होहिंगे कोऊ । मानहु सतसंगति तैं सोऊ ।।
अबहूँ सतसंगति जे करहीं । ते भवसिंधु सहज हीं तरहीं ।।

दोहा— जेहि प्रसाद सूझै सकल जो जैसो जेहि रंग ।
लाल तिमिर[४] अज्ञान को अंजन है सतसंग ।।७०।।

हर मुषि[१] सर मुषि तन्त्र मुषि लाल नाव मुषि गोह ।
सुषक अन मृत्यु पार कर संगति तैं भयो लोह ।।७१।।

चौ०— त्रिकट कोट सत संगति भाई । जहाँ जमदूत सकहिं नहिं जाई ।।
साधू संग सघन बन जानें । ते उबरे जे जाइ लुकाने ।।
संगति तें गुन होहिं बिशेषा । औरउ बात जगत महिं देषा ।।
पारस छुवत तांब भए कंचन । पलटत बेर भई कछु रंच न ।।
चंदन के संगति बन माहीं । नींब पलास भेद रहे नाहीं ।।

---

३ पाठान्तर : जनकपुरी…भई जाई—यह चौपाई छ० प्रति में नहीं है ।

४ लाल तिमिर……सतसंग=सतसंग को अंजन कहा गया है, जिसके आलेपन से सकल सूझता है। तुलसी ने इस अंजन से गुप्त को प्रकट होने का उल्लेख किया है। चंददास ने भी सतसंग प्रकरण में अंजन के रूपक को ग्रहण किया है—

"मंजन कीजै ग्यान सर आतम होय पुनीत ।
अंजन दीजै दिव्य दृग त्याग कुमारग रीति ।।
त्याग कुमारग रीति प्रीति हरिपद सो लावै ।
मन मकरंद सो ग्यानवान रचि गुन गन गावै ।।
'चंद' भजन हरिनाम धाम जम ताप विभंजन ।
करो करो सतसंग अंग अभि ज्ञानहिं मंजन ।।"

चंददास पदावली, (हस्त० चंददास शो० सं० प्रति)

दोहा ७१ के अन्तर्गत—

१ हर मुषि……लोह—प्रस्तुत दोहा छ० प्रति में नहीं है ।

होते तेल भले गुन पाए । फूलहिं संग फुलेल कहाए ॥
नीच होहिं उत्तम पर संगी । भृंग संग कीटक भयो भृंगी ॥
संगति[1] बड़ी किये बड़ हूजे । अक्षर के संग कागद पूजे ।
संगति पद रज छत्र बिराजा । मारुत संग नृपन्ह शिरताजा ॥
संगति बाँस सबै जग जानै । मिश्री के सम मोल बिकानै ॥
बहुत नदी नद होइ गयो संगा । गंगा मिले कहाए गंगा ॥
यातें साधु संग नित करिए । जातें जगत सिन्धु महँ तरिए ॥
साधू संग जिहाज हैं ऊँचे । जे बैठे ते पार पहूँचे ॥
साधू संग सुअंजन भाई । महा तिमिर अज्ञान नसाई ॥
साधू संग अगनि लग जाहीं । नासै पाप जाड रहै नाहीं ।
साधू संग कल्पतरु आहै । पावै सबै जोइ कछु चाहै ॥
साधु साधु व्योहरिया गाढ़े । राम नाम जिनके धन बाढ़े ॥
जो सुख सत संगति तें होई । सो सुख स्वर्ग मुक्ति नहिं होई ॥
तीरथ दोइ रहे जग माहीं । एक चलत एक चलत है नाहीं ॥
मथुरा आदि अचल हैं जेते । चल तीरथ साधू जन तेते ॥
पावन करत फिरत संसारा । कलि मल दोष छिड़ावनिहारा ॥
जिन्ह चरनोंदक सीस चढ़ाए । ते जानहु सब तीरथ न्हाए ॥
मूरति दोइ राम की गाई । एक भक्त एक शिला बनाई ॥
जो कोऊ हरि पूजा करई । दोउ मूरति महिं भेद न धरई ॥
भोजन पान चढ़ावै कोई । लेत हैं स्वाद भक्त मुष होई ॥

दोहा— सेवक निर्मल मानसर मुक्ता भाव लसंत ।
जहाँ होहिं तहाँ हंस ज्यों हर्षत धावत संत ॥७२॥

चौ० भक्तहि के सुष सुष प्रभु ही कैं । भक्त दुखी दुष लागत जी कैं ॥
और कछू नहि मन महि धारा । जैसें हरि को भक्त पियारा ॥
दुर्वासा अम्बरीष सतावा । ताही कैं सरनै सुष पावा ॥
भक्तन्ह केवल और न कोई । कर्ता करहि सोई कछु होई ॥
माता पिता पुत्र सब त्यागैं । एक राम के पीछे लागैं ॥

दोहा ७२ के अन्तर्गत

१ संगति बड़ी ······कागद पूजे—यह चौपाई छ० प्रति में नहीं है ।

रामहि[१] पिता रामही भ्राता । रामहि मात राम ही त्राता ॥
रामहि पित्र राम कुलदेवा । भक्तन्ह कैं रामहि की सेवा ॥
रामहि तीरथ रामहि जाती । रामहि पूजा रामहि पाती ॥
केवल एक राम ही जानैं । राम बिना कछु और न मानैं ॥
भोजन भक्त न सोचै अंबर । दाता दीनदयाल विश्वंभर ॥
भक्तहिं मिले भक्त जब आई । मानहु रंक महानिधि पाई ॥
जाति अजाति भेद नहिं आनैं । तिन्ह कहुँ राम रूप करि मानैं ॥
भक्त भक्त कैं आवै धामा । मानहुँ आपुहि आए रामा ॥
मिलि बैठहिं भक्तन के संगा । घर बैठे आई जनु गंगा ॥

दोहा— गोमति संगम[२] द्वारका सागर संगम गंग ।
बेनीं संगम सरस्वती तस संगम सत संग ॥७३॥

चौ०—भक्ति करै प्रभु की मन लाई । गावहिं ताल मृदंग बजाई ॥
मगन भए तन की सुधि नाहीं । परे भक्ति सुष सागर माहीं ॥
भक्त भक्त को काज सुधारै । औरन्ह को कहुँ कछु न बिगारै ॥
दीन दुषित कहुँ देइ दिषाई । तापर दया करै अधिकाई ॥
सदा शांत शीतल ही रहिए । शत्रु कहूँ षोजत नहिं लहिए ॥
जामैं राम नाम की बानी । सीषैं सुनैं महा रुचि मानी ॥
जब लगि भक्त न लगहिं पियारा । तब लगि जीव राम तहिं न्यारा ॥
जो कछु धन संग्रह होइ आवै । भक्त भक्त कैं अर्थ लगावै ॥
भक्त जक्त को तोरै तांतो । एक भक्ति को मानैं नातो ॥
भक्त होइ सो भक्तहिं जांचै । भक्त भक्त सो बोलैं साँचै ॥

दोहा ७३ के अन्तर्गत—

१ रामहिं पिता ......पाती=इष्ट के प्रति अनन्य भक्ति भावना । चंददास ने भी राम के प्रति अनन्य भक्ति भावना को अभिव्यक्ति की है—

अ. 'चन्द हमरे अपर नाहीं राम माई बाप' (चन्ददास पदावली)

ब. राम देख नैन सो सुराम देखु नैनरी ।
राम सों लगाय नेह, राम राम थाप देह
राम ही सुधार ग्रेह रामरूप मैन री ।
राम ही सो काम जान राम ही समग्र मान
राम ही विचार ध्यान राम देखु अैन री ।
राम 'चन्द' राग मै सो पाय मोह त्याग मै
समीप जे विराग मै सो राम चित्त चैन री । (चंददास पदावली)

पाठान्तर : २ गोमति संगम......सतसंग=यह दोहा छ० प्रति में नहीं है ।

दोहा— जो औगुन होइ भक्त महि भक्त न धारै चित्त ।
ज्यों पतिबरता पीव के गुन लोये रहै नित्त ॥७४॥

चौ०— कबहूँ भक्त कछू दुष पावै । रोग दोष ग्रह आइ सतावै ॥
तौ कछु जतन करै नहि भाषै । दुष सुष राम करै सोइ राषै ॥
तबहूँ रामहि होइ सहाई । काटै कष्ट आपु हीं आई ॥
जेहि जेहि भाँति भक्त भल मानैं । सोइ सोइ रूप धरै हरि जानैं ॥
राम कृष्ण[1] गोबिन्द गुपाला । निसदिन जपत रहत लिए माला ॥
माधव मधुसूदन जु मुरारी । सीतापति रघुबर अघहारी ॥
बासुदेव विश्वेसुर स्वामी । नारायण हरि अन्तरजामी ॥
दया क्षमा संतोष सुलक्षन । नवनि सांच बोलै सुविचक्षन ॥
परधन परतिय नहिन निहारै । सब कोउ भल मन माँहि विचारै ॥
छाप तिलक तन शंष चक्र धर । तनक कपट नहिं बाहर अंतर ॥
अपनो मानि अमानि न जानैं । औरनि के सनमान बखानैं ॥
जहाँ तहाँ हरि ही कहुँ देषै । हरि बिनु और कछू नहि लेषै ॥
सुष दुष माहि परे संसारा । साधु रहैं सुष दुष सों न्यारा ॥
राग द्वेष जिन्हकें कछु नाहीं । बाल स्वभाव रहैं जग माहीं ॥
या बिधि भक्त सुभक्त कहावैं । और भक्त को नाम धरावैं ॥
विष को नाम कहत जग मीठा । नाम धरैं मीठा नहि दीठा ॥
कनक[2] धतूर नाम एक कहना । देषे सुनें न गढ़ाए गहना ॥

दोहा— विष्णु भक्त औ पुन्य क्रत लाल जिते जग माहि ।
क्रोध लोभ मत्सर कुबुधि तिन्हकें उपजै नाहि ॥७५॥

कश्यप औ जमदग्नि रिषि दशरथ बसुदेव राइ ।
भक्ति हितैं प्रभु लाल के पुत्र भये हरि आइ ॥७६॥

इति श्री अवधविलासे बुद्धिप्रकासे सबगुनरासे भक्तहुलासे पापविनासे कृत लालदासे ग्रंथारम्भे प्रथमः विश्रामः ॥१॥

दोहा ७५ के अन्तर्गत—

१ रामकृष्ण·········अन्तरजामी=लालदास ने राम, कृष्ण, गोविन्द, गुपाल, सीतापति, रघुवर, वासुदेव, विश्वेश्वर, नारायण, हरि, माधव, मधुसूदन, मुरारी के विविध नामों को अभिन्नता प्रदान करके सांस्कृतिक समन्वय का संकेत किया है। चंददास ने भी अभेद रूप में सांस्कृतिक समन्वय पर बल दिया है—

"नारायण निर्गुण जगतारन । नर हर हरी हरी भवहारन ।
कृष्ण कष्ण जगदीश मुरारी । राम राम रघुकुल अधिकारी ।
माधव मुकुन्द मनोहर श्यामं । सीतारमण श्याम हरि रामं ।"

(शिवसिद्धसारंगी, चन्ददास, हस्त० चंददास शो० सं० प्रति)

पाठान्तर : २ कनक धतूर······ ·····गहना=यह चौपाई छ० प्रति में नहीं है।

:—: अथ द्वितीय विश्राम :—:

चौ०—पुरी अयोध्या कहूँ बषानी। जा बिधि भूमंडल पर आनी ॥
ब्रह्मा सृष्टि करन अनुरागे। मनहीं करि जग रचनें लागे ॥
मन तैं होइ जाइ बन माहीं। तप ही करै और कछु नाहीं ॥
सनकादिक रिभु आदिक जेते। माया रहित भये सब तेते ॥
जे उपजे तितने ही लेषा। तिन्हतें बढ़त और नहिं देषा ॥
तब ब्रह्मा मन कीन्ह बिचारा। या बिधि नहिं बढ़िहै संसारा ॥
तब दक्षिण[1] भुज मर्दन कीन्हा। स्वायंभुव भये दर्सन दीन्हा ॥
पुनि बाएं भुज मथत अनूपा। कन्या प्रकट भई सतरूपा ॥
बिषय रहित मन माँहि सभागे। एऊ जाइ करन तप लागे ॥

दोहा— दरश परस संकल्प औ मैथुन तै पुनि धार।
चारि भाँति करि लाल कहि होत प्रजा बिस्तार[2] ॥७७॥

चौ०—ब्रह्मा बिष्नु रुद्र सनकादिक। गए जहाँ दोऊ तप साधक ॥
पुत्र पुत्र[1] स्वायंभू ज्ञानी। अब कछु कह्यो हमारो मानी ॥

पाद टिप्पणियाँ

दोहा ७७ के अन्तर्गत—

१ तब दक्षिण·········सतरूपा=स्वायंभू 'शतपथब्राह्मण' के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र हैं। 'अवधविलास' में ब्रम्हा की दक्षिण भुजा के मर्दन से स्वायंभू तथा बांई भुजा के मर्दन से शतरूपा के जन्म का उल्लेख किया गया है।

पाठान्तर : २ प्रस्तुत दोहा छ० प्रति में अनुपलब्ध है।

दोहा ७८ के अन्तर्गत—

१ पुत्र पुत्र···भाँति बषाना=भागवतपुराण में स्वायंभू के विरक्त हो जाने, राज्य छोड़ देने तथा अपनी पत्नी के साथ तपस्या करने की कथा वर्णित है। 'अवधविलास' में स्वायंभू राज्य छोड़कर तप नहीं करते बल्कि राज्य की अपेक्षा तप को श्रेष्ठ मानकर राज्य नहीं करना चाहते। 'शतपथ ब्राम्हण' में प्रजा की कामना से प्रेरित होकर स्वायंभू मनु आराधना में प्रवृत्त होते हैं। (दे० १. ८. १. ७) भागवत पुराण में स्वायंभू के विरक्त होने, राज्य छोड़ देने तथा अपनी पत्नी के साथ वन में तपस्या करने की कथा वर्णित है (दे० स्कंध, ८. अध्याय १)। 'अवधविलास' में भी स्वायंभू शतरूपा के साथ तपस्या में निमग्न हैं।

तजिए तप होइए अब राजा । प्रजा बृद्धि सृष्टि कैं काजा ।।
बोले मुनि जोरे कर दोई । तप तैं राज्य भला नहिं होई ।।
राज्य करत होई अभिमाना । जहँ अभिमान दोष तहँ नाना ।।
राज्य करत अधगति कौं जइए । तप के करत स्वर्ग कहँ पइए ।।
स्वायंभू तप के गुण जाना । राज्य दोष बहु भाँति बषाना ।।
तब बिधि बिष्नु कहैं समुझाई । धर्म करत सब पाप नसाई ।।
नित्य प्रात पूजा अस्नाना । संध्या होम पाठ जप दाना ।।
जैसें लोह लोह सों फाटैं । तैसें कर्म कर्म करि काटैं ।।
जो करिए सोइ कर्म कहावै । एक अशुभ एक शुभ होइ आवै ।।
शुभ तें होइ अशुभ को नासा । जैसे पावक काठ बिनासा ।।

दोहा—जुवा चोरी मांस मद्य निंदा औ परनारि ।
मिथ्या तामस लाल कहि आठउ अशुभ निवारि ।।७८।।

चौ०—जीवन बृत्ति तीनि जग माहीं । कृष्य व्यापार प्रतिग्रह षाहीं ।।
बनिज करत बिढ़ता कछु पाई । दशा अंश दीजै बिलगाई ।।
जो कोउ दान बिराना लेई । चौथाई ता माहिं सु देई ।।
अंस बीसवां बेद बषाना । देत होत निहपाप किसाना[१] ।।
सेवा[२] करि पावै कछु केई । जथा शक्ति तामैं सोउ देई ।।
राजा होइ खजाने[३] त्यागै । ताकौं राज्य दोष नहिं लागै ।।
तजै अनीति नीति पथ चालै । ब्राह्मण गऊ प्रजा प्रतिपालै ।।
जाकें राज्य बिप्र सुख पावै । जप तप धर्म नेम होइ आवै ।।
तासों षष्ठ अंस कहं पाई । राजा पाप दोष तरि जाई ।।
मुष तैं बिप्र बाहु तैं राजा । हृदय बैश्य पग सूद्रहिं साजा ।।
चारि वर्ण के कर्म हैं भाषे । भिन्न भिन्न तिन्ह के करि राषे ।।

---

७८. तैत्तिरीय उपनिषद (दे० २. ६. १) में प्रजा प्राप्ति के उद्देश्य से तप करने का उल्लेख है तथा प्रश्नोपनिषद् में प्रजापति होने की कामना है–"प्रजा कामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत (दे० १. ४.) । 'अवधविलास' में तप का उद्देश्य न तो प्रजा प्राप्ति है और न प्रजापति की कामना । तप का उद्देश्य अखंड भक्ति भावना है ।

दोहा ७८ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ देत होत नहिं पाप किसाना । (ञ० प्रति)

२ सेवा करि......सोउदेई=प्रस्तुत, पंक्ति छं० प्रति में अनुपलब्ध है ।

३ खजाना (छ० प्रति) ।

सम दम तप अरु शौच बिशेषो । क्षांति अहिंसा आर्जव देषी ।।
ज्ञान विज्ञान औ आस्तिक पाऊ । ए ब्राह्मण के सहज स्वभाऊ ।।
सौरज तेज औ धृत्यरु दाक्ष्यं । युद्ध विषय अपलायन पाक्ष्यं ।।
दान जो ईश्वरता लीए रहई । क्षत्री कर्म स्वभाविक इहई ।।
कृषि गोरक्ष्य बनिज ही करना । वैश्य कर्म स्वाभाविक बरना ।।
तीनि बरन सेवा करि लेई । शूद्र कर्म स्वाभाविक एई ।।
अपनेइ अपने कर्म जो होई । पावै मुक्ति परम पद सोई ।।
करै कर्म जो नर विपरीती । परै नर्क इह वेद है रीती ।।
अब साधारण धर्महिं कहिए । चारों वरण ताहि कियो चहिए ।।
पातक पंच[४] होत नित जनहीं । सूना पंच[५] कहत बुध तिन्हहीं ।।
ऊषरि[६] जांत बढ़नि अरु चूल्ही । गागरि[७] पानि रहत तेहिं मूली ।।

---

४ पातक पंच.........नहिं कोई—मनुस्मृति के आधार पर पांच बध (हत्या) स्थानों एवं उनसे बचने के लिए पाँच महायज्ञों को सम्पादित करने का विधान स्वीकृत किया गया है ।

५ सूना=हत्या (बध) । मनुस्मृति में पञ्च सूना का प्रयोग किया गया है । लालदास ने 'सूना पंच' कहा है, यह मनुस्मृति से ही ग्रहण किया गया है ।

६ उषरि जांत...मूली=घर में होने वाली पाँच वस्तुएं जिनसे जीव हिंसा होने की संभावना होती है—ये पांच हैं चूल्हा, चक्की, बुहारी, ओखली, और जलपात्र ।

"पंच सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोद कुम्भश्च वध्यते यास्तु वाहयन् ।।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।
पंच क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ।।
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ।।"

(मनुस्मृति, ३।६८. ६९. ७०)

गृहस्थ के यहाँ पांच वध (हत्या) के स्थान सदा ही होते हैं । चूल्हा, चक्की, कण्डनी, जल का कुम्भ और मार्जनी—ये पांच हैं, जिन्हें प्रतिदिन करते हुये गृहस्थ पापवद्ध होते हैं । महर्षियों ने इनके निराकरण के लिए पांच महायज्ञ प्रतिदिन करने का विधान निश्चित किया है । अध्ययन करना ब्रह्मयज्ञ होता है, तर्पण करना पितृ-यज्ञ है,होम करना, देव सम्बन्धी यज्ञ होता है, वलि वैश्व देव करना भूत-यज्ञ होता है और घर पर समागत अतिथियों का पूजन एवं सत्कार करना नृयज्ञ होता है ।

बीस स्मृतियां, आचार्य पं० श्री राम शर्मा, पृ०९५

करै पंच जज्ञ बेद बषानो । सो निहपाप रहै नित प्रानो ।।
पूजा देव होम अरु श्राधा । जप स्तव अरु अतिथि अराधा ।।
जज्ञ शेष भोगो जे[८] होई । पातक ताहि लगे नहिं कोई ।
आपु पचाय आपु हो षाई । सो नर अधम अधोगति पाई[९] ।

दोहा— बरनाश्रम के धर्म ए कहे बेद विधि लाल ।
जो अपने धर्महिं चलै तौ हरि होहिं दयाल ।।७९।।

चौ०— और धर्म हैं अंस उधारन । भक्ति धर्म सबको साधारन ।।
मेरे जनम कर्म जो जानै । निस दिन कहत सुनत मन मानै ।।
गृह बिवहार तपोवन माहीं । तौ कहुँ रहहु कछू भय नाहीं ।।
जो कछु षान पान मन भावै । जप तप दान होम होइ आवै ।।
जो सब मोहि समर्पन करई । अहंकार मन महिं नहि धरई ।।
शुभ अरु अशुभ कर्म फल त्यागै । ताकहुँ कर्म कछू नहिं लागै ।।
कर्म[१] महा गति गहन बताई । आन करै आनहिं लगि जाई ।।
और सुनो बिधि कहत हौं आगे । पर कृत पाप पुन्य जेहि लागे ।।
सत जुग देस ग्राम त्रेता जहिं । द्वापर जाति करै जोइ कलि महिं ।।
मैथुनात पुनि एक सिंहासन । भोजन करत एकही बासन ।।
भले बुरे संग जो होइ आवै । पाप पुन्य आधे फल पावै ।।
यजत पढ़ावत जेंवत पांती । चौथाई लागत यहि भांती ।।
छुवब सराहि संभाषन करना । पावै दशा अंश फल बरना ।।
दरसन करत श्रवन अरु ध्याना । पाप पुन्य शत अंश बषाना ।।
चुगली निंदि धिकारै काहो । पातक लेत पुन्य देइ ताहो ।।
धर्म नेम तप करत है कोई । सेवा करि साभी लहि होई ।।
पंकति भेद करै जो काहो । षडा अंश सुकृत देइ ताहो ।।
संध्या होम करत असनाना । जप पूजा मै बैठि बिधाना ।।
संभाषन सपरस जेहि कीना । षडा अंश सुकृत तिनि दीना ।।
धन आनहिं करै आन सुधर्मा । धनबारे कहँ होत है धर्मा ।।

पाठान्तर : ८ जे भोगी (छ० प्रति) शब्द विपर्यय ।
९ अधोगति जाई (छ० प्रति)

दोहा ८० के अन्तर्गत—

१ कर्म महागति गहन बताई—लालदास के इस कथन में गीता (४/१७) के **'गहना कर्मणो गतिः'** का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

जे चुराय धन धर्म कराहीं । लागै पाप धर्म कछु नाहीं ॥
करज काढ़ि पुनि देइ न पाए । आपु मुए धन धर्म लगाए ॥
ताको फल बिवहरिया पावै । करजदार शिर भार चढ़ावै ॥
पाप पुन्य के करतहि काजा । प्रेरे बुद्धि देइ अरु साजा ॥
ताको षडा अंश फल होई । देषै सुनै लहै कछु सोई ॥
शुभ अरु अशुभ होइ कछु काजा । षडा अंश परजा तें राजा ॥
शिषि तें गुरू पुत्र तें ताता । स्त्री तें पति अर्द्ध बिष्याता ॥
जाकों वृत्ति देइ जो कोई । दाता होइ षडांशी सोई ।

दोहा— लाल दान को आपुनों माल दीजिये काहि ।
टहल करै जो धर्म की दशा अंश होइ ताहि ॥८०॥

सुकृत दुहकृत संग करि परकृत लगत है धाइ ।
यह मत पदमपुरान को किह्यो सो लाल सुनाइ ॥८१॥

चौं० — हरि हित बचन कहे समुझाई । स्वायंभू बोले मन भाई ॥
साधु सुबुद्धि परोहित दीजै । पाइ पूज्य तब राज्यहि कीजै ॥
बोलि बशिष्ठ कहै बिधि बानी । होहु परोहित मन के मानी ॥
कहत बशिष्ठ[१] परोहित होई । राज दोष भागी होइ सोई ॥
है दश स्वान समान कुंहारा । दश कुंहार सम रजक निहारा ॥
दश धोबी सम गनिका पेखी । दश गनिका सम नृपति बिशेषी ॥
दश राजहि सम एक परोहित । ताही तें इह होत अनोहित ॥
बोले हरि तुम कहुँ कछु नांहीं । तुम जिनि भर्म धरहु मन मांहीं ॥
सोषत सबहि रसनि रवि जैसे । सोषत अगनि स्वाद सब तैसे ॥
सोषत सबहि पवन अरु पानी । सोषत सबहि तथा ब्रह्म ज्ञानी ॥
कर्म अकर्म न बन्धन मुक्ता । तुम निहकर्म सदा मम जुक्ता ॥

दोहा ८२ के अन्तर्गत—

१. कहत बशिष्ट……मम जुक्ता=वशिष्ठ द्वारा स्वायंभू को कर्म की प्रेरणा का उल्लेख नवीन है । तप को छोड़कर जीवन के प्रति उल्लास तथा कर्म के प्रति आस्था का भाव उत्पन्न किया गया है । 'कामायनी' में महाकवि प्रसाद ने श्रद्धा के माध्यम से मनु को कर्म सौन्दर्य की मनोभूमि में जीने की प्रेरणा दी है—'तप नहीं केवल जीवन सत्य', 'कर्म का भोग, भोग का कर्म यही जड़ चेतन का आनन्द,' 'काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग, इच्छा का है परिणाम,' जैसे वाक्य इसी सूत्र का पल्लवन करते हैं ।

अनइच्छा[२] परइच्छा चरई । स्वे इच्छा कछु कबहुँ न करई ॥
सिद्धि असिद्धि औ काज अकाजा । दुष सुष हानि लाभ के साजा ॥
राग द्वेष महिमा अपमाना । लगै न कर्म जो होइ समाना ॥
लेत है कौन देत को दाता । कौन पत्य गृह बेद विख्याता ॥
जैसें कर मुष महिं कछु देई । आपुहि देत आपुही लेई ॥
ज्ञानी होइ न मानैं काहो । दाता भुगता आपुहिं आही ॥

दोहा—मन जग सुष सों आसक्त कहत ब्रह्म हम जान ।
कर्म ज्ञान दोऊ तजे अंतज ताहि बषान ॥८२॥

चौ०— कर्म[१] अकर्म बिकर्म है भेदा । समुझत तिन्हहिं लहत कवि षेदा ॥
जोइ करिये सोइ कहियत कर्मा । नहिं करिये सोइ जानि अकर्मा ॥
निषध कृया करिये कछु जोई । तिन्हहिं बिकर्म कहत सब कोई ॥
समुझै तिन्हहिं चाहिये प्रानी । बिनु समझैं नहिं कर्म बिधानी ॥
कर्महिं माहिं अकर्म जो देषै । आहि अकर्म कर्म करि लेषै ॥
हरि के अर्थ कर्म कछु करना । सोइ निहकर्म कबिन्ह कहि बरना ॥
नित्य कर्म तजि बैठे होयें । तौ ताहि कर्म लगत बिनु कीयें ॥
पुनि इकु भेद और है राषा । सुनहु ताहि ज्ञानिन्ह जो भाषा ॥
इन्द्रिय कर्म[२] करत कछु जानैं । आतम तहाँ अकर्त्ता मानैं ॥

२ अनइच्छा..........कबहुँ न करई=कर्मों का विवेचन करते हुए अनइच्छा (अनैच्छिक कर्म), परइच्छा (अन्यैच्छिक कर्म) तथा स्वेइच्छा (स्वैच्छिक कर्म) भेद बताये गये हैं ।

दोहा ८३ के अन्तर्गत—

१ कर्म अकर्म विकर्म है भेदा=लालदास ने कर्म, अकर्म, विकर्म नामक तीन भेद बताये हैं । यह वर्गीकरण गीता (४/१७) के अनुसार ही किया गया है ।

"कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं च विकर्मण: ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति: ।"

मध्वाचार्य ने कर्म के तीन भेद निर्दिष्ट किये हैं—विहित, निषिद्ध तथा उदासीन । कर्म अकर्म का विवेचन ऐतरेय ब्राह्मण, १/४ तैत्तिरीयोपनिषद् १/११/२, वृहदारण्यकोपनिषद् १/४/१७, श्वेताश्वतरोपनिषद् ६/११, महाभारत एवं गीता में विस्तार पूर्वक वर्णित है ।

२ इन्द्रिय कर्म......माने= कर्मेन्द्रियां ही कर्मों का सम्पादन करती है । आत्मा को कर्तृत्व भाव से पृथक रखा जाय ।

पुनि ताहि फेरि बिचारै मोई । आतम शक्ति विना नहिं होई ॥
जैसे रबि तै जग ब्यौहारा । करि ब्यौहार रहै रबि न्यारा ॥

दोहा— हरि कै हित सोइ कर्म कहि है विकर्म सुर काज ।
ना हरि हेत न स्वर्ग हित लाल अकर्म सो साज[3] ॥८३॥

चौ०— यह मत जब भाष्यो भगवाना । सुनि बशिष्ठ आज्ञा तब माना
बिधि कहै पुत्र होह ब्रतधारी । आगे लाभ होइगो भारी ॥
स्वायंभू[1] बोले शिरु नाई । राज थान प्रभु देहु बताई ॥
तब ब्रह्मा तहाँ हरिहि निहोरी । राज थान माँगेउ कर जोरी ॥
पुरी अजोध्या सम पुर नाहीं । रहति सदा बैकुंठहि माहीं ॥
सोइ लै दीन्ह प्रभू मन भाई । स्वायंभू लई सीस चढ़ाई ॥
अवधपुरी भू मध्य बिराजा । तहाँ भए स्वायंभू राजा ॥
स्वायंभू मनु के सुत होई । प्रियब्रत उत्तानपाद भए दोई ॥
कन्या तीन भई नवहूती । देवहूति आकूति प्रसूती ॥
मनु[2] ते मनुष्य भए बिस्तारा । तातें नाम मनुष्य अग धारा ॥
दोहा —कटि कान्ती[3] पग अंतिका नाभि द्वारिका सोइ ।

हिय माया कंठ मधुपुरी काशि नाक शिर औधि ॥८४॥

पाठान्तरः—३ 'कर्म अकर्म······अकर्म सो साज' ये पंक्तियाँ छ० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

दोहा ८४ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १. 'स्वायंभू मनु······नाक सिर औधि' तक का अंश छ० प्रति मे अनुपलब्ध है ।

२. मनु से मनुष्य भए बिस्तारा=मनु से मनुष्य सृष्टि का विस्तार हुआ । मानव सृष्टि के प्रवर्तक के रूप में मनु को मान्यता प्राप्त है ।

३. कटि कान्ती·········शिर औधि=सम्पूर्ण राष्ट्र को विग्रह के रूपक के माध्यम से अयोध्या को शीर्ष कहा है एवं अन्य धार्मिक स्थलों को शरीर के अन्य अंगों के रूप में ग्रहण किया है ।

कान्ती—काँची, काँचीपुरम् । यह द्रविड़ या चोलदेश की राजधानी पालार नदी के तट पर बसी है, जो मद्रास से ४३ मील पर स्थित है ।
अंतिका=अवंतिका, माया=मायापुरी, काशी=वाराणसी, औधि=अयोध्या ।

चौ०— चौरासी जोजन[1] परमाना । बसी कनक मय ग्रन्थ बषाना ।।
कोस छतीस तीन सय घेरा । कोस आठ दस मधि चहुँ फेरा ।।
कोउ द्वादश योजन अनुमाना । ग्रन्थान्तर है होत बषाना ।।
पुनि कहुँ है हरिबंश सुनावा । नृपति अजोधन[2] अवध बसावा ।।

दोहा—एक कल्प इहि भाँति इह बसी अजोध्या आइ ।
लाल एक विधि और है सुनहु कहूँ समुझाइ ।।८५।।

चौ०— आदि एक नारायण नामा । ताके नाभि कमल एक जामा ।।
कमल माँहि ब्रह्मा उपजाए । ब्रह्मा के जु मरीचि कहाए ।।
ताके गृह कश्यप औतारा । सबके बड़े वंश बिस्तारा ।।
कश्यप सुत सूरज सब जाना । ताके मनु भये पुत्र सयाना ।।
मनु के भये इक्ष्वाकु बिमल मति । पाए राज्य भए पृथिवीपति ।।
तिहिं मनु पहिं मांग्यो सुषदाई । उत्तमपुर इकु देहु बताई ।।
तब मनु गये पितामह पाँहीं । बैठे ब्रह्म लोक रहे जाहीं ।।
ब्रह्मा चले बिष्नु पहिं आवा । बिष्नु ताहि गोलोक बतावा ।।
ब्रह्मा कहै देहु इकु धामा । जहाँ करै मनु निज बिश्रामा ।।
बिधि के बचन सुनत मनमाना । कृपा सिंधु बोले भगवाना ।।
तीरथ बहुत रहत जेहि ठौरा । सप्तपुरी सब कइ शिरमौरा ।।
जाइ हाथ डारहु जहां एहू । प्रथम हाथ आवै सोइ लेहू ।।
बिधि चलि गये पुरी जहां राजै । अवधपुरी सब ऊपर भ्राजै ।।
ब्रह्मा हाथ पसारे जाई । प्रथमहिं हाथ अयोध्या आई ।।
मथुरा माया काशी कांती । द्वारावती अंतिका पांती ।।
और जे हुती और कैं हेठी[1] । जहाँ की तहाँ रही सब बैठी ।।
मनु लै तब इक्ष्वाकहि दीन्हा । सादर सहित शीश धरि लीन्हा ।।
अहो पुत्र इह हरि घर जानौं । याहि ग्राम मन महिं जिनि मानौं ।।

दोहा ८५ के अन्तर्गत—

१ जोजन=योजन । एक योजन चार कोस, अथवा ८ मील अथवा २३,००० गज का होता है। अल्बेरूनी ने इसे हिन्दुओं में दूरी नापने की माप बताया है।

२ अजोधन=हरिवंश पुराण के मत का प्रतिपादन करते हुए अयोधन द्वारा अयोध्या बसाने का उल्लेख ।

दोहा ८६ के अन्तर्गत—

१ हेठी=अप्रतिष्ठा ।

अवधपुरी[२] त्रैलोक्य बिष्याता । अपने कर करि रचो बिधाता ।।
पशु पंक्षी नर मरै जु कोई । सहजहिं मुक्त अजोध्या होई ।।
बिष्नु चक्र डारे अस भाषौ । जहँ इह परै पुरी तहाँ राषौ ।।
बीज रूप सूक्षम लै धारा । चारि असी जोजन बिस्तारा ।।
चक्राकार बस्यो पुर ऐसा । पूरन[३] परम चन्द्रमा तैसा ।।
जैसे बिबिध चित्रपट होई । राषै ताहि समेटिहि कोई ।।
पुनि ताको कोउ षोलि दिषावै । मूरति सबै प्रगट होइ आवै ।।
तैसे अवध रही जेहि भाँती । बसत भई तेहि भाँति सुहाती ।।
नहिं आकाश अजोध्या ऊपर । रहति है चक्र सुदर्शन ऊपर ।।
परेउ चक्र जेहि ठहर रह्योई । नाम चक्र[४] हरि तीर्थ भयो ई ।।

दो० — तेल बूँद[५] जल माँहि जिमि परत करत विस्तार ।।
तैसे अवनी पर अवध धरतहिं भई अपार ।।८६।।

---

२ अवधपुरी त्रैलोक्य·········सुदर्शन ऊपर=अयोध्या के ऊपर आकाश न होने तथा सुदर्शन के ऊपर स्थित होने का उल्लेख कवि ने किया है।

अयोध्या (साकेत) को **अथर्ववेद** में दिव्य प्रकाश से वेष्टित कहा गया है—

"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या
तस्यां हिरण्मय: कोश: स्वर्गो ज्योतिषावृत: ।"

अथर्ववेद, १०/२/३१

वशिष्ठ संहिता में अयोध्या को त्रिपाद विभूति से ऊपर स्थित, कहा गया है—

"वरेण्या सर्वलोकानां हिरण्मयचिन्मया जया ।
अयोध्या नन्दिनी सत्या राजिता अपराजिता ।।
कल्याणी राजधानी या त्रिपादस्य निराश्रया ।
गोलोक हृदयस्था च संस्था सा साकेतपुरी ।।"

अयोध्यादर्शन (में उद्धत) पृ० १

३ पूरन परम चंन्द्रमा तैसा— पूर्णिमा के श्रेष्ठ चन्द्रमा की तरह ।

४ चक्र हरि तीर्थ=चक्रतीर्थ । चक्रतीर्थ की गणना तीर्थों के साथ को गयी है—

"वह्नितीर्थं चन्द्रतीर्थं नागतीर्थं तथैव च ।
चक्रतीर्थं वामनं च गो प्रदान फलं लभेत् ।।"

५ तेल बूँद···बिस्तार=तैल का बूँद जल में पड़ते ही विस्तार कर लेता है। कवि की इस उक्ति में महाकवि मङ्खक की निम्न श्लोक की प्रतिच्छाया दर्शनीय है—

"विना न साहित्य विदा परत्र
गुण: कथञ्चित् प्रथते कवीनाम् ।
आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव
विस्तार मन्यत्र न तैलबिन्दु: ।"

(भारतीय साहित्यशास्त्र में उद्धृत,—मङ्खक

चौ०— विश्वकर्मा अपने कर बाना । कहत बनत नहिं रूप बिधाना ।।
ठौर अनेक अनेक प्रकारा । रहे जहाँ जाको अधिकारा ।।
चारि बरन के रचे ठिकाना । उत्तम मध्यम बसे सयाना ।।
बिप्र बशिष्ठ आदि रहैं जेते । संखया कहुँ सुनो घर तेते ।।
इकइस अर्ब पाँच सय क्रोरी । लक्ष उनत्तरि द्विज घर जोरी ।।
एते बिप्र वृत्ति अधिकारी । अब रिष्य कहों सुनो ब्रतधारी ।।
चौदह लाख इकोतर धामा । जप तप करैं यज्ञ के कामा ।।
क्षत्रिन के घर जे कछु आहीं । संष्या कहौं सुनौ अब ताहीं ।।
अर्ब एक सय क्रोरि इकासी । चारि लाष पुनि कहुँ प्रकासी ।।
चारि हजार दोइ सय जेते । क्षत्री अवध बसत भए एते ।।
चौदह पद्‌म एक सय अर्ब । बनिया बैश्य बसत भये सर्ब ।।
पद्‌म तीन सय अरु इक पद्‌मा । बसत भए शूद्रन के सद्‌मा ।।
तीन वर्ण की करहिं सुश्रूषा । बेद न बनिज ते गनहिं पुरुषा ।।
पांउर अवर प्रजा अवशेषा । ते जत रहे करै को लेषा ।।
बानप्रस्थ ब्रह्मचारि सन्यासी । ते तहाँ भए असंष्यन बासी ।।

दो०— जिमि दर्पन मै देषिए घर तरु गिरि आकास ।
तैसें लाल अनन्त गृह अवधि मध्य आभास ।।८७।।

चौ०— जामल रुद्र कथा इह पाई । लालदास तमि कहि समुझाई ।।
जामल रुद्र अनंतहिं होई । कल्प-कल्प के भेद है सोई ।।
अपने-अपने गृह के पासा । बाग तडाग कूपी गो बासा ।।
आन-आन की सीउँ न चापै । राजनीति भय ते सब काँपै ।।
चोर जार भय होइ न पाई । जो कोउ करै तो जाइ बिलाई ।।
घर-घर सुष संपति अधिकारा । दया धर्म घर-घर बिस्तारा ।।

---

८६ का शेष—

"तैल बिन्दु' काव्यशास्त्रीय महत्व का शब्द है, जिसे लालदास ने 'तिलबूँद' कहा गया है। काव्यशास्त्र में प्रतिबिम्ब कल्प के ८ प्रकारों में 'तैल बिन्दु' भी एक प्रकार है। संक्षिप्तार्थ विस्तरेण तैलबिन्दुः। लालदास ने 'तेल बूँद, और 'विस्तार' पदों से इसी काव्यशास्त्रीय 'तैल विन्दु' के बिम्ब से अवध के विस्तार का संकेत किया है।

दोहा ८७ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : जिमि दर्पन······आभास पंक्ति छ० प्रति में अनुपलब्ध है।

बरनाश्रम अपनी मरजादा । रहैं सदा सब नहीं बिवादा ।।
माता पिता पुत्र सेवकारी । अप अपने पति पूजहिं नारी ।।
या बिधि अवधपुरी परकासा । मानहुँ बने विकुंठ[1] निवासा ।।
कनक कोट चहुँ ओर बिराजै । ता ऊपर मनि कंगुरे[2] भ्राजै ।।
परिषा अति गम्भीर मरोरा । मनु माया दुस्तर चहुँ ओरा ।।
गोपुर चहुँ दिस चारि अनूपा । महा बिशाल मुक्ति जनु रूपा ।।
ज्ञान बिराग चारि दरवाजे । भक्ति योग प्रतिहार बिराजे ।।
हाट बजार अनन्तन्ह देषा । दिगभ्रम होत न बीथिन्ह लेखा।।
गज रथ बृषभ तुरग अधिकाई । आवत जात पंथ नहिं पाई ।।

दोहा— कथा कीर्तन नट भटा पातुरि रूप विबेक ।
कहुँ बाजीगर पेषना कौतुक होहिं अनेक ।।८८।।

चौ०— कंचन के घर महल जहाँ लौं । मनिमय षचित रचित सब तहँ लौं।।
हीरक मनि नग फटिक नीलमनि । हरित अक्ष मनि चिलक मनि गनि।।
पद्मराग मनि सूरज कांती । करत प्रकाश दीप की भाँती ।।
गज मुक्ता बिद्रुम को डारा । चूनी पना लाल जौंहारा ।।
कहुँ माला कहुँ लगे किवारनि । कहुँ बेदी कहुँ बने दुवारनि ।।
वेदी घर-घर लगति सुहाई । कहुँ कि कनक कहुँ रूप[1] बनाई ।।
द्वार-द्वार हीरा मनि मोती । जगमगात रवि शशि की जोती ।।
पशु पक्षी अरु नर तरु बेली[2] । गृह-गृह चित्र बिचित्र लिषेली ।।
कहुँ फटिक कहुँ मनिमय षंभा । परत जहाँ प्रतिबिम्ब अचम्भा ।।

दोहा ८८ के अन्तर्गत —

१ बिकुन्ठ बैकुंठ । रसिक साधकों के लिये साकेत नित्य लीलाभूमि है । 'साकेत' को 'बैकुंठ' भी कहा गया है—"तत्र मध्यमपादप्रदेशेऽमिततेज: प्रवाहकनया नित्य बैकुंठो विभाति ।" त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्, अ० १ ।

२ कंगुरे—कंगूरे । कंगूरा को संस्कृत में कपिशीर्ष कहते हैं ।

दोहा ८९ के अन्तर्गत—

१ रूप— रूपा (चाँदी) । जायसी ने चाँदी के अर्थ हेतु रूपा शब्द का प्रयोग किया है ।

पाठान्तर : २ नर तनु बेली (छ० प्रति)

आवत जात फिरत नर नारी । भीतिन्ह महिं मुष लेति निहारी ।।
कोमल चरन धरत जहाँ ताहीं । रज कंकर त्रिण परसत नाहीं ।।
महलनि पर कलसा धुज सोहै । देषि-देषि सोभा सुर मोहै ।।
ऊँचे महल धवल गिरि निदरा । कलसा घसत चलत है बदरा[३] ।।
अवधपुरी[४] सब दिन सुषदाई । बरषा रितु कछु अधिक सुहाई ।।
दरस करत हैं देव लुभाई । मनहु बिवान चंग छवि छाई ।।
रिध्य-सिध्य नव निद्धि हजारन्ह । बनियाँ होइ बैठे बाजारन्ह ।।
देव लोक तजि देव पराने । अवध बसे नर होइ सयाने ।।
गनपति सरसुति सुरगुर पावन । जहँ तहँ लरिका बैठ पढ़ावन ।।
दरवाजे दरवाज सुहावा । महादेव चौपारि छवावा ।।
सिद्धहु ते तिन्हँ टहल लगाई । भिक्षा मुक्ति देहु रघुराई ।।
द्वारे लाल लगे रहैं ठाढ़े । देषन कों रामहिं रुचि बाढ़े ।।
आगम जानि जीव ललचाने । आवहिंगे हरि अवध ठिकाने ।।
बसी अवधपुरि सुषद सुहाई । सोभा छबि कछु बरनि न जाई ।।
संबत होहिं सबै सुषरासी । षट् रितु सदा रहत परकासी ।।
सदा फलै फूलै बनवारी । अन्न अनन्त होइ रस भारी ।।
माँगे मेघ होहिं तिहिं काला । बूढे मरहिं मरैं नहिं बाला ।।
दूध गाइ घट भरि-भरि देहीं । बच्छ अघाइ जाइ तब लेहीं ।।
व्याज करज की चरचा नाहीं । उद्यम सफल बढ़त धन जाहीं ।।
मारन बाँध दण्ड नहिं देसा । उपजे देहिं रहैं घर सेसा ।।
घर-घर उत्सव गीत बिलासा । नित्य व्याहु जनु पुत्र प्रकासा ।।
दुषी दरिद्री रोग न काहू । चोर न एक लोग सब साहू ।।
बंधन नाम केश पशु कारन । सारि किवांर समय कहैं मारन ।।
हिंसा जीव जानि नहिं करहीं । दया धर्म दिन-दिन मन धरहीं ।।

दोहा— गंगा सब तीरथमयी सर्व देवमय राम ।
जैसे गीता ज्ञानमय अवध धर्ममय धाम ।।८८।।

चौ०— विमलापुरी देषि चहुँ धाहीं । नृप इक्ष्वाकु कहैं मन माहीं ।।
जौ इक नदी[१] होति इहिं ठौरा । तौ अस पुर भू पर नहिं ओरा ।।
इह विचार करि गुरु पहिं आवा । बहुत विनय कहि कहि शिरु नावा ।।

पाठान्तर : ३ कलसा धसत चलत है बदरा (छ० प्रति)
४ अवधपुरी......अधिक सुहाई=यह पंक्ति छ० प्रति में अनुपलब्ध है ।

अवधपुरी गुरु बसी अपारा । सोभा सबइ प्रसाद तुम्हारा ।।
एक बात जो होति गुसाँई । सुष सोभा सबके मन भांई ।।
सरिता पुर तर लेति हलोला । हय नर गज रिषि करत कलोला ।।[1]
सूरज बंश रसिक समुदाई । पेलत नाँव नवार[2] बनाई ।।
राजा नदी वैद्य धन धारी । श्रोतिय बिप्र साधु[3] उपकारी ।।
बसिये जहाँ पंच ए होई । पंडित ग्रन्थ कहैं सब कोई ।।
कन्या धन्य पिता मुष-धारी । धन्य पुत्र माता अनुहारी ।।
धन्य त्रिया पति को व्रत धारे । धन्य ग्राम जो नदी किनारे ।।
धन्य सभा पंडित जहँ पाई । पंडित धन्य कृया कुशलाई ।।
नगरी धन्य जहाँ रजधानी । राजा धन्य धर्म मनमानी ।।
तपसी धन्य क्षमा मन माहीं । राग द्वेष जाकै कछु नाहीं ।।
धन्य सोई परगुन प्रगटावे । औरन्ह के अवगुनहिं दुरावै ।।
धन्य जाति जानहुँ कुल सोई । जामहिं विष्णु भक्त कोउ होई ।।
धन्य देस जहँ दया बषाना । धन्य बिबेकी लोग सयाना ।।
आवै अतिथि आस लगि पाई । धन्य सुगेह बिमुष नहिं जाई ।।
सेवक धन्य जो आज्ञा मानै । स्वामी धन्य सेव पहिचानै ।।
धन्य[4] सती जे होहिं सयानी । जीवत देह जरावे जानी ।।
धन्य जज्ञ भाषै सब कोई । जामहिं बहुत दक्षिणा होई ।।

दोहा ६० के अन्तर्गत—

१ जो एक नदी ... कलोला=नदी से नगर का अस्तित्व सम्बर्द्धित होता है। नदी सर्वाधिक प्रमुख प्रकृति तत्व है, वह अपनी जीवन प्रदायनी तरंगों से मानव, अश्व, गज, ऋषियों के कल्लोल में सहायक होती है। नदी रसिक साधकों के नौका विहार का आधार होगी।

२ नाव नवार=नौका-विहार। रसिक साधकों में नौका विहार का लीला परक माहात्म्य स्वीकृत है—

"जल विहार सरयू सलिल करत सखी जुत लाल ।
कब देखें झीने बसन चिपट रहे छवि जाल ।।"

सीताराम शरण 'शुभलीला'
(रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० ३८०)

पाठान्तर : ३ साधु/बिप्र (छ० प्रति) शब्द विपर्यय

४ धन्य सती... जानी=प्रस्तुत पंक्ति छ० प्रति में अनुपलब्ध है।

भोजन धन्य सहित सलगाना । धन्य प्रीति निहकपट बषाना ॥
धन्य जुबा नर गुहा गंभीरा । तप करि जोबन छीन सरीरा ॥
धन्य पाइ धन होइ जु त्यागी । पर त्रिय रहित होहिं बड़भागी ॥
धन्य दरिद्री पाप न करई । सुषिया धन्य विषय परिहरई ॥
समरथ धन्य क्षमा मन आनै । दाता धन्य न दान बषानै ॥

दोहा — सतसंगति शुभ कर्म करि तन संगम हरि हेत ।
ते नर जग महि धन्य हैं जन्म सफल करि लेत ॥ ॥ ६०

चौ० — ताते प्रभु अब अस कछु कीजै । नदी होइ शोभा जस लीजै ॥
सुनि नृप बचन हँसे मुनिराई । भली बात तुम मोंहि जनाई ॥
दान पुन्य जप तप श्रुति भाषा । नदी तीर शत गुन फल राषा ॥
घर जो होइ अधम स्नाना । बापी कूपहिं मध्य बखाना ॥
उत्तम ताल तडागहि जानो । नदि उत्तम तें उत्तम मानो ॥
इह कहि मुनि मन कीन्ह बिचारा । जाउँ जहाँ बिधि पिता हमारा ॥
कामधेनु की पुत्री हइए । नाम नंदिनी ताको कहिए ॥
रहति नंदिनी मुनि कैं घरई । जो माँगै सोइ पूरन करई ॥
गये वशिष्ठ लिए संग राजा । पूछै ताहि नदी के काजा ॥
दीन्ह उपाइ सुनाइ प्रकारा । जाहु काज सब होइ तुम्हारा ॥

दोहा— नारायन के नैंन तें प्रगट भई गति दाइ ।
सरजू की उत्पति कहौं सुनो कथा मन लाइ ॥ ६१ ॥

चौ० — एक समय बैकुंठहि माहीं । नारायन जहँ नित्य रहाहीं ॥
लक्ष्मी आदि पारषद जेते । सेवा ध्यान करैं सब तेते ॥
महादेव मन महि इह आना । देषव जाइ आजु भगवाना ॥
पारवती लई संग विशेषी । तुमहूँ चल्हु जगतपति देषी ॥
नारद शारद इंद्रहु राजा । मिलि गए सुरगुरु बना समाजा ॥
रंभा आदि उर्वशी धाई । विद्याधर गन्धर्व सहाई ॥
सनकादिक ब्रह्मा मनु शेषा । जोगेश्वर बहुतै तहाँ देषा ॥
समय जानि अवसर कछु पाई । शंकर नृत्य किए मन लाई ॥
नारद यंत्र शेष संगीता । म्रदंगी नन्दी गण कीता ॥
शारद गावत ताल बजाई । पारवतीश्वर देति सुहाई ॥
इंद्र अलापत राग रसाला । थेइ-थेइ ब्रह्मा करत सुचाला ॥

तांडव[1] करि शिव श्री हरि मोहे । मनु सनकादि तालधर सोहे ।।
और अनेक समाजी जेते । गावत भएइ बजावत तेते ।।
नाचे गति संगीत अपारा । मिलि मुनि देवन्ह कीन्ह अषारा।।
गायन आठ ताल[2] धर चारी । चारि मृदङ्ग चारि बेनु धारी ।।
मम गुन बीस समाजी लहिए । उत्तम वृन्द[3] ताहि सो कहिए ।।

दोहा — काल क्रिया गुण ताल के उक्ति जुक्ति जति लीन ।
सबहिन्ह माहीं ताल धर चहिए लाल प्रवीन ।।८२।।
तीन अंग संगीत के स्वर औ नृत्य जो वाद्य ।
सो तीनौं दोइ भाँति हैं मारग देशी आदि ।।८३।।

चौ० — मारग देव लोक महँ गायो । देशी भूमंडल जो आयो ।।
कवि संगीत[1] ग्रन्थ के जेते । तिन्ह के नाम कहत हूँ तेते ।।

दोहा ८२ के अन्तर्गत—

१ तांडव= शिव ने रेचक, अंगहार, पिण्डी बन्ध आदि नृत्त—सम्बन्धी विषयों की रचना करके 'तण्डु' मुनि को सर्वप्रथम प्रदान किया । 'तण्डु' ने जिस नृत्त प्रयोग की सृष्टि की, उसका नाम ताण्डव पड़ गया —

"रेचका अंगहाराश्चपिण्डीबन्धा स्तथैव च
सृष्टा भगवता दत्तास्ताण्डवे मुनये तदा ।
तेनापि हि ततः सम्यग्गानभण्ड समन्वितः
नृत्त प्रयोगः सृष्टो यः सताण्डव इति स्मृतः ।"

नाट्यशास्त्र, ४ | २६६—२६८

'तांडव' को मांगलिक कार्यों के अवसर पर प्रस्तुत करने को कहा गया है ।

२ ताल='तल्' धातु के पश्चात् अधिकरणार्थक 'घञ्' प्रत्यय लगाने से 'ताल' शब्द बनता हैं । क्योंकि गीत-वाद्य-नृत्य ताल में ही प्रतिष्ठित होती है । लघु, गुरु, प्लुत से युक्त सशब्द एवं निःशब्द क्रिया द्वारा गीत, वाद्य, नृत्य को परिमित करने वाला काल ही ताल की अभिधा प्राप्त करता है ।

३ वृन्द=वृन्द वादन ।

दोहा ८४ के अन्तर्गत—

१ कवि संगीत……करता=गान्धर्व—विद्या के दार्शनिक ग्रन्थ प्रायः लुप्त प्राय हैं । लालदास ने जिन संगीत ग्रन्थों के रचनाकारों के नाम दिये है—उनमें नारद, भरत, शिवा, सरस्वती, दुर्गा, हनुमान, शार्दूल, काहल, कश्यप, कंबल, वायु, मतंग, हाहा, हूहू, रावण, रम्भा, शेष, अश्वतर, उषा, फाल्गुन हैं ।

नारद भरत[२] शिवा सरस्वती । दुर्गा हनूमान हैं जती ॥
सारदूल काहल[३] बहु रङ्गा । कश्यप[४] कंवल वायु मतंगा[५] ॥
हाहा हूहू रावण रम्भा । शेष अश्वतर करत अचम्भा ॥
ऊषा एक फालगुन निरता । ए संगीत ग्रन्थ के करता ॥
ते तहाँ सबै समाजी आए । महादेव नर्तक मन भाए ॥
वादि मृदङ्ग मृंदगिन्ह साजा । तब पिंगला पषावज बाजा ॥
मेलापक[६] करि साज बनाए । गनपति छन्द ताल घर गाए ॥
सबद औ मुष चाली भल चाली । कूटपाट जति चली करताली ॥
शुद्ध[७] पाट सप्ताक्षर एयं । त धि थो ठे ने हे देयं ॥

---

२ भरत=भरत मुनि रचित 'भरतमत' एवं 'गीतालंकार' प्राचीन ग्रन्थ हैं ।

३ काहल='अवध विलास' में 'काहल' संगीत ग्रन्थों का रचयिता कहा गया है । यह 'काहल' कोहल के लिये प्रयुक्त हुआ है । 'कोहल' कृत 'ताल' नामक ग्रन्थ भी इंडिया आफिस लाइब्रेरी में प्राप्त होता है; भरत के नाट्यशास्त्र से 'कोहल' नामक किसी आचार्य का नाम नाट्यशास्त्र के विकास में मिलता है—'शेष' प्रस्तारतन्त्रेण कोहलः कथयिष्यति' । 'कोहल' का नाम नाट्याचार्य के रूप में अलंकार ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है । 'कोहल' के अस्तित्व की पुष्टि दामोदर गुप्त के कुट्टिनीमत (श्लोक ८१), शाङ्गदेव के 'संगीतरत्नाकर' (११५), शिंग भूपाल के 'रसार्णव सुधाकर' (विलास१, श्लोक ५०-५२) से हो जाती है ।

४ कश्यप=कश्यप ऋषि का उल्लेख ऋग्वेद (८:११४:२), सामवेद १:१, २:४, १०, १:४:२:२) तथा अथर्ववेद (१:१४:४, २: ३३:७) में संगीत रचनाकार के रूप में मिलता है ।

५ मतंग=लालदास ने 'मतंग' को संगीत ग्रन्थों का रचयिता कहा है । 'मतंग' को 'शिंग भूपाल' ने नाट्यकर्ता माना है ।

६ मेलापक=मेलापक से आशय मिलान से है । 'अभिनव राग मञ्जरी' में 'मेल' शब्द का ही प्रयोग किया गया है—

"मेल स्वर समूह : स्याद्रागव्यंजन शक्तिमान"

मेल (थाट) स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो ।

७ शुद्ध—शुद्ध जातियाँ वे हैं, जिनमें कोई स्वर कम नहीं होता और नाक स्वर ही जिनमें अंश, ग्रह और न्यास होता है । न्यास स्वर के अतिरिक्त एक, दो या अनेक लक्षणों में विकार होने पर ये जातियाँ विकृत कहलाने लगती हैं ।

पाठाक्षर[८] है बीस बषाना । कखगघ टठडढणजभ हि जाना ॥
तथदधन र ह म एक लकारा । सुद्धा बिनु कूट पाट बिस्तारा[९]॥
त त धि धि थूं थूं नं ना प्रेरे । अक्षर चारि भेद बहु तेरे ॥
बाजा बजे जिते जहाँ आई । तिनके भेद कहूँ समुझाई ॥

दोहा — तत आनघ औ घन सुषिर बाजा चारि प्रकार[१०] ।
मुष तंती अरु जे मढ़े एक लाल झनकार ॥६४॥

चौ० — तिन्ह के नाम रूप बहुतेरे । साषा होत गये जु घनेरे ॥
कछु इक लाल कहत समुझाई । गुनिजन के मन सुनत सुहाई ॥
ढक्का[१] ढोल डमरु पविरंआ । भेरी संष मुरलि अलगुन्जा ॥
कहली श्रंग[२] नाग[३] सर बाजा । बक्री सुर सागर करि साजा ॥
तुदकी मुरलि पत्रिका साजी । मुष वीना मुष सो करि गाजी॥
दण्डी रावन हस्त बजाए । आठ प्रकार बीन मन भाए ॥
रुद्र ब्रह्म तुम्बर है बीना । जंत्री लिए जु भए लय लीना ॥
झालरि घंट कलप तरु एका । बाजे बाजन और अनेका ॥
सारिंदा चौतार द्वितारा । कठतारैं बाजत अठतारा ॥
सारङ्गी स्वर तूर सुहाई । गजक पिनाक बजे सुरनाई ॥

पाठान्तर : ८ पाटाक्षर (छ० प्रति)
९ सुध बिनु कूट पाट विस्तारा (च० प्रति)
१० बाजा चारि प्रकार—चार प्रकार के वाद्य । तत (वीणा के समान तार वाले) अनवद्य (ढ़ोलकी के समान चमड़े से मढ़े हुए) घन (ताल) कांस्यताला, दिकम् घनम् (अमरकोष), सुषिर (बाँसुरी के समान अन्दर से खाली);

दोहा ६५ के अन्तर्गत—
१ ढक्का…धौलकी चली—लालदास ने जिन वाद्ययन्त्रों का। उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं—ढक्का, ढोल, डमरू, पविरंजा, भेरी, शंख, मुरलि, अलिगुन्जा, कहली, शृंग, नागसर, सुरसागर, तुदकी, मुरलिपत्रिका, मुखवीणा, दन्डी, वीणा (रुद्र, ब्रह्म, तुम्वर) झाली, घंट, सारिंदा, चौतार, द्वितारा, गजक पिनाक, सुरनाई, सुरमण्डल, सुरबीन, तम्बूरा, हुरक, मुरज, रसपूरा, मृदङ्ग, झाँझ, झमक, चंग, उपंग, षंजरी, मोहन बाजा, जलतरङ्ग आदि ।
२ श्रंग=सींग का बना हुआ एक वाद्य-यंत्र
३ नागसर—इसे नागसुरम, नागसुर, या नागेसर भी कहते हैं । नागसर मुंह से फूंककर बनाये जाने वाला एक वाद्य है, जो दक्षिण में विशेष प्रचलित है ।

सुर मण्डल सर वीन तंबूरा । हुरक[४] मुरज बाजत रस पूरा ।।
बीन मृदङ्ग रवाब रसाला । बाजत झांझ[५] झमंक अरु ताला ।।
चग उपंग कुबज पुनि साजा । बाजत षंजरी मोहन बाजा ।।
जलतरंग बजै किंनरि[६] भलो । आवज पनब धौलकी चलो ।।
बजे अनेक एक स्वर होई । नूपुर ध्वनि ज्यादा नहिं कोई ।।
थेइ थेइ थुङ्ग-थुङ्ग ततकारा[७] । होत अनेक तान विस्तारा ।।
तत थेइ[८] तत थेइ[९] तत थेइ थेई । ता ता तो धा तो धा तेई ।।
तक-तक दिग-दिग किटि-किटि दंद । नाचत हरि संगीत सुधंग ।।
तिन्ह के पंच नाद स्थाना । नाभि हृदय इक कंठ बषाना ।।
मुख है एक कपालउ लहिए । नाद स्थान पंच ए कहिए ।।

दोहा— वायु देवता सुषिर को घन का गरुण बषानि ।
तत का ब्रह्मा देवता आनघ अगनिहिं जानि ।।८५।।
लाल ताल जति पंच है समा मृदङ्ग मानि ।
श्रुतोगता पपोलिका गोपुछाऊ जानि ।।८६।।

चौ०— तत कहि जिन्ह के तंति बिराजै । आनघ चर्म मढ़े तब बाजै ।।
सुषिर छिद्र जाकों मुष लाई । घन जो ठोकि कै ताल बजाई ।।

---

४ हुरक—स० हुडुक्का । हुड़क नामक बाजा । शार्गदेव के अनुसार हुडुक्क की लम्बाई १ हाथ, परिधि २१ अंगुल, मुख का व्यास ७ अंगुल और लकड़ी की मोटाई १ अंगुल होती है । हुडुक कंधे से लटकाकर बाएं हाथ से बीच में पकड़ कर दाहिने हाथ से बजाया जाता है ।

५ झाँझ—प्रा० झंझा । कांस्य का बना हुआ तश्तरी के आकार का जोड़ा जिसे टकराकर बजाते है । 'संगीत रत्नाकर' (११८,२-३) में कांस्य के बने १३ अंगुल चौड़े, कमल के पत्ते के समान फैले हुए दो पट्टे जिनके बीच में अंगुल भर गहरा गड्ढा पोछे की ओर दो अंगुल चौड़ा रहता है कांस्यताल कहलाते हैं । शार्गदेव ने इन्हे ही झाँझ कहा है ।

६ किन्नरी—वीणा का एक भेद । श्री सुकुमार सेन के अनुसार किन्नरी को ही चंडाल बीना कहा गया है । (प्राचीन बांगलाओ-बंगाली, पृ० ५०)

७ ततकारा—तत्कार । संगीत के पारिभाषिक शब्द 'तत्कार' कहलाते हैं । पैर के आघातों द्वारा जो बोल (शब्द) प्रकट किया जाता है, उसे तत्कार कहते हैं ।

पाठान्तर : ८ तत थेइ...धा तेई—प्रस्तुत पंक्ति छ० प्रति में अनुपलब्ध है ।

९ ता थेई, तत थेई—यह एक ऐसा तत्कार है, जिस पर पूरा कथक् नृत्य निर्भर करता है ।

देनी ताल कहत हौं जोई । जानै गुनि जाके गुरु होई ॥
द्वैसय ताल बतीस बषानो ।कहत हौं नाम कछुक इहाँ आनो॥
चित्र ताल[१] कंदुक कंदुकारी । रास ताल लघु शेषर भारी ॥
करुना सर्व एक शनिपाता । पंचम द्वितिय आदि विष्याता ॥
चतुरथ सप्तम अष्टम एका । चन्द्रकला ब्रह्म ताल बिबेका ॥
चतुर कुम्भ लोला निहसंका । इडावान लक्ष्मी है बंका ॥
कुण्ड नाच अर्जुन कुल ताला । इक्का अस्त निताल रसाला ॥
जति शेषर सिंघ विक्रम जाना । रङ्ग दो तक अरु एक कल्याना ॥
चद्र लांड जति प्रति सम ताला । संचय ग्रथि कुण्डल सु रसाला ॥
अहि गति हिमाचला ब्रह्मण्डा । विष्णु ताल पक्षिराज भ्रमण्डा॥
त्रिवटा चक्र गर्ग संष जाना । स्वर्ण मेरु इक ताल बषाना ॥
सप्त अङ्ग[२] तालन्ह के गाये । गुरु लघु पुलत अनुद्रुत गाये ॥
द्रुत बिराम अरु लघू बिरामा । एहै लाल ताल अङ्ग नामा ॥

दोहा— एक ताल रूपक त्रिपुट अठताला क्रन्च ताल ।
मठझंपा ए ताल हैं मानुष के कहैं लाल ॥८७॥
हलन चलन सब निर्त हैं कर्म चलत है लाल ।
सबद होत सब राग हैं सदा अषारा लाल ॥८८॥
वत-वत पुट औ वाच पुट षट पितु पुत्रक ताल !
उदघट संपक क्लेष्टा मारग ताल रसाल ॥८९॥

दोहा ८७ के अन्तर्गत—

१ चित्रताल……कहैं लाल=विभिन्न तालों के नामोल्लेख कवि ने किये हैं—चित्रताल (२ मात्रा एवं १५ माला की ताल), रासताल (१३ मात्रा), लघु शेखर (५ मात्रा एवं ७ मात्रा की ताल), चन्द्रकला (१५ मात्रा), ब्रह्मनाल (२८मात्रा, १४ मात्रा), चतुर ताल (१५ मात्रा) कुम्भताल (११ मात्रा), लीलावती (१३ मात्रा), लक्ष्मी (१८ माला, ३६ माला), अर्जुन ताल, (२४ मात्रा) यति शेषर (१५ माला), सिंहनाद (४० मात्रा) संग विक्रम (६४ मात्रा), चन्द्र (१८ मात्रा) चक्रताल (५ मात्रा, ३० मात्रा), विष्णु ताल (३५ माला, ३६, १७ मात्रा), संख (१०, १३ मात्रा) एक ताल (१२ मात्रा), रूपक (५,६,७,९, ११ मात्रा), त्रिपुट (९ ११, १३, माला), ध्रुवताल (१४, २१, २४, २९ मात्रा), अटताल (१० १२, १४, १८, २२, २४ मात्रा)।

२ सप्तअंग=ताल के सप्त अङ्ग इस प्रकार हैं-(आठ मात्रा) लघु (चार मात्रा), प्लुत (बारह मात्रा), अनुद्रुत (एक मात्रा), द्रुत (दो मात्रा), द्रुत विराम (तीन मात्रा), लघु विराम (पाँच मात्रा)। ताल की मात्राओं के निर्धारण में संगीत विशारद; पं० अवधेश कुमार द्विवेदी का योगदान उल्लेखनीय है।

कला[१] अङ्ग[२] जति[३] जाति[४] ग्रह[५] लयप्रस्तार[६] औकाल[७] ।
मारग[८] क्रिया[९] जु ताल के कहे प्रान दश[१०] लाल ॥१००॥
तीतर चटक जुबक कहे चाष कोकिला चारु ।
वायस कुर्कट ते भए ताल अङ्ग विस्तारु ॥१०१॥

दोहा १०० के अन्तर्गत—

१ कला=तबला अथवा पखावज बजाने की विधि अथवा शैली को कला कहते हैं ।

२ अङ्ग=ताल का विशुद्ध शास्त्रीय रूप अङ्ग कहलाता है ।

३ जति=यति । संगीत में समय नापने की रीति को यति कहते हैं । यति लय की चाल है । यह पांच प्रकार की होती है—१ समायति २ मृदंगा ३ स्रोतागता ४ पिपीलिका ५ गोपुच्छा ।

४ जाति=जाति से विभाग की मात्राओं का बोध होता है । ये पाँच प्रकार की होती है=१ त्र्यस्र, २ चतुरस्र, ३, खण्ड, ४ मिश्र, ५ संकीर्ण,

५ ग्रह=ताल के जिस मात्रा से गीत प्रारम्भ होता है, वह स्थान ग्रह कहलाता है । ग्रह चार प्रकार का होता है=सम, विषम, अतीत और अनागत ।

६ प्रस्तार=विस्तार । किसी ताल के कायदे, पलटे, रेले, टुकड़े आदि द्वारा विस्तार करने की क्रिया को प्रस्तार कहते हैं ।

७ काल=संगीत में समय की नाप ।

८ मारग=मार्ग । प्रथम मात्रा से अन्तिम मात्रा तक ताल की चाल को मार्ग कहते हैं । इसमें ताली, खाली, विभाग और मात्रा की पारस्परिक दूरी आती है ।

९ क्रिया=हथेली पर ताल दिखाने की विधि को क्रिया कहते हैं ।

१० प्रान दश=दस प्राण । ताल के दश प्राण (खम्भ) बताये गये है—

"कालो मार्गः क्रियांगानि ग्रहो जातिः कला लयः ।
यति प्रस्तार कश्येति ताल प्राणा दस स्मृताः ॥"

(काल, मार्ग, क्रिया, अङ्ग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति, प्रस्तार ये दस अङ्ग ताल के अन्तर्गत माने गये हैं । इन्हें ताल के प्राण भी कहते हैं । (तालमार्तण्ड, पं० सत्यनारायण वशिष्ठ, पृ० २२)

दोहा १०१ के अन्तर्गत—

१ ताल अङ्ग···विस्तार=जिन पक्षियों की गति से ताल का विस्तार हुआ है उनमें तीतर, चटक, जुबेक, चाष (चकवा), कोकिला, काग और कुक्कुट का उल्लेख लालदास ने किया है ।

चौ०— वारि सशब्द कया होइ लाला । वारि कहौ निहशब्द रसाला ॥
सरिगम पधनि सात स्वर एहू । तिन्ह के नाम कहों सुन लेहू ॥
षडज[1] रिषभ गांधार निषाधा । मध्यम पंचम धैवत साधा ॥
तिन्हमहि तीनग्राम करि न्यारा । मध्यम षडज ग्राम गांधारा ॥
स्वर है चारि भांति इक वादी । संवादी अनुवाद विवादी ॥
स्वर संवाद परस्पर ठानें । द्वादश भेद होत स्वर सानें ॥
दोहा— मोर पपीहा काग[2] औ क्रौंच कोकिला बाद ।
दादुर गज तें लाल कहि भए सप्त स्वर नाद[3] ॥१०२॥
चौ०— होति इकीस मूर्छना[1] जाके । जानैं भेद गुनी जन ताके ॥
सात सात त्रै ग्रामहि[2] जानी । मूरछना इकईस बषानी ॥

दोहा १०२ के अन्तर्गत—

१ षडज ....साधा—महर्षि भरत के अनुसार षडज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, और निषादवान् सात स्वर हैं।

"षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा
पञ्चमो धैवत श्चैव सप्तमश्च निषादवान् ॥"

भरत, बं० सं०, अ० २८, पृ० ४३२

लालदास का स्वर विवेचन भरत के अनुसार ही है।

पाठान्तर : २ छाग (छ० प्रति)

३ मोर पपीहा......स्वर नाद=दामोदर पंडित के अनुसार मोर ने षडज को, चातक ने रिषभ को, बकरे ने गान्धार को, काक ने मध्यम (म) को, कोयल ने पंचम (प) को दादुर ने धैवत को और गज ने निषाद (नी) को जन्म दिया इस प्रकार पक्षियों एवं पशुओं की ध्वनियों के द्वारा संगीत के सात स्वरों का प्रादुर्भाव हुआ। लालदास ने कदाचित 'म' स्वर की उत्पत्ति क्रौंच पक्षी के द्वारा मानी है।

दोहा १०३ के अन्तर्गत—

१ मूर्च्छना—क्रमयुक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहे जाते हैं—
"क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छना स्त्वभिसंज्ञिताः"।

(भरत, ब० सं०, अ २८ पृ० ४३५)

२ ग्राम—शब्द समूहवाची है, संवादी स्वरों का वह समूह ग्राम है जिसमें श्रुतियाँ व्यवस्थित रूप में विद्यमान हों और जो मूर्च्छना, तान वर्ग, क्रम, अलंकार इत्यादि का आश्रय हो। ग्राम तीन होते हैं—षडज्, मध्यम ग्राम और गान्धार ग्राम। 'ऋषभ ग्राम' को दोनों के मध्य में होने के कारण मध्यम ग्राम (मध्यग्राम) कहा जाता है—

उत्तर मुद्रा रजनी राषा । सुद्ध स्रजा उतरायत भाषा ॥
मतसर[३] कहा अभिरुह्लत जाना । अश्वक्रांता संग षडज बषाना ॥
सौबीरी हरिनाश्वा होई । कलौपनता पौरवी सोई ॥
हृषिका एक मारगी गाई । मध्य ग्राम सों लगति सोहाई ॥
नन्दा एक बिशाला सुमुषी । चित्रा चित्रवती सुष बरषी ॥
सुषा अलापा रस भरि भारी । ए गांधार ग्राम की प्यारी ॥
एकही बेर सात स्वर गईए । ताहि राग संपूरन कहिए ॥
षट स्वर मिलि गावत हैं काहो । षाड़व राग नाम हैं ताही ॥
औडव पाँच स्वरन्ह मिलि होई । गावै ताहि सगुनि जन सोई ॥

दोहा— मूर्छना इकइस हैं तान कोटि उनचास ।
ताल दोइ सय तीस हैं बाजा साठि प्रकास ॥१०३॥

चौ०— सुद्ध सप्त स्वर बिकृत बाइस । पंच जाति श्रुति[१] बाइस गाइस॥
षंड मेरु हैं चक्र बिवेका । अलंकार हैं कूट अनेका ॥
नष्टो दिष्ट तान हैं राषी । मत संगति ग्रन्थ के भाषी ॥
स्वर अरु ग्राम मूर्छना जागी । बाजेन्ह माहि बजन सब लागी ॥
मिले बजावन हार सुरूरे । सुघर सबै सबही गुन पूरे ॥

दोहा— कवि गायन[२] उत्तम गुनी मध्यम गानहि जान ।
कविता है गावै नहीं ताहि कनिष्ट बषान ॥१०४॥
केवल देसी जान जो ताको नाम पदादि ।
दोउ[१] जानै गांधर्व सो मारग जान स्वरादि ॥१०५॥

पाठान्तर : ३ मतरस खता अभिरुहृत जाना (छ० प्रति)

दोहा १०४ के अन्तर्गत—

१ श्रुति बाइस गाइस=लालदास ने मुख्य नाद एक सप्तक के २२ माने हैं। संगीत आचार्यों ने भी यही संख्या स्वीकार की है और…संगीत…शास्त्रों में इन्हें 'श्रुति' कहा गया है।

२ कवि गायन—काव्य का संगति की दृष्टि से वर्गीकरण अत्यन महनीय है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार वैदिक ऋचाओं का उच्चारण वाक् से करना चाहिये अर्थात् उनको गाना चाहिये। 'तं मध्यमया वाचा शंसत्यात्मानमेव तत्संस्कुरुते।'' संगीत और व्याकरण के तत्वसूत्र माहेश्वर सूत्र हैं। लालदास ने संगीत और काव्य का जो सूत्रबंधन किया है, उसके सूल राजशेषर कृत 'काव्यमीमांसा' में भी पाये जाते हैं।

दोहा १०५ के अन्तर्गत—

१ दोउ=संगीत के दो प्रकार लालदास ने बताये हैं—देशी संगीत तथा मार्गी संगीत।

चौ०— बाजे तान सुने सुष बरषा । नाच उठेउ हर को मन हरषा ।।
नूपुर कसि पहुपांजुलि धारा । पढ़ि शुभ नांदी सभा मधिडारा ।।
दोहा — नत्त भेद[1] मुषि तीन हैं नाटि नित्यं और नित्त ।
नित्तौ तीन प्रकार हैं विषम विकट लघु क्रत्त ।।१०६।।
तांडव नटनं नाद्य इकु लास्य नितंनं नृत्य ।
लाल नाम ए नाच के भिन्न भिन्न हैं क्रत्य ।।१०७।।
चौ०— अंग है तीन नर्त के जामा । कोप विरस पिल मरू बषाना ।।
कोमल अंग ललित मृदुताई । लासि नित्त सोहै सुषदाई ।।
भंवरी पुलत बहुत अडवाई । चंचल गति अति तांडव गाई ।।
भाव प्रगट करै अभिनव अंगा[1] । कहियतु नित्तं ताहि बहुरंगा ।।

दोहा १०६ के अन्तर्गत—

१ नत्त भेद······नित्त=अभिनय के तीन अंग लालदास ने बताये हैं—नाटि (नाट्य), नित्यं (नृत्त) और नित्र (नृत्य) । दशरूपककार धनञ्जय ने अवस्था विशेष की अनुकृति को नाट्य कहा है—"अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् "। अभिनय का दूसरा अंग 'नृत्त' है । भरत ने नाट्यशास्त्र में 'नृत्त' को किसी अर्थ के प्रदर्शन या अभिव्यंजन के लिये नहीं किन्तु शोभा के संवर्धन होने से इसका निरूपण किया है—अत्रोच्यते न खल्वर्थं नृत्तं किञ्चिदपेक्षते । किन्तु शोभां जनयतीत्यतो नृत्तमिदं स्मृतम् ।। 'नृत्त' में भावों का प्रदर्शन लय पर आधारित होता है । दशरूपककार के अनुसार—"नृत्तं ताललयाश्रयम् ।"

अभिनय का तीसरा अंग 'नृत्य' है । धनञ्जय ने इसे भावाश्रित कहा है — "अन्यद् भावाश्रितं नृत्यम् "। नृत्य में अंग संचालन लय पर आधारित होकर भी भावाश्रित है । लालदास ने 'अभिनय रहित जो अंग विक्षेपा' कहकर अभिनय शून्य को नृत्त कहा है और नृत्य को अभिनय अंगों से भाव अभिव्यक्ति करने वाला कहा है ।

दोहा १०८ के अन्तर्गत—

१ भाव प्रकट करै अभिनव अंगा=अभिनय में आंगिक चेष्टाओं द्वारा भावों की अभिव्यक्ति की जाती है । लालदास की इस मान्यता की पुष्टि अभिनय एवं नाट्य विशेषज्ञों द्वारा भी हो जाती है—"प्रत्येक भाव, विचार तथा इच्छा की अभिव्यक्ति आंगिक अभिनय में अंग तथा उपांगों की विभिन्न चेष्टाओं से सम्पन्न होती है ।"

(Francois Delesorfe)

अभिनय रहित जो अंग बिक्षेपा । ताको नाम नित्त कहि क्षेपा ॥
आंगिक[2] एक अहार्जिक बाचिक । अभिनय नाच कहे इकसात्विक ॥
अभिनय अर्थहिं अभिमुष करने । चरन स्थान इक्यावन बरने ॥
अनबध निबध नित्त दोइ भावा । अबध अलापनि निबध जु गावा ॥

दोहा— स्वर पद तेन कपाट औ विरुद ताल षट अंग ।
इन्ह करि कैं रचिए बिबिध गीत प्रबन्ध प्रसंग ॥१०८॥

चौ०— नव गति नित्त कीन्ह त्रिपुरारी । मायूरी गति भान बिचारी ॥
हय लीला[1] गज गामिनि मयनी । हंसी एक मृगी सुषदैनी ॥
कुह कुटी ष जनी गति अतिराजी । द्वादस उडप भाँति शिव साजी ॥
तिन्ह के नाम कहौं सुनि लेहू । कठिन भेद गुनि जन मन देहू ॥
नेरि उडप इक कर्न हैं नेरी । चित्र मित्र इक नत्र रचे री ॥
जार मान मुरु रट मुरु एका । हुल्ल लावनी करतरि टेका ॥
तुल्ल प्रसर एक उडप अनूपा । पुनि बारह ध्रुव आड निरूपा ॥
लाग एक बिडुलाग है लीन्हा । द्वादश नित्त और हर कीन्हा ॥
शब्द नित्त विवर्तक निर्त्ती । गीत है निर्ति कुत्राडक वृत्ती ॥
चंडु नित्त औ काल है चारी । कट्टरि देसी निर्त्ति जु कारी ॥
बैपोताग्य बंधु इक नाचे । कलप पेरुनी गौंडली राचे ॥

दोहा— नाचे हर नारद रसिक सनकादिक बिधि बूढ़ ।
हरि आगैंइ मन मगन होइ नर नहिं नाचत मूढ़ ॥१०९॥
लाल करन दश नित्त के कहे संगीत समाज ।
बिना करन कारज नहीं बिन कारन नहिं काज ॥११०॥
मुष लोचन शिर कटि हृदय ग्रीवा हस्तहि जानि ।
चरन जानु उरु लाल कहि ए दश करन बषानि ॥१११॥

चौ०— केउ इक षट अंग कहत सयाना । तिन्ह के षट प्रति अंग बषाना ॥
पुनि तिन्ह के कह षट उप अंगा । भाव अनेक दिषावत रङ्गा ॥
जेहि जेहि अंग क्रिया होइ जेती । नित्तहिं करत कहत हौं तेती ॥
पद के भेद क्रिया नव राषा । मुख के भेद त्रयोदश भाषा ॥

---

२ आंगिक एक·····सात्विक—लालदास ने अभिनय के चार भेदों का उल्लेख किया है । भरत ने भी सम्पूर्ण अभिनय को चार प्रकार का बताया है—आंगिक वाचिक, आहार्य तथा सात्विक । (नाट्य ८/१७)

दोहा ०९ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ है लीला गज गमनि मथैनी । (स० प्रति)

दृष्टि भेद[1] कहे आठ सुहाए । भ्रू लक्षन[2] शिव सात बताए ।।
शिर करि भाव पंच दश कीयें । मीस ग्रीव गति एकहि लीयें ।।
कटि के भाव पंच हैं सोई । हस्तक[3] भाव पचीसहि होई ।।
हृदय तीन जानु के दोई । नर्त्तक भाव करै सब कोई ।।
नव रस नैन कहत समुझाई । भाव कटाक्षि अनेकन्ह गाई ।।
दृष्टि भेद छत्तीस हैं लेषे । जानैं गुनी ग्रन्थ जिन्ह देषे ।।
हस्तक दोइ भाँति के भाषा । संजुत एक असंजुत राषा ।।
संजुत तेरह भाव बतावै । गति चौबीस असंजुत ल्यावै ।।
चारी होत छयासी जाती । भूमि अकास नाम दोइ भाँती ।।
चौवन भूमि है भेद प्रकासा । चारी होइ बतीस अकासा ।।

दोहा ११२ के अन्तर्गत—

१ दृष्टिभेद—नेत्रों की आठ चेष्टायें इस प्रकार हैं—सम, साचीकृत, अनुवृत्त, आलोकित, विलोकित, प्रलोकित, उल्लोकित तथा अवलोकित ।

२ भ्रू लक्षन=भौंहों की चेष्टाएं सात बतायी गयी हैं—उत्क्षेप, पातक, भृकुटी, चतुर, कुंचित, रेचित तथा सहज ।

३ हस्तक=भारतीय प्रतिमा शास्त्रानुसार हस्तक (हस्त) को 'मुद्रा' कहते हैं । नृत्य में शरीर के विविध अंग उपांग और प्रत्यंगों का विधिवत संचालन कर विभिन्न भाव भंगिमाएं निर्मित की जाती हैं । शरीर की इन भंगिमाओं को 'मुद्रा'(Pose) कहते हैं । भरत नाट्यशास्त्र, अभिनय दर्पण आदि प्राचीन लक्षण-ग्रन्थों में हाथ की मुद्राओं को 'हस्ताभिनय (हस्ते) कहा गया है । भरतनाट्य में इसके तीन भेद बताये गये हैं—असंयुत, संयुत और नृत्त हस्त । लालदास ने हस्तक के दो ही प्रकार गिनाये हैं—संयुत और असंयुत । लालदास का यह वर्गीकरण भरत के नाट्यशास्त्र से असंगति रखते हुए अभिनय-दर्पण-कार आचार्य नन्दिकेश्वर के वर्गीकरण के अनुकूल है । भरत के नाट्यशास्त्र में निर्देशित 'नृत्तहस्त' को नन्दिकेश्वर और लालदास दोनों मान्यता नहीं प्रदान करते । भरत ने संयुक्त हस्तभिनय के १३ भेद बताये हैं और नन्दिकेश्वर ने १८ भेद बताये हैं । लालदास ने भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार संयुक्त के १३ भेद ही स्वीकार किये हैं, नन्दिकेश्वर के १८ से असहमति प्रकट की है । इस प्रकार लालदास ने हस्तकभेद नन्दिकेश्वर के अनुकूल किन्तु संयुक्त हस्ता-भिनय भरत के अनुकूल रखा है, जो उनके आचार्यत्व की विलक्षणता का सूचक है । संयुत हस्त (दोनों हाथों के संयोग से निर्मित होती हैं) । इनकी संख्या १३ इस प्रकार है—अञ्जली, कपोत, कर्कट, स्वस्तिका, कटकावर्धन, उत्सङ्ग, निषेध, दोल, पुष्पपुट मकर, गजदन्त, अवहित्थ और वर्धमान ।

एकहीं चरन चलन सोइ चारी । नाचत कोइ एक ते नृतकारी ।।
करन एक सय आठ हैं गाए । रत्नाकर संगीत बताए ।।
तिन्ह महिं मुषि दश करन हैं बरना । तिन्ह के नाम कहे मन हरना ।।
संच तीन करि नित्त है होई । जानै चतुर जु पंडित कोई ।।
ताल दोइ तल संच कहावै । ताल तीन जो मध्य रहावै ।।
ऊरध चारि ताल है जानौ । कटि भू अंतर संच बषानो ।।
तर्जनी और अंगुष्ठ प्रमाना । ताको नाम ताल करि जाना ।।

दोहा— तल मध्यम ऊरध रहै तालन्ह करै प्रमान ।
तीनि संच जानैं नचै नर्तक ताहि बषान ।। ११२ ।।

चौ०— उरप तिरप[१] औ लाग अडारा । डाटहु रमई मुरु बिसकारा ।।
भंवरी चक्र उरल अरु आडू । फना चाट[२] अरु मुरू जु चाडू ।।
जू सी मी और अडार मथानी । मीन डाट घुट सरू बषानी ।।
चंद जलेवी धरू अरु धूवा । परिमाठा परिबंधन हूवा ।।

दोहा— शब्द छंद संगीत के पढ़त जु निर्त्तत तानि ।
याते मै ई हों ना लिषे उघट्व दुर्घट जानि ।। ११३ ।।

दोहा ११२ का शेष—

असंयुत हस्त में लालदास ने २४ गतियाँ स्वीकार की हैं, जो भरत के नाट्य-शास्त्र के २४ असंयुक्त-हस्त के अनुसार है, नन्दिकेश्वर के 'अभिनय-दर्पण' के ३२ असंयुक्त हस्त वे नहीं स्वीकार करते ।

असंयुक्त के २४ अभिनय इस प्रकार हैं–पताका, त्रिपताका, अर्धचन्द्र, अराल, शुकतुन्ड, मुष्ठि, शिखर, पद्मकोष, सर्पशीर्ष, चतुर, मृगशीर्ष भ्रमर और मुकुल, कर्तरी मुख, कपित्थ, कटकामुख, सूचि मुख, लाङ्गल, स्थलपद्म, हंसवक, हंसपक्ष, संदंश,उर्णनाभ, ताम्रचूड ।

दोहा ११३ के अन्तर्गत—

१ उरप तिरप—रीतिकालीन आचार्य गंगा प्रसाद मिश्र ने इसका विवेचन इस प्रकार किया है—"संगीत में नाचने के प्रकरण मै । लहा छेह । अरुप-तुरुप कहावत है ।"

'विहारी सतसई की टीका,' टीकाकार, गंगाप्रसाद मिश्र;

हस्त० चंददास शो० सं० प्रति, पृ० १६

विहारी सतसई की यह टीका प्राचीन टीकाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। टीका से यह भी ज्ञात होता है कि टीकाकार ने काव्यभूषण, (लक्षणग्रंथ), शृंगार चौतीसी एवं तुलसीकृत विनय पत्रिका की टीका नामक ग्रंथों की रचना की थी। ये ग्रंथ अप्राप्य हैं। टीकाकार जयपुर का निवासी प्रतीत होता है। उनके पिता उम्मेदसिंह ("कृष्ण चरित" के रचियता) एवं गुरु रामकृष्ण (संस्कृत के पंडित एवं कवि) थे।

पाठान्तर: २ फना चाट लट मुरु जु चाडू । (छ० प्रति)

पारिजात दर्पन[1] भरत रागार्नव है एक ।
संगीतार्णव नृत्य निर्णय औरहु ग्रन्थ अनेक ।। ११४ ।।
संगीतरत्नाकरादि ।।

पिंगल[1] अमर संगीत पर नीकें करि मन देव ।
कवि पंडित गुन जननिसों अर्थ पूछि पढ़ि लेव ।।११५।।

चौ०— अब सुनु राग जहाँ सब गाई । बाजन निर्त कहे समुझाई ।।
प्रथमहिं मुखि षट राग बषाना । तिन्ह की तीस त्रिया जग जाना ।।
एक एक कें पंच हैं संगा । तिन्ह के नाम कहौं बहुरंगा ।।
भैरव[1] मालकोश हिंडोला । दीपक श्री अरु मेघ झकोला ।।
महादेव मन भयो हुलासा । पंच राग मुष पंच प्रकासा ।।
एक भवानि कीन्ह कल गाना । ए षट राग भए जग जाना ।।

दोहा— भैरव मेघ हिंडोल औ मालकोश श्री राग ।
दीपक मिलि भयो लाल कहि नादब्रह्म षट भाग ।।११६।।

चौ०— तिन्ह की सुनहु रागिनी रानी । राग माल कहों नाम बषानी ।।
मधु माधवी भैरवी ललिता । बहल बरारी भैरव बनिता ।।
तिन्ह के अष्ट पुत्र सुनि लेहू । देवसाष हरषन है एहू ।।
माधव ललित बिभास सहाना । बंगाला जु बिलावल जाना ।।
अष्ट हैं तिन्ह का बधू बषानों । गुनि जन होइ सरूपहि जानों ।।

दोहा — वहल गूजरी सोरठी पाट मंजरी होइ ।
बरवै सुहा बिलावली आनंदाऊ सोइ ।। ११७ ।।

दोहा ११४ के अन्तर्गत

१ परिजात दर्पन...संगीत रत्नाकरादि । संगीत के कतिपय प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों का उल्लेख लालदास ने किया है, पारिजात से दक्षिण के पंडित अहोबल के 'संगीत पारिजात' 'दर्पन' से दामोदर पंडित कृत 'संगीत दर्पण' का संकेत किया है। इसके अतिरिक्त 'रागार्णव' 'संगीतार्णव', और नृत्य निर्णय जैसे प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थों का उल्लेख किया है, इनमें से कुछ एक तो अप्राप्य हैं। 'संगीत रत्नाकर' से शारङ्गदेव (१२१० ई०) के संगीत रत्नाकर की ओर संकेत किया है ।

दोहा ११५ के अन्तर्गत--

१ पिंगल अमर.....पढ़िलेब—यह दोहा छ० प्रति में नहीं है ।

दोहा ११६ के अन्तर्गत

१ भैरव राग परिवार

पंच पत्नियाँ—मधु,–माधवी, भैरवी, ललिता, बहल-बरारी । भैरव
अष्ट पुत्र—देवसाख, हरखन, माधव, ललित, विभास, सहाना, बंगाला, बिलावल;
अष्ट वधुएँ—बहल, गूजरी, सोरठी, पाटमंजरी,बरवै, सुहा, बिलावली, आनंदाऊ;

चौ०— अब सुन माल कोश[१] परिवारा। त्रिय सुत बधू नाम बिस्तारा ॥
गौरी द्रावडी टोडी जानी। षंभावती ककूभ बषानी ॥
ए तौ पंच रागिनी गाई। अब कहूँ अष्ट पुत्र समुझाई ॥
मांगरु छेत्रन शुद्ध बषानों। देव गंधार पूरिया जानों ॥
बल्लभसक्ति औ मालीय गौरा। और एक कामोद है जौरा ॥
तिह्न की नारि आठ हैं राषी। मालश्री औ जैतश्री भाषी ॥
एक धनाश्री अरु सुघराई। दुर्गा भोम पलासिनी गाई ॥
गांधारी कामोदी सोहैं। मालकोश की जानि पतोहैं ॥
अब हिंडोल[२] राग सुनि बनिता। रामकली मालवती भनिता ॥
देवकरी गुनकरी असावरि। तिह्न कैं अष्ट पुत्र बंसावरि ॥
मालव मारू अवल बसंता। लंका दहन धवल बलवंता ॥
रागधनी अरु बंद वषारा। राग हिंडोल के पुत्र पियारा ॥
तिह्न की आठ हैं प्रानपियारी। लीलावती कौरवी नारी ॥
चैत्री औ इक पारावती। पूरवी त्रिवना अरु सरस्वती ॥
देवगरी इक है सुषदाई। अब अपने पतिसों मिलि गाई ॥

दोहा— अब दीपक[३] की रागिनी कहत हौं पंच बषानि।
गौड़ केदारा सिंधुला गौड गूजरी जानि ॥ ११८ ॥

दोहा ११८ के अन्तर्गत—

१ मालकोश परिवार

पंच पत्नियाँ—गौरी, द्रावड़ी, टोड़ी, खंभावती, ककुभ

अष्ट पुत्र—मागरु, छेत्रन, देवगन्धार, पूरिया, बल्लभशक्ति, मालीय, गौरा, कामोद

अष्ट वधुएँ—मालश्री, जयतिश्री, धनाश्री, सुघराई, दुर्गा, भीमपलासनी, गान्धारी, कामोदी

२ हिण्डोल राग परिवार

पंच पत्नियाँ—रामकली, मालवती, देवकली, गुनकरी, आसावरी

अष्ट पुत्र—मालव, मारू, अवल, वसन्त, लंकादहन धवल, बलवन्ता, नागधनी, बन्द-बखारा

अष्ट पुत्र बधुएँ—लीलावती, कौरवी, चैत्री, पारावती, पूरवी, त्रिवना, सरस्वती, देव-नागरी

३ दीपक राग परिवार

पंच पत्नियाँ—गौड़, केदारा, सिन्धुला, गौड़, गूजरी

अष्ट पुत्र—नट, नारायण, टंक अड़ाना, बल्लभशक्ति, विहागर, फ़िरोदस्त, रंभसमंगल, मंगल

अष्ट बधुएँ—मंगल, गूजरी, भूपाली, आभीरी, जजवन्ती, ईमन, रुद्रानी, मनोहरि

चौ०— नट नारायन टंक अडाना । बल्लभ सक्ति बिहागर जाना ।।
फिरोदस्त इक रंभ समंगल । मंगल अष्टक पुत्र जानु भल ।।
तिह्न की आठ त्रिया सुन लीजै । मंगल गूजरि एक भनीजै ।।
भूपाली आभीरी गाई । जजवंती अरु ईमन आई ।।
रुद्रानी अरु एक मनोहरि । आठ पतो हैं सोह दीपधरि ।।
अब श्री राग[१] सुनो सुषकारो । ताकी पंच कहत हौं नारी ।।
संवेदी श्री हठी विचित्रा । ठूमरि काफी जानि पवित्रा ।।
आगे पुत्र सुनहु मन भाए । सांवल सूरा राग सुहाए ।।
कोलाहल श्री रवन बषाना । इक षट राग सकर्मन जाना ।।
संबोधन बड़ हंस सुहावा । अष्ट पुत्र श्री राग है पावा ।।
अब सुनि लेहु बधू मनमानी । विजया एक धनाश्री जानी ।।
कुंभी क्षेम कल्यानी गाई । शशि रेषा सौराष्टरि पाई ।।
एक सारदा और सुहंसी । इह श्री राग भयो बड़बंसी ।।
मेघ राग[२] सब जग सुषदाई । तिन्हकी पंच त्रिया कहौं गाई ।।
सारङ्ग देसी गोरा मानो । रति बलभा जु विलावल रानी ।।
आठ हैं पूत सपूत बषाने । एक कला इरकानर आने ।।
तिलक घटोरग शंकर भूषन । है इ हमीर अस्तंभ अदूषन ।।
देसकार है एक भनीजै । अब तिन्हकी बनिता सुनि लीजै ।।

दोहा— कादंबी सुघ नाट और नाट मन्जरी जान ।
नाट कदंबी नारि है कारनाट लिय आन ।।११९।।

अरिल—सारंग मध्यम सुद्ध मलारहि कीजिये । करि हिंडोलहिं राग बिलावल लीजिए ।
नटदेव ग्रीका नर पूरिया पाइये । परिहां तब भैरव होय राग प्रात ही गाइये ।
षाट बंद ब्रडहंसहिं आनि मिलावना । कैरव और मिलाइ कला इर गावना ।
नाट सुद्ध औ टंक तहाँ पुनि आनियें । परिहाँ मालकोश होइ राग सु ताहि बषानिये ।

दोहा ११९ के अन्तर्गत—

१ श्री राग परिवार

पंच पत्नियाँ—सम्वेदी, सुहठी, विचित्रा, ठुमरी, काफी।

अष्ट पुत्र –सावन्त, सूरा, कोलाहल, श्रीवदन, षटराग, सकर्म, संबोधन, बड़हंस;

बधुएँ—बिजया, धनाश्री, कुम्भी, क्षेमकल्यानी, शशिरेखा, सौराष्ट्री, शारदा, सुहंसो;

२ मेघराग परिबार

पंच पत्नियाँ – सारंग, देसी, गौरा, रतिबल्लभा, बिलावलरानी ।

अष्ट पुत्र—तिलक, घटोरग, संकर, भूषन, हमीर, अस्तंभ, अडूवन, देसकार;

बधुएँ—कादंवी, सुघनाट, नाटमंजरी, नाटकदंवी, कारनाट । (तीन अन्य) ?

दोहा— लीलावती अरु पूरिया भैरव ललित कलोल ।
पंचम आनि मिलाइये तब होइ राग हिंडोल ।।१२०।।

केदारा सुध नाट औ लीजै सुद्ध कमोद ।
महा विकट तब होत है दीपक राग विनोद ।।१२१।।

सो०— गौड़ी औ बडहंस गुनी मिलावैं टंकसुर ।
तब श्री राग सुवंश होइ सुनत मोहै जगत ।।१२२।।

सांवत औ कल्यान होइ वसंत कमोद पुनि ।
मेघराग तब जानि घन बरषैं हरषैं जगत ।।१२३।।

दोहा— तीस[१] रागिनी राग छह पुत्र आठ चालीस ।
अड़तालीस पतोहू पुनि सब सय अरु बत्तीस ।।१२४।।

राग रागिनी सुत बधू लाज्ञ जथा मति जानि ।
जैसे कछु ग्रन्थन्हु सुने तैसे कहे बषानि ।।१२५।।

चौ०— प्रथम दोष[१] गायन महि एही । कंठहीन रोगी कृश देही ।।
दुतिय दोष सुन्दरता नाहीं । राग भेद समुझे नहिं जाहीं ।।
बीना ताल वजाइ न जानें । समय राग के नहिं पहिचानें ।।
गर उठाइ गावै मुह बाई । कान हाथ दै अधिक चिचाई ।।

दोहा १२४ के अन्तर्गत—

१तीस रागिनी राग छह= राग और रागिनियों की मूल संख्या । संत चंददास ने भी इसी संख्या को स्वीकार किया है—'तीस और छह रागिनी बनी जो वेद प्रमाण' । चन्ददास कृत 'रागमाला,' । हस्तलिखित, एकडला (फतेहपुर) के श्री ओम प्रकाश सिंह रावत के संग्रह से प्राप्त जो सम्प्रति भारती कला भवन वाराणसी में सुरक्षित है ।

दोहा १२६ के अन्तर्गत—

१ प्रथम दोष......हीन= लालदास ने गायक के दोषों का निरूपण किया है जो सारंग देव के 'संगीत रत्नाकर' में गिनाये गये दोषों के अनुसार हैं—

"संदष्टोद् धृष्ट सूत्कारि भीत शंकित कंपिता: ।
कराली विकल: काकी विताल कर भोद्भडाः ।।
झो बकस्तुंबकी वक्री प्रसारी विनिमीलक: ।
विरसापस्वराव्यक्त स्थान भ्रष्टा व्यवस्थिता: ।।
मिश्रकोऽ नवधानश्च तथाऽन्यः सानुनासिका: ।
पंच विंशतिरित्येते गायका निंदिता मताः ।।"

— संगीत रत्नाकर

गावत एक ओर टकलाई । बेर बेर गर कों सहराई ।।
नारि मरोरि ऊंच होइ गावै । गावत एक डरत सरमावै ।।
बदन मलीन बटोरत भौहैं । लागत बिष गावत होइ सौहैं ।।
गावत झंझकि झंझकि स्वर भंगा । त्योर चढ़ाइ हंसत चल अंगा ।।
बिना अलापनि कहें पुनि नाहीं । सभा मध्य गायो नहिं जाहीं ।।
काक अजा स्वर होइ बितालो । अध मध्य ऊरध धर न संभालो ।।
गावत बहुत नाक स्वर धारो । सीस घुमावत हाथ पसारी ।।
उछरत बहुत कंप स्वर बानी । गुनि जन सहि दूषन ए जानी ।

दोहा— अति ऊंचो अति होइ लघु अति मोटो अति छीन ।
गाइ न जानैं रूप नहिं सो नृत्यकारी हीन ।।१२६।।

चौ०— ए सब दोष रहित तहाँ गाए । सबहि सुरूप सुदेस सुहाए ।।
बिच बिच हास तर्क सुषकारो । तान अनेक रहेउ रस भारी ।।
पुनि हर भए अर्द्धनाटेश्वर[1] । रीझे राम देषि उमगेउ उर ।।

---

१२६ का शेष—

१ संदष्ट—दाँत पीसकर गाने वाला, २ उद्घृष्ट—बेरस चिल्लाने वाला, ३ सूत्कारी—गाते समय सूत्कार करने वाला ४ भीत डरते-डरते गाने वाला । ५ शंकित—निरर्थक शंका करने वाला ६ कंपित—जिसके गाने में कंप हो । ७ करालो—भयंकर मुंह फाड़कर गाने वाला । ८ विकल—जिसके गाने में कम या अधिक श्रुति लग जाती हों । ९ काकी—कौए जैसी कर्कश ध्वनि में गाने वाला । १० विताल—तालभ्रष्ट ११ करभ—गर्दन ऊंची करके गाने वाला । १२ उद्भड—भेड़ बकरी जैसा मुंह करके गानेवाला १३—झोंबक—गर्दन व चेहरे की नसें फुलाकर गाने वाला, १४ तुंवकी—तूंबे की तरह मुंह फुलाकर गाने वाला, १५ वक्री—टेढ़ा मुंह करके गाने वाला, १६ प्रसारी—हाथ पैर पटककर गाने वाला, १७ निमीलक—आँख मोचकर गाने वाला, १८ विरस—नीरस गाने वाला, १९ अपस्वर—जिसके गाने में वर्जित स्वर आते हों । २० अव्यक्त—वर्णोच्चार स्पष्ट न हो । २१ स्थान-भ्रष्ट—आवाज योग्य स्थानों पर न पहुँच सकती हो । २२ अव्यवस्थित—व्यवस्था के साथ न गाने वाला । २३ मिश्रक—रागों को मिश्रित करके गाने वाला । २४ अनवधान —लापरवाही के साथ गाने वाला । २५ सानुनासिक—नाक से आवाज निकालकर गाने वाला ।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, (भाग ३) पं० विष्णु नारायण भातखंडे, पृ० २०

दोहा १२७ के अन्तर्गत—

१ अर्द्धनाटेश्वर=अर्द्धनारीश्वर (शिव)

भक्ति सबहिं हरि के मन भाई । नृत्य गीत कछु अति सुखदाई ।।
गाए सामवेद अस बानी । मगन भए सुनि सारङ्गपानी ।।
भक्त सबहिं ठाढ़े चहुँ पासा । देखहिं लाल विनोद तमासा ।।
गदगद गिरा कहैं हरिराई । धन्य धन्य शंकर सुषदाई ।।
माँगहु आज देउं मन भायो । प्रेम भक्ति करि मोहिं रिझायो ।।
तब बोले शंकर कर जोरो । मांगो भक्ति बहोरि बहोरी ।।
होहु दयाल सदा सत दानी । अपनी भक्ति देहु मनमानी ।।
भक्ति जुक्त देषे सब देवा । मन बच कर्म करत भए सेवा ।।
रीझै पुलकि नैन जल ढारा । सो जल ब्रह्म कमण्डल धारा ।।
तीरथ भयउ रहत ता माहीं । गुप्त रूप कोउ जानत नाहीं ।।
सोइ उह जल शिव सिर धरि लीए । अब हरि हमहिं कृतारथ कीए ।।
कहति नन्दनी जाहु जल जैहैं । मागहुँ पुत्र जानि सो दैहैं ।।

दोहा— लाल जोग बल साधि कै ध्यान समाधि लगाइ ।
ब्रह्म लोक पल महिं गए गुरु वशिष्ठ मुनिराइ ।।१२७।।

चौ०— ब्रह्म लोक देषे मुनि जाई । सब लोकनि ऊपर अधिकाई ।।
सोभा अधिक अधिक बिस्तारा । रचना रचित अनेक प्रकारा ।।
दहिनावर्त दै सनमुख आवा । दर्शन पुत्र पिता के पावा ।।
बैठे बिधि सिंघासन अङ्गा । साबित्री गायत्री संगा ।।
कामधेनु सनमुख हो राजै । अष्ट सिद्धि नव निद्धि बिराजै ।।
चारि भुजा मुष चारि सुहाए । चारि बेद चारिहु मुष गाए ।।
करत स्तुती नेति कहि बानी । परात्पर परब्रह्म बषानी ।।
एक हाथ पोथी लिए सोहैं । एक हाथ माला मन मोहैं ।।
पकरे एक कमण्डल हाथा । दण्ड गहे बैठे जगनाथा ।।
जज्ञोपवित औ शिषा विशाला । द्वादश तिलक बिराजत भाला ।।
धोती पहिरि ओढ़ि उपरैना । पद्मासन बैठे सुष दैना ।।
बाहन हंस ठाढ़ मुष आगै । सुन्दर रूप सुहावन लागै ।।
रुद्रादिक सनकादिक जाहीं । दरशन पाइ पाइ सुष पाहीं ।।
धूप दीप चंदन मन हरषा । करैं देव पुहपन की बरषा ।।
आरती बेर बेर करि बारैं । देव वधू शिर चमुरहिं ढारैं ।।
बनिता सहित गीत गुन गाई । गांधर्वा पूजहिं मन लाई ।।
या बिधि देषि पिता प्रभुताई । उमगेउ हिय आनन्दन माँई ।।
दरशन करत अतिहि अनुरागे । करे प्रनाम चर्ण जाइ लागे ।।

ब्रह्मा करत रहे हरि ध्याना । मन बुधि जाइ स्वरूप समाना ॥
बरष हजार गए जब बीती । छूटे ध्यान देषि भई प्रीती ॥
प्रेम बिवस लोचन भरि आए । माया लगी दौरि हिए लाए ॥
कहो पुत्र आये किहि कारन । धन्य दिवस देख्यो कुल तारन ॥
बोले पुत्र बशिष्ठ सयाना । नृप इक्ष्वाक बड़े जजमाना ॥
पुरी भरी छबि सबनि बषानी । बिन सरिता सोहत नहिं जानी ॥
होहु दयाल मोहिं जस दीजै । नगर निकट सरिता इक कीजै ॥
पकरि कमण्डल विधि ढ़रकावा । चलेउ प्रवाह संग मुनि धावा ॥

दोहा— वामन के पग धोइ कैं बलि पूजे करि हेत ।
सो वह जल ब्रह्मा लयो दयो पुत्र कैं लेत ॥१२८॥

चौ०— गगन तै परत सबनि अस जाना । भयो अति शब्द फटेउ असमाना ॥
परेउ सुमेर सीस पर आई । पुनि भूपर परि नदी बहाई ॥
ऐरावत के दंत लगे जब । फाटि पहार प्रवाह चलेउ तब ॥
सरि-सरि दन्त श्रवत जलधारा । सरजू नाम कहत संसारा ॥
मानसरोवर गहर गम्भीरा । तामहिं आइ परेउ सोइ नीरा ॥
मानसरोबर धाम सुरंगा । श्रीपति सदा बसत श्री संगा ॥
जो कछु विधि बैकुण्ठ सुधारा । मानसरोवर सब बिवहारा ॥
ब्रह्मा मन करि आप उपावा । मानसरोवर नाम धरावा ॥
पद्मराग मणि नील स्याम मणि । बैदूरज मणि फटिक पीत मणि ॥
दिव्य विशाल लगे जो महलनि । कनक कोट चहुँ ओर रहे बनि ॥
शशि सूरज प्रतिबिम्ब परत रहि । जगमगात छवि जात नहीं कहि ॥
मुक्ति पारषद वेद बखानी । जहँ प्रभु की द्वितीय रजधानी ॥
एक स्वरूप रहैं बैकुण्ठा । दुतिय स्वरूप सरोवर बैठा ॥
एक ठौर नारायन नाहीं । सबहीं ठौर रहत सब माहीं ॥
कहूँ-कहूँ है धाम बिशेषा । सोइ मैं कहूँ सुनहुँ अब लेषा ॥
एक ठौर बैकुन्ठ बषाना । श्वेतद्वीप है एक ठिकाना ॥
एक ठौर क्षीरावधि माहीं । शेषनाग पर सयन कराहीं ॥
द्वारावती पुरी इक बासा । गोकुल मथुरा सदा निवासा ॥
परमधाम इकु अवध सुहाई । श्रीपति सदा बसत सुषदाई ॥

जगन्नाथ औ श्री रङ्ग नाथा[१] । बद्रीनाथ अवध रघुनाथा ॥
ब्रह्मादिक रुद्रादिक देवा । सनकादिक नारद करैं सेवा ॥
मानसरोवर सब सुष धामा । हरि को अति प्रिय जहँ विश्रामा ॥
हंस कूल कौतूहल करहीं । वन उपवन षग गन मन हरहीं ॥
दिव्य कमल सर भीतर राजै । फूले सदा रहत हरि काजै ॥
तहँ मुनि गए बहुत मनमाना । देषत्र आजु दरस भगवाना ॥
जाइ वशिष्ठ द्वार भये ठाढ़े । दर्शन काज प्रेम अति बाढ़े ॥
बहुत कष्ट कछु दिन तप कीनें । छीन शरीर भये बल हीनें ॥
द्वारपाल सों कहेउ बुलाई । ठाढ़े मुनि भीतर कहु जाई ॥
द्वारपाल बोले शिर नाई । चले जाहु तुमकों न मनाई ॥
प्रभु हम कहं कहि राष्यो ऐसा । अपढ़े पढ़े होंइ द्विज कैसा ॥
मोहिं विप्र कछु अंतर नाहीं । मेरो तन जानहुँ उन माहीं ॥
मोहिं विप्र जिन्ह भेद बताया । सोइ जानहुँ माया भरमाया ॥
पूजत मोहिं सबहिं नर देवा । मैं हूँ करत विप्र की सेवा ॥
मुनि बोले ए राज दुवारा । समय होइ जइए व्योहारा ॥
औसर अन औसर नहिं जानै । हित अनहित नाहिन पहिचानै ॥
समय समुझि बोलै नहिं बानो । ताहि महा मूरष करि मानी ॥
द्वारपाल प्रभु सों कहे जाई । दरस काज ठाढ़े मुनिराई ॥
बाहर बात होत सुधि पाए । अंतरजामी आपुहिं आए ॥
करि प्रणाम हरि द्विज सनमाना । बिरद बहुत मुनि कीन्ह बषाना ॥
हियें हरषि कहैं सारंगपानी । विनय सहित बोले मृदु बानी ॥
उत्तम दिवस आजु हम जाना । दरस तुम्हार देषि मन माना ॥
भूमि गऊ गज कनक सुदाना । पुष्करादि तीरथ स्नाना ॥
एते करत होत फल जोई । पावै चरन विप्र के धोई ।

दोहा— रहिए इहं कहिए कछू अपनो मन अभिलाष ।
गये कहाँ आए रहे श्रीपति लाल सभाष ॥१२९॥

चौ०— रविकुल मन्डन भक्त तुम्हारा । नृप इक्ष्वाक जजमान हमारा ॥
पुरी शिरोमनि नाम अजोध्या । सो ब्रह्मा राषी भू मध्या ॥

दोहा १२९ के अन्तर्गत —

१ श्रीरंगनाथा=विष्णु का पर्याय । दक्षिण भारत में श्रीरंगनाथ की उपासना का प्रचलन है । दक्षिण भारत के मन्दिरों में त्रिचनापल्ली के निकट स्थित श्रीरंगम् का मन्दिर भी पाया जाता है, जो अत्यन्त प्राचीन है ।

मनु अपनो सब दीन्ह समाजा । तहँ इक्ष्वाक भए अब राजा ।।
तिन्ह मोहिं कह्यो नदी इक होई । तबहीं सुष पावै सब कोई ।।
ब्रह्म लोक हौं गयो गुसांई । धाता सौं सरिता इक पाई ।।
सो इह मानसरोवर माहीं । गई समाइ देषियत नाहीं ।।
प्रभु कहै जाहु सरोवर तीरा । पैठहु जाइ हलोरहु नीरा ।।
चलिहैं निकसि जहाँ मन राषा । पुरबहु जाइ नृपति अभिलाषा ।।
चले वशिष्ठ ध्यान मन धारी । रूप चतुर्भुज मंगलकारी ।।
करि प्रनाम मुनि नीर हलोरा । निकसि चली सरजू करि जोरा ।।
गिरि तरु ग्राम देस पुर जेते । पावन करत चली सब तेते ।।
गंगा सरजू तीरथ दोई । केउ कहत चरनोदक होई ।।
गङ्गा दहिने चरन प्रकासा । बायें सरजू पाइ निकासा ।।

दोहा— सुरपति संशय दूर करि बलि पताल कहँ दीन्ह ।
चारि नदी करि दश दिसा बावन पावन कीन्ह ।।१३०।।
प्राची ईसान उदींचि बायव बारुनो जान ।
नैरत्य जामि औ अग्नि दिग अध: उर्ध्व दस मानि ।।१३१।।

चौ०— सरिता लै सागर सों आए । राजा सुने हरषि उठि धाए ।।
हरषे लोग बसत पुर जो हैं । लै लै भेंट चले रिषि सों हैं ।।
सरजू नाम भयो जग पावनि । लह्यो अवध तर लगी सुहावनि ।।
नेत्रहिं तें जु प्रगट भई सोई । इक इह नाम नेत्रजा[1] होई ।।
जय-जयकार करन सब लागे । धन्य वशिष्ठ जु कीन्ह सभागे ।।
ल्याये मुनि एहि भांति प्रसङ्गा । नाम धरेउ बाशिष्ठी गङ्गा ।।
राजा नदी पूजि जस लीनें । लाल दान बहुतै बिधि दीनें ।।
जो या कथा कहै सुनि गावै । सरजू अवध न्हान फल पावै ।।
एकहि बिधि कहुँ है कछु नाहीं । कल्प भेद कहे ग्रन्थनि माहीं ।।
एकहि बिधि सुनि हठ नहिं कीजै । कल्प भेद मन में धरि लीजै ।।
कल्प भेद का मर्म न जानैं । मूरष होइ सो झगरा ठानैं ।।

दोहा १३२ के अन्तर्गत

१ नेत्रजा=सरयू नदी का एक नाम । कवि के अनुसार शिव के नेत्र से उत्पन्न होने के कारण 'सरयू' नेत्रजा कहलायी । संस्कृत में नदी के लिए 'नेत्री' (नेत्र+ङीष) शब्द है किन्तु कवि ने नदी के अर्थ में नेत्रजा का प्रयोग कथा के औचित्य से सिद्ध किया है ।

मानि लेत बुधमंत सुनि जैसो । कबहुँक भयो होइगो ऐसो ॥
अब सुनु कल्प भेद की बाता । दिवस बरस जुग रचे बिधाता ॥
निमिष आठ दस नैनन्ह लहिए । ताको एक काष्ठा[२] कहिए ॥
होत काष्ठा तीस बषानों । ताको एक कला भई जानों ॥
तीस कला अस बीतै जबहीं । होत है एक मुहूरत तबहीं ॥
तीस मुहूरत का दिन होई । आठ प्रहर जानै सब कोई ॥
होत पंचदश दिन अस देषै । ताको पक्ष कहत प्रालेषै ॥
पाष दोइ को मास कहावै । बारह मास बरस होइ आवै ॥
सत्रह लाष हजार अठाइस । सतजुग एते बरस रहाइस ॥
सहस छानबे बारह लाषा । त्रेता जुग बरषह्न करि राषा ॥
आठ लाष चौसाठि हजारा । द्वापर बरष रहै व्योहारा ॥
चारि लाष अरु सहस्र बतीसा । कलिजुग बरष कीह्न जगदीसा ॥
ऐसे जुग होइ चारि हजारा । तब ब्रह्मा को दिवस करारा ॥
पुनि जुग चारि हजार हैं जाई । तब लगि राति रहति बिलगाई ॥

दोहा— लाल बरस जुग चारि के ठीक होत किये जोर ।
लक्ष तियालिस बरस सब बीस हजार जु और ॥ १३२ ॥

सो०— लाल प्रलय हैं दोइ एक नित्य एक होत महा ।
नित्य दिन बीते होइ महाप्रलय ब्रह्मा मुये ॥ १३३ ॥

चौ०— आठ हजार जाहिं जुग सोई । राति दिवस मिलि दिन इक होई ॥
ताकहं कल्प कहत हैं ज्ञानी । कल्प गये कल्पान्तर जानी ॥
ऐसे कल्प तीस होइ लीना । तब ब्रह्मा को एक महीना ॥
ऐसे बारह मासहि जाना । तब ब्रह्मा को बरस बषाना ॥
ऐसे बरष एक सय जाई । ब्रह्मा जियत रहत तब ताई ॥
ब्रह्मप्रलय जाको है नामा । होत है महाप्रलय सब धामा ॥
ब्रह्मा अंत होत है जासों । ब्रह्मकल्प कहियत है तासों ॥

दोहा— देव पित्र को एक दिन बरष मनुष्य को जानि ।
दक्षिणायन षटमास निसि उत्तरायन दिवसानि ॥ १३४ ॥

चौ०— सत त्रेता द्वापर कलि जाई । ताको एक चौकरी गाई ॥
अस इकहत्तरि चौकरी जैए । तासों एक मन्वंतर कहिए ॥

दोहा १३२ का शेष—

२ काष्ठा= काल की माप=१/३० कला ।

ब्रह्मा के जो एक दिन माहीं । चौदह इंद्र चौदह मनु जाहीं ।।
स्वायम्भू स्वारेचक औतम । तामस रैवत चाक्षुक उत्तम ।।
एक वैवस्वत पुनि सार्वणि । भौत्य रोच्य पुनि मनु ये धारणि ।।
भाव्य मेरु सार्वणि कहाए । सूरज इक सार्वणिहि पाए ।।
रोहित नाम एक पुनि होई । चौदह मनु[१] कहियत हैं सोई ।।

दोहा— मन्वंतर इह वैवस्वत कल्प श्वेत बाराह ।
विधि भये बरस पचास के मध्याह्न दिन आह ।। १३४ ।।

चौ०— ब्रह्मा जाहि हजारह्न जानें । बिष्नु घरी तब कहत सयानें ।।
ग्यारह बिष्नु जो होहिं बितीता । रुद्र अर्द्ध पल होत सुनीता ।।
ग्यारह रुद्र भवानी लीला । रवि शशि इन्द्र अनेकह्न मीला ।।
ग्यारह शक्ति होइ जब जाहीं । रंचक ध्यान निरंजन माहीं ।।
पांडव जग्य कीह्न जस लूटे । श्याम कर्ण घोड़ा जब छूटे ।।
अर्जुन कृष्न संग ब्रषकेतू । श्याम कर्ण के रक्षन हेतू ।।
जोवनाश्व नृप अरु बभ्रुवाहन । राजा और बहुत औगाहन ।।
फिरत फिरत घोड़ा सब देसा । सागर माहिं कीह्न परबेसा ।।
पंचरथी अश्व संग सिधारा । और कटक सब राख्यो वारा ।।
सिंधु बीच इक द्वीपहिं देषा । बन पर्वत तहँ आहि अलेषा ।।
बैठा एक महामुनि राजा । बकदालभ अस नाम बिराजा ।।
ताहि देषि सब पाइह्न लागे । धन्य दिवस हम आजु सभागे ।।
अर्जुन ताहि प्रश्न कछु पूछे । है धौं ज्ञानवान किधौं छूछे ।।
धन्य-धन्य तप करि मन जीते । मुनि इहाँ रहत कितक दिन बीते ।।
कहै बकदालभ सुनहुँ महीसा । मम देषत ब्रह्मा गये बीसा ।।
एक बेर ब्रह्मा इहां आए । चारि भुजा मुष चारि सुहाए ।।
चारि वेद चारौं मुष गावत । मोहि देषि सन्मुष भये आवत ।।

दोहा १३४ के अन्तर्गत

१ चौदह मनु=पुराणों में चौदह मन्वन्तरों का कथन किया गया है और प्रत्येक मन्वंतर का आदि प्रवर्तक एक-एक मनु को माना गया है । लालदास ने चौदह मनुओं के नाम इस प्रकार दिये हैं—स्वयंभुव, स्वारोचिष, औत्तिम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सार्वणि, भौत्य, रौच्य, भाव्य, मेरुसावर्ण्य, सूर्य सार्वणि, रोहित । इस गणना में भाव्य और रोहित दो नाम नए हैं; जबकि परम्परा से प्राप्त दक्षसार्वणि, ब्रह्मसार्वणि, धर्मसार्वणि, रौद्र देवसार्वणि एवं इन्द्रसार्वणि का नामोल्लेख लालदास ने नहीं किया ।

बोले मोहि देषि मनमाना । हम सहं कछु मुनि पढ़हु सयाना ।।
बात कहत बौडर इक आवा । मोहिं विधातहि धरि उधिरावा ।।
उड़े गगन तन सुधिहि भुलाना । उलटत पलटत पात समाना ।।
गए उलंघि लोक सब षंडा । देष्यो एक और ब्रह्माण्डा ।।
जातहि दून करत होइ लेषा । ब्रह्मा बैठ आठ मुष देषा ।।
दून तैं दून एकतहिं एका । ब्रह्मा मुष ब्रह्मांड अनेका ।।
जोइ बिधि दिषियत सोइ उधिराईं । सलभ समान चले सब जाईं ।।
चले-चले गये गगन के अंता । बैठा पुरुष एक गुनवंता ।।
भुजा अनन्त जु बदन अनन्ता । वेद अनन्त-अनन्त पढ़ंता ।।
हमहिं देषि आदर मन दीना । हाथ जोरि शिर वंदन कीना ।।
जीवन जन्म आजु हम लेषा । दरश अनन्त बिविध बिधि देषा ।।
या बिधि ताहि देषि शिर ढारे । गर्ब गुमान सबनि के मारे ।।
हरि चरित्र करि फिरि सब आने । अपने-अपने बैठ ठिकाने ।।
इह राजन्हं सुनि अचरज माना । धन्य प्रभू तुम कहं अब जाना ।।
आश्रम क्यों न कीन्ह केहि कारन । सीत घाम बरषाहि निवारन ।।
मुनि बोले जीवन जग माहीं । अलप जानि कीन्हो कछु नाहीं ।।
ऐसेउ आयु डरत हैं सेऊ । जीवन अल्प कहत हैं तेऊ ।।
देषत सुनत सकल जग मरई । लाल मनुष्य मूरष नहिं डरई ।।
सतजुग लाष बरष नर जीवै । त्रेता दस हजार जल पीवै ।।
द्वापर एक हजार रहाई । कलिजुग आयु सवासय पाई ।।
जस-जस धर्म नेम घटे जानी । तस-तस आयु घटत गई प्रानी ।।
सतजुग जीव अस्थि मह रहई । त्रेता मांस माहि सब कहई ।।
द्वापर रुधिर संग जिय जाहीं । कलिजुग प्रान रहत अन्न माहीं ।।
काल महाबल सब कह कूटै । सिध साधक सुर असुर न छूटै ।।
लोमस आदि बहुत चिरजीवी । आषरि मीच सबन्हं की कीवी ।।
इह वकदालभ चरित सुहावा । जैमिनि जनमेजयहि सुनावा ।।

दोहा— कोटि कल्प ब्रह्मा जियत सो पुनि अन्त बिलात ।
लाल बिनाशत काल कै नर की केतिक बात ।।१३५।।

चौ०— थोरे बहुत जिए केहि कामा । जौ पै लाल भजे नहिं रामा ।।
भजन बिना नर तन है कैसा । सूकर कूकर तरुवर जैसा ।।
जो हरि भजन करो नर चाहै । तौ नित श्री भागौत अवगाहै ।।

दश लक्षन करि लक्षित होई । महा पुराण भागवत[१] सोई ॥
श्री भगवान विरंचिहि भाषा । ता तहि नाम भागवत राषा ॥
साधन सत्रह और पुराना । फल स्वरूप भागौत बषाना ॥

दोहा — मद्वयं[२] भद्वयं ब्रत्रयं चारि वकारहि जान ।
अ न पा लिंग कू स्कंध ए अष्टादश हैं पुरान ॥१३६॥

सर्ग विसर्ग पोषन स्थिति मुक्ति ऊति ईशान ।
मन्वंतर आश्रय निरोध ए दश लक्षण जान ॥१३७॥

चो०— प्रथी अप वायु तेज आकासा । शब्द स्पर्श रूप रस भासा ॥
त्वक चक्षु जीभ श्रवन अरु घ्राना । वाक् पाणि पद गुदा मुताना ॥
मन बुधि चित अहंकार कहेई । लाल तत्व चौबीस हैं एई ॥
ब्रह्मा आदि पिपील प्रजंता । एई चौबीस तत्व तनवंता ॥
सर्ग तत्व उत्पति कहि गावा । पुनि विसर्ग विस्तार बनावा ॥
थापे करि भूगोल षगोला । कहत है स्थिति ताहि अडोला ॥
इंद्र अजामिलि के दुष सोषन । रक्षा ताहि कहत कवि पोषन ॥
सत औ असत वासना पाई । सोइ लक्षन है ऊति सुहाई ॥

दोहा १३६ के अन्तर्गत—

१ महापुराण भागवत=श्रीमद्भागवत् पुराण मध्यकालीन मधुर रस-साधना का प्रमुख प्रेरक स्रोत है। भक्ति-शास्त्र के सर्वस्व-भागवतपुराण की प्रशस्ति करते हुए इसे निगमकल्पतरु का स्वयं गलित फल कहा गया है—

निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रव संयुतम् ।
पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥
—भागवतपुराण, १/१/२

पं० वलदेव उपाध्याय के अनुसार वैष्णवधर्म के अवांतरकालीन समग्र संप्रदाय भागवत के ही अनुग्रह के विलास हैं। (भागवत सम्प्रदाय, पं० वल्देव उपाध्याय पृ० १४७-१४८)। 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' कहावत आज भी पंडितों में प्रचलित हैं। भागवत ने भट्टाद्रि, पोतना, शंकरदेव, चैतन्य, वलल्भ, सूरदास, चंददास, एकनाथ, श्रीधर, विनोवा आदि अनेक भक्तों को रसाप्लावित किया है। लालदास भी भागवत के नित्य-सेवक प्रतीत होते हैं।

२ मद्वयं……पुराण=अष्टादश पुराणो के नामों को नाम के प्रथम अक्षर के संकेत से व्यक्त किया गया है।

मनु रिषि राजन्ह कर ब्योहारा । लक्षन नाम मन्वंतर धारा ।।
सूरज सोम वंश दोइ गाए । सोइ लक्षन ईशान कहाए ।।
कंसादिक सब दुष्ट बिनाशा । ताको नाम निरोध प्रकासा ।।
ईश्वर हैं सबके आधारा । आश्रय नाम सलक्षन धारा ।।
मुक्त होहिं सब जीवहिं जाना । ए दश लक्षन व्यास बषाना ।।

दोहा— लाल भागवत जे सुने मन बच क्रम करि कोइ ।
भक्ति पाइ भगवन्त की अवसि मुक्त सो होइ ।।१३८।।
सुनी बात सबहो कहैं देषी करैं बषान ।।
लाल सुने देषे विन ब्रह्मा हू नहिं जान ।।१३९।।

इति श्री अवधविलासे : बुद्धि प्रकासे : सब गुनरासे : भक्तहुलासे : पापविनासे : कृत लालदासेः अवध सरजू उत्पत्ति बर्नने द्वितीयो विश्रामः ।।२।।

:—: अथ तृतीय विश्राम :—:

चौ०— कारन सुनहु राम अवतारा । जेहि विधि आइ मनुज तनु धारा ।।
कश्यप तप जब किये अधिकाई । संग अदिति तिय अति सुषदाई ।
तन मन पवन एक करि बांधे । हरि के चरण कमल आराधे ।।
शाक मूल फल करहिं अहारा । कबहुँकि नीर रहहिं आधारा ।।
शीत घाम अति सहे अनीता । ठाढ़े तप दिन बहुत बितीता ।।
बात पात भक्षन बनचारी । दंपति कष्ट करहिं अतिभारी ।।
बरष हजार बाइस[१] तप कीनें । रहि गए त्वचा अस्थि तन छीनें ।।
राज्य भोग नहिं चहैं बिलासा । हरि के दरश परश की आशा ।।
या बिधि भक्ति देषि भगवाना । प्रगट भए अन्तर गति जाना ।।

दोहा— अन्तरगत मति भक्ति रत देषि निरंतर लाल ।
अगम अगोचर प्रेम बस प्रगटत निकट गोपाल ।। १४० ।।

चौ०— सुन्दर[१] स्याम गात शुभ अंगा । देषि मगन मन होइ अनंगा ।।
शीश•मुकुट शुभ कुंडल कानन । नैंन विशाल मनोहर आनन ।।
भौंह ललाट नासिका ग्रीवा । अति सुदेस शोभा की सींवा ।।
दंत औ अधर चिबुक छबि छाए । कोमल ललित कपोल सुहाए ।।
सोहत गल मुक्तामणि माला । अति अनूप भुज हृदय बिशाला ।।
उदर उदार नाभि गंभीरा । सुघटित कटि तटि किंकिणि हीरा ।।
जघन सघन जुग कलित पिताम्बर । कोमल चरन कमल मन मलहर ।।
जगमगात नष पंगति रेषा । बड़े भाग जिह्न के जिह्न देषा ।।

दोहा १४० के अन्तर्गत—

१ बरस हजार बाइस= हरिवंश पुराण (३ अध्याय ६७–६९) में कश्यप और अदिति १००० वर्ष तक तपस्या करते है । लालदास ने १०२२ वर्ष तक तप करने का उल्लेख किया है ।

दोहा १४१ के अन्तर्गत—

१ सुन्दर......मन मलहर=विराट विष्णु के सौन्दर्य वर्णन में शुभ, मनोहर सुदेश, शोभा, छवि, सौकुमार्य, लालित्य, अनुपम, औदार्य, सुघटन का एकल विनियोग है। सौन्दर्य के विभिन्न तत्वों को विभिन्न अवयवों में चित्रित करके सौन्दर्यका परमोज्वल एवं निर्मल स्वरूप वर्णित किया गया है ।

ओढ़े बसन बिबिध तन भूषन । जिन्ह के ध्यान मिटत सब दूषन ।।
चारि भुजा आयुध जुत चारी । संष चक्र गदा पद्म सुधारी ।।
अस कछु रूप आपु धरि सोहे । देषत ही दम्पति मन मोहे ।।

दोहा— जप करि तप करि जोग करि ज्ञान ध्यान करि हेत ।
लाल सुद्ध जब होत हिय तब हरि दरसन देत ।। १४१ ।।

चौ०— भये दिषि प्रसन कमल दल नैना । बोले मधुर माँग बर बैना ।।
भयो अनन्द महा मन माहीं । प्रेम बिबस तन की सुधि नाहीं ।।
अस का और मागिए जेई । देषत हीं रहिए नित एई ।।
इन्ह के दरस परस सुष जैसो । मुक्तिहु महि नहिं होइहैं तैसो ।।
बहुत काल के जरत हैं अंगा । भए शीतल[१] अबहीं इन्ह संगा ।।
जो सुष निमिष एक दिषि पावा । सो सुष कल्प कोटि नहिं गावा ।।
तन्मय भए कछू नहिं बोलैं । रूप सिंधु के परे भकोलैं ।।
बोले तबहिं चौंकि अकुताई । जिनि कहुँ इह छबि जाइ हिराई ।।
तुम समान तुमहीं से बालक । पुत्र होहु हमरे प्रतिपालक ।।
निसिदिन देषि बिनोद तुम्हारे । जन्म-जन्म दुष हरहिं हमारे ।।
तब प्रभु कहे होहु बर ऐसा । जो तुम्हरे मनमाना तैसा ।।
नारायण तिहुं लोक निहारा । अपने सम नहिं और कुमारा ।।
बर दै हरि गये अपने धामा । अंतरजामी सबके रामा ।।
जो नहिं देउं तो कोउ न मनिहैं । अब तौ पुत्र भये मोहि बनिहै ।।

दोहा— कहत सुनत नाहिन बनत लाल प्रेम की बात[२] ।
जाके बल संसार महँ अगम सुगम होइ जात ।।१४२।।

दोहा १४२ के अन्तर्गत—

१ शीतल = शीतकारी । कवि ने 'शीतल' का प्रयोग तृप्तिदायी अर्थ में किया है । सौन्दर्य तपन को शीतलता प्रदान करने वाला बताया गया है । महाकवि जयशंकर प्रसाद जी ने भी सौन्दर्य के तापहारी स्वरूप की अभिव्यंजना की है—

"कौन हो तुम वसंत के दूत विरस पतझर में अति सुकुमार ।
घन तिमिर में चपला की रेख तपन में शीतल मंद बयार ।"
कामायनी, जयशंकर प्रसाद, (श्रद्धा सर्ग)

२ कहत सुनत⋯प्रेम की बात=प्रेम की बातें कहते सुनते नहीं बनती । प्रेम को कवि ने अवर्णनीय कहा है । 'रत्नाकर' ने भी 'विरह व्यथा की कथा अकथ अथाह महा कहत बनै न जो प्रवीन सुकबीन सो' से इसी अनिर्वचनीय भाव दशा का संकेत किया है ।

सुंढ़ निसुंढ़ दोऊ सुत कर्दम ऋणबिंदु जज्ञ कराइ ।
आप परस्पर ग्राह गज सोइ भए जै बिजै आइ ॥१४३॥

चौ०— अब सुनि लेहु देव दुषदाई । जेहि प्रकार रावण भयो आई ॥
जय अरु बिजय[१] पारषद गाढ़े । द्वार बैकुन्ठ रहैं नित ठाढ़े ॥
दरसन कौं आतुर होइ धाए । बिन अवसर सनकादिक आए ॥
रोके तिन्हहि करे अहंकारा । हरि के दरसन की नहिं बारा ॥
जात हौ चले अंध दरराने । पूछत हौ न समय कछु जाने ॥
इह दरबार नहीं अस होई । असमय समय जाइ सब कोई ॥
केती बेर गयी हम कीनी । बालक जान छरी नहिं दीनी ॥
बालक रूप बाल तुम नाहीं । छल करि चले जात हौ माहीं ॥
देव असुर मानुष जे होई । बालक सदा रहत नहिं कोई ॥
हम देषत केते जुग बीते । ऐसे कहा जरा तुम जीते ॥
जे बैकुन्ठ रहैं नित माहीं । तिन्ह कौ जरा मरन कछु नाहीं ॥
और ठौर कैसो कोउ होई । जरा मरन तैं बचै न कोइ ॥
तुम तौ कहौ फिरत हौ बाहे । ऐसे सदा रहत हौ काहे ॥
जोगी महादेव सो को है । सो पुनि जुवा वृद्ध सो सो है ॥
याते अब हम तुमको जाने । समय नहीं फिरि जाहु ठिकाने ॥
तब सनकादिक बोले ऐसा । इन्ह कै इहाँ तमोगुन कैसा ॥
सात्विक ठौर सात्विको राजा । इहाँ रज तम को कौन है काजा ॥
बोले असुर भाँति भल नाहीं । असुरहि जाइ होह जग माहीं ॥
काम क्रोध अरु लोभ बिकारा । हरि के जन इन्हते रहै न्यारा ॥
भक्त सदा सब कहँ सुषदाई । काक कर्म नहिं हंस कराई ॥
साधु सदा बोलै शुभ बानी । सब महिं राम रहत इह जानी ॥

दोहा— लोभी जग धनमय दिषे कामी त्रियमय लेष ।
लाल धोर परमारथी नारायणमय देष ॥१४४॥

दोहा १४४ के अन्तर्गत—

१ जय अरुबिजय…कछु।जाने=सनकादिक बैकुंठ में विष्णु से मिलने गये किन्तु जय-विजय द्वारपालों ने उनको प्रवेश करने से रोका। परिणामस्वरूप सनकादि ने जय-विजय को असुर-योनि में जन्म लेने का शाप दिया। भागवतपुराण (३ अध्याय १५-१६) में इस कथा का उल्लेख प्राप्त होता है।

चौ०— भले बुरे अनहित हित होई । देखै एक साधु कहि सोई ।।
साधु[1] दयाल दया करि जानैं । दीनन्ह पर वत्सलता आनैं ।।
प्राणी देषि डरै नहिं जासों । अरु जो डर मानैं नहि कासों ।।
भयो अभिमान तर्क मन माहीं । अब इहाँ रहन जोग्य तुम नाहीं ।।
इह जब सोर भयो कछु जाना । तब बाहर आये भगवाना ।।

दोहा— संपूरन अैश्वर्ज जस धर्म लक्ष्मी जान ।
लाल ज्ञान बैराग्य ए जामहिं सो भगवान ।।१४५।।

चौ०— दृष्टि परे सनकादिक चारी । किये प्रणाम बिकुंठ बिहारी ।।
इह अपराध मानिए मेरो । क्षमा करहु इन्ह तन जिनि हेरो ।।
हम नित्य सेवक आज्ञाकारी । लक्ष्मी है सो दासि तुम्हारी ।।
मेरे बल नहिं और प्रकारा । इह कछु है सु प्रसाद तुम्हारा ।।
मैं सो तुम तुम सो मैं आही । दूसर होइ रोकिये ताही ।।
ब्रह्मादिक हैं देवता जेते । द्वैत भाव देषत हैं तेते ।।
तुम अद्वैत अषंडित ज्ञाना । इन्हकै द्वैत दृष्टि है नाना ।।
तुम निरबैर सदा समदरसी । काम क्रोध ते रहत अपरसी ।।
अदया दया करहु तुम जैसी । जापर गति पावत है तैसी ।।
गुन परगुन सबही करि जानैं । औगुन परगुन साधुहि ठानैं ।।

दोहा— धातु[1] रतन गिरि-गिरि नहिन गज-गज शिर मणि नाहिं ।
लाल साधु जहं-तहं नहिन चन्दन बन-बन माहिं ।।१४६।।

दोहा १४५ के अन्तर्गत—

१ साधु दयाल…नहिं कासों=साधु पुरुषों का लक्षण बताये हुये कवि ने उनकी कारुणिक वृत्ति को दीन जनों के प्रति वात्सल्यमयी कहा है । 'करुणा' और 'वात्सल्य' का यह अनूठा अनुवन्ध कवि की रस विषयक विशिष्ट निर्वंधना का परिणाम है । साधु पुरुषों की चारित्रिक विशेषता में कवि ने निर्भीकता की ओर भी संकेत किया है और निर्भीकता के लिये निडर होना तथा अन्य को भय मुक्त रखने की अपेक्षाएं व्यक्त की हैं । भावों की इन्हीं विशिष्ट कोटियों के आधार पर ही साधु जनों को कसौटी में कसा जा सकता है ।

दोहा १४६ के अन्तर्गत—

१ धातु रतन……बन माहिं=कविकी इस लोकोक्ति में चाणक्य की निम्न-लिखित नीति का प्रभाव द्रष्टव्य है—

"शैले-शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे-गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र चंदनं न वने-वने ।।"

चौ०— इह कछु शाप नहीं तुम दीन्हा। मैं अपनी इच्छा सब कीन्हा ॥
बुद्धि ज्ञान होइ पुनि निरमोहा। क्षमा सत्य सम दम अद्रोहा ॥
सुष अउ दुष भव अभव जु होई। भय अरु अभय होत है जोई ॥
और अंहिसा समता तुष्टिहि। गति अरु अगति छीनता पुष्टिहि ॥
तप अरु दान अजस जस जेते। मोतेहिं जानि होत हैं तेते ॥
जुद्ध करन उपजी मन माहीं। मो समान दूजा कोउ नाहीं ॥
देव दनुज अरु मनुज निहारे। वै हमसों कहा लरैं बिचारे ॥
देषे भक्त बड़े बलवंतर। जिन्ह के बस हौं रहौं निरन्तर ॥
बैर प्रीति सुष संकट दायक। मोरे भक्त मोहि सम लायक ॥
तुम दयो शाप छरी उन दोना। ए परपंच सकल मैं कीना ॥
तुम तो कल्पवृक्ष की रीती। काहू सों कछु बैर न प्रीती ॥
जो जस भाव धरै मन माहीं। देत ताहि तस अचरज नाहीं ॥

दोहा— जन की रक्षा ना करौं बैठि रहौं धरि मौन।
जन्म कर्म अवतार बिनु तो मोहिं जानैं कौन ॥१४७॥

चौ०— जो कछु बात रही मनमानी। सनकादिक के मुष भई बानी ॥
कर्ता आपु आन सिर देई। अविगति की गति लषै न कोई ॥
मैं इह करब करत हौं जेई। जोव ब्रथा अपने शिर लेई ॥
तब जय बिजय कहैं कर जोरो। नाथ हमहिं लागी इह षोरी ॥
अस जे तुमहिं छरी हम दोना। अपनी विजय अजय सब कीना ॥
जो जाको[१] गुण शील न जानै। सो ताकी निंदा नित ठानै ॥
छीर समुद्र मोन मति होना। अमृतमय चंद्रहि नहिं चोना ॥
गुन्जा भील सोस लै धरहीं। गज मुक्ता अन आदर करहीं ॥
यती देषि सब करहिं प्रनामा। गोडहि श्वान धरे बैकामा ॥
छोटे करहिं अनीति अनारी। बड़े होहिं ते लेहिं संभारी ॥

दोहा १४८ के अन्तर्गत—

१ जो जाको……अन आदर करहीं=गुणहीन व्यक्ति गुणों का मूल्यांकन न कर सकने के कारण सदगुणों की निंदा करता है। कवि ने इन पंक्तियों में संस्कृत की निम्न सूक्ति को ग्रहण करके एक नया सौन्दर्य प्रदान किया है—

"न बेत्ति यो यस्य गुण प्रकर्षम्
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करि कुम्भ जातां
मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम् ॥"

जोइ कछु कीन्ह सोइ हम पाई । शाप अनुग्रह करहु गुसाई ।।

दोहा— सनकादिक बोले जबहिं भक्ति करहु होइ दीन ।
सात जन्म सेवा किये बैर किये गति तीन[२] ।।१४८।।

चौ०— जय अरु विजय सुनें हरषानें । जस अढुके तस नाहिं गिरानें ।।
सात जन्म सेवत जो पैए । काहे न तीन जन्म महिं ऐए ।।
इह कहि जबहिं परे मुरझाई । असुर जोनि जनमे इहां आई ।।
ज्ञान विवेक भए विपरीती । करै लगै अपराध अनीती ।।
मारहिं बिप्र गऊ दुष पावा । तीरथ पूजा होम मिटावा ।।
वेद विरोध साधु दुष दाई । तहँ काहे की होय भलाई ।।
एक जन्म[१] भये अति अघधामा । हिरण्यकश्यप हिरण्याक्ष है नामा ।।
होइ बराह हते हिरण्याक्षा । हिरण्यकश्यप नर हरि होइ त्राक्षा ।।
द्वितिय जन्म भए असुर सुरारी । कुम्भकर्ण रावण भयकारी ।।
तिनके जन्म सुनों अब गाऊँ । माता पिता भेद समुझाऊँ ।
ब्रह्मा के जो पुलस्त्य बषानें । ऋषि भए बन तप करत सयानें ।।
तहाँ त्रर्णबिंदु राज रिषि होई । रहत सुमेर निकट बन सोई ।।
ताकैं कन्या तीन कुलीना । रूप भरी गुन भरी प्रवीना ।।
रहत पुलस्त्य जहाँ बन माँहीं । कन्या मिलि षेलन तहँ जाहीं ।।
राग रंग कौतूहल करहीं । लेत फूल फल धावन फिरहीं ।।
सरज सरोवर बन सुषदाई । देव बधू षेलैं तहँ आई ।।
चंपक अंब बनाइ हिंडोला । मारि अनेकन्ह करहिं कलोला ।।

दोहा— नूपुर कंकन किंकिणी आभूषण आघात ।
लाल जुवति कोमल गिरा सुनि मुनि मन चलि जात ।।१४९।।

---

२ बैर किये गति तीन=सनकादि के शाप के कारण जय विजय को तीन बार जन्म लेना पड़ा ।

दोहा १४९ के अन्तर्गत—

१ एक जन्म———रावण भयकारी=जय विजय एक जन्म में हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष के रूप में, दूसरे जन्म में रावण-कुम्भकर्ण के रूप में जन्मे । लालदास तीसरे जन्म में शिशुपाल-दन्तवक्त्र के रूप में जन्म लेने का उल्लेख इस प्रसंग में नहीं करते, जबकि वे तीन बार जन्म लेने की पुष्टि करते हैं । इस कथा का निर्देश भागवतपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, पद्मपुराण, तत्वसंग्रह रामायण में भी किया गया है ।

चौ० — पूजा ध्यान करत मुनि भाषा । होत विक्षेप[१] जानि अस भाषा ।।
जो या बन महिं आवै बाला । ताकैं गर्भ रहै ततकाला ।।
और त्रियन्ह मिलि बचन संभारा । त्रण बिंदु सुता न कीन्ह बिचारा ।।
बिसरि गई मुनि श्राप सयानी । भावी बस पुनि गई भुलानी ।।
दिवरन उदर भयो घर आई । माता पिता देखि अन भाई ।।
माता कहै त्यागि ही दीजै । बोले पिता बिबेकहि कीजै ।।
देषा मुनि जो ध्यान धरि माहीं । कन्या पुरुष भेंट कहुँ नाहीं ।।
मुनि के बचन गर्भ रह्यो चीन्हीं । सोइ कन्या ताही कहँ दीन्ही ।।
ताकैं पुत्र बिश्रवा भयऊ । सोइ रिषि होइ तपोवन गयऊ ।।
भरद्वाज मुनि मनि भए ज्ञानी । ताकैं कन्या रहै सयानी ।।
सोइ लै दीन्ह ताहि मुनि बाला । अति गुनवन्त रूप की माला ।।
सुजसा नाम भई मुनि नारी । जन्यो कुबेर पुत्र सुषकारी ।।
भयो [illegible]यान पितामह भाषा । लंका राज्य ताहि दै राषा ।।
भयो सपूत धर्म मति ताकी । सेवा करै कुबेर पिता की ।।
पूजै पाय जाय नित लागी । माता पिता भक्ति अनुरागी ।।
लंका तहिं आवै नित जाई । बैठि बिवान फिरै सुषदाई ।।
माता शांत भई शुभ चारा । तब कुबेर मन कीन्ह बिचारा ।।
पिता दुषित सेवा बिन होई । बनिता बिनु गृह धर्म न कोई ।
घर को घर कहियतु है नाहीं । गृहनी गृह जानहु जग माहीं ।।
बिनु गृहनी गृह बनषंड जैसा । गृहनी तैं गृह लागत ऐसा ।।
पुत्र मित्र सेवक बहु होई । तिय बिनु पिय हित लषै न कोई ।।
पिता वृद्ध जो कष्टहिं पावै । सुत समरथ होइ नहिंन मिटावै ।।

दोहा १५० के अन्तर्गत—

१ विक्षेप = रोग, निर्जीवता, संदेह, प्रमाद, आलस्य, विषयासक्ति, भ्रांति, दुर्बलता और अस्थिरता हैं, ये बाधाएं, जो मन में विक्षेप लाती हैं—

"व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्या विरति भ्रांतिदर्शन अलब्धभूमिकत्वा-नवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपाः तेऽन्तरायाः ।। (पांतजलि सूत्र/३०।)
विक्षेपयुक्त मन के लक्षण में संताप, निराशा, कंपकंपी और अनियमित श्वसन—"दुःखदौर्मनस्यांगमेत्रयत्वश्वास प्रश्वासा विक्षेपसहभुव :"

(पांतजलिसूत्र/३१)

होत बिक्षेप जानि अस भाषा = युवतियों की श्रृंगार और विलास की चेष्टाओं से कवि ने विक्षेप (ध्यान की वाधा एवं श्लेष से उद्वेग (प्रेरणा) का संकेत किया है ।

धिक जीवन ताको जग माहीं । जीवत अजस मुए गति नाहीं ॥
बालक जब लगि पुत्र अयाना । सेवा पिता करै जु सयाना ॥
माता पिता होइ बलहारी । तब होइ पुत्र सेव अधिकारी ॥
बापहिं बिस्नु रूप करि जानै । मातहिं श्री लक्ष्मी करि मानैं ॥
सेवा करै बहुत मन लाई । जीवत पित्र कहाँ पुनि पाई ॥
पिंडा मुएंहु दीजिए जिन्हहीं । कस नहिं जियत षिवाइए तिन्हहीं ॥
माता गंगा सम करि राषा । पुस्कर[२] पिता बेद अस भाषा ॥
गुरू केदार समान कहाए । ज्येष्ठ बंधु पिता सम गाए ॥
धर्म नेम के जे ब्रतधारी । पित्र भक्त सब तैं अधिकारी ॥
तब कुबेर इक दूत बुलावा । मय राक्षस पहँ बेगि पठावा ॥
मय माया करि है उपजाई । कन्या तीन रूप अधिकाई ॥

दोहा— मय दानव तहां दोइ हैं माया मय मय एक
मय रावन को है ससुर[३] नाना[४] द्वितीय विवेक ॥१५०॥

चौ०— मय के गुन अब करौं बषाना । विश्व कर्मा तैं अधिक सयाना ॥
सभा बिचित्र रचत एहि भांती । सुर नर देष होहिं बिभ्रांती[१] ॥
थल तहँ जल जल तहँ थल मानै । धूरि है तहाँ बिछौना जानैं ॥
जहाँ भीति तहं लगे दुवारा । जहां द्वार तहँ जानि किवारा ॥
जहाँ ऊँच तहँ षाल जनाई । जहाँ षाल तहँ ऊंच बनाई ॥
जहँ मनुष्य तहवाँ कछु नाहीं । जहाँ नाँहि तहाँ मनुष्य रहाहीं ॥
जहँ उजियार तहाँ अंधियारा । अंधकार जहँ लगै उजियारा ॥

दोहा १५० का शेष—

पाठान्तर : २ पुहुकर पिता वेद अस भाषा । (ज० प्रति)

३ ससुर=मयदानव को रावण का श्वसुर बताया गया है । मय ने अपनी पुत्री मन्दोदरी का विवाह रावण से किया था ।

४ नाना=मय रावण का नाना था । मय की तीन पुत्रियाँ माया, देवी, सुवक्षा बतायी गयी हैं । रावण का जन्म 'देवी' से हुआ । इस प्रकार 'मय' रावण का नाना हुआ ।

दोहा १५१ के अन्तर्गत—

१ बिभ्रांती=मतिभ्रम । माया इन्द्रजाल अथवा मनोलीला द्वारा मतिभ्रम उत्पन्न करती है । 'स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु, (श० ६/७) । मय को भी मायामय (मायावी) कहा गया है ।

दोहा— श्वेत श्याम आरक्त पुनि नील पीत रंग लेत ।
भासि परत विपरीत सब मय अस करि कछु देत ।।१५१।।

चौ०— ता पहं दूत गयो करि जोरा । बातैं बहुत कहीं करि तोरा ।।
कन्या देहु मांगि जक्ष राजा । सेवा करन पिता के काजा ।।
दूत जाइ जबहीं कहो बाता । सुनि जरि उठेउ दैत्य जनु पाता ।।
देषहु ब्रम्हना करत धिठाई । कौन बात कैसें कहि आई ।।
अपनी ओर न देषि निहारी । बड़ी बात कहि जाति भिषारी ।।
कहा भयो बहुतै धन बाढ़ें । आषरि हाथ ओढ़ि रहे ठाढ़े ।।
घर घर षात फिरैं नहिं लाजा । मांगत भीष कहावत राजा ।।
परसुराम को बल जिय जानी । याही तैं कछु भये गुमानी ।।
मारी लात होएं दुलराए । विष्नु अधिक लै मूड़ चढ़ाए ।।
दक्ष आदि राजन्ह सनमानें । आपुहिं बड़े भए सुठि जाने ।।
होम काज को करहिं बहाना । घीव षाड़ षाइ बहुत मुटाना ।।
पुरुषारथ कछु और न कोई । ग्रहहिं लगाइ लेहिं चहैं जोई ।।

दोहा— रवि[१] शशि मंगल बुध गुरु सुक शुनि राहु जु केत ।
कहैं होइहै दूरि दुष दै कछु इन्हकैं हेत ।।१५२।।

चौ० — पोथी बांचि आन समुझाई । आपु करैं जोई मन भाई ।।
लेवहिं पढ़े देब नहिं जानैं । टीका दै षोजहि जजमानैं ।।
लै बैठे जोई कछु पाई । पांच सात गठिया उर माई ।।
तजत न काहू भले न मंद[१] । पर घर कूदन मूसर चंद[२] ।।
ताकत फिरहिं बिवाह सराधा । षायो चहैं होइ कहुँ बाधा ।।
रंचक मीन मेष गनि देहीं । गाई भैंसि चाहे सोइ लेहीं ।।
आनहिं कहैं कछू नहिं दाना । आपु लेत फिरैं सदा बिराना ।।
लेत हैं पाप दान सबहीं के । एते पर जु कहावत नीके ।।
ते हमार लरिका तन चाहैं । फोरैं आंषि जीभ जेहि काहैं ।।
मंत्र जंत्र बल हैं जिन माहीं । इन्ह बातन्ह हम डरत हैं नाहीं ।।
जाहु दूत बकसत हों अबहूं । फिरि अस बात कहब नहिं कबहूं ।।

दोहा १५२ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ रवि शशि······हेतु प्रस्तुत दोहा छ० प्रति में अनुपलब्ध है ।

दोहा १५३ के अन्तर्गत—
पाठान्तर:— १ तजत न काहु भले न मंद (छ० प्रति) ।
२ 'परघर कूदन मूसरचंद' आंचलिक लोकोक्ति है । जिसका आशय— 'अनिमंत्रित रूप से सर्वत्र अभिग्रहण' है ।

दोहा— लाल दूत फिरि आइ कै कहो कहत सकुचात ।
मय दानव मानै नहीं गयो करहुँ इह बात ।। १५३ ।।

चौ०— सुनि कुबेर तामस करि बोले । मानहुँ नैन सिंह के षोले ।।
मय देषौ हमरी बम्हनाई । युद्ध जज्ञ करवाइब जाई ।।
क्रोध अग्नि[1] रन वेदी थापव । राक्षस मुन्ड माल गुहि जापव ।।
ध्वजा दंड जज्ञ षंभ गडाइव । आवाहन सुर सूर बुलाइव ।।
मय को कुटुम्ब समिध[2] करि जारब । सुरवा[3] तेग रुधिर घित्र डारब ।।
साकलि[4] रथ अश्व नाग अपारा । मार मार होइ मंत्र उचारा ।।
रुदन बेद धुनि होइ चहुँ ओरा । मय जजमान करौं तेहि ठौरा ।।
ब्राह्मन बहुत बेताल जिवाऊं । असुर मांस तिन्हको अघवाऊँ ।।
गावहिं गीत जोगिनी नारी । जाचक प्रेत पिसाच पुकारी ।।
श्रोणित सोम पान करवाई । सहगामिनि लिय संग लगाई ।।
बलि ताके बालक देउं भेड़ा । पातक दूरि करौं कुल पेड़ा ।।
अक्षत बान धरौं ता सीसा । दंड रूप ताहि देउं असीसा ।।
कन्या तीन दक्षिना ल्याऊं । तौ कुबेर हौं विप्र कहाऊँ ।।

दोहा— हमहूँ इह चाहत रहे कहूँ मिले[5] जजमान ।
जज्ञ करावैं युद्ध को लेहिं कहूँ जस दान ।। १५४ ।।

चौ०—इह कहि कीन्ह कुबेर चढ़ाई । मय के देश पहूँचे जाई ।।
सुनि राक्षस सब ठौर डराने । जहाँ तहाँ तजि धाम पराने ।।

दोहा १५४ के अन्तर्गत—

१ क्रोध अग्नि.........विप्र कहाऊं=सांगरूपक अलंकार के माध्यम से युद्ध को यज्ञ के रूप में वर्णित करके कुबेर द्वारा मय की तीन कन्याओं को दक्षिणा के रूप में प्राप्त करने का व्यंग्य वक्रोक्तिमूलक है ।

२ समिध=समिध (सं०) (सम्+इन्ध+क्विप्)=यज्ञाग्नि के लिए समिधाएं,—समिदाहरणाय-श० १, कु० १/५७, ५/३३ ।

३ सुरवा=सुरुवा । यज्ञ का एक पात्र जिससे अग्नि में घृत की आहुति दी जाती है ।

४ साकलि=साकल्यम्= सम्पूर्ण (पूर्णतः)

पाठान्तर :—

५ हमहूँ इह चाहत रहे मिले कहूँ जजमान । (छ० प्रति) । 'कहूँ मिले' के स्थान पर छ० प्रति में मिले कहूँ पाठ है जो क्रम विपर्यय का कारण प्रतीत होता है ।

सन्मुष भये ताहि धरि लीनें । बनिता बहुत बंदि तहँ कीनें ॥
जक्षराज तहँ दीन्ह नगारा । आने घर तब पिता जुझारा ॥
माया देवी सुवक्षा नारी । तीनौं विश्रवा भई पियारी ॥
सेवा बहुत करी मन लावा । रिषि रीझे तिन्ह संतति पावा ॥
माया कै षरदूषन आए । त्रिशिरा सूर्पणषा तिन्ह जाए ॥
देवी के जन्मे दुषदाई । रावन कुम्भकर्ण दोउ भाई ॥
पुत्र बिभीषण त्रिजटा कन्या[1] । सुवक्षा कैं जन्में दोऊ धन्या ॥
जय[2] अरु विजय जु पालक द्वारा । कुम्भकर्ण रावन अवतारा ॥
भक्त विभीषण इन्द्रजित दोई । पुन्य शील सुशील ए होई ॥
या[3] विधि रावन जन्म बषाना । कहत लाल ब्रह्मांड पुराना ॥
एक भेद इह ऐसो आही । पुनि इक और कहूँ सुनूँ ताही ॥
माली एक सुमाली एका । मालिवान त्रै नाम बिवेका ॥
राक्षस महाबली अभिमानी । लंक रहै तिन्ह की रजधानी ॥
एक बेर देवन्ह सैं बाजे । देवन्ह मारि भगाए लाजे ॥
रहे जाइ पातालहिं माहीं । फिरै धरा पर पावत नाहीं ॥
तिन्ह कैं कन्या एक रहाई । केकसि[4] नाम रूप अधिकाई ॥

दोहा १५५ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ त्रिजटी कन्या (छ० प्रति)

२ जय अरु विजय......अवतारा=जय विजय को रावण-कुम्भकर्ण का अवतार कहा गया है । भागवत पुराण, ब्रह्म वैवर्त पुराण, पद्म पुराण एवं तत्वसंग्रह रामायण में भी इस कथा का निर्देश किया गया है ।

३ या विधि रावन...ब्राह्मांड पुराना=ब्रह्मांड पुराण के आधार पर लालदास ने रावण के जन्म का विवरण प्रदान किया है । इस मत के अनुसार कुबेर द्वारा मय दानव पर चढ़ाई करना व मय की तीनों पुत्रियाँ माया, देवी एवं सुवक्षा को लाकर अपने पिता विश्रवा के लिये देना माना गया है । माया से खर दूषण त्रिसिरा, सूर्पणखा का होना, देवी से रावण और कुम्भकर्ण का जन्म तथा सुवक्षा से विभीषण व त्रिजटा का जन्म वर्णित है ।

४ केकसि=लालदास ने रावण की माता नाम कैकसी बताया है । बाल्मीकि रामायण के दक्षिणात्य पाठ में भी यही नाम प्राप्त होता है । अन्य पाठों के अनुसार उसका नाम निकषा (गौ० रा० ५, ७६, प० रा० ५, ७५) भागवत पुराण (७, १, ४३) में केशिनी तथा उड़िया राम साहित्य में नउकेशी बताया गया है ।

पुलस्त्य पुत्र विश्रवा जु मानी । तप बल बढ़ै करै रजधानी ।।
ताको पुत्र कुबेर निहारी । तब मनमाहिं सुमालि बिचारी ।।
रूप निधान महा बलवंता । मनहु काम मूरति गुनवंता ।।
जाके पुत्र होत अस जानी । दोजै सुता ताहि मनमानी ।।
कन्या भेंट मिले कर आई । रीझै ताहि देषि रिषि राई ।।
दये देस सनमान बढ़ाए । ससुर भए तब आवन पाए ।।
एक दिवस केकसि अनुरागी । सांझि समय मनि सों रति मांगी ।।
मुनि बोले धीरज धरु माही । संध्या चारि कर्म कहे नाहीं ।।
निद्रा अरु त्रिय संग बिहारा । विद्या पढ़वन करब अहारा ।।
करै अहार सो रोगी होवै । होइ दरिद्री सांझहि सोवै ।।
मूरष रहै पढै जो कोई । संतति दुष्ट अधर्मी होई ।।
कहे धर्म बहु भांतिन्ह ज्ञानी । करि बलात मुनि सों रति मानी ।।

दोहा— कालातुर पिय संग जुवा, तम एकान्त निकेत ।
रतिवन्ती पुनि राक्षिसी, कस नहि होइ अचेत ।।१५५।।

चौ०— ताकै पेट पूत भयो रावन । महामूढ़ कुल मूल नसावन ।।
केउ कवि अस गावत गुन पाँती । रावन जन्म भयो एहि भांती ।।
इह रावन[1] उतपति मन भाई । कथा अगस्त संहिता गाई ।।
रावन जन्म[2] भयो जेहि बारा । उठे अरिष्ट अनेक प्रकारा ।।
टूटे लूक धूरि उधिरानी । बरषे रुधिर भूमि थहरानी ।।
बिन बादर घहरान अकासा । बिजुरी तरकि परी चहूँ पासा ।।
चले पवन आँधी अरु पानी । उपरे रूष शिला उधिरानी ।।
गऊ रुदन मुनि बदन मलीना । देव विमान भए गति हीना ।।

दोहा १५६ के अन्तर्गत—

१ इह रावन……अगस्त संहिता गाई='अगस्त्यसंहिता' के आधार पर कवि ने रावण जन्म के एक दूसरे प्रकार का उल्लेख किया है। इस मत के अनुसार सुमाली ने कैकेसि नाम की कन्या जो विश्रवा को दिया था, उससे रावण का जन्म हुआ ।

२ रावण जन्म—समागम=रावण के जन्म के समय अनेक प्रकार के प्राकृतिक अरिष्टों का चित्रण कवि की मौलिक उद्भावना प्रतीत होती है। चरित्र विकास की दृष्टि से पाशविक प्रवृत्तियों का विस्तार मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित है । आतंक की व्याप्ति के आगम के रूप में यह चित्रण अत्यन्त प्रभावशाली है ।

तीरथ जल जहँ तहँहि भुराने । ठौर-ठौर देवल भहराने ।।
घर-घर भए कलह बिस्तारा । बोले द्यौस सियार बिकारा ।।
रिषिन्ह के घर की अगनिबिधाना । भई शांत अचिरज तिन्ह माना ।।
मिटि गये हिय के उमङ्ग हुलासा । सबके मन भए उधत उदासा ।।
हरषे राक्षस दैत्य बिकारी[३] । सकुचे साधु देव शुभ चारी ।।
सूरज तेज मंद भय माना । द्यौस हो राति भई अस जाना ।।
ठौर-ठौर ऊठीं अगिलाई । देस-देस महिं परी लराई ।।
जनमेंउ असुर अशुभ भय आगम । चले धर्म भये पाप समागम ।।
दशमुष[४] देषि मात पछिताई[५] । द्वै अस्तन कहु किहिं किहिं प्याई ।।
भले बुरे मूरष अरु ज्ञानी । पलना हो[६] तिनकौं पहिचानी ।।
होम कुण्ड रँगत जहाँ जाई । पानी तहाँ देत ढरकाई ।।
कनिया बिप्र लेइ कहुं केऊ । तोरै तिलक मिटाइ जनेऊ ।।
तुलसी मूल बढ़न नहिं पावै । तोरि तारि षनि षोदि बहावै ।।
पोथी हांथ परै कहुं आई । डारै फारि तोरि उघिराई ।।

पाठान्तर : ३ हरषे राक्षस दैत्य भिषारी । (च० प्रति)

४ दशमुष देषि……किहिं प्याई=रावण के दशमुख और अपने दो स्तनों के अनुपात को ध्यान में लाकर माँ की चिंता और मातृ-जन्य अनुताप सर्वथा मौलिक एवं आसुरी चरित्रों में भी करुणा उत्पन्न करने वाला है । संतान के पालन-पोषण में मातृक-प्रवृत्ति आत्म-त्याग का परिचय देती आयी है । अहंप-रक और आसुरी चरित्र भी वात्सल्य के भावावेगों से शून्य नहीं होते । वात्सल्य में संतति पोषण की चिंता को कवि ने 'मात पछिताई' से ध्वनित किया है । 'वात्सल्य' की अनुभूतियों में 'आनन्द' की अपेक्षा अनुताप (प्रायश्चित्त) का संकेत दार्शनिक दृष्टि से कितना अर्थपूर्ण और संकेत युक्त है । अनुचित कर्म पर दुःखाभिव्यक्ति के रूप में नारी हृदय का यह अनुताप आसुरी चरित्रों में अवशेष नैतिक मूल्यों का संकेतक है ।

पाठान्तर : ५ दसमुष देषि मातु छविताई । द्वै अस्थन कहु काहि पिआई ।।
(स० प्रति)

६ पलनाहीं=पालने से ही (जन्म से ही) । कवि ने संस्कारगत चरित्र निर्माण का संकेत किया है ।

घर-घर[७] फिरै रिषिन्ह के चोरै[८] । घंटा शंष देवता फोरै ।।
पूजा होम जो करत निहारै । डारै धूरि ईंटि फटकारै ।।
बालक संग साधु सुषदाता । मारै तिन्हैं करै उतपाता ।।
जोगी जती द्वार कोउ आवै । षेदै तिन्हहिं श्वान संग लावै ।।
जो कोउ बाल करै बरिआई । मारै बीस हाथ ताहि धाई ।।
एक गारि कोउ देइ पुकारी । एकहीं बेर देइ दश गारी ।।
जो कोउ राम नाम गुन गावै । मुष टेढ़े करि ताहि बिरावै ।।
छोटे बड़े डरैं सब बाला । चितवै बीस आँषि जनु काला[८] ।।
श्याम शरीर भयानक बानो । चितवनि क्रूर लगे डरवानो ।।
जो कछु करै सहैं सब कोई । फेरि ताहि कछु उतर न देई ।।
बीस भुजा दसशीशहिं ऐंडो । जो खर को शिर ऊपर पैंडो ।।
दक्षिण[९] सिंहल[१०] द्वीप हिंडु गिरि । रावन जन्म भयो तेहि गिरि पर ।।
षेलत षात जो भयो सयाना । पूछी मात कहा भयो नाना ।।
माता बात कही समुझाई । देवन सौं जब भई लराई ।।
मारे झारि मोर नैहर के । ठौर छिड़ाइ किए घर-घर के ।।
लंका रहे करत ठकुराई । पुनि पाताल रहे सब जाई ।।

दोहा— सौ जोजन बिस्तार गढ़ जोजन तीन उछार ।
दश जोजन दक्षिण दिशा लंका सागर पार ।।१५७।।

पाठान्तर : ७ घर-घर फिरै रिषिन्ह कहँ छेरै । (स० प्रति)

८ होमकुण्ड......जनुकाला=चरित नायक की बाल-लीलाओं के सामानान्तर खलनायक की विघटनकारी बाल्य दुष्क्रियाओं का चित्रण सर्वथा मौलिक है। प्रायः भक्त कवियों ने राम की बाल-लीलाओं के वर्णन में रुचि ली है और रावण के बाल वर्णन की सर्वथा उपेक्षा की है। लालदास एक तटस्थ एवं निष्पक्ष कवि की भांति चरित्र चित्रण में नायक और खलनायक दोनों के चारित्रिक विकास को दृष्टि में रखकर एक महान् कवि के दायित्व को पूरा करते हैं।

पाठान्तर : ९ दक्षिण सिंहल द्वीप हिन्द गिरि (स० प्रति)

१० सिंहलद्वीप=लालदास ने रावण का जन्म सिंहलद्वीप स्थित हिंडु गिरि=हिन्द गिरि में बताया है। हिन्देशिया की रामकथा 'सेरीराम' में सिंहलद्वीप में पहुंचकर रावण के द्वारा बारह वर्ष तक तपस्या करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

चौ०—मिले मोहिं लै बाप तिहारे । अबहूँ डरतहीं रहे विचारे ॥
नाना तोर सुमाली नामा । जीवत है मारे सब मामा ॥
जानेउं पूत भयो बड़भागी । अपने बैर जनावन लागी ॥
ताही समय बिमान सुहाए । बैठि कुबेर पिता पहिं आए ॥
बोली देषि केकसी माता । देषहु पुत्र भागि की बाता ॥
नाना तोर जहाँ रहि गाजा । तहइँ कुबेर भयो अब राजा ॥
कहा भयो भुज बीस तिहारे । करत हैं राज्य दोइ भुजवारे ॥
मौंति के पूत कि देषि बड़ाई । सहि न सकी कहै बोल लगाई ॥
सुनि रावन माता की बाता । देषु अबहिं का करै बिधाता ॥
रावन हाथ मूंछ पर फेरा । देषहु मात ष्याल अब मेरा ॥
एक लंक की कौन बड़ाई । तीन लोक जो राज्य न पाई ॥
सब संसार करौं अब मेरो । तौ मोहि जान दूध पियो तेरो ॥
तप ते सूर तेज अति भारी । तप ही तें ब्रह्मा जग कारी ॥
तप ते इन्द्र स्वर्ग पर बैठे । तप ते राज्य करत बलि हेठे ॥
तप तें और उपाइ न आहै । तप तें होइ कियो कछु चाहै ॥
इह निश्चय करि तीनेंउ भाई । चले करन तप ही मन आई ॥
रावन जाइ किए तप दारन । राजा होन त्रिलोकहिं कारन ॥
रहे उग्र तप कीन्ह जहाँ लौ । सीस होम किए कहाँ कहाँ लौं ॥
तीरथ जहं गोकरनहिं[1] जाईं । तपे उग्र तप तीनौं भाई ॥

दोहा १५८ के अन्तर्गत—

१ गोकरन—रावण द्वारा गोकर्ण में तपस्या करने का उल्लेख । वाल्मीकि रामायण (सर्ग ९) में दशग्रीव अपनी माता की प्रेरणा से अपने भाइयों के साथ गोकर्ण में तपस्या करने लगता है । लालदास के 'अवधविलास' में भी रावण माँ की प्रेरणा से भाइयों के साथ गोकर्ण तीर्थ में उग्र तपस्या करता है । 'गोकर्ण' को दक्षिण में स्थित एक तीर्थ स्थान कहा गया है । रघुवंश ८/३३ में —श्रितगोकर्ण निकेतमीश्वरम् से गोकर्ण को शिव का प्रिय स्थान बताया गया है । टिकार (हरदोई) की श्रीमती शशिप्रभा तोमर एवं प्रेमप्रभा तोमर ने 'गोकर्ण' तीर्थ को अवध अंचल में स्थित 'गोला गोकर्णनाथ' नामक प्रसिद्ध तीर्थ से अभिन्न बताया है ।

महादेव ब्रह्मा तहाँ आए[२] । अमर भयो रावन बर पाए ।।
कुम्भकरन[३] निद्रा लइ माँगी । भक्ति विभीषन हरि अनुरागी ।।
ब्रह्मा सो विजई वर पायो । तब रावन अपने घर आयो ।।
इह रावन उतपति जो गावै । होइ विजय वांछित फल पावै ।।
जस कछु जुक्ति लाल मन आई । रावन जनमहिं कहेउ बनाई ।।

दोहा — इक[४] रावन भये जय विजय इक हर के गन जान ।
एक जलंधर रावन भानु प्रताप के आन ।।१५८।।

चौ० — रावन[१] और अनेकन्ह आए । कलप कलप के भिन हैं गाए ।।
राम एक अवतार अनेका । भए जिते को करै विवेका ।।

---

२ महादेव ब्रह्मा तहाँ आए—लालदास ने रावण की तपस्या के प्रसंग में वर देने हेतु शिव और ब्रह्मा दोनों को एकत्र किया है । स्कंदपुराण (महेश्वरखण्ड, अ० ८); पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, अ० २६९), पाश्चात्य वृतान्त नं० ३ में शिव द्वारा रावण तथा उसके भाइयों को बरदान दिया गया है । रघुवंश (सर्ग १०) तथा दशावतार चरित के अनुसार रावण ने शिव को अपने नौ सिर समर्पित किये थे किन्तु ब्रह्मा ने वर प्रदान किया था । लालदास ने इस प्रसंग में ब्रह्मा, विष्णु, महेश (त्रिदेवों) को एकत्र करके त्रिदेवोपासना का अद्भुत समन्वय कराया है । लालदास के अनुसार विभीषण ने 'विष्णु' भक्ति का वर प्राप्त किया और 'शिव' तथा 'ब्रह्मा' रावण और उसके भाइयों को वर प्रदान करते हैं ।

३ कुम्भकरन—घर आयो=कुम्भकर्ण ने निद्रा, विभीषण ने विष्णु भक्ति, रावण ने विजय का वर प्राप्त किया ।

४ इक रावन……आन=विभिन्न मतों के अनुसार लालदास ने रावण के अवतार विषयक वृतान्तों का संकेत करते हुए उसे जय विजय, शिव के गण जालंधर तथा भानुप्रताप का अवतार बताया है । भागवत पुराण की भांति रावण-कुम्भकर्ण को जय-विजय का अवतार कहा है, शिव महापुराण (अनु० ३७३) के अनुसार नारद के शाप से शिव के दो गण रावण-कुम्भकर्ण बन गए । रामचरित मानस की भांति लालदास ने रावण को जलंधर तथा एक दूसरे वृत्तान्त के अनुसार प्रतापभानु का अवतार बताया है ।

दोहा १५८ के अन्तर्गत—

१ रावन और अनेकन्ह आए=कवि ने अनेक रावणों की ओर संकेत किया है । कल्पांतर से विभिन्न रावणों की पुष्टि की है । संभवतः कवि का संकेत पउमचरिउ, बौद्ध साहित्य, जावा के सेरत कांडो में वर्णित रावण से हो ।

दश अरु आठ पुरान हैं जेते । राम चरित गावत सब तेते ॥
भांति अनेकन्ह करत बषाना । अस को नर बर सब जिन्ह जाना ॥
जानैं राम आहि कछु जैसी । कविता[२] लाल सुनीं कहैं तैसी ॥
नाती अमर भयो सुष माना । पाई षबरि सुमाली नाना ॥
हरषि असुर सब कटक बटोरा । आइ मिलेउ रावन कहँ दौरा ॥
अब कहा पूत बिलंब लगाई । लंका लेहु करहु ठकुराई ॥
करु दिग विजय हमहिं संग लीजै । लढ़े[३] कुटुंब तिन्ह को सुष दीजै ॥
मारहु पुत्र देवता जेते । दुस्मन बड़े हमार भए ते ॥
इन्हके करत हों गयो बिलाई । रह्यो न एकहु पूत न भाई ॥
रावन सुनि नाना की बानी । बोलेउ हरषि सबै मनमानी ॥
जे जे तुम कहिहौ कछु काजा । करिहैं हम सेवक तुम राजा ॥
इह कहि रावन कीन्ह चढ़ाई । देस[४] देस नृप जीते जाई ॥
चारि[५] ठौर भयो अति अपमाना । बलि अरु बालि मिले बरदाना ॥

पाठान्तर : २ कविता लाल सुनि कहै तैसी । (स० प्रति)

३ लटे कुटंब तिन्है सुप दीजै । (स० प्रति)

४ देस देस नृप जीते जाई—कवि ने रावण की विजय यात्रा वर्णन में अनेक देशों में विजय का संकेत किया है । बाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस चंददास-रामायण (रामविनोद), 'पउम चरियं' में रावण की जय यात्राओं का वर्णन मिलता है ।

५ चारि ठौर भयो अति अपमाना—लालदास ने रावण की जय यात्रा प्रसंग में उसकी पराजयों का भी संकेत किया है। बालि द्वारा रावण की पराजय । कवि ने इस प्रसंग में बालि द्वारा रावण को काँख (बगल) में रखने एवं पालने में बाँधकर खिलौना बनाने का उल्लेख किया है । बाल्मीकि-रामायण उत्तरकाण्ड (सर्ग ३४) में बालि द्वारा रावण की पराजय में बालि द्वारा रावण को काँख में दबाने, एवं आनन्द रामायण (१, १३, १००) में रावण को अंगद के पालने के नीचे बाँधकर रखने का उल्लेख मिलता है । लालदास ने बाल्मीकि रामायण और आनन्द रामायण दोनों के मतों का सार ग्रहण करते हुए भी उसे खिलौना रूप में रखने का उल्लेख किया है, जो नूतन है ।

बलि द्वारा रावण की पराजय—लालदास ने बलि द्वारा रावण के अपमानित होने का संकेत किया है । वाल्मीकि-रामायण (स० २३ के पश्चात् पंचम प्रक्षिप्त

स्वेत द्वीप की नारिन्हं पायो । छाड़ेउ नाच नचाइ षिझायो ॥
सहसबाहु राजा गहि बाहीं । राख्यो बांधि तबेले माहीं ॥
बालि बगल रह्यो कछु उनभाख्यो । पलना बांधि षिलोना राख्यो ॥
नारद कहे भयो मति बौरा । जम पर कटक जोरि करि दौरा ॥
कह्यो देर्वारिषि बलि जिनि करई । तौ जानौं जो जम सों लरई ॥

दोहा १५८ का शेष

सर्ग) में रावण द्वारा लक्ष्मी को पकड़ने की चेष्टा का वर्णन किया है, जिसे देख कर विष्णु द्वारा हँसना व रावण काभूमि पर गिरना, अंत में विष्णु द्वारा अपना विराट रूप दिखाया जाना वर्णित है । लालदास ने इसी विष्णु की घटना का उल्लेख 'बलि' के रूप में किया है ।

श्वेत द्वीप की युवतियों द्वारा रावण का अपमान—रावण के अपमान का एक अन्य प्रसंग कवि ने श्वेत द्वीप की नारियो द्वारा रावण को नाच नचाना कहा है । यह कथा वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ (उत्तरखण्ड, सर्ग ३७ के बाद ५वाँ प्रक्षिप्त सर्ग) में है । रावण नारद के परामर्श से श्वेत द्वीप चला गया । वहाँ की युवतियों ने रावण कों लीलापूर्वक एक दूसरे के पास फेंक दिया । 'हस्ताद्धस्तं स च क्षिप्तो भ्राम्यते भ्रमलालसः' (श्लोक ३६) । भयातुर रावण सागर के मध्य गिर जाता है । आनन्द रामायण (१, १३, १३५) के अनुसार श्वेत द्वीप की किसी स्त्री ने रावण को परलंका तक फेंक दिया था । लालदास ने वाल्मीकि रामायण और आनन्द रामायण में उल्लिखित इस घटना को एक नया विकास दिया है । श्वेत-द्वीप की नारियों द्वारा रावण को फेंका नहीं जाता बल्कि रावण को नाच नचा-कर छोड़ दिया जाता है । नारियां द्वारा रावण को नाच नचाने का उल्लेख कवि की मौलिक सूझ-बूझ है और नारी मनोविज्ञान के अनुकूल है । स्त्रियों द्वारा किसी पुरुष से उसकी इच्छा के विपरीत नाच नचाने में जो व्यंग्य, विनोद एवं लीला-विलास है, वह लालदास की रसपूर्ण उत्पादक कल्पना शक्ति का भी परिचायक है ।

सहस्रबाहु द्वारा रावण का अपमान—लालदास ने सहस्रबाहु द्वारा रावण के अपमान का संकेत किया है । हरिवंश पराण (१, अध्याय ३३) में अर्जुन कार्त्तवीर्य जिसने तप द्वारा एक सहस्र भुजाएं प्राप्त की थी, पृथ्वी को जीत लिया था । कार्त्तवीर्य ने सेना सहित रावण को परास्त किया एवं अपनी राजधानी माहिष्मती में कैद कर लिया,कालान्तर में पुलस्त्य की प्रार्थना पर उसे मुक्त किया था । बाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड (सर्ग ३१-३३) में कार्त्तवीर्य द्वारा रावण की पराजय की कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है ।

नारद चाहत दुहुनि लरावन । गए जम पाहि कलह मन भावन ॥
जम सो जाइ कहै मुनि तोही । रावन आवत मारन द्रोही ॥
रावन जाइ जबहिं जम घेरा । लगि गए असुर कोट चहुँ फेरा ॥
आयो महाबली सुनि रावन । भगे भई जम लोक परावन ॥
मारै दूत भूत जम केरे । नरक छिड़ाइ दये बहुतेरे ॥
तब जमदण्ड लियो जम हाथा । परे बीचि ब्रह्मा शिव नाथा ॥
बचन हमार राषि भगवाना । इनि मूरष तुमको नहिं जाना ॥
तहाँ बच्यो मारत जमराई । सिव बिरंचि राष्यो सरनाई ॥
बैठो फेरि दुहाई लङ्का । अति बेसर्म धीठ निहसंका ॥
भयो दयो कुबेर भगाई । नृपलोभिन्ह कै कवन सगाई ॥

दोहा— नृपति भिषारी स्वान औ कुल की चहहिं न बाढ़ि ।
कायथ कुर्कट काक ए सुष मानैं कुल आढ़ि ॥१५९॥

चौ०— लंका बिकट कोट रह्यो जाई । चहूँ ओर सागर करि षाई ॥
कनक रतन मय राजित अैसी । इन्द्र चन्द्र रबि पुरी न जैसी ॥
पर्वत त्रिकुट कीन्ह रजधानी । सिंधु मध्य सब कबिन्ह बषानी ॥
ऊँच बहुत अति गगन लगाजे । मन सुमेर को श्रिंग बिराजे ॥
महादेव सों बर बल पावा । तब देवन्ह सो बैर बढ़ावा ॥
काटि बेर दस सीस चढ़ाए । सोइ दस सीस आपने पाए ॥
ग्यारह रुद्र सीस दस दीन्हें । एक रुद्र रहे सीस बिहीन्हे ॥
जेहि[1] रावन को सीस न पायो । सोइ ह हनूमान होइ आयो ॥
देव दनुज सों मरों न जाना । नर बानर मन महि नहि आना ॥
लंकापति रावन भयो राजा । चौसठि जुग लगि राज बिराजा ॥

दोहा— गौतम[2] कन्या अन्जनी मात श्राप बिनु ब्याह ।
शिव बीरज जल में रह्यो पवन तें सुत होइ जाह ॥१६०॥

दोहा १६० के अन्तर्गत—

१ जेहि रावन...... हनुमान होइ आयो=लालदास ने हनुमान को एकादश रुद्र में से उस रुद्र का अबतार कहा है जिसे रावण का शोश नहीं मिला था। कवि ने हनुमान को गौतम की पुत्री अन्जनी की संतान कहा है। सारलादास के उड़िया महाभारत के आदि-पर्व (पृ० ६०) में भी हनुमान को शिव का अवतार तथा गौतम पुत्री अन्जनी की संतान कहा गया है।

२ गौतम कन्या.........जाह=लालदास ने हनुमान की जन्म कथा के प्रसंग में जिन बातों का संकेत किया है, वे इस प्रकार हैं—

तैसेई संगी मिले क्रोधी कुबधी आप ।
निर अंकुश लाग्यो करन जे मन माने पाप ॥१६१॥

चौ०— जोग जज्ञ जप तप सब हरई । हरि कैं क्रोध होइ सोइ करई ॥
पानी पवन अगनि सब नाषे । चन्द सूर सेवक करि राषे ॥
इन्द्रादिक जु देवता जेते । बल करि वंदि कीन्ह सब तेते ॥
ईंधन बीनत फिरहिं बिचारे । रोगन करि राषे घसियारे ॥
ज्वर सब सूल प्रमेह हैं जेते । परे बंदि रावन घर तेते ॥

दोहा १६० का शेष

(अ) अन्जनी का गौतम की कन्या होना ।(ब) माँ के श्राप से अन्जनी का अविवाहित रहना । (स) शिव के वीर्य का जल में रहना । (द) पवन से पवनपुत्र का उत्पन्न होना ।

हनुमान की जन्म कथा के प्रसंग में लालदास ने 'भविष्य पुराण' की कथा को आधार बनाया है, भविष्यपुराण के अनुसार अन्जना गौतम की पुत्री है । गौतम पुत्री अंजना शिव के वरदान से पुत्रवती होती है । लालदास ने शिव वीर्य के जल में रहने का उल्लेख किया है । शिव महापुराण की शतरुद्र संहिता (अ० २०) में भी शिव के वीर्य पतन का उल्लेख मिलता है वहाँ सप्तर्षियों द्वारा उस वीर्य को अंजना के कान में रखने से हनुमान के जन्म का वृतांत पाया जाता है । हनुमान की जन्म कथा के संयोजन में लालदास ने सारलादास के उड़िया महाभारत के आदि-पर्व (पृ० ६०) के अनुसार हनुमान को शिव (रुद्र) का अवतार कहा है । 'भविष्य पुराण' के अनुसार अंजना को गौतम की पुत्री बताया है, शिवमहापुराण की शतरुद्र संहिता (अ० २०) के अनुसार शिव के वीर्य पतन का उल्लेख किया है तथा रामायण (उत्तरकांड, सर्ग ३५-३६) के अनुसार वायु से अंजना के पुत्र के रूप में हनुमान के जन्म का संकेत किया है ।

कवि ने इस प्रसंग में अंजनी को माँ के श्राप से अविवाहित कहा है । 'कथा सरित्सागर' (अनु० ३४७) में गौतम अपनी पुत्री अन्जना को गर्भवती बन जाने का शाप देते हैं क्योंकि उसने अपनी माता अहल्या का व्यभिचार प्रकट नहीं किया था ।

अतीसार[१] संग्रहनी अरसा[२] । कमल[३] अजीरन पाडुउ[४] अलसा[५] ।।
कृमि[६]जुबिलंबी[७]छर्दि[८]विसूचिक[९] । क्वास स्वास स्वर भेद[१०] अरूचिक ।।
अपस्मार उनमाद भगंदर । आमबात हृदि रोग त्रिषाकर ।।
सूक दोष[११] दृग दोष उदंसा[१२] । नाशा कर्ण रोग मुष भ्रन्सा ।।
अष्टादस जे कुष्ट बिष्याता । पुनि प्रसूति तेरह सनिपाता ।।
त्रिय संगति जे होहि बिशेषा । बाउ अनेक व्याधि तहां देषा ।।
दद्रू[१३] पाम[१४] त्वचा संबंधी । बिद्रधि व्रण शोथत दुरगंधी ।।
सोत पित्त पुनि वायु अपारा । बर बटि गोला उदर बिकारा ।।
गुदा वर्त्त पंकतियं ब्याधि । मूत्राघात अस्मरी असाधि ।।
उरु स्तंभ हलीमक[१५] एका । बिसफोटक[१६]पिड[१७]षाजु अनेका ।।

दोहा १६२ के अन्तर्गत—

१ अतीसार=पेचिश ।

२ अरसा=अर्श । अरिवत् शृणाति इति अर्शः । बवासीर ।

३ कमल=कामला (पीलिया)

४ पाडुउ=पाण्डु

५ अलसा=अलसव, अलसक, अफारा (पेट का एक रोग) । यह अजीर्ण के समान है । वैद्यराज पं० भवानीदत्त व्यास के अनुसार इस रोग में आहार उदर में जहाँ का तहाँ आलस्य के रूप में पड़ा रहता है, इसीलिये इसे 'अलसा' (अलसक) कहते हैं ।

६ कृमि=आंतों में कीड़े पैदा होने का रोग ।

७ बिलंबी=यह भी अजीर्ण के समान रोग है । इसमें आहार विलम्ब से पचता है ।

८ छर्दि=वमन

९ विसूचिक=विसूचिका । इसमें रोगी के शरीर में विशेषकर पैरो में सूची के समान पीड़ा होती है ।

१० स्वरभेद=गला बैठ जाना ।

११ सूकदोष—शिश्न (लिङ्ग) की व्याधि है ।

१२ उदंसा= उपदंश यह उपसर्गजन्य मूत्रेन्द्रिय का रोग है ।

१३ दद्रू=दद्रु (दाद)

१४ पाम=पामा (खुजली)

१५ हलीमक=यह पाण्डु रोग के अन्तर्गत है ।

१६ विस्फोटक=फोड़े

१७ पिंड=पिडिका (फुन्सियां)

रक्त पित्त जक्ष्मा उर क्षती[१८] । राजरोग मुरछा बहु भंती ॥
मूत्राघात बिसर्पा क्षुद्रा । मञ्य संरोग अमल पित रुद्रा ॥
गल गन्डक ग्रन्थी गंडमाला । डमरू मेद वद्धि अरु बाला ॥
वात रक्त मधुमेह जु दोषा । सबलवाइ हिय दाह जु सोषा ॥
अनिलश्लीपद भगन औ नाडिक । कोष्ट वृच्छ अरु दन्त उदारक ॥
उदर्द विषज पानजा रोगा । अर्बुद एक मसूरिक सोगा ॥
औरउ व्याधि हैं रोग अनेका । इह संक्षेप कह्यो कछु एका ॥
ए जे नाम रोग के राषा । माधव ग्रन्थ निदान[१९] हैं भाषा ।

दोहा— इन्ह रोगन की औषधी लाल सबहि कहि देत ।
कर्म भोग बिनु न लगै नहिंन लिषी तेहि हेत ॥१६२॥
एक[१] औषधी सद्य है जो कोउ जानैं साधि ।
लाल राम के नाम तैं सबै जाति है ब्याधि ॥१६३॥

चौ०— रावन घर राषे रषवारा । राहु केतु शनि चौकीदारा ॥
ब्रह्मा आजा जान निवारे । रुद्र देवता इष्ट हमारे ॥
शिर पर बैठि रह्यो है जोई । बिष्नु हमार कहो क होई ॥
अति अहंकार धरे मन माहीं । मो रावन कहूं जानत नाहीं ॥
माइ न बाप जाति नहिं पाँती । भाइ न पूत पतोह न नाती ॥
हाथी न घोर कटक नहिं कोई । मिहरो मरद ठका से दोई ॥
करत सहाइ रहे सुर नेरैं । ते सब कैद भए घर मेरैं ॥
रहत अकेल कौन ठकुराई । कस नहिं मोहि मिलत अब आई ॥

---

१८ उरक्षती=उरःक्षत । छाती की चोट (छाती का रोग)

१९ माधव ग्रन्थ निदान=आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ । माधवनिदान को ही आयुर्वेद जगत में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है—

"निदाने माधव : श्रेष्ठ : सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।
शारीरे सुश्रुत : प्रोक्त : चरकस्तु चिकित्सके ।"

दोहा १६२ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ एक राम के नाम तैं सबै जाति है ब्याधि । (स० प्रति)

प्रभुहि कहावत मरत न लाजै। डेढ़[1] बकाइनि बाग बिराजै ॥
अबतो रहा एक बैकुंठा। राजा होइ फूलि कहा बैठा ॥
लाष पूत मेरै घर राजैं। सवा लाष नाती अब गाजैं ॥
और कुटुम्ब गनै को लेषा। समधी ससुर अनन्तन्ह देषा ॥
बाप हमार सीस पर राजत। आजा अबहुं बिराजत गाजत ॥
गुरू हमार महा तपधारी। पल महिं प्रलय करै जग जारी ॥
बाकैं कहो कौन है साषै। मारौ आजु ताहि जो राषै ॥
अस अनाथ एती बरि आई। बाहन बिरइ गुमान कराई ॥
कबहूँ बाघ[2] होइ डरवावत। कबहूँ सूकर रूप बनावत ॥
कबहूँ मक्ष कच्छ नर होई। तातैं डरत रहत सब कोई ॥
जैसे और लोग को वाहत। मोहूँ कौ डरवायो चाहत ॥
सो इहां वै लरिका हम नाहीं। देषत स्वांगहि डरि भगि जाहीं ॥
छलहूँ नर बल करि भए राजा। राजन्ह कौ नहिं एक समाजा ॥
ब्रह्मा जगत रचत सव आगै। वाहि बड़ाई काहै लागै ॥
ठाकुर विष्नु कहत सुनि पाऊं। ताहि मारि मैं षाष मिलाऊँ ॥
बहुत बेर उनि दैत्य हैं मारे। उहइ गुमान रहत अब धारे ॥
मारे जिते असुर नहिं होई। रहै गरीब बापुरे कोई ॥
अब देषौ षोव्रत हौं वेषा। मारे जिते लेत हौं लेषा ॥

दोहा— बैठा है वैकुन्ठ महि रावन के मन माहिं।
दुसमन आया देस महि भौंदू जानत नाहिं ॥१६४॥

चौ०—है को ताहि जाहि समुझावै। मारै जांइ कि धरि लै आवै ॥
आजि बैकुण्ठ मिलै मोहि आई। कै सनमुष होइ करै लराई ॥

दोहा १६४ के अन्तर्गत—

१ डेढ़ बकाइनि बाग बिराजै—अवधी के आंचलिक मुहावरों का प्रयोग लोक-जीवन के सशक्त बिम्बों की रचना में सहायक सिद्ध हुआ है।

२ कबहूँ बाघ······सब कोई—विष्णु के अवतारों पर व्यंग्य किया गया है। रावण का यह कथन कि विष्णु कभी बाघ (नृसिंह) के रूप में, कहीं सूकर (शूकर अवतार), कहीं मक्ष (मक्ष अवतार), कक्ष (कच्छप अवतार) का रूप धारण करके जग को डरवाता है और भय के कारण संसार विष्णु को भगवान मानकर पूजा करता है। रावण के इस कथन में जहाँ एक ओर उसका अहंकार पूर्ण व्यक्तित्व चित्रित हुआ है, वहीं 'विष्णु' के प्रति उसका विद्रोह (नास्तिक भाव) प्रकट हुआ है।

तीन लोक महिं जो रह्यो चाहै । मो मेरी आज्ञा निरबाहै ॥
तीन लोक जो और दुहाई । तौ मोरी कहो कौन बड़ाई ॥
जौं सब मारि करौ मन भायो । तौ रावन केकसि को जायो ॥
चारि[1] भुजा बहुतै करि मानी । मोरी बीस भुजा नहिं जानी ॥
देषौ एक बेर कहुं नेरै । तौ चित चैन होइ जिय मेरै ॥
आजु होत बलि ध्रुव प्रहलादा । तिन्ह सों मिलि मन हरत विषादा ॥
उन्ह के बस उह रहत सदाई । जहाँ वै कहैं तहाँ तह जाई ॥
देत बुलाइ निहोरे हमारे । छल बल करि दुसमन भले मारे ॥
मदिरा[2] पिए बकत ज्यों बौरा । चले असुर संग तेहि ठौरा ॥
करत हो कहा कौन पर एतो । बल अहंकार रावरो जेतो ॥
जैहे कहाँ-कहाँ ताहि घेरैं । है त्रैलोक हस्तगत तेरैं ॥
काहैं को अकुतात हो नाथा । जब तब आइ रहैगो हाथा ॥
बैठे हो आइ जगत पतिलंका । को नहिं मानिहै रावरि संका ॥
अबहि तो आइ जगायों ठोंगा । आतुर होइ बोरहु जिनि डोंगा ॥
जा कहँ हुकुम करो सो जाई । अबहीं ताहि मिलावै आई ॥
धीरज धरे रहौ मन माहीं । एक बिकुंठ भयो किधौं नाहीं ॥
षेत न जोत न ग्राम बसाई । पैठि न घाट उगाह बजाई ॥
देषि न परत न राह बहाई । अडबड ठौर कहाँ धों आही ॥
लोक वेद ताहि बातन्ह गावत । देषत हैं न ताहि कोउ पावत ॥
जात हैं कहत भक्त कोउ बेषा । सो पुनि फिरि आवत नहिं देषा ॥
उहाँ जे गये षबरि नहिं पाई । तौ पुनि हमहुं हांथ तैं जाई ॥
गऊ बिप्र अरु भक्तन टारे । ते वाके हैं परम पियारे ॥

दोहा १६५ के अन्तर्गत—

१ चारि भुजा……नहिं जानी=रावण ने विष्णु के चतुर्भुजरूप (चारभुजा) और अपनी बीस भुजाओं की संख्या के आधार पर अपने अहं की तुष्टि एवं विष्णु के दैन्य पर व्यंग्य किया है।

२ मदिरा पिए……उगाह बजाई=कवि ने मद्यपी, अहंकारी, एवं शोषक रावण के चित्रण के व्याज से युगीन शासकों की मद्यपान की वृत्ति, हुकुम (मुस्लिम शासकों की हुकूमत) और घाट उगाह, कर आदि के बोझ से जनता को पीड़ित करने की वृत्तियों की ओर संकेत किया है।

तिन्ह कँह मार ताडना कीजै । विष्नु कहै ताहि लूटिहि लीजै ।।
तिन्ह को दुष लागैगो ताही । मारे मेरे सुनैगो काही ।।
तब उह बैर मानि भगवाना । चढ़ि दौरैगो करि अभिमाना ।।
मन मानैं सोई तब कीजै । मारौ ताहि कि छाड़िहि दीजै ।।

दोहा— असुर अंध जानैं नहीं भूँकत हैं बौरान ।
हाथी के असवार कहँ कैसै पावै स्वान[3] ।।१६५।।

[इति श्री अवधविलासे बुद्धिप्रकासे सब गुनरासे पापविनासे कृत लाल दासे रावण जन्म विजय नाम तृतीयो विश्रामः]

---

३ असुर अंध···पावै स्वान=हाथी पर सवार व्यक्ति को भूँकते हुये कुत्तों का डर नहीं होता और न वे कुत्ते उस व्यक्ति का कुछ बिगाड़ ही पाते हैं। कवि ने लोकोक्ति के माध्यम से अहंकारी निंदकों की आलोचना प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है।

:—: अथ चतुर्थ विश्राम :—:

चौ०— इहाँ जब असुर बढ़े अति भारी । गाइ रूप तब भूमि पुकारी ।।
पृथ्वी चन्द्र सूर इन्द्रादी । ब्रह्म रुद्र लै भए फिरादी ।।
क्षीर समुद्र सेष पर साई । नारायन तहँ पहुँचे जाई ।।
बिधि कर जोरि बीनती कीना । प्रभु क्षिति को असुरह्न दुष दीना ।।
बिप्र गऊ देवन्ह दुष पाए । भक्त तुम्हारे बहुत सताए ।।

दोहा— भक्त सताए सुनि प्रभू बोले चौंकि अधीर ।
ऐसो जग मैं कौंन है मोहिं न जानत वीर ।। १६६ ।।

चौ०— हरि बोले तब दीन दयाला । धरि अवतार करब प्रतिपाला ।।
एकहु असुर राषिहौं नाहीं । कछु भय जिनि मानै मन माहीं ।।
बड़े बड़े मैं असुर संघारा । रावनादि ए कौन विचारा ।।
जो[1] जेहि भाँति भजत है मोही । मैं हों ताहि भजत कहो तोही ।।
मेरे भक्त सतावै कोई । सो मेरो निज द्रोही होई ।।
भक्ताधीन सत्य हो भाष्यौं । भक्त बिरोधी मैं नहिं राष्यौं ।।
जैसे गाइ बच्छ मन दीना । तैसै रहों भक्त आधीना ।।
दुषए भक्त कहों सुनि पाऊं । जल थल खोजि औ मारि बहाऊं ।।
भक्तहिं दुषदाई नहिं छाड़ौं । ताको मूल पेड़ षनि गाड़ौं ।।
मेरो गुनहगार जो होई । छाड़ौं ताहि छिड़ावै कोई ।।
जो कोउ होइ भक्त को गुनहीं । मारौं सहित छिड़ावै उनहीं ।।
चितवै भक्त और कोउ॰ वाकैं । षायो ताहि कढ़ाऊ नाकैं ।।
मो पर भक्तहिं करै अनेरो । तौ कछु जोर चलै नहिं मेरो ।।
बेचैं बाधि मोहिं श्री सहिता । तौ मै बिकै सको बल रहिता ।।
ब्रह्मा आदि नहीं प्रिय कोई । जैसो छोह भक्त पर होई ।।
राति दिवस मेरे ही काजा । करत रहत सब सेव समाजा ।।

दोहा १६७ के अन्तर्गत—

१. जो जेहि भाँति........तोही=लालदास की इन पंक्तियो में गीता के "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है ।

बिना दाम[2] के दास विचारे। कैसे तिन्हहिं करौं मैं न्यारे।
पाँच सात बैठहिं मिलि साथा। मेरो कथा कहैं गुन गाथा॥
करै कछू जो मोहि सुहाई। रहै गरीब भए न बड़ाई॥
जो अपनो अभिमान मिटावै। सो भक्ता मेरे मन भावै॥
जहँ जहँ मम गुन गावै दासा। तहँ तहँ सदा करत हौं बासा॥
भक्तिहि रीझि देत हों जेई। ताहि मिटाइ सकै नहिं कोई॥

दोहा— भक्त दोषऊ जुक्त है पाप हरै संग लागि।
जौ पै[3] पानो तात है तऊ बुझावै आगि॥१६७॥
भक्ति हीन है गुन भरेउ वृथा कृया सब साज।
साकत सीतल तेल ज्यों अंतहुँ करै अकाज॥१६८॥
जद्यपि लाल सकाम हैं तऊ भले हरि दास।
जैसे ससि सकलंक है जग कौं करत प्रकास॥१६९॥

चौ०— जे है भक्त जक्त महि मेरे। तिन्हकैं दोष न आवै नेरे॥
उत्तम कृया कर्म कछु होई। करत हैं मोहि समर्पन सोई॥
भक्त कर्म संसर्गहि नांही। जैसे[1] कमल रहत जल माहीं॥

---

२ बिना दाम के दास=श्रम के बदले में श्रमिकों को प्रायः मूल्य (अर्थ) प्रदान किया जाता है किन्तु बिना मूल्य के श्रम का सहज समर्पण निःस्वार्थ सेवा का लोकादर्श है। 'बिना दाम के दास' से कवि ने इसी ओर संकेत किया है। 'केन' के कवि कृष्णमुरारी पहाड़िया का एक गीत भी इसी भाव भूमि को सशक्त बिम्बों में व्यक्त करने वाला है।

३ जो पै पानी......बुझावै आगि=जल उष्ण होकर भी अपनी आन्तरिक शीतलता से अग्नि का शमन करता है। कवि ने दृष्टान्त द्वारा इस ओर संकेत किया है कि सहृदय भावुकों का हृदय आन्तरिक मानवीय गुणों से युक्त होने के कारण मानसिक विकारों की अग्नि का परिशमन कर सकते हैं, भले ही वे स्वयं दोष और विकारों से सर्वथा मुक्त न हों।

दोहा १७० के अन्तर्गत—

१ जैसें कमल रहत जल माहीं=हरि-भक्त कमल पत्र की भाँति निर्लिप्त रहते हैं। संत चंददास कृत 'भक्त विहार' (हस्तलिखित प्रति) में भी संत जनों को 'पद्म पराग' की संज्ञा दी गयी है—

"पद्म पराग पराग बन अवनि भवन भै नास।
'चंद' क्षेम आनंद अपि दायक हरि के दास॥"

चंददास कृत "भक्त विहार' (चंददास सा० शो० सं० प्रति पृ० १)

जे कछू सक्ति हमारैं बरतैं । सो तो होत भक्त के करतैं ॥
का जो भयौ जगत को नाथा । जीवन मरन भक्त के हाथा ॥
मेरो जीव भक्त के माहीं । मोते[२] भक्त भिन्न कछु नाहीं ॥
षान पान पहिरन तन धरहीं । मेरी षबरि तो भक्तहि करहीं ॥
भक्तहि जाति कुटुंब है अंगी । सज्जन सुहृद सुभक्त रह संगी ॥
निस दिन भक्तहिं मोहि सभारै । भक्त बिना कोउ नाहिं हमारै ॥
छाड़े देव पित्र कुल साषा । सबही तजे एक मोहि राषा ॥
मैं अब ताहि छाड़ि कहाँ जाऊँ । छाड़ि देउं कृतघ्नी कहाऊँ ॥
पाप औ प्राश्चित हैं श्रुति माहीं । कृतघ्नि सुद्ध होइ अस नाहीं ॥
का जो जीव असंषि बनाए । मेरे काज भक्त हो आए ॥
अपने तन सुख स्वाद मिटाई । करै सोइ जो मोहि सुहाई ॥
डरत हैं मोहि नैकु न त्यागै । सेवा करहिं कछू नहिं मागै ॥
मैं कछु देउं सुलेहिं न माया । जानै[३] मोहि बीच अंतराया ॥
रिद्धि सिद्धि स्वर्गादिक जाना । झूंठे सब साँचे भगवाना ॥
जज्ञ जोग नहिं ज्ञान सवादी । तहाँ होहिं पुनि ईश्वरवादी ॥
तजहिं न टेकहिं नाम हमारो । मारहु ताहि कि गज तर डारो ॥
राम प्रसाद देइ कहि काहीं । बिषऊ षाइ डरैं नहिं ताही ॥
सेवा करत कलेस न जानै । सीत उष्न सुष ही करि मानै ॥

दोहा— माया[४] दैवी गुणमयी, दुतर दुसह कहात ।
मेरे भजन प्रताप तैं, ताहि भक्त तरि जात ॥१७०॥
सर्व धर्म परित्याग करि, एक मोहि जो लेत ।
ताकौ मै सब पाप तै, लाल मुक्त करि देत ॥१७१॥

---

२ मोते भक्त भिन्न कछु नाहीं—लालदास के अनुसार हरि-भक्त हरि से अभिन्न होते हैं । संत चंददास ने भी 'दास' को 'हरि' से अभिन्न बताया है—

"हरि सो भिन्न दास जनि जानो । सत्य रूप प्रभु सेवक मानो ॥
संत समान दान के दायक । हैं हरि एक अपर नहिं लायक ॥"

चंददास कृत 'भक्त विहार,' हस्त० चंददास सा० शो० सं० प्रति)

पाठान्तर ३ जानै मो मोहि बीचि अंतराया । (छ० प्रति)

४ माया दैवी गुणमयी दूस्तर दुसह कहात । (प्रस्तावित पाठ)

चौ०—राम कृष्न[1] नरसिंह उपासक । होंहि भक्त मम भक्ति प्रकाशक ॥
जेहि जेइ रूप जाहि मनमाना । करहिं बषान बाद करि नाना ॥
राम हमार भले सब माहीं । कोउ कहै कृष्न समान है नाहीं ॥
नाम रूप मम जेहि मन गाड़हिं । बालक ज्यों हठ ताहि न छाड़हि ॥
मैं कछु काज बिगारत आहो । भक्त सुधारि लेत है ताहो ॥
नीति अनीति औ काज अकाजै । समरथ राम करै सोइ छाजै ॥
अस कहि कहि मो कहं जस देहो । मम निंदा सहि सकै न केहो ॥
इन्द्रादिक जिन्ह सुष लय लीना । भक्तन्ह काक पाक सम कीना ॥
मेरोइ भजन जजन उर धारे । मुक्ति प्रजंत[2] षाक करि डारे ॥
कर्म निषेध आप सिर लेहो । उत्तम मोहि समर्पिहि देहो ॥
कारज आपुहिं करै बनाई । कर्ता हरि मोहिं देहिं बड़ाई ॥
जौ कछु देत भक्त कहँ केई । दाता राम मान ताहि लेई ॥
भेष[3] बनाइ भीष के कारन । ते भक्ता नहिं जाचक चारन ॥

दोहा— सुधा सिंधु जे मम कथा बिहरत करत बिनोद ।
त्रिन सम लषि चितवहिं नहीं चारि पदारथ कोद ॥१७२॥
चारि बिधा मोकहुँ भजत जना सुकृती देष ।
आरत जिज्ञासु अर्थी ज्ञानी लाल बिशेष ॥१७३॥

दोहा १७२ के अन्तर्गत —

१ राम कृष्ण नरसिंह उपासक=राम, कृष्ण और नृसिंह की उपासना की ओर संकेत है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने श्लेष से 'राम कृष्ण' और 'नरसिंह' भक्त कवियों का भी संकेत किया है । संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में 'रामकृष्ण' और 'नरसिंह' की भारतीय साहित्य शास्त्र भाग १ पृ० १६७ में कृतियों का उल्लेख प्राप्त होता है । नरसिंह कवि कृत नञ्जराज भूषण का उल्लेख मिलता है तथा इस कवि की उपाधि अभिनव कालिदास की बतायी गयी है । पूर्ववर्ती एवं समकालीन कवियों, भक्तों का श्लेष से स्मरण लालदास की उदार एवं कृतज्ञ मनोवृत्ति का परिचायक है ।

२ प्रजंत=पर्यन्त

३ भेष बनाइ······जाचक चारन=भिक्षार्जन के लिये जो साधु भेष को धारण करते हैं, वे भक्त नहीं होते । वे याचक अथवा चारण होते हैं । संत मीता साहब ने भी भेष और पाखंड के धुरें उड़ाये हैं—'भेखन के संग भरमु है भक्ति भेखु ते दूर' 'मीता ग्रन्थावली' (साखी खण्ड), सं० डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, पृ० ५

सों०— भक्त[१] हैं तीन प्रकार तमो रजो गुन सात्विकी ।
मध्यम कृया बिचार उत्तम सम प्रतिमा कनिष्ठ ॥१७४॥

चौ०— मैं तो कबहुं न देत दिषाई । नामहिं सुनि सुनि प्रीति लगाई ॥
जग महिं रीति चलत है अबही । मुष देषे की प्रीति है सबही ॥
अदब हजूर[१] होइ नहि जैसो । दूरहिं ते मानत हैं तैसो ॥
आछो ठौर होइ कहुं भाषहि । तहां वे भक्त मोहिं ले राषहिं ॥
सीतल तपत सुषद मन धरहीं । समय[२] जानि सेवा सब करहीं ॥
सीत घाम क्षुत प्यास असोही । भक्त भाव करि व्यापत मोही ॥
बासन वस्तु कछू मम होई । ठाकुर के छूवहु जिनि कोई ॥
कछू सराहि कहै कोउ ताही । हमरो कहा राम के आही ॥
जोते बोइ सींचिये व्यामा[४] । राम हमार षेत भल जामा ॥
कन्या पुत्र बिवाहे चाही । आए गए षरच घर आही ॥
लरिका[५] भूष मरत घर माहीं । मूठी भरे चबैना नाहीं ॥

दोहा १७४ के अन्तर्गत—

१ भक्त हैं तीन प्रकार=सात्विक, तम, रज, (त्रिगुण) के आधार पर लालदास ने भक्तों का त्रिविधि-वर्गीकरण किया है ।

दोहा १७४ के अन्तर्गत—

१ अदब हजूर = हजूरी अदब । मुस्लिम काल में बादशाह (हजूर) को दिये जाने वाला अभिवादन (अदब) । 'अदब हजूर' के समानान्तर भक्तों द्वारा भगवान को दिया जाने वाला आन्तरिक अभिवादन संतों के स्वाभिमानपूर्ण व्यक्तित्व का सूचक है । संत लालदास दरबारी मनोवृत्ति से मुक्त हैं । कवि की इन पंक्तियों में तत्कालीन शासकीय एवं सामंतीय परम्पराओं पर व्यंग्य भी किया गया प्रतीत होता है । व्यतिरेक से 'अदब हजूर' की तुच्छता का संकेत 'संतन को कहा सीकरी सौं काम' जैसी गौरव- पूर्ण उक्तियों का स्मरण दिलाने लगता है ।

२ समय = उपासना के अन्तर्गत स्वीकृत अष्ट प्रहर सेवा आदि का संकेत ।

३ क्षुत = क्षुधा (भूख)

४ व्यामा=व्यावां । लम्बाई की एक माप । हाथों को अगल-बगल पूरा फैलाने पर उँगलियों के सिरे तक की लम्बाई ।

५ लरिका भूख.........उपासन=कवि ने धर्म और मानवता के कठिन मार्ग पर चलने वाले साधुजनों की निर्धनता, उनकी पारिवारिक-आर्थिक विपन्नता का हृदय विदारक चित्रण करके नैतिक मूल्यों के प्रति समर्थन व्यक्त किया है एवं शोषण के आधार पर भौतिक प्रगति पर व्यंग्य किया है ।

बैठी त्रिया रहति मन मारें । फाटे चीर सरीर उघारे ॥
घर महिं सूत कपास न बासन । गिरे परे घर रहत उपासन ॥
जा पर कृपा करउ ताहि देउ दुष । संपति हरउ करों मम सनमुष ॥
ऐसे कष्ट करैं कठिनाई । छाड़हिं नहीं धर्म भक्ताई ॥
मैं समरथ ठाकुर मो पाहीं । बड़े धीर मांगै कछु नांहीं ॥
घर की दशा रहत कछु ऐसी । मन की दशा साहु की जैसी ॥
मेरे जन्म कर्म आराधहिं । थोरे बहुत करै परि साधहिं ॥

दोहा— धनिक मनक जो देइ कछु ताहि तनक करि जानि ।
रंक तनक जो देत है लाल मनक करि मानि ॥ १७५ ॥

चौ०— भक्त पचास संग गुरु आए । हरष्यौ भक्त देषि मन भाए ॥
करजउ[1] काढ़ि रसोई दीनी । मोहि जानि सेवा तिनि कीनी ॥
समधी सगे नहीं तस भाए । जैसों हर्ष भक्त के आए ॥
माला[2] तिलक देषि मन मानैं । होइ कोउ अपना इत जानैं ॥
ताको आदर मान बढ़ावै । मेरे जानि तिन्है हित लावै ॥
ऐसो जिन्हहि प्रिये हों लागौं । ता कहँ कौन भाँति मैं त्यागौं ॥
बैठत[3] राम उठत पुनि रामा । नामहि लेहि करत कछु कामा ॥
तिथि न नक्षत्र न बार बिचारै । जाहि जहाँ तहाँ मोहि संभारै ॥
शुक्लांबर शशि बरन धरन हरि । कुन्डल मुकुट तिलक माला धरि ॥
चारि भुजा तन श्याम सुरूपा । संष चक्र गद पद्म अनूपा ॥
बदन प्रसंन कमल दल नैंना । बिघन हरन मंगल मुद दैंना ॥
अस मम ध्यान सदा मन राषैं । सुष करि नाम निरन्तर भाषैं ॥
कबहूं कछू हाथ नहि ओड़ो । रहत हों मै भयो भक्त कनोड़ो ॥
मो बिनु भक्त कछू नहि षाहीं । ठाकुर अबहुँ न्हवाए नाहीं ॥
प्यासे मरहिं प्रीति अस ठानी । मोहि देषाइ पिए तब पानी ॥
राउ रंक की संक न आनैं । मेरैं बल बोलैं मोहि मानैं[4] ॥

दोहा १७६ के अन्तर्गत—

पाठान्तर १ रिनऊँ काढ़ि रसोई दीनी (छ० प्रति)

२ माला तिलक देषि सनमानैं (छ० प्रति)

३ बैठत राम.........निरंतर भाषै=प्रस्तुत पंक्तियाँ छ० प्रति में खंडित होने के कारण अलुप्त हैं ।

४ मेरैं बल बोलैं मोहि जानैं । (छ० प्रति)

मम दरसन निसदिन अनुरागे । चातक ज्यों आसा रहै लागे ॥
ऐसे भक्तहिं जे दुष करई । मो पहिं कौन भाँति सहि परई ॥

दोहा— दुर्वासा अम्बरीष कहँ लाल दयो दुष जान ।
जर्यो डर्यो भाग्यो फिर्यो भक्तहिं राषे प्रान ॥ १७६ ॥

लाल भक्ति के भेद हैं जिते तिते कहै कौन ।
जानें कछु तैसे कहे सुनें ग्रन्थ मुष जौन ॥ १७७ ॥

चौ०— जिनि अकुताहु करब रखवारी । रहहु धरा धीरज मन धारी ॥
कश्यप वर अरु गाइ उबारब । एक पंथ दोइ काज सुधारब ॥
इह सुनि बचन धरा हरषानी । निर्भय भई सत्य सुनि बानी ॥
जब जब असुर बढ़े तब मारा । बहुत बेर मम भार उतारा ॥
जाको बल जब कहुँ न बसाई । तब ता कहँ हरि होइ सहाई ॥
असरन सरन अनाथनि नाथा । बंधू दीन वेद कहि गाथा ॥
और अनेक विरद हैं जाके । सारद शेष वहुत गुन थाके ॥
जेइ जेइ असुर हने भगवाना । करत चलो हरि कर्म बषाना ॥
सतजुग असुर भयो मुर[१] मम तल । ताल जंघ को पूत्र महाबल ।
जाके भय त्रैलोक डराने । देवलोक तजि देव पराने ॥
महि मंडल पर सुर सब आए । गुप्त रूप धरि रहहिं लुकाए ॥
षोजे बहु विधि जतन बनावा । रुद्र बिष्नु दोउ हाथ न आवा ॥
ब्रह्म लोक लौं लिए छिड़ाई । नाग लोक पुनि फिरी दुहाई ॥
देवलोक असुरन्ह कौं दीने । अपने इंद्र चन्द्र रबि कीने ॥
अपनेंइ बरुन मेघ जल बरषैं । अपनेइं अगनि पवन सब करषैं ॥
चित्रगुप्त अपनें जम काला । दूत भूत अपने दिगपाला ॥
अपनेइ ब्रह्मा वेद बनाए । अपनेंइ जप तप मन्त्र चलाए ॥
अपनेंइ स्वर्ग नर्क उपदेशा । अपनिय बिद्या रचे गनेशा ॥
तीरथ ब्रत अपने मत भाषे । देव भिन्न अपनें करि राषे ॥

दोहा १७८ के अन्तर्गत—

१ मुर='मुर' नामक दैत्य । 'मुर' दैत्य को कृष्ण ने मारा था, इसीलिये वे मुरारी' कहलाये । 'गीता' में कृष्ण का विशेषण 'मुरारि मारा दुपदर्शयत्यसौ' के रूप में आया है । लालदास ने 'मुर' का विनाश 'विष्णु' द्वारा बताया है और 'मुर' को तालजंघ' का पुत्र कहा है, तथा उसे अत्यन्त शक्तिशाली दैत्य-राज के रूप में चित्रित किया है ।

अपने ग्रह तिथि जोग नक्षत्रा । मास बरस नए रचे बिचित्रा ॥
जो कछु ब्रह्मा बिष्नु बनावा । एकउ चलन चलैं नहिं पावा ॥
होम जज्ञ बलि मिटे सनाथा । देव दसौं दिस भए अनाथा ॥
इंद्रादिक बल करि सब हारे । महादेव पहिं जाइ पुकारे ॥
देव देव करुनाकर शंकर । त्राहि त्राहि हरि कर्म भयंकर ॥
आए चरन सरन हम देवा । राषि लेहु करिये प्रभु सेवा ॥
देषे देव दीन त्रिपुरारी । बोले बचन शंभु सुषकारी ॥
कारन कौन कहौ समुझाई । तुम कहँ कौन भयो दुषदाई ॥
हाथ जोरि सब देव पुकारा । मुर दानव रिपु भयो हमारा ॥
सुनत नाम शंकर[२] भय माना । कह्यो जाहु हरि सरन सयाना ॥
तब सब देव चले मन लाई । सागर क्षीर पहूँचे जाई ॥
जहँ त्रैलोक्य नाथ हितकारी । संकट कोटि भक्त दुषहारी ॥
ठाढ़ भए सुर सिंधु किनारे । सब मिलि एकहिं बेर पुकारे ॥
रक्ष रक्ष अहो देव अनंता । तुम समरथ सब विधि भगवंता ॥
मारत असुर सुरन्ह कौं स्वामी । राषि लेहु प्रभु करुनागामी ॥

छं०— गरुडागामी अंतरजामी दीन बचन सुनि लीजिए ।
सबके स्वामी है बहुनामी रक्षा जन की कीजिए ।
दीन दयाला भक्त कृपाला बिरद तुम्हारा गाइए ।
गाइ उबारन द्विज भय तारन पतित उधारन धाइए ।
तुमहीं हरता तुमहीं करता भरता तुमहीं जगत के ।
शेष अशेषा लषै न लेषा वेद अनंतहि गाइया ।
सृष्टि अपारा रचित तुम्हारा बार न पारा पाइया ।
लोक हमारे दये तुम्हारे लए असुर का सो कहैं ।
जज्ञ छिड़ाए मन्त्र मिटाए अवलंबन जासौ रहैं ।
तुम सब धाहीं सब तुम्ह माँहीं तुम समान नहिं और है ।
स्वर्ग पताला मनिका माला सूत स्वरूपी जोर है ।

दोहा १७८ का शेष—

२ शंकर भय माना='मुर' के नाम को सुनते ही शिव का भयभीत हो जाना । 'विष्णु' उपासक होने के कारण लालदास ने शिव की अपेक्षा 'विष्णु' के प्रभाव को चित्रित करने के लिये इस प्रकार के प्रसंग की कल्पना की होगी । 'अयोध्या' के वर्णन में भी 'महादेव चौपारि छवावा' कहकर साकेत की विष्णु-स्थली में शिव द्वारा चौपाल छाने का प्रसंग इसी नियति का परिणाम प्रतीत होता है ।

जुक्ति बनाई जो मन भाई आनि परत नहिं बात है ।
सबके ईसा आप अनीसा करत हो जोइ सुहात है ।
काहु लरावत काहु हरावत काहु जितावत नास है ।
जगत बिलासा रचे तमासा आप निरासा आस है ।
कर्म न काला रहत निराला जीव जंजाला जोत है ।
पुतरी धारा ख्याल[३] तुम्हारा मरन हमारा होत है ।
दीना नाथा देव अनाथा करहु सनाथा श्रीपते ।
असुर बिकारी अति बलधारी होहु मुरारी सर्व गते ।
भक्त उधारन असुर संघारन भवभय तारन साषिये ।
मानिए सेवा बिनवैं देवा सरनागत सुर राषिये ।
अहि परजङ्का रहे निसंका सुनि सुर धुनि का जागिया ।
भए सुपरसन गदा सुदरसन धरे करुन रस पागिया ।
बाहर आए दरस दिषाए देषि देव जय जय करे ।
सुर सब हरषे पुहपन्ह बरषे अरबराइ पाइन्ह परे ।
मुकुट मनोहर तिलक शिरोरुह बदन मदन मन मोहहीं ।
नैन रसाला भुजा बिशाला उर बन माला सोहहीं ।
गुनगन गावत प्रभुहिं रिझावत सुर बनिता सजि आरती ।
हरि मुष देषा जनम विशेषा लाल[४]ध्यान भई धारती ।

दोहा— जग करता जानत सबै भूत भविष्य वर्तमान ।
को उह दैत्य कहां रहत नाम कौन केहि मान ।।१७८।।

चौ०— कर जोरे सनमुष सुर ठाढ़े । गद गद गिरा प्रेम मन बाढ़े ।।
चंद्रवती पुर असुर निवासा । तालजंघ सुत मुर सब नासा ।।

दोहा १७८ का शेष

पाठान्तर : ३ पुतरी धारा व्याल तुम्हारा (छ० प्रति)

४ लाल ध्यान भई धारती=सुर बनिताएँ 'विष्णु' के रूपदर्शन के ध्यान में डूब गयीं। श्लेष से कवि का यह भी संकेत है कि उस अवसर पर 'विष्णु' के दर्शन के लिये लालदास भी 'लाल सखी' के रूप में उपस्थित थे। साधकों के लिये देश, काल की सीमाएँ बाधक नहीं बनतीं। तुलसी, सूर, चंददास सभी इन अवसरों पर नहीं चूकते। वे इष्ट के साथ तदाकर होते हैं। अन्तरंग लीला में सहचरी, सखा, सेवक रूप में उपस्थित होते हैं। रसिक साधना के संत लालदास 'सखी' के रूप में अन्तरंग लीला में प्रवेश से कैसे वंचित रहते ?

जो कछु विधि प्रभु रची तुम्हारी । सो करि दूरि और बिधिकारी ॥
देवन्ह के जे रहे ठिकाने । तहाँ दैत्य बैठे सब थाने ॥
चंद सूर जल अनिल हुतासा । ए सब असुर हैं करत प्रकासा ॥
सावधान होइ अस कछु कीजै । दानव क्षय देवन्ह सुष दीजै ॥
जगपति खगपति पर चढ़ि धाए । देवन्ह सहित असुर जहँ आए ॥
इंद्रादिक मन माहिं बिचारैं । जिनि कहुँ दौरि परै फिरि मारैं ॥
देषे दैत्य देव समुदाई । वै आए फिरि करन लराई ॥
मारहु घेरि षाहु सब झारी[1] । जीवत एक न जाहिं भिषारी ॥
जज्ञ भोग अमृत इन्ह दीठे । इन्हके मांस होहिंगे मीठे ॥
बड़े बड़े राक्षस बिकराला । मुष बाए धाए जनु काला ॥
देषन बिष्नु तमासे लागे । धरि यकु लरे देव[2] सब भागे ॥
हरि कछु तहँ पक्षपात न कीनों । भागे देव देषि हँसि दीनों ॥
फिरि फिरि देव देषि कहैं भाई । आजु कहा हरि के मन आई ॥
भले सहाइ भये हरि धाई । मारत दैत्य हँसत मुह बाई ॥
तब कोउ बोलि देव समुझाए । हरि के मरम किन्हहुँ नहिं पाए ॥
ए सम दृष्टि बसहिं सब माहीं । दया मया इन्ह कै कछु नाहीं ॥
अपने सुष सबकैं सुष मानैं । जाकें दुष नहिं दुष का जानैं ॥
दुष सुष जीव भाव तहँ होई । ए अद्वैत ब्रह्म हैं सोई ॥
मारब मरब द्वैत प्रति करना । जहँ अद्वैत तहां सम बरना ॥
आत्म सदा अच्छेद्य अभेदा । तहां कष्ट कहु कौन निवेदा ॥
जनम न मरन वियोग न नेहा । दुषहिं[3] न सुष तहँ कौन संदेहा ॥
इहँ तो लरत सदाहि रहा है । आजु लरत नहिं बात कहा है ॥
भागे याहि भग्यो जिनि जानों । दाँव देषि इह लरत सयानों ॥
छल बल करि बैरिन्ह बिन साई । आपुहि मुए कौन चतुराई ॥
हास तर्क जुत सुनि सुर बानी । दीनदयाल कहैं रस सानी ॥

दोहा १७८ के अन्तर्गत—

१ झारी=झारकर (एक एक कर)

पाठान्तर : २ देव लरे छ० प्रति (शब्द विपर्यय)

३ दुष नहिं सुष (छ० प्रति)

ठाढ़े रहौ जाहु जिनि भागे । मैं[४] अब लरौं तुम्हारे आगे ।।
देषहु छिन इक ख्याल हमारा । मारौं सबहिं एक ही बारा ।।
चक्र फिराइ गदा कर लीन्हें । मारे[५] असुर दौरि रिस भीनें ।।
असुर रुधिर बरषे छत केरे । गिरे एक ऊठहिं बहुतेरे ।।
असुर उग्र होइ सबही धाए । एकहिं बेर एक पर आए ।।
केउ इक गदा त्रिशूल चलावै । केउ इक बरछी बान लगावै ।।
कोउ इक दौरि मूक गहि मारै । कोउ इक फरसी [६]पाथर डारै ।।
षरग फरस हर धरि धरि दौरे । मूसर परिघ औ धनुष टकोरे ।।
मारु मारु धरि धरि करि गाजे । भेरी ढोल नगारे बाजे ।।
असुर अनन्त लगे चहुँ ओरा । जनु भादौं बादर शशि घोरा ।।

---

४ मै अब लरौं=मुर दैत्य के आतंक से सार्वजनिक जीवन में जो कठिन स्थिति उत्पन्न हो गयी, उसके भीतर से विष्णु के साहस, उनकी वीरता के कर्म तथा उत्साह परक योद्धिकता का वर्णन है। यह युद्ध, सांस्कृतिक मूल्यों के रक्षण के लिये है। युद्ध की कर्म प्रवृत्ति में राम के पुरुषार्थ का एक सांस्कृतिक चित्र भाव साम्य के लिये द्रष्टव्य है—

"युद्ध के विपरीत रक्षण के लिये
आयुध लिये मै घूमता हूँ
तप्त उपवन में, तपोवन में
अरक्षित राष्ट्र जीवन में
जहाँ आतंक आच्छादित दिशाएँ
साँझ के सिंदूर का दर्पण कहीं पर खो गया है
रक्त की इन घाटियों में
इन्द्रधनु प्रतिबिम्ब जैसे सो गया है ।
युद्ध के विपरीत यह प्रत्याक्रमण है
यह न कुत्सिक, चिर युयुत्सा का चरण है ।"

'अभिशप्त शिला'—डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, 'ललित' (अप्रकाशित प्रबन्ध काव्य से उद्धृत)

पाठान्तर : ५ मारे असुर बैरि रिस भीने (छ० प्रति)

६ फरसी=फारस के रहने वाले। कवि ने 'फरसी' के श्लेष द्वारा तत्कालीन मुस्लिम युद्धों की ओर संकेत किया है। संत चंददास ने भी 'रामविनोद' में श्लेष शैली से 'फरसा रन सागर जूझ मरे' कहकर फारस के निवासी मुसलमानों के युद्ध का संकेत किया है।

उछरे ललकि चले रिपु मारन । सिंह मनू गज जूथ विदारन ॥
पीतम्बर[७] कटि कसि अस टूटे । बाज राज षग गन पर छूटे ॥
भगे भभरि जगपति जब दाटे । पवन प्रचंड जनौं घन फाटे ॥
आये बहुरि घोरि रिपुकाला । जनु फिरि मिली घुमड़ि घनमाला ॥
चमकत तेग तेज चहुँघा ते । मनु दामिनि षेलत बक पांते ॥
लागत चक्रवान हरि कर के । बरषे रुधिर असुर तन दरके ॥
लरत गिरत ऊठत पुनि जाहीं । पुनि घमसान मचेउ रन माहीं ॥
असुर अनन्त एक भगवाना । मारत सब कहं करत बिताना ॥
रूप एक देषहि सब कोई । लरत फिरत बहुतै जनु होई ॥
कबहुँ कि माल जुद्ध करि षेलैं । महाभुजा असुरन्ह की पेलैं ॥
कबहुँ कि गज गति करै लराई । असुर धकाइ धका पुनि षाई ॥
कबहुँ कि ललकि चलावै लत्ती । डारै तोरि दैत्य की छत्ती ॥
कबहुँ कि मूड़ मूड़ सों जोरै । मारै टकर कुम्भ से फोरै ॥
कबहुँ कि ढाल हाथ धरि षंडा । षेलत हैं मनु चटकीं दंडा ॥
है त्रैलोक आप महराजा । लरत भए निहसंक न लाजा ॥

दोहा— गीत[८] बादि नाचत पढ़त जुद्ध वास ससुरारि ।
लाल अहार बिवहार महि लज्जा आठ निवारि ॥ १७९ ॥

चौ०— मारत[१] लातन्ह असुर पछारी । माटी मनहुँ कुहार लतारी ॥
परे षेत रन सुभट सुहावा । मानहुँ इन्द्र पहार गिरावा ॥
उलटि परहि हरि कर के मारा । जनु केहरि धरि द्विरद पछारा ॥

दोहा १७९ का शेष

७ पीतम्बर=पीतांबर (विष्णु का पीत परिधान) श्लेष से पीतंबर नाम के किसी योद्धा अथवा संत सैनिक का संकेत ।

८ गीत बादि······आठ निवारि=कवि ने संस्कृत के प्रसिद्ध नीति कथन 'आहारे व्यवहारे च त्यक्त लज्जः सुखी भवेत' का आश्रय, लेकर लज्जा के परित्याग के अवसरों को विस्तार देते हुए गीत, वाद्य, नृत्य, अध्ययन, युद्ध, ससुराल के आवास, आहार एवं व्यवहार इन आठ स्थलों पर लज्जा के परित्याग का संकेत किया है ।

दोहा १८० के अन्तर्गत—

१ मारत लातन्ह.........पाक समाना=विष्णु के सर्वजयी स्वरूप को चित्रित करने के लिये कवि ने आलम्बन की विभिन्न युद्धपरक चेष्टाओं को आंचलिक एवं लोक जीवन के सशक्त बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है ।

चीरे पकरि आंत नस टूटै । असुर[2] अनेक बांस सम फूटै ।।
पकरी गदा जुद्ध रस लूटे । जनु कपरे कुन्दीगर कूटे ।।
काहु के चरन पकरि हरि फेरे । डारे फांकि-फांकि नहि नेरे ।।
कबन्हु कि दैतन्ह पकरि मरोरी । मध्य भाग मुरई जनु तोरी ।।
काहु कुं पकरि जात असमाना । डारि देत फल पाक समाना ।।
ऊपर आपु परत पुनि आई । मारत लात भस्म होइ जाई ।।
गेंद ज्यों गदा मारि उधिराना । बालक जेउं षेलत चौगाना[3] ।।
पकरि असुर पर असुर पवारा । मानहुँ गडोय गडी करि मारा ।।
कबहुँकि दौरि दौरि चहुँ धाहीं । देत भगाइ आपु रहि जाहीं ।।
तहँ पुनि दंड पेलि भुज ठौंकी । ताकत चहुँ ओर चितवत चौंकी ।।
बरषहि बान मनहुँ झरि लाई । चंचल गति अति जाति चुकाई ।।
एक बेर मुर कर गहि झटकेउ । भरि दो भुजा धरनि गहि पटकेउ ।।
धूरि झारि मुर हरि पर रूठे । जनु गिरि तैं गज गिरि फिरि ऊठे ।।
आयो आपु कहत फिरि सोई । मारत हौं देषहु सब कोई ।।
सनमुष होइ त्रिशूल चलावा । ताहि चक्रभुज काटि बहावा ।।
गदा गदा पर परि[4] परि टूटे । चक्र चक्र सों लगि लगि फूटे ।।
भये निरायुध माधव माना । अंग जुद्ध तासों फिरि ठाना ।।
मारत दौरि दौरि दल कारी । बरवत[5] ज्यों षेलत बनवारी ।।
कछे अछे नट पट कहुं नाहीं । नटवा ज्यों फांदत रन मांही ।।
और एक छल हरि भल करहीं । संकट परे असुर तन धरहीं ।।
जब दश बीस दैत्य लपटाहीं । झरझराइ[6] डारत पल माहीं ।।

---

२ असुर अनेक बाँस सम फूटै = असुरों की वृद्धि इस प्रकार हो रही थी जैसे बाँस का वृक्ष शाखाओं से फूट-फूट कर एक से अनेक हो जाता है । असुरों की बंश वृद्धि एवं संख्यात्मक विस्तार को कवि ने वनस्पति जगत के 'बाँस के फूटने' के चित्र से चित्रित किया है ।

३ चौगाना = एक क्रीड़ा विशेष ।

पाठान्तर :—४ षरि परि टूटे (छ० प्रति)

५ बरवत = क्रीड़ा विशेष

६ झरझराइ = पात विहीन करना । पतझर के समय पत्तों के समूह का लगातार झरना । 'झरझराइ' क्रिया की रचना झरझर ध्वनि से बनायी गयी है । 'झरझराइ' की भांति झकझोरेउ भी ध्वनि मूलक क्रिया है 'झकझोरेउ भुजदंड सो करकेउ कठिन कठोर' (रामविनोद, चन्ददास)

पटकेउ पकरि असुर भगवंता[७] । फरफरान[८] जल बिनु जल जंता ॥
सावधान होइ रज फिरि झारी । पकरि पछारे जग जयकारी ॥
दै बैठो तर मुर महामानी । मारै बिष्नु सबनि इह जानी ॥
मोजि मरोरि तोरि बनमाला । मुकुट झटकि पटकेउ करि ज्वाला ॥
मारत बोल चढ़ेउ मुर ऊपर । फिरि कहुँ लरब और सौं भूपर ॥
काहे अघ मोहिं जानत नाहीं । काढ़ौं प्रान आंषि की घाँहीं ॥
तो पर गुस्सा बहुत है मेरो । लैहौं आजु[९] मारि जिय तेरो ॥
मारे हैं तैं जाति हमारी । सबको बैर लेत तोहिं मारी ॥
आयो लरन और मोहिं जानो । तोरौं[१०] हाड़ करौं महिमानो ॥
बोलत मुर इह भांति कठेठो । मनु मृगराज मृगा पर बैठो ।
हाइ हाई सुर करहिं बिचारे । होत सहाइ जाहिं सब मारे ॥
मन हीं मन सब सुर पछितानें । कौन काज हम कीन्ह सयानें ॥
भौंदू असुर न ईश्वर जाना । और जीव तस मन महिं माना ॥
सक्ति अनन्त जुक्त हरि गाये । अद्भुत रस इहां हारि दिषाये ॥
बेर बेर कहि कहि हुसियारा । लरहिं परसपर दोउ बरियारा ॥

दोहा— तर ऊपर आपुहि अहै भष भक्षक सब आप ।
एकु आप मारै मरै तहँ कहुँ कौन संताप ॥ १८० ॥

चौ०— तब हरि जान गई लघुताई । जोरावर सों कछु न बसाई ॥
लघुमा[१] सिद्धि आनि मन माहीं । गये निकसि मुर जानत नाहीं ॥
फिरि तापर झपटे श्री नाथा[२] । डारेउ बीच जंघ दै हाथा ॥

---

७ भगवन्ता = भगवान विष्णु । श्लेषार्थ, भगवन्तराय खीची (भगवन्ता) असोथर (फतेहपुर) के राजा, जो योद्धा और कवि दोनों थे ।

८ फरफरान = फड़फड़ाना ।

पाठान्तरः—९ मारि आजु छ० प्रति (क्रम विपर्यय)

१० तोरौं हाड करौं महिमानी = हड्डियां तोड़कर महिमानी करना कवि का लाक्षणिक प्रयोग है । हाड तोड़ना और महिमानी करना दोनों आंचलिक मुहावरे हैं । कवि ने हड्डियाँ तोड़कर आतिथ्य करने से लक्षणा को व्यंग्य से युक्त करके दुष्ट दानव की क्रूरता को अभिव्यंजित किया है ।

दोहा १८१ के अन्तर्गत—

१ लघुमा = लघिमा सिद्धि ।

२ श्री नाथा—श्री नाथ (विष्णु) । श्लेष से कवि ने 'श्री नाथ द्वारा' के भक्तों द्वारा किसी समकालीन युद्ध का संकेत किया है ।

परेउ औंध मुष असुर अजाती । मूल अकास मूंड पर छाती ।।
गोड़ मूड़ गहि कटि भर जोरे । रजक नए जनु बसन निचोरे ।।
टूटे अंग अंग अरराने । मरद मिला मन महिं मुर माने ।।
तब हरि पकरि दूरि दयो डारी । परेउ उरग ज्यों गोड़ पसारी ।।
देषि रूप सबहीं डर लागे । मनु मृगराज देषि मृग भागे ।।
दंड एक रह्यो मृतक समाना । सावधान होइ फिरि जुध ठाना ।।
जुरे फेरि सब सैन्य सहायक । मारन लगे दूर भये सायक ।।

दोहा— दिव्य बरष कियो सहस जुध हरि मुर सों असि धारि ।
छल बल करि हारे बहुत सके न असुरहिं मारि ।। १८१ ।।

चौ०— हरि बिचार कीएउ मन माहीं । भागे बनै रहैं भल नाहीं ।।
मारे जिते तिते फिरि बाढ़े । देषे कुशल क्षेम सब ठाढ़े ।।
भागे तब मन महिं भय माना । दौरे जाइ पहार लुकाना ।।
गुहा रहे एक गिरि तर भारी । पौढ़े जाइ बिकुंठ बिहारी ।
देषे[1] जब भगवन्त परानें । देवन्ह प्रान गए करि मानें ।।
भए अभाग्य अदिन दुष भारे । हरिउ सहाय भए तेउ हारे ।।
तब वै असुर हरष करि दौरा । बिजय भई मुर की करि सोरा ।।
मुर महाबली गाजि गुहिरावै । पकरहु धाइ जान नहिं पावै ।।
आपहिं एक सिंह करि माने । हम कहँ सबनि भेड़[2] करि जाने ।।
मारे भल दुसमन दुषदाई । जीवत जब तब नाहिं भलाई ।।
आजु अकेल आहि उह बैरी । पुनि फिरि लरै कटक कहुँ घेरी ।।
तब मारत बनिहै नहिं बाता । आजु घात है दीन्ह बिधाता ।।
षोज करत दौरे दल धाए । प्रेरे काल जाल महि आए ।।

दोहा— जैसे दीपक परि जरत आपुहि जाइ पतंग ।
तसए असुर आंधर भए चले मरन करि संग ।।१८२।।

दोहा १८२ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ देषे जब भगवान पराने (च० प्रति) । च० प्रति में 'भगवान' और छ० प्रति में 'भगवन्त' पाठ मिलता है । 'भगवान' की अपेक्षा 'भगवन्त' पाठ श्लेषार्थ के कारण उपयुक्त होने से मूल पाठ में ग्रहण किया गया है ।

२ भेड़=पशुओं की एक जाति । भेड़ प्राय: झुन्ड में एक दूसरे के पीछे अनुकरण करती हुयी चलती हैं । कवि ने असमर्थता और अनुकरण के व्यंग्यार्थ के लिये 'भेड़' का प्रयोग किया है ।

चौ०— बन बासिन्ह तब दीन्ह बताई । अबहीं गुहा पैठ को नु आई ॥
चहूँ ओर दैत्यन्ह हरि घेरा । परे असुर पर्वत पर डेरा ॥
केउ कहे गुहा मूंदि मुष लीजै । केउ कहे गिरि तर दाविहि दीजै ॥
केउ कहैं चहुँ दिस अगिनि लगाई । भीतर धूम घोटि मरि जाई ॥
केउ कहे बाहर करि फिरि लरिए । सनमुष होइ मारि घर करिए ॥
असुर अनन्त भए एक साथा । संकट बिकट परे जग नाथा ॥
निद्रा बस कछु जानत नाहीं । कन्या प्रगट भई मुष माहीं ॥
रूप रासि बल तेज निधाना । षरग त्रिशूल गहै कर बाना ।
निकसि गुहा बाहर चलि आई । देषे असुर अपार बनाई ॥
मनहीं मन मत कीन्ह भवानी[१] । त्रिय बल करि मारौं इह ठानी ॥
पंच काम के बान चलाए । तिन्ह करि असुर सबै बौराए ।
कितेयक नैन कटाक्षिन्ह मारे । सुधि बुधि हरी भये मति बारे ॥
किते इक मधुर मुसकि मन मोहे । ठगे चित्र पुतरी सम सोहे ॥
कितेइक रूप दिषाइ द्रवाये । बिहवल करि बल तेज नसाये ॥
फिरि देवी माया उपजाई । अन्धकार करि दृष्टि गमाई ॥
एकहि आपु षरग करि मारा । तब दैत्यन्ह महि परी पुकारा ॥
मारि मारि करि उठे अलेषा । आपुहिं महिं लरि मुए अशेषा ॥
देषे क्रोध दृष्टि करि जेते । छिन महि प्रलय भये सब तेते ॥
एकउ असुर बचेउ नहिं जाई । मानहु सब षाये महा माई ॥

दोहा— ए चरित्र हरि के अलष लाल लषे कोउ दास ।
हारि पराने आपु ही दासी सों किये नास ॥१८३॥

जागे जगन्नाथ[१] तेहि बारा । इहि महाबली असुर केहि मारा ॥
तब कन्या[२] कहे मैं सब मारे । बल अधिकार प्रसाद तुम्हारे ॥
बोले तब हरि भये दयाला । अब कछु मांग लेहु बर बाला ॥

दोहा १८३ के अन्तर्गत—

१ भवानी=शक्ति की देवी, दुर्गा, कालिका, पार्वती आदि ।

दोहा १८४ के अन्तर्गत—

१ जगन्नाथ= जगत के स्वामी (विष्णु), श्लेषार्थ जगन्नाथ पुरी के संतजनों का तत्कालीन आसुरी वृत्तियों के विपरीत विरोध ।

२ कन्या=दुर्गा । श्लेषार्थ 'कन्याकुमारी' । कवि ने तत्कालीन युद्ध के स्थलों आदि का संकेत किया है ।

धन्य धन्य तू पर उपकारी । भारत रक्षा कीन्ह हमारी ॥
कन्या कहत अवर कछु नाहीं । नाम हमार रहै जग माहीं ॥
आजु दिवस एकादसि नामा । इहै तुम्हार नाम रह्यो बामा ॥
जे कोऊ या ब्रत्तहिं करिहै । सो संसार सिंधु हो तरिहै ॥
नवमी नेम औ दशमी संजम । ब्रत एकादशी करि तजि उद्यम ॥
दिवस कथा हरि निस जागरना । उत्तम निराहार[३] ब्रत वरना ॥
पुनि द्वादशी विधि सों करि पारन । पूरन होइ ब्रत भव तारन ॥
एकादशी करै ब्रत जोई । पावै भुक्ति मुक्ति फल सोई ॥
अर्ध राति उपरांत रहाई । पला अर्द्ध पल दशमी पाई ॥
दशमीबेध कहत हैं सोई । सो ब्रत भक्त करै नहिं कोई ॥
लागे दोष बेध ब्रत करतैं । तातैं भक्त द्वादशी बरते ॥
सब जुग आदिहि अगहन मासा । शुक्ल पक्ष इह वृत्त प्रकासा ॥
जो इह कथा सुनै अरु गावै । एकादशी ब्रत्त फल पावै ॥
गुरू प्रताप भई कछु बानी । लाल भक्त इह कथा बखानी ॥

दोहा— त्रिपुर शंभु संग्राम औ मधु कैटभ किलराइ ।
लाल धरा सुमिरन किए सो मै कहूं बनाइ ॥१८४॥

---

३ निराहार—बिना अन्न का । लालदास ने निराहार ब्रत को उत्तम कहा है । संत चन्ददास ने अन्न आहार का परित्याग करके शरीर शोधन एवं काया में ही ब्रह्म के शोधन का रहस्य गोचर कराया है—

"तन्दुल एक अंजली लीजै । तपत नीर महं संजुत कीजै ।
जाम एक रच पात्र सम तन्दुल नीर प्रमान ।
एक वर्ण दूनौ करै सोधी सिद्ध निधान ॥
गो घृत अल्प ताहि रस धारी । मधुर छीर जुत भोजन कारी ॥
कछु दिन मास एक सुन धीरा । करै सो भोजन संजुत छीरा ॥
बहुर छीर तजि घृत मधुरासी । खाया वो गरासो सन्यासी॥
मास तीन तन पुष्ट करावै । बहुर तजै गुर जन बतावै ॥
वर्ष प्रमान अहार निरोधी । काया ब्रह्म आतमा सोधी ॥"

(शिव सारज्ञाख्यावली'—चन्ददास, हस्तलिखित चन्ददास शो० सं० प्रति) 'रामविनोद' की सम्पादकीय टिप्पणी से उद्धृत पृ० ७४ ।

चौ०— पुनि उह धरा कर्म हरि जोके । कहत चली भवतारन नीके ॥
त्रिपुर[1] दैत्य पुर तीन बनावा । कंचन तांब्र रूप मय भावा ॥
बिकट कोट मन्दिर बहुँ भाँती । हीरा लगे रतन मनि पाँती ॥
मनिमय कनक कंगूरे राजे । तोरन ध्वजा अनेक बिराजे ॥
जल फल फूल रहत तिन्ह माहीं । होत अखारा सदा तहाँहीं ॥
बाजत बिबिध दुंदुभी बानी । जनु आकाश घटा घहरानी ॥
अत्र अनेक धरे बल पूरा । चंद्रनाभ रवि नाम से सूरा ॥

दोहा— कुंत[2] षडग सारङ्ग हल गदा चक्र पटि[3] पाश ।
शूल मुशल तोमर[4] परसु मुदगर षेटक[5] नाश ॥१८५॥

चौ०— अमृत लै राषेउ गढ़ माहीं । तातें मरै न मारे जाहीं ॥
शुक्र सहाइ परोहित ठाढ़े । याते असुर बहुत बल बाढ़े ॥
स्वर्ग न भूमि न एकई ठौरा । रथ ज्यों घोर फिरत लीए दौरा ॥
तुरग सर्प्ष तेज अस जाहीं । मन अरु पवन ते अधिक उड़ाहीं ॥
बदरन्ह बिच दौरत दुति धारी । दामिनि ज्यों चंचल गति भारी ॥
देषिहुँ परत न देत दिषाई । द्वारन कहुँ अस जुक्ति बनाई ॥
मिलत न कबहुँ फिरत रहे न्यारे । होइ इक ठौर जाहि तब मोरे ॥
अधर अकास फिरहिं घन तूला । गंधर्व नगर जानहुँ बिन मूला ॥
देव पित्र रथ चलै न पारे । छेकत पन्थ फिरै मति वारे ॥
जहँ मन त्रिपुर धरे कहुँ आसा । बादर ज्यों पुर चलैं अकासा ॥
बिकट कोट बैठे फिरै जाई । देवन्ह सों नित करैं लराई ॥
असुर अनंत मिले मरदाने । जुद्ध अनेक भाँति करि जाने ॥
चंद सूर रथ राषहिं रोकी । चलन न देहि महाबल टोकी ॥
होम जज्ञ देषै तहाँ धावै । देव पित्र कहुँ षाइ न पावैं ॥

दोहा १८५ के अन्तर्गत—

१ त्रिपुर दैत्य......रूप भय भावा=लालदास के अनुसार त्रिपुर दैत्य ने स्वर्ण, ताम्र एवं रजत धातुओं से तीन पुरों का निर्माण किया । महाभारत (कर्णपर्व, ३३/१७ २२तथा लिंग पुराण पूर्वार्ध ७१/१८-२१ में 'मय' असुर द्वारा त्रिपुर निर्माण का उल्लेख किया गया है ।

२ कुन्त=भाला

३ पटि=पट्टि-एकतेज धार को बर्छी (आप्टे हिन्दी-संस्कृत कोश, पृ० ५६५)

४ तोमर=भाले की तरह का एक प्रसिद्ध अस्त्र ।

५ षेटक=ढाल ।

तीरथ लोग जुरैं कहु आई । डाका जाइ परै तहाँ धाई ॥
तब इन्द्रादि भए बल हीने । भागैं फिरैं लरत तन छीने ॥
सबके बड़े सरन मन धारे । ब्रह्म लोक विधि जाइ पुकारे ॥
त्राहि त्राहि स्वामी जगकारी । राषि राषि हम सरन तुम्हारी ॥
देहु उपाइ बताई गुसांई । मरै असुर जेहिं भांति बनाई ॥

दोहा— कोट ओट है धातुमय करत फिरत अपराध ।
त्रिपुर असुर करि स्वर्ग बन सुर पशु बधत ज्यों व्याध ॥१८६॥

चौ०—सुर बनिता लषि बिकल बिहाला । बलकल तन पहिरे मृगछाला ॥
बिपति परी देवन्ह दुष पावा । ब्रह्मा देषि बहुत पछितावा ॥
विधि समुझाइ कही सब गाथा । त्रिपुर मरन शंकर कै हाथा ॥
बचन प्रजापति के उर धारे । देव सबहि शिव लोक सिधारे ॥
बैठे ध्यान धरे हर देषे । जीवन मरन सुफल करि लेषे ॥
देषे पंच बदन भुजचारी । अङ्ग विभूति बघम्बर धारी ॥
देषे नैन पंच दश माते । भांग धतूर षाइ रंग राते ॥
देषे चन्द्र भाल भल सोहे । देषे जटा मुकुट मन मोहे ॥
देषे काल कंठ बिष रेषा । गंगा बहत शीश पर देषा ॥
देषे नाग अङ्ग लपटाने । केउ उतरत केउ चढ़त डराने ॥
मुद्रा कान भान दिषि भूले । माला मुन्ड हिए पर झूले ॥
बांधे बन्ध बज्र कौपीना । सिद्धासन बैठे लय लीना ॥
आयुध बान पिनाक त्रिशूला । बाहन बृषभ संग सुष मूला ॥
बैठी बाम अङ्ग महमाया[१] । रूप श्रिङ्गार अपार बनाया ॥
भैरव दूत भूत बैताला । ठाढ़े दास पिसाच कराला ॥
दरसन देषि देषि सुनि पाए । गाल[२] बजाइ बजाइ जगाए ॥

दोहा १८७ के अन्तर्गत—

१ महामाया=पार्वती

२ गाल बजाइ बजाइ जगाए=शैवसाधक शिव की आराधना में गालों के भीतर ही 'बम-बम' आदि की साधनापरक ध्वनियों से गालों को बजाते हुए आराध्य की आराधना करते हैं । महर्षि वामदेव की नगरी विराटपुरी (वामदपुरी=बाँदा) में स्थिति बम्बेश्वर पर्वत की गुफा में स्थित भगवान शिव की ज्योति लिंग की आराधना करते हुये शिव भक्तों को इस साधना विशेष में तन्मय होते देखा जा सकता है । 'कालंजर' के प्राचीन किले में भगवान शिव की विशाल-काय अद्भुत भित्ति प्रतिमा एवं प्रख्यात शिवलिंग के समक्ष भी ऐसे साधकों को साधनारत देखा गया है ।

जय जयकार करे सब देवा । बिरद अनेक कहे करि सेवा ।।
राषि राषि सरनागत त्राता । जग हरता करता बिष्याता ।।
त्रिपुर असुर देवन्ह दुषदाई । काल रूप प्रगटेउ प्रभु आई ।।
मारहु ताहि सुनहु भगवन्ता । तुम बिनु और नहीं कोउ हंता ।।
ब्रह्मा बचन सत्य सब कोजै । अभय दान देवन्ह कहँ दीजै ।।
इन्द्रादिक की सुनत गुहारी । शंकर लीन्ह त्रिशूल उघारी ।।
चले कोप करि सोक निवारन । गहि कर चक्र असुर संहारन ।।
बजे संष डमरू रन श्रिंगा । गाजत चले भूत बहु रंगा ।।
हरषे देव चले मन फूले । संकर भए जानि अनुकूले ।।
सलभ समान समूह बहन्ता । ब्याप्त भयो आकास अनन्ता ।।
गहि गहि अत्र मन्त्र बल कै कै । चढ़ि चढ़ि बिमल बिमान बनै कै ।।
गज रथ अश्व सजि सैन्य भयावन । भादौं घटा चली जनु सावन ।।
इन्द्र कुबेर चन्द्र रवि शङ्कर । त्रिपुर पाइ किए जुद्ध भयंकर ।।
गिरे असुर देवन्ह के मारे । पर्वत से भू पर बिस्तारे ।।
भगे भभरि जहँ तहँ बिततानें । नाम लुकावत फिरत डराने ।।
दैतहु देव बहुत संघारे । अमर न मरत घाव तन धारे ।।
दिवस लरत देवन्ह बल होई । निसा असुर जीतत सब कोई ।।
राति द्यौसि भइ रहति लराई । देषि देषि त्रैलोक डराई ।।
देव लरैं बिनु ओट निरारे । दैत्य कोट की ओट बरयारे ।।
छाडैं अग्नि बान जब ताते । छूटे मेघ बान बरषाते ।।
डारैं शिला बान जब आवै । तब वै वायु बान उधिरावै ।।
छाड़ै नाग बान रन माहीं । छूटैं गरुण बान गिलि जाहीं ।।
आवैं बान करत अंधियारे । चलै प्रकाश बान उजियारे ।।
साधत एक अैंचि दस करहीं । छूटत सय अस मन्त्र उचरहीं ।।
चलत हजार लगत लक्षि होई । लरत भए इहि बिधि दल दोई ।।
पढ़ि पढ़ि मन्त्र चलाइ बुलावैं । षग ज्यों बान जाहि अरु आवैं ।।
गज सो गज घोरिन्ह सो घोरा । रथ सौं रथ सम जुद्धहि जोरा ।।
चक्रहि चक्र बान सो बाना । षरगहि षरग जुद्ध तिन्ह ठाना ।।
जुवा जुवा सो बृद्धहि वृद्धा । नीति जुद्ध ठानत भए श्रद्धा ।।

अभंग=अभङ्ग रथ । शिव त्रिपुर विजय के लिये अभङ्ग रथ की रचना करते हैं ।

बाहुहि बाहु जुद्ध बिस्तारा । माया करि मायाहि निवारा ।।
मरत न दैत्य होत नहि अंता । तब बिचार कीयउ भगवंता ।।
रथ इक महा अभंग बनाए । अंग अंग सब देव लगाए ।।
चाका चंद सूर भय ताके । लागे बंध तीन गुन जाके ।।
शेष नाग के तोत्र बनाए । सारथि गनपति रथहिं चलाए ।।
माया ओट कोट चहु पाषा । पंच तत्व पकरे रहैं राषा ।।
नन्दी बरद ताहि लै जोता । औरउ बीर बहुत बल होता ।।
तीन बान शिव एकइ बारा । तीनहुँ पुर पर कीन्ह तयारा ।।
द्वादस अर्क तेज तहँ आने । पावक अष्ट जुक्त करि बाने ।।
काल मृत्यु तिन्ह कै मुष राषा । अपनी क्रोध अग्नि अभिलाषा ।।
मन्त्र जन्त्र करि अति दृढ़ कीने । ब्रह्मा बिष्नु सक्ति शिव दीने ।।
तब तहँ त्रिपुर भयो हुसियारा । सावधान होइ शिव रथ मारा ।।
रथ समेत शंकरहि गिरावा । नन्दी गन रथ तजि डर धावा ।।
मारे देव छाड़ि रथ भागे । ठाढ़े दूर तमासे लागे ।।
रथ[५] के परत पहार जु मसके । धसकी धरनि कमठ कटि कसके ।।
झलके सिंधु मेरु थहराने । दिग्गज डरे सेस सहराने ।।
देषा बिष्नु भक्त भय पावा । अति आतुर शंकर पहिं आवा ।।
आए हरि हारत हर जाने । अब का षबरि कहो मुसक्याने ।।
सक्ति संभारि प्रलय जगकारी । मारि असुर करि भस्म प्रहारी ।।
इह कहि बृषभ रूप भये ठाढ़े । महा बिशाल श्रिंग अति बाढ़े ।।

दोहा— सावधान सबहीं समय गहे धनुष कर तीर ।
लाल भक्त की भीर महिं आइ परत रघुबीर ।।१८७।।

चौ०— लीन्ह उठाइ रथहि जगधारी । दीन्ह उछारि गगन मंझारी ।।
तब शिव कीन्ह बान संधाना । सावधान होइ प्रलय समाना ।।
ऐंचे असुर नगर पर डारे । तूल समान त्रिपुर पुर जारे ।।
दिषियत जरत धातमय कैसे । ग्रीषम लाह काठ त्रिण जैसे ।।
गिरि गिरि परत जरत इहिं भाँती । टूटत लूक अनन्त दिषांती ।।
देषत जगत लगत इमि ठाढ़े । जनु गिरि जरत लगत कहुँ ठाढ़े ।।

---

५ रथ के परत……सहराने=त्रिपुर संग्राम में शिव के पराजित होने और अभङ्ग रथ के टूटने से सिन्धु के छलकने मेरु के थहराने, दिग्गजों के भय प्रकंपित होने और शेष के सिहरने का वर्णन भयाक्रान्त करने वाला है ।

आयो अदिन मरन जब आगे। कंचन कोट जरन तब लागे ॥
छीने पुन्य दई जब रुठे। जतन अनेक होत सब झूठे ॥
देषे देव त्रिपुर भयो दाहा। भए मगन मन कीन्ह उछाहा ॥
ब्रह्म रुद्र इन्द्रादिक जेते। हरि स्तुती करत भए तेते ॥
करत रहत तुम ही प्रतिपाला। देत हौ जस जन कौं गोपाला ॥
हरि हर ध्यान होय महि धारे। अपने अपने लोक सिधारे ॥
बैठे जाइ अभय भए हरषे। हरि पर सुमन बिबिध सुर बरषे ॥
सुनि हरिवंश लाल मनमाना। त्रिपुर दाह की कथा बषाना ॥

दोहा— देवन्ह के दुष दूरि करि त्रिपुर भस्म कियो जारि।
त दिन लाल महादेव को नाम परेउ त्रिपुरारि ॥१८८॥
न वह मातु नाहिंन पिता सजन बन्धु नहिं सोइ।
लाल भजत भगवन्त कहँ अंतर करत हैं जोइ ॥१८९॥

चौ०— एक समय इक कलप के अन्ता। महा प्रलय[१] जल बढ़ेउ अनन्ता ॥
ब्रह्म लोक लौं चढ़ेउ उदन्डा। भरि गयो घट ज्यों सब ब्रह्मन्डा ॥
जीव तत्व सब लीन्ह भवानी। आदि बिष्नु महि जाइ समानी ॥
विष्नु रहे जल महिं करि सयना। शेषनाग तर कीन्ह डसैना ॥
सीतल कोमल अति सुषदाई। स्वास लेत जनु देत झुलाई ॥
सोवत झुलावत अति सुषदाई। यातै होत राम शेष साई ॥
माया हरि निद्रा बस कीने। राषौं मोहि न जागन दीनें ॥
सोवत रहे सुष महिं श्री रङ्गा। प्रगटे वेद स्वास के सङ्गा ॥
रिग जजु साम अथर्वन नामा। चारि वेद पूरन सब कामा ॥
विष्नु नाभि तैं कमल निकासा। जल ऊपर होइ जाइ बिकासा ॥
तहँ ब्रह्मा प्रगटे तपधारी। चारि भुजा सोहत मुष चारी ॥
देषि कमल जल कहत विधाता। कहँ मम पिता कहाँ मम माता ॥
इहि कहि कमल नाल महि पैठे। षोज करत ब्रह्मा गए हेठे ॥

दोहा १९० के अन्तर्गत

१ महाप्रलय=आत्यन्तिक प्रलय। इसमें सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश हो जाता है। जल सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त हो जाता है। इसकी पुष्टि विष्णु पुराणः अंश ६, अ० ३, श्लोक १ के "एकार्णवं भवत्येतत्त्रै लोक्यमखिलं ततः" से हो जाती है। महाभारत वनपर्व १८७ : २-५५, मत्स्यपुराण. १/१०-३४, श्रीमद् भागवत, ८/२४/४१-५४, प्रति अग्नि पुराण २/१/१७ भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, ३/४/१/५४ में भी प्रलय का वर्णन पाया जाता है।

कबहूँ तर ऊपर कहुँ आवा । कमल नाल को अन्त न पावा ॥
तप तप भई अकासहि बानी । तब बैठे ब्रह्मा मन आनी ॥
बिष्नु कान मल तें उपजाए । प्रगटि असुर जल बाहर आए ॥
एक नाम मधु कैटभ एका । डरे देषि विधि कीन्ह बिबेका ॥
ए दोउ दैत्य होइ दुषदाता । मारै मोहि भली नहिं बाता ॥
तब ब्रह्मा देवी उर आना । देहु जगाइ उठहिं भगवाना ॥
तू सब रूप आदि महामाया । तत्व भूत तेरे उपजाया ॥
करता हरता पालक आही । तुमहीं बस राषे करि ताही ॥
निद्रा जाग्रत रूप तुम्हारा । राषत बस करि सब संसारा ॥
जग हरता करता तू हइए । महिमा महा कहाँ लगि कहिए ॥
देहु भ्रमाइ असुर भ्रमि जाहीं । राषहु मोहि सरन गहि बांही ॥
बिष्नु रुद्र तुम बिनु बल हीने । देह हमारि तुम्हारे कीने ॥
सोवत हरि बस भए तुम्हारै । जगै जगतपति असुर संहारै ॥
नैंन श्रवन नासा मुष माहीं । मोहि रहीं हरि कहँ सुधि नाहीं ॥
सुनि ब्रह्मा के बचन सुहाए । बाहर होइ भगवान जगाए ॥

दोहा— भक्ति मुक्ति संपति सबै पावै करत जु सेव ।
जग महँ लाल प्रसिद्ध है एक भवानी देव ॥१८०॥

रूप ज्ञान गुन तेज बल धन विद्या मन मानि ।
रिद्धि सिद्ध जस भोग सुष ए सब माया जानि ॥१८०॥

चौ०— मधु कैटभ देषे हरि जागे । तब ब्रह्मा कहँ मारन लागे ॥
मारहु याहि करहु जिनि दाया । बेर बेर महि इनहिं जगाया ॥
बोले बिष्नु देषि अन भाए । इहां ए दुष्ट कहाँ तै आए ॥
चितए लाल नैन करि सोहैं । दन्त चबाइ चढ़ाई भौहैं ॥
भाँति अनेकन्ह कीन्ह लराई । बरष हजार पन्च लग ताई ॥
तर ऊपर जलहीं महिं लरहीं । महा मच्छ गति जुद्ध जु करहीं ॥
दोउ बलवन्त महा अहंकारी । लरत बराबरि एक मुरारी ॥
सूरा तन हरि को मन भायो । रीझे असुर बहुत दुष पायो ॥
मांगि मांगि बोले दोउ बानी । परमेश्वर मन महिं छल ठानी ॥
मोहि तुम्हार इहै बर होउ । मेरेहिं हाथ मरो तुम दोउ ॥
हारे असुर कहत तब बानी । हरि सुन जीति जाइ अस जानी ॥
करहु सोई होइ काज तुम्हारो । पानी महि हम कहँ जिनि मारो ॥
मधु कैटभ असुरन्ह अस भाषा । तब हरि लै जाघन्ह पर राषा ॥

देषत दैवो ब्याल बिधाता । मारि चक्र सों सीस निपाता ॥
मरत बेर असुरन्ह अस भाषी । सृष्टि रचहु मम तन पर राषी ॥
दोऊ गिरे महा तन धारी । ताको भइ पृथवी अति भारी ॥
तब तें नाम दोइ हरि पाए । मधुसूदन कैटभ अरि गाए ॥
कबहुँ कि धरनि कनकमय होई । कबहुँ कि पाथर की सब सोई ॥
कबहुँ कि मृनमय होत है धरनी । कबहुँ कि धरा मांसमय बरनी ॥
भई मांस तें सब जग धामा । तातें भयो मेदिनी नामा ॥
पंच तत्व की उतपति करना । सो पुनि अनुक्रम नेम न बरना ॥
कलप कलप के भेद है भाषा । इह कछु नेम एक नहिं राषा ॥
कलपांतर जनमांतर अंतर । होत जुगांतर पुनि बय अंतर ॥
कृपा रूप बुधि नाम ए सबहीं । काल पाइ फिरि जात हैं कबहीं ॥
पंडित[१] सबहीं करै प्रमाना । मूरष एक बात कहुँ जाना ॥
पाई मूंस हरद इक पारी । आगै धरि होइ बैठ पसारी ॥
एक थान कपरा करि हेठा । झींगुर फूलि बजाज होइ बैठा ॥
कौडी परी पाइ कहुँ कानो । तापर सियार सराफी ठानो ॥
बैठा हाट साह होइ बनिया । घर मै गुर घिव लोन न धनिया ॥
च्यूटै एक रेवरी पाई । बैठेउ फूलि होइ हलबाई ॥
बरद एक बुड़वा सोइ बांडो । नायक हम लादत हैं टांडो ॥
एक अनार लगाइ निहारै । बागवान हम बाग हमारै ॥
उजरी डीह डेढ़ घर रहतो । लाज न मरत कहावत महतो ॥
गवइं देषि तीनि असवारा । लोग कहैं लसकर आइ पारा ॥
तैसें बात जानि द्वै चारी । पंडित भयो रहत अहंकारी ॥
दंभ बनाइ महंत कहाए । रंगे सियार देष सब षाए ॥
बैठे फूलि सयान कहावै । पूंछे बात एक नहिं आवै ॥
निसप्रेही जु ज्ञानघन आहै । मूरष तिन्हहिं नवायो चाहै ॥

दोहा १९२ के अन्तर्गत—

१ पंडित सबहीं........सब षाए = मूर्ख अपनी अल्पज्ञता का दम भरता है । कवि ने दृष्टांत अलंकार के माध्यम से तथा ग्रामीण जीवन में व्याप्त लोकोक्तियों के द्वारा कथ्य को प्रभावशाली बनाया है । ग्राम्यजीवन की विषमताओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर कवि ने अपने व्यंग्य को पैना एवं सजीव किया है ।

दोहा— अकुली सोस अरेंड[२] ज्यों ऊँचे करै असंत ।
फल भरे केला आंव ज्यों लाल नवै कुलवंत ॥ १९२ ॥

चौ०—सुनो कहों अब ग्रन्थ बषाना । मूरष पंच चिन्ह तैं जाना ॥
अहंकार कहै बचन कठोरा । केतो करहु न मान निहोरा ॥
क्रोधी होइ बहुत हढवादी । एइ पांच मूरष की आदी ॥
ग्रन्थ अनेक-अनेक प्रकारा । सब्द समुद्र करै को पारा ॥
इह नाहीं इह सत्य प्रमाना । इह सो कहै सबै जिन्ह जाना ॥
नहिं सर्वे सर्व जानाती । ब्रह्मादिकउ कहत या भांती ॥
जिन कोउ गर्व करै तनधारी । नारायन हैं गर्व प्रहारी ॥
मुन्डेमुन्डेमतिजोभिन्नातुंडेतुंडेबानी । सहसअठयासीरिषिजोभाषाअपनीअपनीजानी॥
जो कोउ कहै इह कलपिन बानी । सो पंडित नहि मूरष जानी ॥

दोहा— कलपित सब संसार है बेद पुरान सिद्धान्त ।
अनकलपित इक ब्रह्म है कहत लाल बेदान्त ॥१९३॥

चौ०—ब्रह्म अनन्त अपार बताया । तामैं प्रगट भई इक माया[१] ॥
जैसे तन महि तिल कहुँ होई । तैसे प्रकृति प्रगट भइ सोई ॥
ताके एक अंस महि वासा । प्रगट भयो एक तत्व अकासा ॥
तहिं आकास दसा अंस माहीं । पवन तत्व भयो प्रगट तहाहीं ॥
पवन के दशा अंस कह पाई । तेज तपार भयो तहँ आई ॥
तेज के दसा अंस महि जानी । कहुँ ते आइ रह्यो तहँ पानी ॥
ता पानी के अन्तर साजी । दसा अंस पर धूमि बिराजी ॥
ता पृथ्वी के दसएं विभागा । प्रगट भयो इह जगत सभागा ॥
भूमि तै सूक्षम नीर तरंगा । नीर तै सूक्षम तेज को अंगा ॥
तेज ते सूक्षम वायु बहाई । वायु तै सूक्षम ब्यौम रहाई ॥

---

२ अरेंड=अरंड का पौदा । कवि ने अरंड के माध्यम से दुष्ट एवं असाधु व्यक्तियों को लक्ष्य करके ही यह उक्ति प्रस्तुत की है। अरंड की लकड़ी निस्सार एवं इसके फल अत्यल्प मूल्य के होते हैं, इसके विपरीत कुलीन एवं शील प्रकृति के साधुजन कदली एवं रसाल वृक्षों की समता प्रात करते हैं। अल्पज्ञ का अहंकार एवं विज्ञ का शील ही कवि का व्यंग्यार्थ है ।

दोहा १९४ के अन्तर्गत—

१ माया=प्रकृति । मायांतुप्रकृतिं विद्यात (श्वेताश्वतरोपनिषद् ४-१०) लालदास ने भी प्रकृति को ही माया कहा है। सांख्य दर्शन के अनुसार कवि की प्रकृति ही अद्वैत बेदान्त की माया का दूसरा नाम है ।

ब्यौम ते सूक्षम हैं गुन तीनो । अहंकार तहं त्रिविध है लीनो ।।
गुनहु ते सूक्षम प्रकृति बषानी । प्रकृति ते सूक्षम ब्रह्महि जानी ।।
सूक्षम रूप ब्रह्म कह्यो ऐसे । देषैं गहै कहो कोउ कैसे ।।

दोहा— लाल जीव या जगत को पार न पावै कोइ ।
तौ कहुँ बैसे ब्रह्म को लेषा कैसे होइ ।।१८४।।

ऋषि कुल पुनि गुरु ग्रन्थ औ संगति देस भ्रमान ।
लाल बुद्धि बिस्तार के कारन पंच प्रमान ।।१८५।।

चौ०— देस देस की बात अनन्ता । देस[1] अनन्त रचे भगवन्ता ।।
भाषा[2] अर्थ जुक्ति बिवहारा । ठौर अनेक अनेक प्रकारा ।।
एकहि देस रहत दिन सबहीं । देसान्तर देषे नहि कबहीं ।।
जिन्ह सब ग्रन्थ सुने नहि देषे । सो कहु बाद करै केहि लेषे ।।
तर्कं ग्रन्थ करै चतुराई । अपनो सभा बैठि बकताई ।।
लोभी[3] गुनी षुसामदि बारे । तिन्ह लै सब संसार बिगारे ।।

दोहा १८६ के अन्तर्गत—

पाठान्तर—१ देस अनन्त रचे भगवाना (स० प्रति)

२ भाषा अर्थ जुक्ति बिवहारा ठौर अनेक अनेक प्रकारा=लालदास की मान्यता है कि भाषा, अर्थ, युक्ति और व्यवहार विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार का है। 'अर्थ' पद का बिमर्श करते हुए महिभट्ट ने उसके दो प्रकार माने हैं—वाच्य ओर अनुमेय । वाच्यार्थ शब्द 'व्यापार विषय' होता है और उसे मुख्यार्थ भी कहा जाता है। जिस अर्थ का तात्पर्य वलपूर्वक प्रतीत हो उसे गौण (अमुख्य) अर्थ कहते है—

"श्रुतिमात्रेण यत्नास्य तादर्थ्यमवसीयते ।
तं मुख्यमर्थं मन्यते गौण यत्नोपपादितम् ।।

गौण अथवा अमुख्य अर्थ को ही महिमभट्ट ने अनुमेय अर्थ कहा है ओर उसके तीन प्रकार बताये है—वस्तुगत, अलंकारगत और रसादिगत । वस्तु और अलंकारगत अर्थ तो वाच्य भी हो सकते हैं किन्तु रसादिगत अर्थ सदैव अनुमेय ही रहते है। अर्थ का निर्णय बृद्ध व्यवहार और संकेत मात्र से होता है।

३ लोभीगुनी··············राषै=कवि ने राजश्रयी वृत्ति के चाटुकार एवं अर्थलोलुप कवियों को फटकारते हुए कहा है कि लोभी कवियों का चरित्र काव्य विवेक से हीन होता है। वे विवश होकर आश्रयदाताओं की प्रशंसा करते हैं और यथार्थ कहने में असमर्थ होते हैं। कवि ने इस प्रकार के साहित्य सेवियों को 'भिक्षुक' कहकर भर्त्सना की है। कवि लालदास की यह उक्ति आज के कवियों के एक वर्ग पर खरी उतरती है। पक्षपात एवं चाटुकारिता के कारण साहित्यिक अवमूल्यन होता है।

जुक्ता जुक्त कहै कछु दाता । भिक्षुक मानि लेहि सोइ बाता ।।
जथा अर्थ निर्लोभी भाषै । पक्षिपात कछु वै नहिं राषैं ।।

दोहा— लाल बात कहि आन की मानै झूठ ठ साँच ।
जैसे बन महिं घूंचची अपने ही रंग राच ।।१८६।।

चौ०—बिन[1] देसांतर पंडित कैसो । ताको कहिव अंध को जैसो ।।
नैंनहीन कहै बात बिशेषी । जापर बात वस्तु नहिं देषी ।।
घर ही महिं तैसे पढ़ि पोथी । देषे किए बिना सब थोथी ।।
देसांतर बहुतै फल आहा । सभा अनेक होत अवगाहा ।।
अब देसन्ह के नाम बषानों । जिन्ह देषे नर होत सयानों ।।
आठ देस प्रिय मान है देसा । कांउर देस बंगाल उडैसा ।।
रूम साम तिरहुत सुर बारा । गौंड़ गौंड़ अरु मग कसि बारा ।।
देस हिंडंब सालमल कहिए । इंगल त्यारज फूनहिं लहिए ।।
बिद्रभ खान देस नीमाडा । देस बुन्देलषंड •• धंधाडा ।।
मरवर[2] एक एक बगुलाना । देस औंडछा औ गुडवाना ।।
त्रिपुद कुठार आसाम जयंता । अंतरबेद देस कथयंता ।।
हराउता मल्यार तिलंगा । कारनाट लिय राज सुरंगा ।।
आंध्र देष महाराष्ट्र बषाना । कुंकन द्राबिड मालव जाना ।।
सोरठ[4] कच्छ देस गुजराता । पुंगुल छप्र है सिंधु विष्याता ।।
मारवाड मेवाड सुदेसा । बांगड देस ढुंठाह रहैसा ।।
नागरचाल औ खींचोबारा । हाडवती दिली मण्डल न्यारा ।।

दोहा १८७ के अन्तर्गत—

१ बिन देशांतर······अवगाहा= काव्य के लिये अभीष्ट लोक-व्यवहार का ज्ञान देशाटन से ही प्राप्त किया जा सकता है। कवि का तो यह भी कथन है कि देशांतर ज्ञान के बिना व्यक्ति कोई साहित्य-पंडित हो ही नहीं सकता । दृष्टि की संकीर्णता के अपहार के हेतु देशांतर गमन, विद्वत सभाओं का अवगाहन अपरिहार्य है। प्रत्यक्ष एवं व्यावहारिक ज्ञानार्जन हेतु कवि के सुझाव अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है कि प्रबोध काव्य को दृष्टि में रखकर ही कवि ने भाषा एवं विषय वस्तु के सम्बन्ध ये विचार व्यक्त किये हैं।

पाठान्तर : २ मारवार इक एक बगुलाना (स० प्रति)
३ देस ओडछा वहु गुनवाना (स० प्रति)
४ सोरठ देस कच्छ गुजराता (स० प्रति) क्रम विपर्यय

म्यान दाव पंजाब बषाना । कासमीर काबिल षुरासना ।।
इसपाहां सा षुरत है काला । देस उचांगर षंग विशाला ।।
सिभ षाभ महाचीन औ चीना । चाप रंग गोषा सुष दीना ।।
पानीपंथ त्रिपंथ इक लहिये । ठकुराइत बारह भल कहिये ।।
देस तबीसा बकसर एका । मध्य देस गांजर है नेका ।।
कैरल कोशल औ हिंदुस्थाना । चाच हिमालय देष बसाना ।।
पर्वत राज भुंट तहि लहिए । देस अनन्त कहां लगि कहिए ।।
चंपक भूमि कलिंग जु कांता । देस भोज कट लंका ख्यांता ।।
जैमनि देस सघन देव कन्या । बंग मलाव अकास जु मन्या ।।
देस हरेबर फिरङ्ग बषाना । बलक बुषारा औ तुरकाना ।।
रोह शैलान औ ठांठांह बासा । धार एक षंधार जबासा ।।

दोहा — सात समुद्रन्ह बीच जे देस हैं लाल अपार ।
भाषा मत आचार बिधि चलन अनेक प्रकार ।।१९७।।

दोहा— पृथवी सब नव षंड हैं जोजन [कोटि पचास ।
एक षंड के अंस इक कहे देस सब बास ।।१९८।।

सोइ देस सोई सहर सोइ ग्राम सोइ धाम ।
लाल जहाँ के नर सदा सुमिरैं सीताराम ।।१९९।।

चौ०— अपने[1] अपने देस को बानो । ग्रन्थ अनेक करत कबि ज्ञानी ।।
ग्रन्थहि देषि ग्रन्थ कबि करहीं । अपनो भाषा लै बिस्तरहीं ।।

दोहा २०० के अन्तर्गत—

१ अपने अपने···इहजानो=कवि के इन विचारों से काव्यगत मौलिकता पर प्रकाश पड़ता है। मौलिकता के विषय में कवि की सीमाओं का विवेचन किया गया है। भाषा एवं विषयवस्तु के सम्बन्ध में कवि का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार है। उसके अनुसार 'भू तल पर अनेक भाषाएँ और इन भाषाओं के अनेक महाकवि हैं, जिन्होंने काल, स्थान एवं व्यवहार के आधार पर वैविध्य-पूर्ण साहित्य का सृजन किया है। किसी कवि विशेष से यह अपेक्षा भी नहीं की जानी चाहिये कि वह सर्वविद् हो और संपूर्ण भाषाओं का उसे ज्ञान हो। सुकवि अपने स्थान विशेष की भाषा में अपने काव्य का सृजन करता है और वह अन्य कवि के ग्रन्थ के, वर्ण्य विषय के आधार पर अपनी भाषा में नवीन काव्य विस्तार प्रस्तुत कर सकता है। कवि की यह भी मान्यता है कि वाणी के विस्तार के लिये उसे किसी स्रोत से मौलिक सामग्री का चयन करना ही होगा और इस प्रकार का ग्रहण पंडित जनों द्वारा मान्य होता है।

मूल[२] बिना न प्रसिद्ध है बानी । पंडित मानि लेत इह जानी ।।
एक तै एक अधिक हैं भाषे । काहु को गर्व गुमान न राषे ।।
पंडित रूपवंत धनवंता । अधिकहि अधिक रचे भगवंता ।।
पशु तैं मनुष्य अधिक तनुधारी । मनुषिन्ह माँहि नृपति अधिकारी ।।
नृप तैं देव जोनि बड राषा । देवन्ह माँहि इन्द्र बड भाषा ।।
इन्द्रहु तै जु बड़े बिधि लागे । बिधि तैं सक्ति-सक्ति तैं आगे ।।

दोहा— कूपा महि को मेंडुका कहै समुद की बात ।
सुनत सराहत भेक बक लाल हंस अनुषात ।।२००।।
मनहीं माहिं भयो रहै आपुहि राजा भोज ।
लाल बूझि[१] जो देषिए नहीं अकलि को षोज ।। २०१ ।।
मधु कैटभ मारे गये गर्वहिं तैं कहै लाल ।
सबही को संसार महिं अहंकार है काल ।। २०२ ।।

चौ०— भूमि अभय मन महिं भइ माना । बहुरि किये हरि कर्म बषाना ।।
एक बेर संकर सुष माहीं । बैठे रहे जहाँ भय नाहीं ।।
रूप बिरूप किये कछु ऐसा । काहूँ समुझि परै नहि तैसा ।।
दरशन करन पुरंदर दौरे । शंकर कहां गये तू को रे ।।
बोले महादेव नहिं बानी । कोपे महा इन्द्र अभिमानी ।।
मारी गदा गरे महिं जबहीं । प्रगटी अग्नि आंषि तै तबहीं ।।
देवराज ताहि देषि डराना । डारि गदा बिततार पराना ।।
पीछे अगिनि लगी संग जाई । जारत बारत अति दुषदाई ।।

पाठान्तर : २ मूल बिना न प्रघट्यो बानी । (स० प्रति)
दोहा २०१ के अन्तर्गत—

१—लाल बूझि=लालदास ने अपने नाम के साथ 'बूझि' शब्द का प्रयोग किया है जो बुझौवले पूछने की ओर संकेत करता है । लालबुझक्कड़ नाम के कवि का अस्तित्व अवध के पूर्वी अंचलों में अब भी बुझौवलों के बुझाने वाले के रूप में गाँव की चौपालों में जन प्रिय हैं किन्तु इस लाल बुझक्कड़ के बारे में कोई भी जानकारी साहित्य के इतिहासमें नहीं प्राप्त होती । बहुतसम्भव है लालदास ही लाल बुझक्कड़ कवि हों जो अवधी अंचल में इतना लोक प्रिय रहे हों । कवि दिनेश देवराज ने भी इस संकेत को पुष्ट करते हुये कहा 'लाल दास अवधी के कवि हैं और लाल बुझक्कड़ भी अवधी अंचलो में जन प्रिय हैं । इसलिये लालदास और लाल बुझक्कड़ दोनों अभिन्न प्रतीत होते हैं ।'

सुरपति तब मन महिं पछतावा । सोवत सिंहहिं आइ जगावा ।।
मूरषता करि त्रण सम हूवे । देषहु हाइ ब्रथाहीं मूवे ।।
ना कहुं लरे न मैं कोउ मारा । ब्रथा निंदि भयो मरन हमारा ।।
बिकल भयो बल बुद्धि नसाई । आइ गये सुरगुरु सुषदाई ।।
संकट बिकट परे सुर राजा । गुरु बोले भल भयो न काजा ।।
परे बीच बल बुद्धि निधाना । देषि बिप्र तब अग्नि डराना ।।
दूरि होह जानत नहिं मोहीं । पानी करि डारौं अब तोहीं ।।
ज्वाला फिरी गई जहँ शंकर । पकरि हाथ शिव नाथ भयंकर ।।
डारी फटकि सिंधु की ओरा । जाइ परी जल बीच कठोरा ।।
बालक भई परत तेहि काला । रुदन कियो चितकार कराला ।।
देव दनुज दानव गन नागा । डरे सुनत हरि सुमिरन लागा ।।
चौंके सुनत दसों दिगपाला । जनु अररान प्रलय महाकाला ।।
सागर देषि महा सुष पावा । पुत्र भयो मन हर्ष बढ़ावा ।।
एक तो पूत चन्द भयो राजा । गयो गगन हमरे केहि काजा ।।
माता पिता पुत्र भये हरषे । गाय बजाय दये धन बरषे ।।
पुत्र प्रसाद सुषि न होइ सोये । तो जनु डांड दीए धन षोये ।।
बालक रहैं तबहिं लगि नीके । भये सयान मनहुँ कत होके ।।
किये बिवाह दई के मारे । षाइ षांदि होइ जाहि नियारे ।।
सुदिन सुघरी पूछियतु यातैं । होइ सुपूत कुपूत कि जातैं ।।
बाउर लूल बहिर होइ अंधा । तौ संतान भले कुल बंधा ।।
पूछौं काहि कहै सब कोई । जन्म लग्न कैसा इह होई ।।
पंडित बड़े जानि मन भाये । तब जलनिधि बिधि बोलि पठाये ।।
ब्रह्मा कहै बहुत कछु पैहों । बालक शिष्य आपनों कैहों ।।
दौरे गये लोभ ललचाने । रोवन के आगम नहिं जाने ।।

दोहा— जोतिष आगम जान सब भूत भविष्य वर्तमान ।
होनहारि जब होत है उलटि जात है ज्ञान ।। २०३ ।।

चौ०— सुने सिंधु ब्रह्मा हैं आये । लाल रत्न मुक्ता लै धाये ।।
इह तौं भेंट मिलत है पाई । बिदा होत पैहौं अधिकाई ।।
लरिका लै कोरा महि राषा । हाथ जोरि सागर अस भाषा ।।
याको नाम धरन बिधि कीजै । अपनों नेगचार कछु लीजै ।।
देव नृपति बनिता गुरु बाला । बैद्य जोतिषी चुगल कराला ।।
छूंछ हाथ कहुँ मिलै जु कोई । कारज कबहुँ सिद्धि नहिं होई ।।

ब्रम्हा लै बैठे मन फूली । दाढ़ी रही पेट पर झूली ।।
ब्रम्हा तन लरिका सैंतानी । चितयो निडर बिरावत मानी ।।
षेलत किलकि किलकि रुचि बाढ़ी । परि गइ आइ हाथ मह॑ दाढ़ी ।।
ऐंचो पकरि खिलौना[१] जाना । ब्रम्हा प्रान गये करि माना ।।
आयु हमार बरष सौ पावा । अबहीं काल कहाँ ते आवा ।।
दाढ़ी पकरि जबहिं शिशु ॠँचा[२] । ब्रम्हा जान जीव जनु घैंचा[३] ।।
तब बिधि धरि दोउ हाथ मरेरे । बालक करतब कीन्ह करेरे ।।
जस जस बिप्र छिड़ायो चाहै । तस तस अधिक अधिक दृढ़ गाहै ।।
मंत्र जंत्र[४] बल बुद्धि नसाई । जोरावर सों कछु न बसाई ।।
छूटत और उपाइ न जाना । ब्राम्हन होइ निहोरा ठाना ।।
तू यजमान भयो अब मेरे । छांड़ि छांड़ि हम ब्राम्हन तेरे ।।
जीव छांड़ि दक्षिना हम छांड़ो । कौन बलांइ भई मोहिं आंडी ।।
विधि कहै भल दई मोहिं बहायो । का बुधि हरी कहाँ हौं आयो ।।
अबकी बेर छुटै जो पाऊँ । ऐसो ठौर बहुरि नहिं आउँ ।।
बूडी आजु बडाइ हमारी । भेंट कुमानुस सौं भई हारी ।।
अरे सिंधु जल छार दुरापी । बरजि आपने पूतहिं पापी ।।

दोहा २०४ के अन्तर्गत—

१—खिलौना=खेल के उपकरण । कवि ने जालन्धर के प्रसंग में ब्रम्हा की पेट पर झूलती हुई दाढ़ी को जालन्धर के लिये खिलौना के रूप में प्रस्तुत करके एक ओर बाल मनोविज्ञान की चपल तथा धृष्ट मनोवृत्ति का परिचय दिया है, साथ ही ब्रम्हा के पुरोहित कर्म और उनकी लोभ वृत्ति पर व्यंग किया है । कवि स्वयं अपनी रचना सृष्टि का विधाता होता है । विधाता को भी अपने व्यंग्य का विषय कवि विधाता ने बना लिया हो तो आश्चर्य ही क्या ?

२—ॠँच=खींचने के अर्थ में । तुलसी ने इस अर्थ में खैंचना क्रिया का प्रयोग किया है (लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े) । यह शब्द संस्कृत की अंच (गति) धातु से बना है ।

३—घैंचा=ऐंचा की भांति ही कवि ने घींच (गरदन, ग्रीवा) संज्ञा से घैंचा क्रिया की रचना की है ।

४—मंत्र जंत्र=उपासना की मंत्र और जंत्र विधियाँ वैदिक साहित्य में 'ब्रम्ह वै मंत्रा (श ब्रा० ७.१.१५) 'वाग वै मंत्रः' (श ब्रा० ६.४.१.७) से स्पष्ट है कि ब्रम्ह को मंत्र भी कहा गया है । और यहाँ ब्रम्हा के द्वारा मंत्र जंत्र का नष्ट हो जाना व्यंग्यार्थ है ।

मोहिं तोहिं बैर भयो कब बाढ़ा । इह तैं बैर कहाँ कहु काढ़ा ॥
तेरे रतन नहीं कोउ मेरे । तोहि मथत मैं रह्यो न नेरे ॥
कैसो बैर कहूँ किन होई । घर आए मारत नहिं कोई ॥
पूत नाम कहि कियो बहाना । इह कोउ दूत बली मैं जाना ॥
बेगि छिडाउ सरापत तोही । दूत लगाइ मरावत मोही ॥
डरु परलोकहिं देहु छिड़ाई । बाम्हन मारें कौन बड़ाई ॥
ब्रम्हा रुदन कियो तेहिं बारा । ब्याकुल होइ नैंन जल ढारा ॥
बापहु बहुत निहोरा कीन्हा । संतति दुष्ट बाप[५] नहिं चीन्हा ॥
बालक हंसेउ छांडि दयो ताही । सबके बड़े इहै बल आही ॥
छूटे बिधि मन मनहिं बिचारै । नाम धरै बिनु जिनि फिरि मारै ॥
धरेउ नैंन जल मम इन्ह साषा । नाम जलन्धर ब्रम्हा राषा ॥
चले नाम धरि अति बितताने । धोती[६] षोंसत षंसत पराने ॥
चितवत फिरि फिरि बिधि पछितावै । जिनि कहु दुष्ट जलन्धर आवै ॥
जाइ लोक अपनें पछिताने । फिरि असि ठौर जाब नहिं जाने ॥

दोहा— पंडित कवि ज्ञानी गुनी बातैं कहैं बनाइ ।
धकैं परैं जब धींग कैं सुधि बुधि जाइ हिराइ ॥ २०४ ॥
एक बात पर बात दश लाल कहैं कविराइ ।
जे नहिं जानैं बापुरे ते दूषहिं दुष पाइ ॥ २०५ ॥

पाठान्तर : ५—संतति दुष्ट न बापहिं चीन्हा (छ० प्रति)

६—धोती षोसत षंसत पराने=धोती खोंसने और खांसते हुये भागने पर भय के अनुभवों का चित्रण अत्यन्त ही लोकग्राही बन पड़ा है ।

दोहा २०५ के अन्तर्गत—

१—कविराइ=कविराज । राजशेखर के अनुसार कविराज कवियों की कोटि में सबसे उन्नत होता है । कविराज वही होता है जो सब प्रकार की भाषा में कवित्त लिखने में समर्थ होता है तथा प्रत्येक प्रकार के प्रबन्ध में तथा प्रत्येक रस में जो स्वतन्त्रतया सिद्ध हो । राजशेखर के शब्दों में—"यस्तु तत्र तत्र भाषा विशेषे तेषु तेषु प्रबन्धेषु तस्मिन् तस्मिन् च रसे स्वतन्त्र : स कबि-राजः ।" काव्य मीमांसा, राजशेषर अ० ५, पृ० १९

चौ०— उत्तम[१] कवि नई[२] जुक्ति बनावै । मध्यम[३] जो संस्कृत पर ल्यावै ॥
अधम[४] जो भाषा पर करै भाषा । लाल ए तीनि भांति कवि राषा ॥
तब उह बालक सागर तीरा । भयो बलवन्त देस सब पीरा ॥
बैसेइ और मिले सब आई । असुर दैत्य राक्षस समुदाई ॥
गज रथ घोर करे बहु साजा । नाम धरेउ जालन्धर राजा ॥
कालनेमि की कन्या आही । वृंदा नाम बिवाही ताही ॥
सभा बिचित्र बनाइ गम्भीरा । बैठों सबहि जीति महाबीरा ॥
देष्यो राहु ओर एक बारा । तबहिं बाप को बैर संभारा ॥
याको मूंड कहा भयो भाई । काहू कथा कही समुझाइ ॥
एक बेर हरि मिलि सुर राजा । मथ्यो सिंधु अमृत के काजा ॥
शेषनाग मंदाचल जकरा । देव पुच्छ सिर असुरन्ह पकरा ।
सबहिन्ह मिलि जब बीच घुमावा । ब्याकुल होइ सिंधु दुष पावा ॥
देवन्हं बहुत रत्न लिए बाँटी । तब वै गये राहु शिर काटी ॥
सुर अरु असुर कीन्ह अभिमाना । अमृत काज लराई ठाना ॥
तब तहँ बिष्नु करी चतुराई । दैव दैत्य द्वै पाँति बनाई ॥
बासन एकई अन्तर कीनें । अमृत सुरा ताहि भरि लीनें ॥
अमृत हरि देवन्ह कहँ प्यावै । असुरन्ह कहं मदिरा ढरकावै ॥
तब इनि राहु जान छल देषा । देवन्ह माहँ बैठि करि बेषा ॥
चन्द सूर ताहि दीन्ह बताई । प्रभु इह असुर है देहु उठाई ॥
असुर पियत अमृत हरि जाना । तब शिर काटि डारि भगवाना ॥
अमृतहि छुवत अमर भयो बीरा । शीश राहु भयो केतु शरीरा ॥

दोहा २०६ के अन्तर्गत—

१ उत्तम कवि········कवि राषा = लालदास 'उक्ति विशेष' को ही कविता मानते हैं; इसीलिए उन्होंने उक्ति के आधार पर काव्य रचना करने वाले कवियों की तीन कोटियाँ स्वीकृत की हैं—१ उत्तम कवि २ मध्यम कवि ३ अधमकवि उत्तम कवि नयी उक्तियों की रचना करता है। मध्यम कवि संस्कृत से उक्तियों को हिन्दी में ग्रहण करता है और अधम कवि भाषा की उक्तियों को भाषा में यथावत ग्रहण करता है।

पाठान्तर : २ उत्तम कवि नै जुक्ति वनावें। (स० प्रति)

३ मध्यम संस्कृति पर लावै (स० प्रति)

४ अधम जो कर भाषा पर भाषा (स० प्रति)

उहइ अपराध मानि मन आहू । रवि शशि ग्रहन करत है राहू ।।
तब ता समय दान जो करई । अक्षय होइ दुष कष्टउ हरई ।।
सिंधु मथन की बात सुनी सब । देव बिष्नु पर कोप किए तब ।।
चौदह रत्न लिए सुनि पाए । तबहिं जलन्धर ओंठ चबाए ।।
कामधेनु गजमनि अरु घोरा । अमृत बिष शशि धनुष कठोरा ।।
पारिजात अरु शंष धन्वंतरि । चिंतामनि मदिरा तदनंतरि ।।
तेरह रत्न लिए सब झारी । अरु लक्ष्मी लइ बहिनि हमारी ।।

दोहा— लाल रतन जल थल जिते तिते जानि सब कांच ।
एक हिये महँ राषिए राम रतन हैं साँच ।।२०६।।

चौ०— बोलेउ तमकि जलन्धर राजा । मानहुँ सिंधु महा बन गाजा ।।
बाप हमार अनाहक मारा । कहो देवन को कहा बिगारा ।।
पिता समुद्र साधु करि माना । मोसे पूत होत नहिं जाना ।।
स्वर्गहि बैठ बहुत मद बाढ़े । बिसरि गये जु मारि मुर काढ़े ।।
सिंधु पूत जौं सबहिं संहारौ । रहे अमर अब लौ अब मारौं ।।
जानत हौं इहँ हरि उपदेसा । देषु हवाल करौं अब जैसा ।।
रहत न परयो कमन्डल चारी । लरत लरावत उहइ मुरारी ।।
फिरत अमान भयो जग गाहत । संष औ चक्र फुरायो चाहत ।।
करौं कहा अब लागत नातो । नहिं तर धका बहुत उहु षातो ।।
इन्द्र चन्द्र ब्रह्मा रबि रुद्रा । झारत हौं सबहिन की मुद्रा ।।
अबहूँ बैठि रहे अभिमानी । चौदह रत्न पचे इह जानी ।।
इहि कहि उठेउ दिवाइ नगारा । जहँ तहँ असुर भए हुसियारा ।।
करि बड कटक स्वर्ग पर दौरा । गयो अकास पंथ करि जोरा ।।
इन्द्रादिक सब देव भगाए । करि संग्राम रत्न लै आए ।।
धाए हरि सुनि देव गुहारी । जुद्ध जलन्धर सों कियो भारी ।।
जालन्धर जब भयो अनीती । औरौ रत्न सबन्ह के जीती ।।
सागर सुत भयो अति बलवन्ता । बैठो जीति सकल जग जन्ता ।।
सब घर फिरै कलह मन भाए । ताके घर नारद कहुँ आए ।।
बैठे सभा असुर मद भीनें । नारद आइ दरस तहँ दीने ।।
करि सनमान रिषिहिं बैठारी । पूछन लग्यो असुर अहंकारी ।।
फिरत हौ सकल लोक सुषदाता । जानत हौ घर घर की बाता ।।
जहाँ जहाँ उत्तम कछु होई । मोंहि सुनाइ कहो मुनि सोई ।।
तब मुनि बोले मन महिं पावा । याको जान मूल अब आवा ।।

दोहा— परधन परत्रिय पर दुषहि जो मन राषै लाल ।
ताको जग महिं जानिए नियरें आयो काल[१] ॥२०७॥

चौ०— जेते रतन जगत महि लेषा । सो मैं सब तेरे घर देषा ॥
एक रत्न इक ठौर अमोला । ताके सम सब होइ न तोला ॥
रति रम्भा उर्वशी बिचारी । ताको सम कहि को अस नारी ॥
जेती नारि नाम जग माहीं । वाकी एक कला सम नाहीं ॥
जोगेश्वर शंकर बश कीना । जाके रूप रहत लव लीना ॥
रूप[१] अपार बहुत छबि होई । तातें कवि बरनत नहिं कोई ॥
महादेव के शोभित धामा । पारवती अस ताको नामा ॥
जाको महाबली है नाथा । आवत है तेरो कहं हाथा ॥

दोहा २०७ के अन्तर्गत—

१—काल=मृत्य । कवि ने परधन, पर त्रिय और परपीड़न को मृत्यु सूचक कहा है । संत चन्ददास ने भी कुचाल (कुत्सित आचरण) को काल सूचक कहा है—

"मानो प्रेम प्रतीत उर त्यागो हिद्रै कुचाल ।
देउ राम को बाम अब जन बंछौ निजु काल ॥"

चंददास कृत 'रामविनोद" लंकाकाड, अ० ३, पृ० ३८३, छन्द १८४७

दोहा २०८ के अन्तर्गत—

१ रूप अपार·········ताको नामा=पार्वती के श्रृंगार का वर्णन रूप अपरमिति के कारण कवियों द्वारा वर्णित नहीं किया जा पाता । सृष्टिस्वरूपा पार्वती जगमाता है । सम्पूर्ण जगत के सम्पूर्ण प्राणी उनके अपत्य रूप हैं । पुत्र के लिए माँ के दैहिक सौन्दर्य का वर्णन अभीष्ट एवं औचित्यपूर्ण नहो हैं । अतएव कवि भी पूर्ववर्ती कवि तुलसी की भाँति श्रृंगार के वर्णन के विस्तार में नहीं जाता । संस्कृत कवि कालिदास के पार्वती विषयक श्रृंगार की ओर व्यंग्य करते हुए तुलसी ने मानस में लिखा भी है—

"जगत मातु पितु संभु भवानी । तेहि श्रृंगार न करहुँ बषानी ॥"

कालिदास ने 'रघुवंश' के प्रारम्भ में "जगत: पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ' यह लिखकर के भी शिव पार्वती के रति विषयक श्रृंगार का नग्न चित्रण किया है, जिसे हिन्दी के संत कवियों ने अनुचित मानते हुए उसे अपने काव्य का विषय स्वीकार नहीं किया । लोक मर्यादा की दृष्टि से भी पुत्र के द्वारा मातृ सौदर्य का वर्णन ग्राह्य नहीं है । संत लालदास की 'तातै कवि बरनत नहिं कोई' उक्ति में यही निषेधात्मक ध्वनि परिलक्षित होती हैं ।

दोहा— गज मुक्ता औ सांप मणि लाल बाघ नष सोइ ।
बोर नारि अरु नक्र रद जीवत लहत न कोइ ॥२०८॥

चौ०— असि कहि नारद बात बनावन । और ठौर गये कलह करावन ॥
पार्वती के सुने बषाना । जालन्धर मन महिं करषाना ॥
ताही छिन नृप राहु बुलावा । बहुत बात कहि कहि समुझावा ॥
बेगि जाहु शंकर के पासा । कहत रहतु हैं गिरि कैलासा ॥
तुम जोगी संयासी आही । तुम कहु नारि संग नहिं चाही ॥
जाके दरस होइ तप भङ्गा । त्रिय तपसी सों कैसा सङ्गा ॥
चित्र लिखी बनिता जो होई । तपसी ताहि छुवै नहिं कोई ॥
सर्व संग तजि भगि भए जोगी । पुनि संग्रह करि होत हैं भोगी ॥
तिन्ह को संग करै जो कोई । सो नर महा पातकी होई ॥
देव पित्र हरि के जे कर्मा । बरनाश्रम के जे कछु धर्मा ॥
ते सब तजि कहै मैं बैरागी । अरु जो त्रिय सो हैं अनुरागी ॥
वेद पुरान कहतु हैं आही । स्वपच समान जानिए ताही ॥
ज्ञान ध्यान जप तप आचरना । सुमिरन भजन जोग के करना ॥
एते बृथा भए सब जानों । जो मन नारि माहिं हिलगानों ॥

दोहा— शिव प्रति हित अति तप करत दृढ़ पन जानि भवानि ।
बिधि हरि कहैं हर घर कियो जलधर लाल न जानि ॥२०९॥

चौ०— अवलोकन संभाषन संङ्गा । आलिंगन बरनन त्रिय अङ्गा ॥
सोभा सुनब करव रति ध्याना । मैथुन आठ ए कविन्ह बषाना ॥
धन बनिता[1] तजि भए संयासी । संन्यासी पुनि धन अरु दासी ॥
इह कहो कहां कही है गाथा । जती होइ राषै त्रिय साथा ॥
जोग भोग जो करै अरम्भा । एकहीं बेर सो जानिए दंभा ॥
पूरब पश्चिम दोउ दिस भावै । एकहीं बेर एक को धावै ॥
जाको रूप देखि जग मोहै । ऐसी नारि तोहि नहिं सोहै ॥
जोग भोग एकइ संग देषा । इह कहुँ कौन गाउं को लेषा ॥
अगनि कुन्ड सम नारि बषानी । घृत के कुंभ पुरुष करि मानी ॥

दोहा २१० के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ तजि बनिता धन भए संयासी (छ० प्रति)

निकट रहें टघरत[१] नहिं बारा । तातें सुनि तिय सों रहै न्यारा ।।
विषयासक्त भयो मन जानो । दासी बीस देउं मन मानो ।।

दोहा— अम्ल कटुक औ त्यक्त रस मधुर कषाय जु लौंन ।
ए षट रस भोगी करैं त्यागे जोगी तौन ।।२१०।।
घाम समय शिर घाम सहि शीत समय सहै शीत ।
बरषा रितु बरषा सहै ताको नाम अतीत ।।२११।।

चौ०— जो[१] बाहर इन्द्रिन्ह कौं हटकै । भीतर बिषय स्वाद मन गटकै ।।
ताके झूठ सबहिं आचरना । गीता मांहि कृष्न है बरना ।।
इंह कहि ताहि त्रियहिं लै आऊ । जौन देइ तो मार बहाऊ ।।
चल्यो दूत सुनि तहाँ तुरन्ता । बैठे जहाँ रहे भगवन्ता ।।
हरि कौ ध्यान धरें हर ग्यानी । हर के ध्यान के महिं रहत भवानी ।।
देषा दूत सती की ओरा । धन्य दई उपजी केहि ठौरा ।।
कहँ इह सुन्दरि राजकुमारी । कहँ इह षसम कुरूप भिषारी ।।
मरहु विधाता जिनि इह कीना । बानर कहँ चिंतामनि दीना ।।
अैसो कहुँ अस बर मन मानें । मात पिता वे भले बिलानें ।।
जेहि बाँम्हन बर देषि सराहा । सूरी ताहि दीजिए चाहा ।।
दीन्ह बहाइ रूप की रासी । भौंदू रहे तहां के बासी ।।

दोहा २१० के अन्तर्गत—

१ टघरत=टघरन (पिघलना)। यहाँ कवि का आशय रूप के प्रभाव से रसाभिभूत होने से है। रसाभिभूत और द्रवीभूत होने के अर्थ में 'टघरत' का प्रयोग नितांत आंचलिक है और अस्तित्वहीनता पर व्यंग्य करने वाला है। शब्दों के प्रयोग में आँचलिकता और व्यंजनापरक शक्ति दोनों का निर्वाह भाषा शक्ति और सरलीरकण की उपलब्धि प्रतीत होती है।

दोहा २१२ के अन्तर्गत—

१ जो बाहर······गटकै=इन्द्रियों पर बाहरी नियन्त्रण और आभ्यान्तरिक रूप से विषयों में आसक्ति की ओर संकेत है। संत चन्ददास ने भी इस साधना के स्खलन की ओर संकेत किया है—

'माला क्या सटकाओ पाँडे ।

भीतर ते मन टूट जात है ऊपर ध्यान लगाओ पांडे ।।''

चंददास पदावली, (हस्त० प्रति, चंददास शो० सं० प्रति)

सुन्दर नारि पुरुष गति होई। ऊँट बरद[२] कर जोतब ॥
कौन पुन्य इनि कीन्ह कमाई। कैसी परम सुन्दरी पाई ॥
विद्या धन बनिता भलि कहिए। ए अति बड़े भाग्य तहिं लहिए ॥
है इह दोष सिद्ध जग माहीं। जोटहिं जोट मिलत कहुँ नाहीं ॥
इह कहि दूत परेउ मुरिछाई। देषि सती की सुन्दरताई ॥
सावधान होइ शिव तन हेरा। पार्वती तन मुष नहि फेरा ॥

दोहा— जालन्धर जो कछु कह्यो दूत हाँथ संदेस।
सो सब सुनि शंकर हंसे कोपे वृषभ गनेस ॥२१३॥

चौ०— माता पिता स्वामि गुरु होइ। तिन्ह को निन्दा करै जु कोई ॥
श्रवण सुनत जे क्रोध न करई। रौरव नर्क जाइ सोइ परई ॥
दंड देन समरथ नहि हइए। तौ उह ठौर छांड़ि उठि जैए ॥
कनकनान[१] जब वृषभ बहूता। दूत दूत कहि छूटेउ दूता ॥

दोहा २१२ का शेष—

२ ऊंट वरद=ऊंट और बैल। कवि ने असमानता की व्यन्जना की है। ऊंट और बरद दोनों खेत जोतने के काम आते हैं, किन्तु दोनो असमान ऊंचाई, आकार के होने के कारण एक साथ जुताई में प्रयुक्त नहीं होते। 'राजस्थान' में ऊंट से ही जुताई का काम किया जाता है। ऊंट की पीठ पर काँठी बाँधी जाती है, काँठी को न गिरने देने लिये ऊंट के पेट से रस्सियों से बांधी जाती है तथा हर की हरिस की गिराई (रस्सी) काँठी में बंधे डंडों से बंधी रहती है। ऊंट एकाकी हल जोतने के काम में आता है। यहाँ कवि ने शिव की कुरूपता और पार्वती की सुंदरता की असमानता को लेकर व्यंग्य किया है। ऊंट और बरद से एकाकी और युगल भावों की भी व्यंजना की गयी है। ऊँट प्रायः एकाकी ही जोतने के काम आता है और वरद सदैव जोड़ी के साथ जुतते हैं। 'शिव'(पुरुष) के द्वारा एकाकी तपस्या तथा पार्वती (युगल सृष्टि) का दार्शनिक संकेत कितना विशिष्ट है।

दोहा २१३ के अन्तर्गत—

१ कनकनान=कानों का फड़फड़ाना। क्रोध को व्यक्त करने के लिए वृषभ (शिव के नांदियाँ) ने कान फड़फड़ाये। पार्वती के प्रति जालन्धर की वासनामय वाणी को सुनकर बृषभ द्वारा सांकेतिक विरोध कितना मार्मिक है। पशु-पक्षियों का यह जगत कितना संवेदनशील और नैतिक मूल्यों के प्रति सजग है। जालन्धर की पाशविक वृत्ति पर पशु द्वारा विरोध कितना अर्थवंत और मौलिक है।

गौरीनन्दन मारन भएई । देषि गरीब गई करि गएई ॥
स्वजन बिरोध लिया विश्वासा । सर्प सहित एकहि घर बासा ॥
समरथ सौं करै बैर बृथा हीं । मृत्यु के चार द्वार ए आहीं ॥
शंकर जटा कोप करि भारी । पुरुष एक प्रगटेउ भयकारी ॥
श्याम शरीर केश शिर ठाढ़े । दन्त बड़े मुष बाहर काढ़े ॥
लम्बे गोड़ हाथ नष देषा । दुर्बल देह दिगम्बर बेषा ॥
कटकटाइ सनमुष होइ धावा । भग्यो राहु जान्यों मोहि षावा ॥
राहु डरे बहुतै फिरि भागे । कीरतिमुष पीछैं ईं लागे ॥
राहु और कहँ लागत जैसे । शिवगन लग्यो राहु को तैसे ॥
कीरतिमुष बोले हंसि राहे । पूजा लियें जाहु किन काहे ॥
होत हैं जे अवरहि दुषदाता । तिनहूँ कहँ दुष देत बिधाता ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल परानें । देषे नहि छूटत कहुँ जानें ॥
ब्राम्हन होइ दिषाइ जनेऊ । शंकर दूत मने करि लेऊ ॥
कीरति मुष कहै मैं अति भूषा । षाउँ कहाँ प्रभु दीरत दूषा ॥
रुद्र कहै इहाँ भाग है आहीं । अपनोइ मांस आपु किन षाहीं ॥
गुरु आयसु कीरतिमुष पावा । अपनो मांस आपु सब षावा ॥
षात षात मुष ही जब बाचा । महादेव कहै सेवक साँचा ॥
शंकर रीझि आसिका दीना । अपनों द्वारपाल ताहि कीना ॥
अबहूँ शिव आलय कोउ कारैं । मुष को चिन्ह राषियत द्वारैं ॥

दोहा— राहु छूटि आए इहाँ दैत्यराज के पास ।
कही बात सब आपनी लै लै ऊंच उस्वांस ॥२१३॥

चौ०— कोपे सुनत जलन्धर राऊ । जोगिहि जाहु पकरि लै आऊ ॥
शुम्भ निशुम्भ बड़े सिरदारा । काल नेमि कहँ कीन्ह तयारा ॥
गये साजि बल शंकर देषा । कीन्हें भस्म असुर नहि लेषा ॥
जीवत बचे भगे फिरि आये । फूटे मूड़ गोड़ दिषराए ॥
रुद्र अग्नि ते भस्म जु कीन्हें । दाढ़ी मूंछ जरे नहि चीन्हें ॥
देषि जलन्धर उठेउ रिसाई । मारत हौं बचि है कहँ जाई ॥
धरि हथियार औ मूंछ मरोरा । मारौ आजु जाइ जेहि ठौरा ॥
गोलावान धनुष कर धारे । संहथी गदा ढाल तरवारे ॥
चक्र त्रिशूल लिये बहु बाना । निकसे दैत्य सैन्य करि नाना ॥
गज घोरे रथ पायक लीनें । भेरी ढोल नगारा दीनें ॥
गए कैलास असुर दररानें । गर्जे मनो मेघ थहरानें ॥

तब शिवनाथ जोगि कैं देषा । आए असुर नहीं कहुँ लेषा ।।
तब हुंकार कियो भगवन्ता । दौरे भूत पिशाच अनन्ता ।।
केउ नाचत केउ गाल बजावत । केउ घूमत केउ फांदत आवत ।।
केउ हुंकार देत किलकारी । कटकटात दौरे दै तारी ।।
बिथुरे केश दन्त मुष बाए । रूप भयानक करि दिषराए ।।
देषे प्रेत दैत्य भभरानें । घोरे डरे गिराइ परानें ।।
जाके तन महिं प्रेत संचारै । फोरै मूंड हंसै बक मारै ।।
दौरि और शिव के गन आवैं । पनहिन्ह मारि मारि कबुलावैं ।।
काहूँ जाइ भूत जब लागै । कपरा फारि तोरि तजि भागै ।।
लगे भूत घूमे बौरानें । गिरि गिरि परैं भगैं बिततानें ।।
हाँसी भई कहै जग बानी । आए लरन उभाई[1] ठानी ।।
देषि जलन्धर कै डर जागै । जनि कोउ भूत मोहूँ कहं लागै ।।
छूटे घोर बिना असवारा । परे सैन्य महिं सो रष भारा ।।
मारै सिंह परेउ दल माहीं । डरे देषि काहो सुधि नाहीं ।।
गज घोरेन्ह के साज सुधारे । मूसैं जाइ काटि सब डारे ।।
बरदा परेउ दौरि घहराई । सींगन्ह मारि सैन्य बिचलाई ।।
झपटै उडै करै अति सौरे । दौरै मोर आंषि ही फोरै ।।
पक्षी पशू प्रेत गण जबहीं । पुरुषारथ[2] जो करत भए सबहीं ।।
उछटी अग्नि आँषि तैं हरके । जरे जीन घोरे गज भरके ।।
छूटे बान हवाई लागी । दारू भरे रहे परि आगी ।।
गोला चले नाल घहराने । हलबल भई ऊँट अरराने ।।
केइ घोरेन्ह के लातन्हं मारे । केउ हांथिन्ह कै धकैं पछारे ।।

दोहा २१४ के अन्तर्गत—

१ उभाई—उत्साह की मनोदशा

२ पुरुषारथ—पुरुषों के अनुरूप युद्ध का कौशल दिखलाकर । युद्ध वर्णन अत्यन्त सजीव एवं रोचक है। मध्यकालीन एवं तात्कालिक युद्धों में व्यवहृत शैली का चित्रण कवि ने किया है। युद्ध में मानवेतर पशु पक्षियों को सम्मिलित कर युद्ध वर्णन को रोचक एवं कौतूहलपूर्ण बनाया है। आसुरी शक्तियों के विरुद्ध दैवी शक्तियों के युद्ध में इस प्रकार पशु पक्षियों के सम्मिलित करने की परम्परा को पूर्ववर्ती कवि तुलसी में भी गृद्ध एवं रीछ-बानरों को राम के साथ युद्ध रत दिखलाकर इसी परम्परा का निर्वाह किया है।

आपही आप भए संहारा । मारे दैत्य गयब[३] की मारा ॥
लरै कौंन देषत ही मूवा । रन की ठौर तमाशा हूवा ॥
भूत पिशाच. बीर बैताला । लरै देह बिनु लगै न भाला ॥
जुद्ध करत जब जोति न जाई । तबहिं जलन्धर जुक्ति उपाई ॥
माया करि इक रच्यो अषारा । नाचत पातुरि बिबिध प्रकारा ॥
राग रङ्ग बहु भाँति सुनाए । महादेव कों लगे सुहाए ॥
मगन भये तन की सुधि नाहीं । गिरे हथियार रहे कर माहीं ॥
कहूँ पिनाक कहूँ परे बाना । कहुँकि त्रिशूल गिरत नहिं जाना ॥
भांग[४] धतूर षाइ अलसानें । राग रङ्ग सुनि अधिक उंघाने ॥
लगे ब्याल[५] नाथ मति भोरा । अवसर पाइ असुर तब दौरा ॥
कामातुर क्रोधी अरु लोभी । धन मदमस्त आँषि बिनु शोभी ॥
ए षट अन्ध जगत महि कहिए । इन्हके आंषि न सूझत हइए ॥
महादेव[६] को रूप बनावा । पार्वती जहँही तहँ आवा ॥
छूटि जटा शिर नैंन कराला । सोहत साँप गरे रुन्ड माला ॥
चन्द्र ललाट गहे जु त्रिशूला । आक धतूर चबावत फूला ॥
गङ्गा बहत शीश पर पानी । गावत बेद अथर्वन बानी ॥
सींगी संष हाथ रनतूरा । चेला संग बजावत पूरा ॥
अंग बिभूति बघम्बर धारा । डमरु बजाय बरद असवारा ॥
देषि स्वरूप उठी जु भवानी । आरती साजि लई मनमानी ॥
हंसत चली भयौ हिये उछाहा । आए जुद्ध जोति लषि नाहा ॥

---

३ गयब=अदृष्ट

४ भाँग धतूर=मादक पदार्थ । शिव के द्वारा भाँग और धतूर खाये जाने का वर्णन मिलता है, जो प्रायः विषपान और अशिव को आत्मसात करने के प्रतीकार्थ में था, किन्तु लोक जीवन में प्रतीक अपना मूल्य खोकर कहीं-कहीं अभिधार्थ में ही प्रयुक्त होने लगता है । कवि ने शिव द्वारा भांग-धतूर के खाये जाने को आलस्य और मादक प्रभाव वाला कहलाकर अशिव तत्वों पर प्रहार किया है, भले ही वे शिव के ही उपकरण क्यों न हों ? श्रेष्ठ पुरुषों के दुर्गुण और व्यसन कहीं-कहीं लोक जीवन में प्रतिष्ठा पा जाते हैं, पर कवि उन्हें भी क्षम्य नहीं समझता ।

पाठान्तर : ५ व्याल (छ० प्रति)

६ महादेव को रूप बनावा=जालन्धर ने पातुरी नृत्य के द्वारा शिव को मुग्ध करके एवं 'शिव' के रूप में पार्वती को छलना चाहता है ।

देषि देषि जालन्धर राना । नारद[७] बचन सत्य मन आना ॥
सुन्दर रूप की राशि निहारी । मोहित होइ परेउ व्यभिचारी[८] ॥

दोहा— काम अग्नि पीडित भयो सोभा देषि निधान ।
लाल है माता[९] जगत की असुर अंध नहिं जान ॥२१४॥

दोहा— चितवन करि मुष भाव करि बचन कै हित अनहीत ।
लाल जे साधु असाधु के अन्तरगत जानीत ॥२१५॥

चौ०— देषि कै देवि भगी छल जाना । है कोउ दैत्य नहीं भगवाना ॥
तजि कैलास परायल[१] गौरी । मानसरोवर गई तब दौरी ॥
सागर क्षीर सदा सुषकारी । तहाँ रहत हरि नित्य दुषहारी ॥
रूप चतुर्भुज मन महँ आना । कृपा सिंधु सुनिए भगवाना ॥
लागहु लागु गुहारि गुसाईं । जानहु मोहिं भई बिनु साईं ॥
मारे जात शिव भक्त तुम्हारा । राषि लेहु अहिबात हमारा ॥
नाम जलन्धर असुर बिकारी । मारत फिरत साधु शुभ चारी ॥
इन्द्रादिक पुर तजि भए छूटे । करि संग्राम रत्न सब लूटे ॥
हौं अबला[२] हौं रहति अकेली । शिव गये जुद्ध करन मोहि मेली ॥

---

७ नारद बचन=कवि ने 'नारद वचन' से किसी प्राचीन कथा की ओर संकेत किया है। 'महाभागवतपुराण' (११-१०७-११२) में नारद का शाप सूर्य वंश में विष्णु के जन्म तथा सीता के हरण का कारण माना गया है। अद्भुत रामायण में भी इस प्रकार की कथा है। यहाँ कवि ने नारदशाप के कारण जालन्धर को पार्वती द्वारा भ्रम से शिव मानने की ओर संकेत किया है।

८ व्यभिचारी=व्यभिचार वाला। जालन्धर के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

९ माता जगती की=जग की माँ (पार्वती) कवि के इस कथन में 'जगतः पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरौ' का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है।

दोहा २१६ के अन्तर्गत—

१ परायल=पराना (भगना) दूर जाना क्रिया का भोजपुरी रूप 'परायल' है।

२ अबला=वलहीन। मैथलीशरण गुप्त ने भी 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी' कहकर नारी के साथ इसी विशेषण का प्रयोग किया है, जो असमर्थता का व्यन्जक है।

पुत्र गणेशहु संग सिधारे । बीरभद्रउ नहिं रषवारे ॥
फिरत रहतु हैं असुर सकामी । मोरी षबरि करत रहो स्वामी ॥
अस कहि देवि गिरी न संभारा । मानहुँ लता[3] पवन के मारा ॥
देषी पति दुष व्यथित भवानी । करुणानिधि बोले तब बानी ॥
वाके घर पतिबरता होई । तातैं मारि सकत नहिं कोई ॥
पुरुष धर्म पर त्रिय न निहारै । त्रिय कौ धर्म पतिब्रत ही धारै ॥
जहाँ सत्य तहँ लक्ष्मी आसा । जहँ लक्ष्मी तहँ हरि को बासा ॥
हरि जहँ होइ धर्म तहँ मानी । जहाँ धर्म[4] तहँ जय कहँ जानी ॥

दोहा— जालन्धर पुर जाइ कै बेग नसाइब ताहि ।
जैसें छल[5] तुम सों कियौं मैं हूँ छलिहौं जाहि ॥२१६॥

चौ०— गइ गिरिजा अपनें तब धामा । प्रभु आए जालन्धर ग्रामा ॥
सुन्दर बाग सरोवर तीरा । तहँ तपसी होइ बैठे धीरा ॥
अङ्ग भस्म नष जटा बिशाला । पदमासन फेरत जयमाला ॥
ध्यान धरे पलकन्हुँ नहिं षोलै । मौन गहे कछु वै नहिं बोलै ॥
एकाएक दिगम्बर बेषा । रानी ताहि दूर भए देषा ॥
बृन्दा नाम जलन्धर रानी । पति संग्राम फिरत अकुलानी ॥
घर बन बाग सरोवर फिरई । पिय बिनु पल कल कतहुँ न परई ।
षान पान तन कछु न सुहाई । चिंता भई महा दुष पाई ॥

---

३ लता पवन के मारा=लता पवन के झकोरों से झुक जाती है । कवि ने लता के माध्यम से पार्वती की तनुता और उनके तन्वगी रूप का एक प्राकृतिक बिम्ब प्रस्तुत किया है । पवन के बोझ से गिरती हुयी लता से वातावरण के अतिक्रांत करने वाले आतंक की और लता से उसके लालित्य की कैसी मनोहारी अभिव्यन्जना की है !

४ जहाँ धर्म तहँ जय=कवि के इस कथन में 'यतो धर्मः ततो जयाः' (महाभारत) का प्रतिबिम्ब है ।

५ जैसे छल······हौं जाहि=लालदास ने शिव के द्वारा जलन्धर के रूप में वृन्दा के सतीत्व के हरण का कारण जलन्धर के द्वारा शिव के रूप में पार्वती के सतीत्व हरण की असफल कुचेष्टा को बताया है । अन्य राम कथाओं में जालन्धर के द्वारा शिव के रूप में पार्वती के छलने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता । लालदास ने 'सठं साठ्यं समाचरेत्' के सिद्धान्त के आधार पर छल के बदले में छल करने के औचित्य को प्रमाणित किया है । इस प्रकार कथा विकास के साथ चारित्रिक उत्कर्ष भी कवि का अभीष्ट था ।

तिय के प्रान प्रान नहिं होई । प्रान पीय कहिये तिय सोई ॥
पिय के सुष सुष होत है जा कहँ । पतिब्रता कहियत है ता कहँ ॥
देव अतीथ जहाँ तहँ प्रीतै[1] । होह सहाइ जलन्धर जीतै ॥
देषे दोइ दैत्य बिकराला । माया करि प्रभु रचे बिशाला ॥
सनमुष आवत देषि डरानी । मुनि के धाइ गरे लपटानी ॥
मुनि हुंकार कियो तेहिं ठौरा । प्रेत बिलाइ गये केहि ओरा ॥
तब बृन्दा कर जोरि कहाई । धन्य धन्य तुम बडे गुसांई ॥
पुरुष हमार बिजय लै धामा । शंकर सङ्ग करत संग्रामा ॥
हारि जीति का कर[2] कस होई । मोहि सुनाइ कहो प्रभु सोई ॥
बोले धूत सिद्ध छल बानी । बृन्दा साधु सत्य करि मानी ॥
अस को महाबली अवतारा । महादेव कहँ मारन हारा ॥
ब्रह्मा रचत सकल ब्रह्मण्डा । स्वर्ग मृत्यु पाताल सुषन्डा ॥
देषि दसों दिसि होत दयाला । बिष्नु करत सबको प्रतिपाला ॥
रुद्र करत संसार संघारा । जालन्धर को आहि बिचारा ॥
बानर दोइ[3] जलन्वर लाए । हरि माया करि मृतक दिषाए ॥
तपसी कहत कछू अब बूझा । इह दिषु लेहु जलन्धर जूझा ॥
बृन्दा रुदन करत दुष पागी । सावधान होइ पूंछन लागी ॥
तुम सब जानत अन्तरजामी । कौनेउ भांति जिवै मम स्वामी ॥
मुनि कहै और बात सब होई । प्रान गये फिरि जिए न कोई ॥
निर्धन होइ फेरि धन पाई । काल पाइ पुनि डीह बसाई ॥
बिछुरे मित्र मिलै फिरि रानी । प्रान गये फिरि जिएँ न प्रानी ॥

दोहा २१७ के अन्तर्गत—

१ प्रीतै=प्रीति से प्रीतै क्रिया की रचना

२ काकर=सम्बन्ध विभक्ति के अर्थ में कर प्रत्यय भोजपुरी भाषा में प्रयुक्त होता है ।

३ वानर दोइ=दो बन्दर । शिव जलन्धर के रूप में बृन्दा के सतीत्व हरण के लिये दो वानरों की सहायता लेते हैं । अन्य राम कथाओं में विष्णु जय विजय की सहायता से वृन्दा का सतीत्व नष्ट करते हैं । लालदास ने विष्णु भक्त होने के कारण 'विष्णु' के स्थान पर 'शिव' द्वारा वृन्दा के सतीत्व नष्ट करने की कथा की रचना की है । इष्ट द्वारा अनिष्ट का वर्णन लालदास के भक्त हृदय को अभीष्ट नहीं लगा होगा ।

जौ तप बल अब देउ हमारा । तौ इह जीवै कन्त तुम्हारा ।।
जौ प्रभु पूजै आस हमारी । जन्म जन्म रहूँ दासि तुम्हारी ।।
एक स्वरूप रहे इहाँ बैठा । आप जलन्धर के तन पैठा ।।
आलस लेत उठे अंगराई । बृन्दा दौरि लए हिए लाई ।।
अमृत अधर पान करवाए । मुए गए प्यारे फिरि पाए ।।
हाथ जोरि तपस्वी सहुँ भाषा । तुम अहिवात हमारो राषा ।।
अब इहाँ रहहु कृतारथ कीजै । सेवा करि हमहूँ फल लीजै ।।
इह कहि बिदा भई घर आई । बहुत किये आनन्द बधाई ।
देषि देषि पिय से मन माना । छैल छली सो भेद न जाना ।।
मन्दिर मिले रहे इक सङ्गा । बृन्दा कौ पतिब्रत कियो भङ्गा ।।
तब[४] बलहीन भये जलधारी । मारि असुर जीते त्रिपुरारी ।।
हत्यो जलन्धर जब हरि जाना । देह पलटि उठि चले सयाना ।।
बृन्दा शाप[५] दयो फल पैहैं । तेरीओ नारि असुर लै जैहैं ।।
जिन्ह दोउ बीर मोहि डरवाई । कबहुँ कि तोहि होइ दुषदाई ।।

---

४ तब बलहीन.........त्रिपुरारी=कवि ने बृन्दा के सतीत्व के कारण दैत्य जलन्धर को अजेय बताया है और बृन्दा के पतिव्रत भंग होने पर ही जलन्धर को शिव द्वारा जीतने का वर्णन किया है ।

५ बृन्दा शाप=बृन्दा ने शिव को यह शाप दिया कि तुम्हारी भी पत्नी को असुर ले जायेंगे तथा दोनों वीरों को जिन्होंने मुझे डराया है, वे तुम्हारे लिये भी कभी दुखदायी सिद्ध होंगे। स्कन्दपुराण (वैष्णव खण्ड कार्तिक मास महात्म्य २०-२१), शिवपुराण (रुद्र संहिता, युद्ध खण्ड, अध्याय २३) पद्मपुराण (उत्तर खण्ड अध्याय १६ और १०५), योग वाशिष्ठ रामायण (१,१,६२) आनन्द रामायण (१, ४८०-११२) तथा लोमश रामायण (अनु० १८४) में बृन्दा शाप के वर्णन में विष्णु एवं जय विजय को शाप दिया गया है । लालदास ने इस प्रसंग में आंशिक परिवर्तन किया है ।

स्कन्दपुराण (अध्याय २१) में बृन्दा का शाप इस प्रकार है—

"यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ।
तावेव राक्षसो भूत्वा भार्यां तव हरिष्यन्तः" ।।२८।।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड (अध्याय १६) में यह शाप परिवर्तित रूप में इस प्रकार है—

"अहं मोहं यथा नीता त्वया माया तपस्विना ।
तथा तव वधूं माया तपस्वी कोऽपि नेष्यति" ।।५५।।

माया करि बनचर जे प्रेरे। ते तहँ होंहि सहायक तेरे ॥
पति बियोग जस मोहि कियोई। तिय बियोग तुम कहँ तस होई ॥

दोहा— लाल दोष के कर्म फल करै सुभुक्तै जौंन।
ईश्वर कहँ पातक लगे और बापुरो कौंन ॥२१७॥

चौ०— तुम त्रैलोक नाथ सुषदाई। छलत फिरत इह कौंन बड़ाई ॥
पक्षापक्ष जीव कें आही। तुम ईश्वर सब सों सम चाही ॥
जो कोउ[1] और करै अपराधै। राजा ताहि दण्ड दै साधै ॥
राजा आप करै बरिआई। तौ कहौ काहि जाइ गुहराई ॥
माता सुत कौं बिष जौ देई। तौ ताहि राषि सकै कहु केई ॥
बाप पूत कहँ बेचै कोई। बाग लगाइ उषारै सोई ॥
षेतहि बारि दौरि जो षाई। तौं कैसैं कहौ राषे जाई ॥
हम अबला जोषित जग माहीं। बुधि बिवेक बिद्या कछु नाहीं ॥
जड़ बालक त्रिय कहँ ठगि षाई। सो नर कहत नर्क महँ जाई ॥
सुनि वृन्दा के बचन सयाने। प्रभु सकुचे आपुहि घटि मानें ॥
ज्यों कोउ द्विज मद पिय पछितावै। बचन आस दै फिरि बिसरावै ॥
वृन्दा[2] कें दोइ सषी पियारी। सदा संग रहि कबहुँ न न्यारी ॥
तीनउँ जरी छाँड़ि सुष भोगा। जालन्धर कें बिरह बियोगा ॥
देषहिं हरि ठाढ़े मुष आगे। जरि बीती तब रोवन लागे ॥

दोहा— नारी प्यारी जीय कैं न्यारी करी न जात।
नारी के न्यारे भये नारी छूटि ही जात ॥ २१८ ॥

दोहा २१८ के अन्तर्गत—

१ जो कोउ······राषे जाई=शिव के द्वारा बृन्दा के छलने के अनौचित्य को कवि ने भाव-प्रवण तर्कों द्वारा व्यक्त किया है। राजाओं की निरंकुशता की ओर सामाजिक व्यंग्य किया है। आधार भूत नैतिक मूल्यो का संरक्षण सामाजिक हितों के लिये सदैव अभीष्ट रहा है। कवि अपनी उक्तियों द्वारा इस अनिवार्य दायित्व की ओर संकेत करता है।

२ बृन्दा कै······वियोगा=बृन्दा की दो अभिन्न सखियां भी जालन्धर के विरह में सती होने वाली बृन्दा के साथ अपने प्राणों की आहुति दे दीं। सखी धर्म के प्रति इतनी गहरी प्रीति की अभिव्यन्जना लालदास की रसिक साधना की 'सखी' साधना की ओर संकेत करती है, साथ ही लोक जीवन में नारी हृदय के कोमल सम्बन्धों और सखी धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करती है।

चौ०—हा बृन्दा[१] हा बृन्दा बृन्दा । मोहि तज गई कहाँ मुष चन्दा ।।
अधर मधुर मृदु बिब रसाला । को मोहि पान कराइहै बाला ।।
रही सुष देति करति अति लाडा । औगुन कौन जानि मों छांडा ।।
नैंन सों नैंन बैन सों बैना । लगी रहत तन सों तन मैंना ।।
मो बिनु नैंकु रहति नहिं न्यारी । अब कहा करत होइगी प्यारी ।।
अमृत मधुर बोलि मन मोहे । नैनन्हें के आगे तन सोहे ।।
बीरी षाति षिवावति बाला । पहिरावति कोमल कर माला ।।
चन्दन अंग अरगजा लावति । सेज संग सुष अति बिलसावति ।।
जेहि-जेहि भांति मनोरथ मेरे । करती सुभग सिंगार घनेरे ।।
नैंन रसाल बिशाल न बांचत । अंजन जुत षंजन से नाचत ।।
लज्जा बिनय बहुत चतुराई । काम केलि कछु कही न जाई ।।
रूप स्वभाव शील छवि ज्ञाना । कौन-कौन गुन करौं बषाना ।।
हाइ कवन कीन्ही चतुराई । आई हाथ गयो निधि धाई ।।
जेइ जेइ सु:ष लिये संग नारी । ते अब मोहिं भये दुष भारी ।।
जापर जबहिं होत मन देवा । सोइ सब जानि करत रही सेवा ।।
समय समय की बातहि जानी । करत रही सो सबहि सयानी ।।
ऐसी त्रिया होइ घर माहीं । धन्य जन्म तिन्ह सम कोउ नाहीं ।।
मो बिनु षान पान नहिं करती । मेरैं सदा रहत अनुबरती ।।
बृथा सबै जिन्ह के गुन मानो । पिय की प्रकृति नहीं जिन्ह जानी ।।
आज्ञा भंग कबहुँ नहिं कीना । बृन्दा बिछुरि बहुत दुष दीना ।।
बृन्दा सम पतिबरता कोई । आगैं भई न है अब होई ।।

दोहा २१८ के अन्तर्गत—

१ हा बृंदा...अब होई=बृंदा के वियोग में पति के रूप में जालंधर का विलाप कवि की मौलिक उद्भावना है । बृंदा भारतीय संस्कारों की प्रतिनिधि नारी है । असुर होने पर भी जालन्धर का यह विलाप अत्यन्त कारुणिक है और वृन्दा के चरित्र से दग्ध होने से अत्यन्त पावन भी । आसुरी वृत्तियों वाले पात्रों के भीतर भी मानवीय मूल्यों, करुणा-प्रेम आदि का वर्णन कवि की व्यापक भावभूमि और साधना का परिणाम प्रतीत होता है । वृत्तियों का उर्ध्व रूपान्तर कवि की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का समर्थ अभिव्यंजक है ।

दोहा— मिहरी बिन मूये भले जीयत भले न लाल ।
जौ जीवै तौ जोग लेइ अैसे कह्यो गोपाल[२] ॥२१८॥

चौ०— पुरुष होंत जब नारि बिहोना । दीन क्षीन मन रहत मलीना ॥
सुष सोभा उत्सव बल रंगा । ये सब जाहि तियहि के संगा ॥
हाइ हाइ कहि हृदय ठकोरा । हरि गिरि परे तबहिं[१] तेहि ठौरा ॥
माला मुकुट तोरि तजि डारे । पीतम्बर पटुका धरि फारे ॥
बृंदा जरी तहां घर छावा । लै समसान भसम तन लावा ॥
त्रिया बियोग दुसह जिय पैठा । परमेश्वर जोगी होइ बैठा ॥
प्रीति सदा होत है दुषदाई । याको कछु अचरज नहिं पाई ॥
लोभ पाप को मूल बषाना । व्याधि मूल रह कहत सयाना ॥
दुष को मूल सनेह कह्योई । तीनौं तजै सुषी सो होई ॥
जो[२] कोउ राम भजत है जैसें । रामहुँ ताहिं भजत हैं तैसें ॥
बृंदा हरिहि पीय करि जानें । हरिहूँ ताहि तीय करि मानें ॥
सबके पति सबही के स्वामी । सबही महि सब अन्तर जामी ॥
आपहीं पुरुष आपहीं नारी । इह कौतुक अचिरज नहिं भारी ॥
रहत अलिप्त अद्वैत अकेला । ए प्रभु के लीला सब षेला ॥
हरि कैं बिरह मोह कहँ पाई । देह धरें की रीति जनाई ॥
व्याप्यो बिरह कहर इहि भांती । लज्जा छूटि गयी सब घांती ॥
भोजन षान पान सब त्यागे । ध्यान ध्यान बृंदा के लागे ॥
बैठे होइ दिगम्बर बेषा । इन्द्रादिक देवन्ह तब देषा ॥
देवन्ह भली भई नहिं जाना । बिगरी बात बिष्नु बौराना ॥

---

२ गोपाल = संभवत: लालदास का 'गोपाल' से आशय भानुदत्त कृत रसमंजरी के विकास नामक टीका के टीकाकार आचार्य गोपाल (सं० १४८५) की ओर संकेत करना हो । बहुत संभव है इस 'गोपाल' ने रसमंजरी की टीका के अतिरिक्त कोई अन्य ग्रंथ लिखा हो जो लालदास के देखने में आया हो और जिसमें पत्नी के बिना जीवित व्यक्तियों को योग का मार्ग लेने का व्यंग्यात्मक चित्र हो, जिसकी ओर लालदास ने संकेत किया है ।

दोहा २२० के अन्तर्गत—

पाठान्तर— १ तर्पाहि (छ० प्रति)

२ जो कोउ.........भजत हैं तैसे = कवि के इस कथन में गीता के 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' का स्पष्ट प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है ।

तब तिन्ह बहुत भांति समुझाये । तजत न जोग लोक बिसराये ॥
अवलोकनि आलापनु बाता । मनहीं मन बृंदा सों राता ॥
ज्यों बहिरे सो कहब संदेसा । बिरही कहँ तैसा उपदेसा ॥
तब देवन्ह मिलि कीन्ह बिचारा । त्रिया बियोग कठिन संसारा ॥

दोहा— का भोगी जोगी जती देव असुर नर नारि ।
जा घट[३] बिरहा संचरै सो नहिं सकै संभारि ॥ २२० ॥

तीर तुपक तरवरि के घाव सहै सब कोइ ।
बिरह बान जाकें लगे लाल जिये नहिं सोइ ॥ २२१ ॥

चौ०— या कहँ होइ न और उपाई । जाको दुष ताही सों जाई ॥
लक्ष्मी पार्वती ब्रह्मानी । तिन्ह पैं जाइ हकीकति ठानी ॥
जाहु जुवति मिलि करहु सिंगारा । हाव भाव लावनि बिस्तारा ॥
और उपाइ कछु न बनि आवै । आगि कैं डाढ़ेहि आगि सिरावै ॥
तिय कौ दुष तिय हीं सौं छूटै । और जतन करिये रस टूटै ॥
रोग आन कछु औषध[१] आनैं । सो कहा रोग जाइ बिनु जानैं ॥
ए श्री बात सुनी मुसक्यानी । लज्जित भई लक्ष्मी रानी ॥
अपने होइ रूप अधिकारै । तथापि पर तिय पुरुष निहारै ॥
एक तो उन्ह बोरी चतुराई । अबका जाइ हमहुँ बौराई ॥
अपनी आप करत हलुकाई । इनि बातनि कहो कौंन बड़ाई ॥
तीन बीज तीनहुँ मिलि दीये । सोइ तब इन्द्र हाथ कर लीये ॥
बिष्नु समीप चिता पर राषा । सुन्दर रूप तीन भई साषा ॥

---

३ जा घट बिरहा संचरै = जिस घट में विरह का संचार होता है । इस पंक्ति को पढ़ते ही जायसी के पद्‌मावत की पंक्तियाँ स्मरण आने लगती हैं ।

दोहा २२२ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ औषध कछु (छ० प्रति) शब्द विपर्यय

तुलसी[2] भई सोई उह बृंदा । वै दोउ[3] आँवर मालती कंदा ।।
देखि रीझि बोले हरि बानी । बृंदा राषिहौं सीस सयानी ।।
इह कहि रूप चत्रभुज धारा । देवन्ह देषि कीन्ह जयकारा ।।
आनन्द भए दुन्दुभी बाजे । आरती धूप दीप करि गाजे ।।
करि स्तुती शम्भु अस भाषा । आजु हमारि सरम भल राषा ।।
देव काज या भाँति सुधारे । लाल बिष्नु बैकुन्ठ सिधारे ।।

दोहा— गावै मन दै जो सुनैं तुलसी की उत्पत्ति[4] ।
कार्तिक को फल[5] पाइए लाल होइ सद गत्ति ।। २२२ ।।

इति श्री अवध विलासे : बुद्धि प्रकासे : सब गुन रासे : भक्त हुलासे : पाप विनासे : कृत लाल दासे : पृथ्वी हरि के गुन कथन नाम चतुर्थ विश्राम ।।

२—तुलसी भई सोई उह बृंदा=बृंदा ही 'तुलसी' का अवतार हो गयी । तुलसी का पौधा अत्यन्त गुणकारी एवं लोक जीवन में पूज्य माना गया है । भारतवर्ष में घर के आँगन में 'तुलसी' के पौधे लगाने के पीछे यही पूज्य श्रद्धा वृत्ति कार्य करती है । तुलसी शालीग्राम (विष्णु) पर चढ़ायी जाती है और इसे विष्णु प्रिया भी कहते हैं ।

३—वै दोउ आँवर मालती कंदा=बृंदा की अभिन्न सखियाँ जो बृंदा के साथ ही सतीत्व को प्राप्त हुयीं, वे 'आँवला' और 'मालती' के रूप में अवतरित हुयीं । 'आँवला' वृक्ष की भी पूजा कार्तिक शुक्ल अक्षय नवमी को होती है । आँवले के नीचे इस तिथि को पूजा तथा भोजन करने की परम्परा अब भी प्रचलित है । 'मालती' 'शिव' के ऊपर नहीं चढ़ायी जाती इसका भी कारण लोक में इसी कथा के प्रति विश्वास हो सकता है ।

४—तुलसी की उत्पत्ति=बृंदा के 'तुलसी' के रूप में जन्म लेने की कथा । श्लेषार्थ—कवि (तुलसी) की रामचरित मानस सम्बन्धी भाषा के क्षेत्र में नूतन उद्भावना (उत्पत्ति) ।

५—कार्तिक को फल=कार्तिक में तुलसी का पूजन तथा विष्णु की प्रतिमा के साथ विवाह करने की प्रथा आज भी लोक जीवन में पायी जाती है । 'कार्तिक माहात्म्य' में तुलसी पूजा और कार्तिक व्रत का वर्णन प्राप्त होता है । कार्तिक की शरद पूर्णिमा से यह व्रत प्रारम्भ होता है ।

:—: अथ पंचम विश्राम :—:

चौ०— अब रघुवंश[1] कहों मन लाई । रघुवंशो होइहैं हरि आई ।।
सूरज वंश भए रघु राजा । रघु के अज भए नृप शिरताजा ।।
अज के आइ कश्यप तनु धारा । दशरथ नाम प्रगट संसारा ।।
नगर अजोध्यापुरी बिराजै । तहँ सरजू गंगा धुनि गाजै ।।
नृप कौशल्य कुशल शुभचारी । तहाँ आदित्य भई राजकुमारी ।।
अति सुशील सुंदरि पिक बैंनी । शुभ लक्षन पूरन सुष दैंनी ।।
देव दनुज मानुष की कन्या । ता सम और नहीं कोउ धन्या ।।
नृप दशरथ कहँ दीन्ह बिवाही । नाम तासु कौशल्या आही ।।

दोहा— स्वायंभू कश्यप अदिति औ शतरूपा नारि ।
लाल सदा इन्ह के उदर होत हैं पुत्र मुरारि ।।२२३।।
नारद[1] रावन सो कह्यो दशरथ करत बिवाह ।
ताको सुत तोहिं मारिहै वेगि निबारन जाह ।।२२४।।
अबहीं जब बाढ़त असुर पाप होत भू भार ।
प्रथम ए तपस्वी होत हैं पुनि होत हैं औतार ।।२२५।।

दोहा २२३ के अन्तर्गत—

१ अब रघुबन्श कहों मन लाई=महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों में स्वीकृत वंशानुचरित के परिपालन हेतु कवि ने चरितनायक राम के पूर्वपुरुष रघु, अज एवं दशरथ को सूर्य वंश प्रभव बताया है। 'रघुवंश' शब्द श्लेषार्थक है— प्रथम रघु के वंश का वाचक है एवं द्वितीय महाकवि कालिदास कृत 'रघुवंश' महाकाव्यम् की ओर संकेत है। रघुवंश काव्य की ओर संकेत इसलिये है क्योंकि महाराज रघु की कथा का मूलस्रोत रघुवंश महाकाव्य ही है। कवि ने एक अन्य स्थान में भी रघुवंश (रघु) के पढ़ने का संकेत किया है—

"रघु कुमार औ मेघदूत नैषध माघ किरात ।
ए षट काव्य बखानिए पढ़त वुद्धि बढ़ि जात ।"

दोहा २२४ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ नारद रावन...निवास जाह=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं है।

चौ०— रघु ते भयो रघुबंश अभंगा। कहियत कथा पाइ परसंगा ॥
ता रघु[१] की सुनि लेहु बड़ाई। जिन्ह कुबेर पर कीन्ह चढ़ाई ॥
बिप्र एक गुरु कैं गृह जाई। सेवा बहुत करी मन लाई ॥
गुरु बर्त्तन्त[२] नाम है जाको। शिष्य सुबुद्धि है कौत्सव ताको ॥
श्रुति स्मृति व्याकरण पुराना। ज्योतिष बैद्यक आगम जाना ॥
विद्या बेद पढ़ेउ अधिकाई। कोक काव्य संगीत निकाई ॥
शिल्प शास्त्र बणिज औ परषन। मोहन बशीकरन आकर्षन ॥

दोहा — मन्त्र[३] जन्त्र कीलक कवच मोहन बसि कर काज।
याते मैं ए ना लिषे देषे चलत न आज ॥२२६॥

चौ०— सबगुन पढ़ेउ रहे कछु नाहीं। तब बिचार कीएउ मन माहीं ॥
अस कछु धन जग महँ नहिं कोई। विद्या सम दीजै करि सोई ॥
और[१] सकल धन जाइ बिलाई। विद्या धन दिन दिन अधिकाई ॥
चोर न हरै राज भय नाहीं। देस विदेस भार नहिं बाहीं ॥
विद्या धन सब धन कौ राजा। विद्या तै सब मिलै समाजा ॥
ग्रन्थन्ह[२] चारि मित्र हैं भाषा। विद्या धन लिय धर्म जु राषा ॥

दोहा २२६ के अन्तर्गत—

१ ता रघु···बड़ाई=रघु के दान तथा गौरव का वर्णन रघुवंश (५) तथा स्कन्द पुराण (२ : ८२) में वर्णित है।

२ गुरु वर्तन्त···कौत्सव ताको=वरतन्तु के शिष्य कौत्स की कथा रघुवंश (पञ्चम सर्ग) में वर्णित है—

'उपात्त विद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः।'

पाठान्तर : ३ मन्त्र-जन्त्र···लत आज=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं है।

दोहा २२७ के अन्तर्गत—

१ और सकल···अधिकाई=कवि का यह कथन संस्कृत की नीति से रूपान्तरित है—'व्यये कृते वर्द्धत एव नित्यं विद्या धनं सर्वधनं प्रधानं।'

२ ग्रन्थन्ह चारि···विदेस बषाना=कवि की इन पंक्तियों में तुलसी की छाया प्रतिबिम्बित होती है—

"आपत काल परखिये चारी। धीरज धरम मित्र अरु नारी ॥"

भीर[3] परे धन मित्र हैं होई । धर्म मित्र परलोक है सोई ।।
लिया मित्र गृह एक ठिकाना । विद्या मिल विदेस बषाना ।।
विद्या संग्रह करैं सयाने । बिन विद्या नर पशु करि माने ।।
घट-घट घर अँधियार अभासा । विद्या दीपक करै प्रकासा ।।
द्वै द्वै नैंन सबनि कैं जानें । पंडित[4] त्रैलोचन करि मानें ।।
अपढ़ पढ़ेन महँ लागत कैसा । हंसन्ह माँझ वैठ बक जैसा ।।
विद्या जगत पूज्य पढु ताही । विद्या बड़ी बड़े तैं आही ।।
धन्य गुरू सबहिन्ह सत्य भाषा । अस धन देत कछू नहिं राषा ।।
दाता बड़े गुरू हम जाना । भिक्षुक नहिं कोउ शिष्य समाना ।।
अक्षर[5] एक दान देइ काही । गुरु करि जौंन मानिएँ ताही ।।
स्वान जोनि पावै सत सोई । मेंटत गुरुहि जगत महँ कोई ।।
विद्या[6] अभय औषधी धाना । चारि दान महादान बषाना ।।

---

३ भीर परे...विदेस बषाना=प्रस्तुत नीति परक संदेश में चाणक्य नीति का प्रभाव परिलक्षित होता है—

"विद्या मित्रं प्रकासे च भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ।।"

—चाणक्य नीति १३/१७

४ पंडित त्रैलोचन=त्रैलोचन शब्द श्लेषार्थक है अ-तीन आँख वाला (विशिष्ट), (ब) त्रैलोचन=शिव, (स) त्रैलौचन=ध्वन्यालोक लोचन के रचनाकार आचार्य आनंदवर्धन तथा उनकी तीन (त्रै) विशिष्ट कृतियाँ (ध्वन्यालोक लोचन, अभिनवभारती, काव्य कौतुक विवरण)। 'त्रै' शब्द आचार्य आनंदवर्धन के 'त्रिक' दर्शन का भी संकेतक है। लालदास ने 'पंडित त्रैलोचन' से आचार्य आनंदवर्धन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है। १८वीं शताब्दी पूर्व के कवि लालदास के समकालीन पंडितों में आचार्य आनंदवर्धन तथा उनके त्रयलोचन (तीन टीकाएँ एवं त्रिक दर्शन) वहुचर्चित थे।

५ अक्षर एक...मह कोई=गुरु के प्रति उदार दृष्टिकोण एवं गुरु निंदा के पातक की यह उक्ति चाणक्य नीति के निम्न श्लोक का अनुवाद प्रतीत होती है—

'एकाक्षर प्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते ।
श्वानयोनिशतं भुक्त्वा चाण्डालेष्वभिजायते ।।'

—चाणक्यनीति, १३/२०

६ विद्या अभय...महादान बषाना =विद्या, अभय, औषधि एवं धान्य दान को महादान के रूप में मान्यता प्रदान की है। सम्वर्त स्मृति में भी इन चार 'दानों को महादान कहा गया है—

इह कहि हाथ जोरि शिर नावा । गुरु तुम्ह विद्या बहुत पढ़ावा ।।
सेवक जानि कृपा अब कीजै । गुरु पूजा अपनी कछु लीजै ।।
तब गुरु पत्नी[७] बहुत सयानी । बोली मधुर मनोहर बानी ।।

दोहा— चौदह विद्या तुम पढ़े होह पुत्र बिस्तार ।
दक्षिणा हम कहँ दीजिये कनक चतुर्दश भार ।।२२७।।
चारि वेद षट अंग लौ लाल पुरान बषान ।
न्याय मिमांसा धर्म ए चौदह विद्या जान ।।२२८।।

चौ०— माग्यो[१] द्रव्य गुरु तहँ दाना । कहत हौं चौदह क्रोरि बषाना ।।

दोहा १२७ का शेष—

विद्यादानेन पुण्येन ब्रह्मलोके महीयते ।
सम्वर्त्त स्मृति/८६

भूता भय प्रदानेन सर्वकामावाप्नुयात् ।
दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव तथा भवेत ।।
सम्वर्त्त स्मृति/५३

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणांरोगशन्तये ।
दत्त्वास्याद्रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ।
सम्वर्त्त स्मृति/५८

अन्नदानात् पर दानं विद्यते न हि किञ्चन ।
अन्नाद् भूतानि जायन्ते जीवन्ति च संशय : ।
सम्वर्त्त स्मृति/८३

७ तब गुरु पत्नी···बानी = कालिदास के रघुवंश में आचार्य वरतंतु के द्वारा गुरु दक्षिणा के रूप में १४ कोटि स्वर्ण मुद्राएँ कौत्स से माँगे जाने का ही उल्लेख है । पहले तो गुरु ने शिष्य की निष्ठापूर्वक विद्या में अभिरुचि एवं भक्ति को ही दक्षिणा के रूप में स्वीकार किया परन्तु शिष्य के दक्षिणा देने के आग्रह पर कुपित होकर गुरु ने विद्याओं की संख्या के अनुसार १४ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को दक्षिणा के रूप में लाने का निर्देश किया । परन्तु लालदास ने अवधविलास में इस प्रसंग को किंचित परिवर्तित किया है । यहाँ पर कौत्स के दक्षिणा दान के आग्रह पर गुरुपत्नी कौत्स से १४ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दक्षिणा के रूप में लाने को कहती है । गुरुपत्नी द्वारा दक्षिणा निर्देश अधिक स्वाभाविक है । गुरु तो पहले से ही उदारमनः थे, जिन्होंने गुरु दक्षिणा के रूप में शिष्य की निष्ठा एवं भक्ति को ही पर्याप्त माना था ।

दोहा २२८ के अन्तर्गत—

१ माग्यो द्रव्य···क्रोरि बषाना = प्रस्तुत चौपाई व० प्रति में 'शिक्षा श्रान···वेद के बरना' के बाद आई है ।

छन्द[2] हैं चरन कल्प कर उक्त । जोतिष नैन श्रवन नैरुकतं[3] ॥
शिक्षा घ्रान है मुष ब्याकरना । ए षट अंग बेद के बरना ॥
पौरव धनुष माल असवारी । पढ़िवो चोरी चित्र जुवारो ॥
कोक रसायन गाइन बाजन । नाटक नृत्त कबित रथ साजन ॥
जंत्र मंत्र बाजीगर षेला । त्रिया चरित्र सुनारी मेला ॥
सभा चातुरी सगुन जनाई । विद्या अंक जोग तर्काई ॥
लेषक दूत जसूसी भीषा । सामुद्रिक लक्षन सब सीषा ॥
करब रसोई बिबिध बिधाना । और बहुत बिद्या कछु जाना ॥
तब उह बिप्र चल्यो तेहि काला । फिरे जहाँ तहँ बड़े भुवाला ॥
श्रुति स्मृति जहँ पढ़ै बनाई । देहिं[4] पिसानहि सेर अढ़ाई ॥
पुषरा बाग बतावहिं डेरा । ईंधन बीनि लेहु बहुतेरा ॥
बिप्र कहै भिक्षुक हम आही । देवै कछू लेब हम ताही ॥
दाता के गुन तीन बषाना । दे अरु लेइ न देइ सयाना ॥
दान देइ उत्तर नहिं देई । जग जस लेत तीनि गुण एई ॥
बड महाराज दान अस कीजै । चौदह भार कनक मोहिं दीजै ॥
तब तहँ सभा उठै अस बोली । बम्हना हमसों करत ठिठोली ॥
पुनि-पुनि बिप्र कहैं समुझाई । मैं नहिं राषब राम दुहाई ॥

---

२ छन्द है चरन...वेद के बरना=वेद को परमपुरुष के रूप में अधिष्ठित करते हुये उसके षष्टांग के रूप में छन्द को चरण, कल्प को कर, ज्योतिष को नेत्र, निरुक्ति को श्रवण, शिक्षा को घ्राण, व्याकरण को मुख कहा है । कवि के रूपक में पुरुष सूक्त का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

३ नैरुक्तं=निरुक्त का अर्थ है निर्वचन या 'व्युत्पत्ति'—वर्णागमो वर्णविपर्यश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ । धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् । वर्णागम, वर्ण विपर्यय, वर्ण विकास, वर्णनाश (वर्णलोप) और धातु का अर्थ विस्तार इन पांचों का शब्दों में निर्देशपूर्वक उल्लेख निरुक्त कहलाता है । निरुक्त में ध्वनि, पद और अर्थ तीनो का समाहार होता है ।

४ देहिं पिसानहि सेर अढ़ाई=प्राचीन समय में ढाई सेर पिसान देकर दान दक्षिणा एवं विद्वानों का सम्मान किया जाता था । मूल्य के स्थान पर अन्न (आटा आदि) का दान प्रचलित था । 'सुदामाचरित्र' में कविवर नरोत्तमदास ने भी 'पाव सेर चावल लिये बांध दुपटिया खूंट' से अन्न के उपहार का संकेत किया है । लालदास ने उच्च शिक्षा के मूल्य की अवमानना के सन्दर्भ में 'पिसान' देने का उल्लेख किया है ।

अधिक न लेब सहब नहिं टोटा । आछा देहु लेहु जिनि षोटा ।।
सुनि-सुनि बात हंसै सब कोई । बाउर आइ कि मसषर होई ।।
हाटहि बैठन देत न बनिया । पूरा तौलि कहत पुनि धुनिया ।।
ठकुराइनि छूछी घर माहीं । मासा भरि मुंदरी कस नाहीं ।।
घर-घर फिरत हाथ लीए दोना । मांगत भार चारि दस सोना ।।
यातैं और बौरहा को है । मांगत भीषि समुझि नहिं जो है ।।
जात हैं बहुत पढ़े बौराई । सो ब्रह्मना इह देषहु आई ।।
तब उह बाम्हन होइ षिसाना । और ठौर कहँ करै पयाना ।।
जहाँ जाइ तहँ उहइ पिसाना । जौ कछु कहइ तौ करहि दिबाना ।।
भले भले करि बरनैं सबहीं । लागै बिष मांगै कछु जबहीं ।।
तब लगि सर्ब गुना लय प्रानो । सुबुधि श्लाघ्य कृतज्ञ बषानो ।।
सूर[५] सुचरित कांति जुत कहिए । चतुर प्रबीन धर्मरत इइए ।।
कुशल कुलीन प्रतिष्ठा धारी । सब कहँ बल्लभ सो सुषकारी ।।
देहु कछू हम कहँ इह राषै । जब लगि बज्र समान न भाषै ।।
तातै कहुँ माँगत कछु कोई । हलुकहिं ते हलुका सो होई ।।

दोहा— काठ तै त्रिण त्रिण तैं रुई रुई तैं हलुका धूम ।
धूमहीं तैं जाचक हलुक जाचक हूँ तैं सूम ।।२२६।।

---

५ सूर सुचरित...सो सुषकारी =कवि ने द्वयार्थक शैली में महाराज रघु एवं महाकवि सूरदास के जीवन संदर्भों का संकेत दिया है। महाराज रघु के पक्ष में शूर (शूरवीर) सुचरित (सुचरित्रवान) कांतियुत (ओजस्वी) चतुर (चतुरंगणी सेना से युक्त) प्रवीन (प्रशासनिक प्रवीणता में दक्ष) धर्मरत (धर्मज्ञ) कुशल (कौशलयुक्त) कुलीन (क्षत्रिय कुलोद्भव) प्रतिष्ठाधारी (प्रभुत्वसंपन्न) बल्लभ (सर्वप्रिय) का संकेत किया है। महाकवि सूर के पक्ष में भी यही विशेषताएं श्लेष से व्यंजित की गई हैं। विशेषरूप से सूर (कवि सूरदास) सुचरित (कृष्ण चरित के रचयिता) कान्तिजुत (कान्तियुक्त काव्य) चतुर (चित्रण-चातुर्य) प्रवीन (वैदग्ध्यपूर्ण) धर्मरत (धार्मिक आख्यान परक प्रबन्ध रचना) कुशल (काव्य कौशल युक्त) कुलीन (बल्लभ कुल से सम्बद्ध) प्रतिष्ठाधारी (बल्लभ सम्प्रदाय में बल्लभ के पुत्र बिट्ठल द्वारा सूर को गद्दी का उत्तराधिकार तथा अष्टछाप के कवियों में सर्वोच्च प्रतिष्ठा) बल्लभ (बल्लभाचार्य की वल्लभ साधना) शब्द श्लेष की पुष्टि करते हैं तथा भागवत संप्रदाय के सूर का संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। लालदास ने भागवत संप्रदाय से प्रभावित होने के कारण सूर के प्रति प्रसंग के संकेत से श्रद्धा व्यक्त किया है।

घन काकैं स्थिर रह्यो जोबन[१] काकैं थीत ।
बनिता काकैं बस भई जोगी काकैं मीत ॥२३०॥

चौ०— बिप्र फिरेउ जहँ तहँ एहि भाँती । आपहु जरत जरावत छाती ॥
अधिक[१] अजुक्त दान जहँ माँगै । लोभी कृपन तिन्हहिं बिष लागै ॥
जस कीरति जहँ तहँ सुनि पावा । धावा बिप्र अजोध्या आवा ॥
पूजा करत रहे रघुराजा । दाता बड़े सूर सिरताजा ॥
बिप्रहि देषि नृपति किए आदर । उठे अर्घ लै करवा सादर ॥
राजा जज्ञ करै कबहीं जब । सर्वस्व दान देइ तबहीं तब ॥
रघु[२] कैं अज जनमें जब आई । राजा सर्बस्व दीन्ह लुटाई ॥
पावक क्षत्र रहे सिंघासन । पूजा के मृत्यकामय बासन ॥

दोहा २३० के अन्तर्गत—

१ जोवन काके थीत==यौवन किसका स्थिर रहता है ? यौवन की अनस्थिरता अनेक कवियों ने व्यंजित की है ।

(अ) गागर नहिं अँचत बने रहो भूमि वहि कूप
उमरन लागो लगत री थीरो जलबर रूप

'विनीत सतसई'—मुंशी फकीर वख्श 'विनीत'
(हस्त० चंददास शो० सं० प्रति)

(ब) यौवन दुपहर देह री थिर ह्वै कै न रहाय ।

(स) यहीं मैं शाप देता हूँ कि
यौवन आज से स्थिर नहीं होगा ।
न भैभव का कभी स्थैर्य होगा आज से भू पर ।

अभिशप्त शिला, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

दोहा २३१ के अन्तर्गत—

पाठान्तर :१ अधिक अजुक्त···विष लागै=के स्थान पर व० प्रति का पाठ इस प्रकार है—'आज अत्याधिक दान जहँ मांगै ।
लोभी कृपन तिन्हहिं बिष लागै ।'

२ रघु के···लुटाई=कालिदास के रघुवंश के अनुसार रघु ने विश्वजिति नामक यज्ञ में सर्वस्वदान दे डाला । महाकवि ने इसे 'निःशेष विश्राणित कोश जातम्' (without anything left) कहा है किन्तु लालदास के अवधविलास के अनुसार रघु ने अज के जन्म के अवसर पर सर्वस्व दान किया । केवल यज्ञ की समिधा की जलती हुयी अग्नि, छत्र, सिंहासन और पूजा के मृत्तिकामय पात्र के अवशेष होने का संकेत किया है । रघुवंश में भी 'मृण्मयंपात्रं' से इसी ओर संकेत किया गया है ।

देषे बिप्र हंसेउ मन माहीं । सकइ तौ आजु पिसानउ नाहीं ।।
धन्य बिधाता भल नहिं कीना । दाता कौं निर्धन करि दीना ।।
कृपन कठोर हृदय अभिमानी । तिन्ह कै धन संपति अधिकानी ।।
रूपवंत शुभ लक्षन नारी । पाए पुरुष कुरूप बिकारी ।।
सुंदर चतुर सुधर्मं प्रबीना । नारी तिन्हहिं करकशा दीना ।।
जिन्हके बाप सपूत सयाने । तिन्हके पूत कुपूत दिबाने ।।
नागबेलि कै फूल न कीना । सेंवर फूल किए फल हीना ।।
दुषित दरिद्री कर्मन्ह छोटे । पाए पूत बहुत अरु मोटे ।।
जिन्ह कैं सुष संपति बहु भोगी । तिन्ह कैं एक पूत सोइ रोगी ।।
पंडित बस्यो मूरषन्ह मांहीं । जहँ श्रोता तहँ वकता नाहीं ।।
रूपवंत कहँ कर्म न दीन्हा । जहाँ कर्म तहँ रूप मलीना ।।
बिधना[3] रचत झुके न संभारे । चंद कलंक सिंधु किए षारे ।।
कोइल स्याम मयुर पग षारा । कामधेनु पशु कमल कटारा[4] ।।

दोहा— लाल[5] बिधाता बापुरो कहि समुझावै कौन ।
नैनन्ह कों काजर दयो कानन्ह को दयो सोन ।।२३१।।

चौ०— जे देषत नीके सुष लागैं । ते नहिं रहै नैंन के आगैं ।।
जे न सुहाइ न देषत नीके । ते नित रहैं हजूरहि टीके ।।
सज्जन के बिछुरन करि दीए । जीवन मरन संग नहिं कीए ।।
साधु भले थोरे कहुँ आहीं । पापी बहुत करे जग माहीं ।।

---

३ बिधना रचत…कमल कटारा=विधाता की रचना पर व्यंग्य करते हुए कवि ने प्रकृतिजन्य विसंगतियों का संकेत किया है। कवि की इन उक्तियों में संस्कृत के सुभाषितों की प्रतिच्छाया दर्शनीय है—

"शशिनि खलु कलंकः कंटकं पद्मनाले
युवति कुच निपातः पक्वता केशजाले ।
जलधि जलमपेयं पंडिते निर्धनत्वं
वयसि धन विवेको निर्विवको विधाता ।"
—सुभाषित रत्न भांडागार, दैवाख्यान, श्लो० ८५

४ कमल कटारा=कमल नाल (मृणाल) का काँटेदार (चुभीला) होना। आचार्य दंडी ने भी इस ओर संकेत किया है—'कंटकः कमलानालेष्टिव दृष्टः। (दन्डी कृत अवन्ति सुन्दरी कथा, पृ० १८)

५ लाल विधाता…सोन—प्रस्तुत उक्ति में अभीष्ट एवं मूल्यवान वस्तु का दूरागत होना एवं अनाकांक्षित तथा निर्मूल्य वस्तु का सामीप्य व्यंग्य है।

और एक बिपरीति निहारी । बंधु बिरोध आन हितकारी ॥
इह कह बिप्र बैठ मन तोरी । तब राजा बोले कर जोरी ॥
पाइ लगौं का हँसेउ गुसांई । कहौ कृपा करि जो मन मांई ॥
कहै बिप्र जीवौ भूपाला । जब लगि चंद सूर बहु काला ॥
कहा कहूँ कहिबे की नाहीं । पूजा करहु कहब मन माहीं ॥
जोजन एक भेरि ध्वनि बाजै । द्वादश जोजन मेघ जु गाजै ॥
दान शब्द त्रैलोकिहि जाई । जस कीरति नहिं रहति लुकाई ॥
जीवत सोइ जाको जस जाना । जस कीरति बिनु मृतक समाना ॥
गुन जो दूत होइ जग धावै । दाता गुनी गुपत प्रगटावै ॥
केतकी कमल बासना पाई । आपुहिं चले भ्रमर तहँ जाई ॥
जहँ सरवर तहँ कमल प्रकासा । जहाँ कमल तहँ भ्रमर निवासा ॥
जहँ जलधर तहँ दामिनि राजै । जहँ बन होइ सिंघ तहँ भ्राजै ॥
जहँ रन होइ सूर तहँ होई । जहाँ सूर तहँ धीरज जोई ॥
जहाँ सत्य तहँ लक्ष्मी जानी । जहँ लक्ष्मी तहँ दान बषानी ॥
जहाँ दान तहँ माँगत आवै । जहँ मंगत तहँ कीरति गावै ॥

दोहा — पंडित[१] पतिवरता जती लाल नृपति धर्म धारि ।
जहाँ होइ तहँ जाइये दरश देषिए चारि ॥ २३२ ॥

चौ०— बोले नृप पूजा हम जाना । आवै अतिथि करव सनमाना ॥
पूजा कवन कवन ठकुराई । आवै अतिथि बिमुष जौं जाई ॥
जा घर अतिथि न पूजै आसा । पित्र देवता जाहिं निरासा ॥
देव पित्र जज्ञ श्राद्धहिं माहीं । अतिथि रूप धरि जात हैं षाहीं ॥
विद्या गुरु कुल गुरू बताये । तीरथ गुरु सत गुरू कहाये ॥
औरउ गुरू बहुत हैं भाषे । अभ्यागत सबके गुरु राषे ॥
साधन धर्म ग्रेह के एई । आवै अतिथि ताहि कछु देई ॥
काहू के घर जो कोउ आवै । बिमुष जाइ कछु दान न पावै ॥
ताकैं अपनो पाप लगाई । गृह को धर्म अतिथि लै जाई ॥
भूषे पंथ श्रमित कोउ आवै । धनि वैं गृह जहँ रहि सुष पावै ॥
उजरै षेत बिना रषवारे । तैसैं गृह बिनु अतिथि बिचारे ॥

दोहा २३२ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ पंडित पतिबरता..........देषिये चार = प्रस्तुत दोहा ब० प्रति में नहीं है ।

लक्ष्मी के अहिं चारि ही भ्राता । धर्म अग्नि नृप चोर बिष्याता ॥
जा घर धर्म मानिएं नाहीं । अग्नि चोर नृप छोरिहीं षाहीं ॥
आवै अतिथि बिष्नु करि लेषी । जाति रूप बिद्या नहिं देषी ॥
जल त्रण[१] भूमि बचन घर माहीं । इन्ह छत अतिथि बिमुष कस जाहीं ॥
और ठौर तो धन दियो चाहै । आदर माहिं लगत कहु काहै ॥
धर्म जुक्त नृप की सुनि बानी । बोलेउ बिप्र हर्ष हिय आनी ।

दोहा — भाव[२] संतुष्टा देवता पंडित तुष्टा वाक ।
लाल सती संतुष्ट सत भूषो भोजन पाक ॥ २३३ ॥

चौ० — कहै बिप्र गुरु पूजा आहो । चौदह भार कनक मोहिं चाही ॥
सुनि द्विज बचन बहुत सुष पावा । मन्त्री बेगि हँकारि बुलावा ॥
साधु बिप्र अरु पर उपकारी । पंडित गुनी दान अधिकारी ॥

दोहा— देश काल[१] श्रद्धा सहित सुबुधि पात्रहीं पाइ ।
लाल दान इह सात्विकी हरि निमित्त करि जाइ ॥ २३४ ॥
परचै प्रति उपकार लगि फलउ देस करि हेत ।
लाल दान सोइ राजसी दंभ बड़ाई देत ॥ २३५ ॥

दोहा— बिना देस बिनु काल बिधि बिना पात्र अज्ञान ।
कुत्सित अन आदर अशुचि लाल तामसी दान ॥२३६॥

चौ० — बैठै कहो देव कहु चाही । बिमुष गए लघुता बड आही ॥
इह भल काज बिलंब न कीजै । भार चारि दस कंचन दीजै ॥
मारत जीव बिलंब भलाई । बन्धु बिरोध त बिलंब लगाई ॥
पर त्रिय मिलत बिलंब बिशेषा । न्याव बिलंब लगाइब लेषा ॥
भोजन दान बिलंब न कीजै । आतुर होइ नाम हरि लीजे ॥
जो छिन जाइ बहुरि नहिं आवै । करै बिलंब सो फिरि पछितावै ॥
धर्म हेत जो कछु दीयो जाई । सो अपनें परलोकहि पाई ॥
धरे बटोरि भोग नहिं दाना । मधुमाँषी ज्यौं वृथा बिलाना ॥
राषैं कहा रहत जो नाहीं । आषरि अग्नि चोर लै जाहीं ॥
अथवा आप जाइ मरि सोई । अवसि बियोग होइ पै होई ॥

दोहा २३३ के अन्तर्गत—

१ जल त्रण.........कहु काहै = प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में नहीं है ।

२ नाक (व० प्रति) । 'भाव' के स्थान पर व० प्रति में 'नाक पाठ मिलता है ।

दोहा २३४ से २२६ तक के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ देशकाल...........तामसी दान = प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में अनुपलब्ध हैं , संभवत: प्रतिलिपिकार के अनवधान से छूट गया है ।

दोहा— जात[१] जगत जुग धाम धन जात फूल फल पात ।
लाल सबहि कवि कहि गये दयो दूरि नहि जात ।।२३७।।

चौ०— जाके जितै लिख्यो धन जेतो । खरचैं अनखरचैं रहैं तेतो ।।
यातैं देहु करहु जिनि वारा । कंचन याहि अठारह भारा ।।
कूपोदक धन दुग्धहि त्यागे । खरच होहिं तस बढ़हिं सभागे ।।
मंत्री सुनि आयसु शिर धारा । देषे जाइ भुवन भंडारा ।।
मूरष मंत्री मर्म न जानै । दाता के घर षोज षजानै ।।
संग्रह कहूँ कछू नहिं पावा । मंत्री मन मनहीं पछितावा ।।
केती बेर कहे समुझाई । धन सबही जिनि देहु लुटाई ।।
बड़े नाम सुनि सब कोउ आवै । कुशल तबहिं जबहीं कछु पावै ।।
एकहि दिवस एकहीं बारा । देत हैं सबहि लुटाइ भंडारा ।।
दाता और बहुत हम देषे । दान देत हैं लेषेहि लेषे ।।
बित अनुमान दान है दीजै । पूंजी राषि न निजहू कीजै ।।

दोहा— दाता[१] धन सूरा मरन जोगी जग जति नारि ।
चारि बात ऋण सम करैं लाल पुरुष ए चारि ।।२३८।।

चौ०— पूंछत है पुनि हमहिं बुलाई । अब हम सोन कहाँ ते ल्याई ।।
डांड बांध करि जौं कछु कीजै । जहाँ तहाँ,सों लै कछु दीजै ।।
तो पुनि ताहि छुवत हो नाहीं । मुनि ज्यों भए रहत घर माहीं ।।
ता पर नाम धरावत राजा । करत हैं साधु रिषिन्ह के काजा ।।
राज्य जोग धन जस ऊलेषा । द्वै द्वै होत कहूँ नहिं देषा ।।
बिचित भयो मंत्री गुनवंता । राषै धर्म आजु भगवंता ।।
बोले सभा सुनहु नृप राई । धन है एक ठौर अधिकाई ।।
उत्तर ओर कुबेर के डेरा । लेहु मंगाइ कनक बहुतेरा ।।
और ठौर के कर सब आए । वासों कबहुँ कछू नहिं पाए ।।
राजा तबहिं जु उठे रिसाई । धनुष बान कर लीन्ह चढ़ाई ।।
हम कहँ देत कहा भई लाजा । भयो कुबेर आपुहीं राजा ।।

दोहा २३७ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ जात जगत···नहिं जात = प्रस्तुत दोहा व० प्रति में अनुपलब्ध है ।

दोहा २३८ के अन्तर्गत—

१ पाठान्तर : दाता धन···पुरुष ए चारि = प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं है ।

मंत्र[1] जुक्त रथ रचि ततकाला । धरे शस्त्र बहु तेज बिशाला ॥
बोले[2] गुरू बशिष्ठ सुहाँतो । पठवहु बान बांधि लिषि पाती ॥
गुरु आयसु राजा शिर धारा । करिबै जोइ कछु बचन तुम्हारा ॥
कागद लिषहु लगाव न बारा । राषै को अस दण्ड हमारा ॥
चौदह भार कनक मन माना । देहु पठाइ न सोचव आना ॥
रघु आयसु मानव मन माहीं । बैठे रहहु कछू भय नाहीं ॥

दोहा— कागद अस एहि भाँति लिषि बाँधेउ बान बनाइ ।
षैंचेउ रघु अति ओज सों परु कुबेर पुर जाइ ॥२३६॥

चौ०—कंचन के घर महल अटारी । रहतु हैं जहाँ कुबेर भंडारी ।
कंचन कोट विकट छवि छाजै । कंचन आंगन बेदि बिराजै ॥
कंचन द्वार किवाँर कनक के । कंचन तोरन षंभ बनक के ॥
रंग रंग के रंगन्ह पागे । जगमगात नग मनि गन लागे ॥
कंचन मय सब पुर सुषदाई । अलकापुरी नाम छबि छाई ॥
जक्ष कन्या अति रूप अनंता । षेलति गावति फिरति बनंता ॥
नव निधि तहाँ रहत तन धारी । सब कुबेर के आज्ञाकारी ॥

दोहा— संष पद्म कक्षप मकर खर्ब औ नील मुकुन्द ।
ये नव निधि के नाम हैं महा पद्म अरु कुन्द ॥ २४० ॥

चौ० – पशु मानुष रथ की गमि नाहीं । देव बिमान चढ़े तहँ जाहीं ॥
की कोउ सिद्ध जोग बल होई । पहुँचै जाइ तहाँ उड़ि सोई ॥

दोहा २३८ के अन्तर्गत—

१ मंत्र जुक्त रथ······तेज बिशाला –प्रस्तुत पंक्ति में लालदास ने कुबेर पर आक्रमण के लिए निर्मित रथ को 'मंत्रजुक्त रथ' की संज्ञा दी है । कालिदास ने 'रघुवंश' में उक्त रथ को वशिष्ठ के मन्त्रों के जल से अभिमन्त्रित कहा है :—

वशिष्ठ मंत्रोक्षणा जात्प्रभावादुदन्वदाकाशमही धरेषु ।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने न हि तद्रथस्य ॥
रघुवंश, सर्ग ५, श्लोक २७

२ बोले गुरू······लिषि पाती=वशिष्ठ द्वारा रघु को कुबेर के पास बाण में पाती (पत्र) बाँधकर भेजने की प्रेरणा का प्रसंग सर्वथा नवीन है । प्राचीन काल के इतिहास एवं काव्य ग्रन्थों में बाण से पत्र भेजने के प्रसंग प्राप्त होते हैं । कवि ने यह नूतन प्रसंग रघु के शौर्य को चित्रित करने के लिये किया है ।

धन मद[१] भरे मदन मत माते । अमृत पान त्रिया रंग राते ।।
महा बिकट गिरि पर रहैं ऊंचै । जहँ कोइ असुर न बैरि पहूँचै ।।
राग रंग आनन्द सदा ही । पूरण सबहि नहीं कछु चाही ।।
बैठे जक्ष होइ आषारा । परेउ बान ता सभा मंझारा ।।

दोहा— जोजन[२] कोटि पचास भू ताके मध्य सुमेर ।
उत्तर दिसि है औध ते जा पर बसत कुबेर ।। २४१ ।।

चौ०— देषि कुबेर महा भय माना । को अस बली कौन को बाना ।।
देषहु बांचि कहा लिषि डारा । बैठे कहा होहु हुसियारा ।।
रुद्र बान किधौं इन्द्र चलावा । कै कछु रावन मोंहि जनावा ।।
और ठौर ऐसा नहि कोई । कै इह बान विष्नु का होई ।।
बांचे बोलि षोलि परवाना । ठाढ़े सभा सुनैं दै काना ।।
सूरज बंश अवध रघुराजा । ताकैं कछु कंचन सौं काजा ।।
चौदह भार बेगि पहुँचाई । नहि तर मार करब हम आई ।।
सुनि कुबेर मन माँहि बिचारै । रबि कुल सों कहो कौन बिगारै ।।
बैर प्रीति समता सों करिए । समरथ सो लघुता मन धरिए ।।
कहै कुबेर इह मन्त हमारा । कंचन लेहु करहु जिनि वारा ।।
दोषै जाइ जहाँ रबि बंशी । राजा बड़े आहि हरि अंशी ।।
लये बिमान कनक बहुतेरे । नव निधि आइ अवधपुर घेरे ।।
सब पुर पर जक्ष के गन हरषा । भई दंड दोइ कंचन बरषा ।।
कैउ कहैं बिनु बानहि डारें । पठये कनक कुबेर बिचारें ।।
जहँ तहं देषि कनक की रासी । हरष्यो बिप्र और पुरबासी ।।
राजा कहै लेहु द्विज जेता । तेरैं मन मानै कछु तेता ।।
होइ प्रसंन बिप्र कहैं ऐसा । श्रवन सुने देषे नृप तैसा ।।

दोहा २४१ के अन्तर्गत —

१ धन मद भरे——त्रिया रंग राते=प्रस्तुत पंक्ति के भाव साम्य के लिये राष्ट्र कवि पं० सोहन लाल द्विवेदी कृत 'वासवदत्ता' की उर्वशी शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—"जहाँ,

अंग लतिका में खिलते अरुण कपोल,
लोल भृंग पीते हैं आनन का मधु-पराग,
यौवन अक्षुण्ण जहाँ करता रंगरेलियाँ अठखेलियाँ निरन्तर है ।"

२ जोजन कोटि— —बसत कुबेर=प्रस्तुत दोहे में कुबेर की नगरी अलकापुरी की भौगोलिक स्थिति की ओर संकेत करते हुये इसे अयोध्या से उत्तर दिशा की ओर बताया है ।

दोहा— सतजुग[१] दान लै देहिं घर त्रेता देहिं बुलाइ ।
द्वापर मांगे देहि सब कलिजुग सेव कराइ ।। २४२ ।।

चौ०— होइहै अज इक पुत्र तुम्हारा । जस कीरति चलिहैं संसारा ।।
दई असीस बिप्र मनमाना । कीए प्रनाम नृपति सनमाना
आठ एक सय ऊँट[१] भरावा । लिए बिप्र गुरु के घर आवा ।।
दए भार चौदह गुरु पूजा । घर लै गयो रहेउ कछु दूजा ।।
नृप मन्दिर पर परेइ जु कंचन । तामहिं कछु राषेउ नहिं रंचन ।।
सो सब डारि दयो जेहि ठामा । तीरथ भयो सोनषर नामा ।।
तहँ की धूरि अबहु सुन धोवा । पावत सोन गुपत नहि गोवा ।।
दान पवित्र कथा मन भाई । लालदास रघु कीरति गाई ।।

दोहा— इह रघु कीरति जो सुनै लाल पढ़ै मन लाइ ।
ताकै घर संपति बढ़ै दारिद को दुष जाइ ।। २४३ ।।

इति श्री अवध विलासे : बुद्धि प्रकासे : सब गुन रासे : भक्त हुलासे : पाप विनासे : कृत लाल दासे : रघुदान कीरत्ति सोनषर तीरथ प्रकाश नाम पंचम विश्राम ।

दोहा २४२ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ सत जुग दान ——सेव कराई=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं है ।

दोहा २४३ के अन्तर्गत—

१ आठ एक सय ऊँट——कौत्स द्वारा रघु के यहाँ से एक सौ आठ ऊँटो में स्वर्ण मुद्रिकायें ले जाने का उल्लेख किया गया है । कालिदास के 'रघुवंश' में इस प्रसंग में ऊँट एवं घोड़ो द्वारा स्वर्ण मुद्रिकायें ले जाई जाती हैं तथा उनकी संख्या एक सौ आठ न कहकर कुल एक सौ—'अथोष्ट्र वामीशत वाहितार्थं' कही गई है ।

:—: अथ षष्ट विश्राम :—:

चौ०— अब दसरथ की कथा बषानों | राम जन्म को आगम आनों ||
अज के सुत भए दसरथ राजा | सात समुद लगि तेज बिराजा ||
ताकै त्रिय मुषि[1] तीन बिचित्रा | कौशल्या कैकेई सुमित्रा ||
पति पतनी नित रहैं उदासा | बिन संतान कवन घर बासा ||
बरष हजार गये नव जबहीं | चिंता बहुत करी नृप तबहीं ||
मन्त्री महा सुमंत सनेही | राजा दुषित देषि कहि एही ||
एक बेर सनकादिक चारी | तिन्ह सों बात सुनो उपकारी ||
पुत्र इष्ट इक्रु जज्ञ कहावै | ताहि करै सो पुत्रहिं पावै ||
इहइ बात गुरु कहँ कहि लीजे | मुनि कछु कहै सोई तस कीजे ||
राजा सुनि तबहीं सुष पावा | रथ साजे सारथी बुलावा ||
श्वेत अश्व रथ छत्र सुबाना | चंदन बसन श्वेत पहिराना ||
कौशल्या कैकेई सुमित्रा | रानी संग लई सुपवित्रा ||
गंगा तीर तपोवन माहीं | गये गुरू गृह जहँ भय नाहीं ||
मुनि तप तेज जीव सब डरहीं | आठन बर्ग परसपर लरहीं ||
गरुड नाग अरु मूंस मंजारा | मैंढ़ा स्वान औ सिंह सुंडारा[2] ||

दोहा २४४ के अन्तर्गत—

१ त्रिय मुष=तीन मुख्य । वाल्मीकि रामायण तथा अन्य राम-कथाओं की भाँति लालदास ने भी दशरथ की तीन मुख्य पटरानियों का संकेत किया है । कतिपय जैन तथा बौद्ध राम कथाओं में पटरानियों की संख्या (४) चार तक बढ़ा दी गई है । माधौदास के उड़िया विचित्र रामायण में पटरानियों की संख्या २१ बताई गई है । संत लालदास ने तीन मुख्य (त्रिय मुख) कहकर दशरथ की अन्य रानियों के होने का संकेत किया । संभवतः कवि का यह संकेत (पौमचर्यम) (२८, ७१), कृत्तिवास रामायण (१-२८) सारलादास के महाभारत तथा दशरथ जातक में वर्णित अनेक रानियों की ओर संकेत करता है ।

२ सुंडारा=सुड़कने वाला । नाक के द्वारा सुड़कने, पीने, उदरस्थ करने वाला=हाथी । कवि ने सुड़कने क्रिया से सुड़कने वाला अर्थ में सुंडारा (संज्ञा) की रचना की है । यह शब्द कवि के द्वारा गढा हुआ सर्वथा नवीन है । गोविंद प्रसाद जी साँवल ने इसे सुंडी (सूंड) से निर्गत होने का संकेत किया है । लोक जीवन में हाथी के विशिष्ट अंग सूंड को ही आधार मानकर हाथी को 'सूंड' भी कहते है । सूंड अंग को हाथी की विशेष पहचान मान कर ही सुंडो और सुंडारा शब्द गढ़े गये प्रतीत होते हैं । सूंडाल (शुंडाल) ही सुंडारा (हाथी) के अर्थ में प्रयुक्त है ।

बन उपबन घन लगत सुहाए | फूले फले देषि मन भाए ||
बन पुर लग जे बाग लगाए | उपबनं जे जंगल घन छाए ||
चंदन चंपक चारू अनारा | केरि कदंब औ अंब अपारा ||
जाही जुही मालती बेला | फूल गुलाब केबरा रेला ||
सुन्दर बेदी बनी बिशाला | तापर तुलसी बृंद रसाला ||
आछे गृह हरि मंदिर जैसे | सोभित देव लोक जनु तैसे ||
जज्ञ शाल मृग त्वचा कुशासन | सदा रहत तहँ होम हुताशन ||
त्रिबिध पवन सुष बहत निरंतर | शीतल मंद सुगंध सुषंकर ||
सदा बसंत रहत जा ठौरा | बोलत चातक कोकिल मोरा ||
पढ़त बेद बालक मृदुबानी | मुनि मन मगन भए नृप रानी ||
बैठे पढ़ति घेरि मुनि बाला[३] | मनु शशि चहुँ दिस उडगन माला ||
श्रुति स्मृति ब्याकरन पुकारा | बिप्र पढ़त दश कर्म सयाना ||
अत्र मंत्र आयुध के भेदा | क्षत्री पढ़त धनुष के वेदा ||
जे दस कर्म[४] बेद विधि गाए | तिन्ह के नाम सुनन्हु मन भाए ||
आदिहिं कर्म पुंसवन सोई | जब रजस्वला प्रथम त्रिय होई ||
पुनि इक प्रथमहिं मासक लीजै | गर्भाधान रहै तब कीजै ||
पंचम मास कहै इकु दूजा | अष्टम मासक होत है पूजा ||
जनमहि होत करत कछु लहिए | जन्म कर्म ताही सो कहिए ||
पुनि इकु नामकरन है कर्मा | अन्न प्रासन्न षष्टिका धर्मा ||
मुंडन चूड़ा कर्म कहावै | है ब्रतबंध जनेऊ पावै ||
होइ बिवाह कर्म इकु जाना | ए दस कर्म हैं बेद बषाना ||
और एक मत है कहुँ ऐसा | षोडस कर्म[५] करत कहे जैसा ||

---

३ मुनि बाला—मुनियों की वालाएं। कवि ने प्रस्तुत प्रसंग में ऋषि कुल का वर्णन करते हुये वालकों के अतिरिक्त वालिकाओं को भी गुरुकुल में शिक्षारत चित्रित किया है। कवि ने सह शिक्षा की ओर संकेत किया है।

४ जे दस कर्म…बेद बषान—दस संस्कारों का उल्लेख किया है। इनके नाम क्रमशः पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जन्म, कर्म (जात कर्म), नामकरण, निष्क्रमण, अन्न प्राशन, चूड़ा कर्म, केशांत, व्रत बंध, विबाह। 'विष्णुस्मृति' में दस संस्कारों का वर्णन विस्तार से किया गया है।

५ षोडस कर्म—कवि ने एक अन्य मत का उल्लेख करते हुये षोडस कर्म बताये हैं। दस संस्कारों के अतिरिक्त चार संस्कार गर्भाधान, समावर्तन, कर्ण-वेध, विद्यारंभ, वेदारंभ तथा अन्त्येष्टि बताये गये हैं।

जाके संस्कार दस होई। नाम द्विजन्मा कहिए सोई॥
जनमत[6] बेर सूद्र सब कोई। संस्कार तें ब्राह्मन होई॥
क्षत्री बैश्य नाम ए धरना। सो तो संस्कार करि बरना॥
ए दस कर्म बिप्र सों पाई। बिनु दस कर्म नहीं ब्रह्मनाई॥
विद्याधेयन[7] बिप्र कहँ पढ़ना। ए दस कर्म प्रथमहीं पढना॥
सूतक पातक सौचाचारा। सुद्धा सुद्ध मिताक्षर धारा॥

दोहा— मनुष[8] जन्म भए का भयो लाल पढ़े धन धाम।
संस्कार ताके सुफल सुमिरै सीता राम॥ २४४॥

चौ०— चारि अवस्था कहे बषानीं। बाल किशोर जुबा बृध जानी॥
बालक ब्रह्मचारि ब्रत साधै। विद्याध्येन गुरू आराधै॥
होइ किशोर करै कुल धर्मा। धन उपजाइ धरै मन धर्मा॥
बालक बारह वर्ष रहावै[1]। सोरह वर्ष किशोर कहावै॥
पुनि नव गुन तन धारक होई। तिन्ह के नाम कहौं सुनि सोई॥

दोहा— रिजु[2] तपस्वि संतुष्ट सम दाता दीनदयाल।
जित इन्द्री औ सत्यता ए नव गुण कहे लाल॥ २४५॥

चौ— जुबा भए ब्याहै बर नारी। सुत हित लागि होइ घर बारी॥
देव अतिथि ब्रत पित्र स्वजाती। कुल कुटुंब पोषै बहु भाँती॥
वृद्ध भए गृह तजि बनबासी। बानप्रस्थ होइ पुनि संन्यासी॥
द्वादस बाक्य बिवेक बिचारै। आतम ज्ञान ब्रम्ह उर धारै॥
श्रुति स्मृति इह भाँति बिवेका। पढ़त हैं शास्त्र सयान अनेका॥

---

६ जनमत बेर...होई= प्रस्तुत पंक्ति में 'जन्मना जायतो सूद्रो संस्कारात द्विज उच्यते '(मनु स्मृति)' का प्रभाव परिलक्षित होता हैं।

७ विध्याधेयन=विद्याध्ययन

८ मनुष-जन्म...सीता राम= कवि ने मनुष्य जीवन की सार्थकता के लिये भक्ति को अनिवार्यता प्रदान करते हुये कर्मकांड को मात्र करणीय कहा है।

दोहा २४५ के अन्तर्गत--

१ रहावै='रहावै' क्रिया की रचना कवि का नूतन प्रयोग है। 'रहावै' रहता है के अर्थ में गढा गया है जो अनगढ प्रयोग है तथा रहता है क्रिया का विकृत रूप है।

२ रिजु तपस्वी.........कहे लाल=तुलसी के मानस में 'नवगुण परम पुनीत तुम्हारे' (वालकांड) कहकर नौ गुणों का संकेत किया गया हैं। लालदास ने इन गुणों का नामोल्लेख भी किया है।

न्याय मिमांसा सांख्य वेदांता | पातंजल वैशेष सिधांता ॥
ए षट शास्त्र नाम है जाना | होत अनेक भाँति व्याख्याना ॥
आगम पढ़न उपास्य बिचक्षन | नारदादि[1] मत भक्ति सुलक्षन ॥
शिक्षा बैद्यक तांत्रिक मंत्रा | कीलक[2] अर्गल रिषि देव जंत्रा ॥
जपै पुनि हे चरन छंद अरु ध्याना | आसन भूत सुद्धि करि जाना ॥
मात्रिका सिद्ध साध्य अरि मित्रा | पुनि सु सिद्ध होइ होम पवित्रा ॥
प्रान प्रतिष्ठा न्यासहिं करना | मुद्रा प्राणायाम जो वरना ॥
बीज शक्ति गायत्री देवा | संध्या करै उपासन एवा[3] ॥
इह आगम विधि मूल बषानी | गुरु सों सोषि लेव सब जानी ॥
राजा देषि [illegible] अनुरागे | करे प्रणाम चरण जाइ लागे ॥
मुनि वहु भाँति आसिषा दीनें | मिले उठाइ अंक भरि लीनें ॥
पूछे गुरू कुशल है राजा | इहाँ आइ कहु कौने काजा ॥
कृपा तुम्हार कुशल सब बाता | बिनु संतान कवन कुशलाता ॥
प्रथमहिं[4] एक दीन्ह दइ कन्या | नाम शांता लक्षण धन्या ॥
लोमपाद कैं पुत्र न कोई | सुत की ठौर माँगि लइ सोई ॥
कौंन जन्म का पाप कमाए | जातैं एकहू पुत्र न पाए ॥
बिन दीपक ज्यों गृह अँधियारा | धर्म बिना निर्फल औतारा ॥
बिन हितु[5] लागत जस दिशि सूनो | गावत कण्ठ बिना तस गूनो ॥

दोहा २४६ के अन्तर्गत—

१ नारदादि......सुलक्षन=कवि का तात्पर्य 'नारद भक्ति सूत्र' में नारद द्वारा वर्णित भक्ति के सूत्रों से हैं।

२ कीलक......जंत्रा=प्रत्येक मंत्र में कीलक, अर्गला, ऋषि, देवता और यंत्र होते हैं।

३ एवा=एव (निश्चय अर्थात् अनिवार्य)

४ प्रथमहि......सोई=लालदास के अनुसार शान्ता दशरथ की ही पुत्री थी, जिसे दशरथ ने अपने निःसन्तान सखा लोमपाद को प्रदान किया था। वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों के अनुसार शान्ता दशरथ की ही पुत्री थीं।

५ हितू=सूर्य। सूर्य के अर्थ में 'हितू' की रचना कवि की मौलिक शब्द संरचना है। सूर्य के पर्यायवाची शब्दो में 'मित्र' शब्द है। कवि ने 'मित्र' के पर्याय के रूप में 'हितू' शब्द की रचना की और 'सूर्य' अर्थ में प्रयुक्त किया 'हितू' की रचना 'मित्र' से की गई है, यह संकेत साँवल जी (श्री गोविंद प्रसाद सौंवल) से प्राप्त हुआ।

द्रव्य भूमि सब राज समाजा । पुत्र बिना कहु कौनें काजा ॥
मंत्र बिना जैसे ज्ञान न होई । बेद बिना जैसे बिप्र न कोई ॥
जोग बिना जैसे सिद्ध न आवै । पुत्र बिना गति स्वर्ग न पावै ॥
ज्ञान बिना तैसें मुक्ति न देषा । भक्ति बिना जैसे ज्ञान अलेषा ॥
नाम बिना तैसे निष्फल बानी । पुत्र[६] बिना परलोक न पानी ॥
जोति बिना जैसे नैंन निहारै । नाव बिना को पार उतारै ॥
दान बिना जस कीरति हीना । राति बिना जैसे चांद मलीना ॥
भोग त्याग बिनु संपति जैसा । पुत्र बिना गृह बासी तैसा ॥
निष्फल जज्ञ होत बिनु दक्षिना । सोहत नारि नहीं बिनु लक्षना ॥
जैसे ताल कुवाँ बिनु पानी । बालक बिनु तैसें घर जानी ॥
गज रथ नर बहु सैन्य समाजा । कौन काज जौं होइ न राजा ॥
बिप्र दरस निहफल बिनु टीका । लौन बिना नहिं सालन नीका ॥
फूल गंध बिनु तरु फल हीना । देवालय जस देव बिहीना ॥
बिनु केवट नौका बहि जाई । पुत्र बिना गृह जाइ नसाई ।
बिनु पूंजी नहि हाट पसारा । उजरै षेत बिना रषवारा ॥
जैसे जोग बिना मन बंधा । पुत्र बिना तैसे घर धंधा ॥
जैसे रूपवंत कोउ होई । कुष्ट भए त्यागै सब कोई ॥
कुष्टी एक जन्म दुष पावैं । पित्र कोटि बिनु पुत्र नसावै[७] ॥
देषहु और अभाग्य हमारा । श्रापहु नाहिन लगत बिकारा ॥

---

६ पुत्र बिना परलोक न पानी=पुत्र से परलोक की प्राप्ति होती है । पुत्र न होने पर प्राणी पुम् नामक नरक में जाता है । पुम् नामक नरक से रक्षा करने वाले को पुत्र कहते हैं—'पुम्नामनरकात त्रायते इति पुत्रः' कवि ने 'पुत्र बिना परलोक' में इसी ओर संकेत किया है । पं० भवानीदत्त व्यास, ने इस पंक्ति में कवि के शास्त्रीय सामर्थ्य का संकेत किया है ।

७ बिन दीपक······पुत्र नसावै=कवि ने पुत्रेष्टि यज्ञ के प्रसंग की पुष्टि के लिये पुत्र के बिना जीवन की निरर्थकता का विनोक्ति अलंकार की शृंखला के द्वारा अत्यन्त लोकग्राही चित्रण किया है । रघुवंश (प्रथमसर्ग के श्लोक ६६ से ६८ तक) में पुत्र के अभाव की पीड़ा एवं पितृ तर्पण के बिना पितृों की असंतुष्टि का उल्लेख किया गया है । लालदास ने इस प्रसंग में निपूतो होने की पीड़ा को कौटुम्बिक एवं लोक प्रचलित तर्कों द्वारा पल्लवित किया है तथा प्रसंग को रसपुष्टि प्रदान की है ।

श्रवन[८] मरन दयो अंधो अंधा । पुत्र बियोग मरिब भयो धंधा ॥
राजा पुनि पग बंदन कीना । दीन बचन कहि बदन मलीना ॥
तुमहिं पुरोहित गुरू हमारे । हम सेवक जजमान तुम्हारे ॥
दान पुन्य ब्रत है कछु जैसा । कहौ पुत्र हित कीजै तैसा ॥

दोहा— धर्म नहिन उपकार सम हित गुरु सम नहिं थाप ।
सुष[९] न लाल संतोष सम नहीं झूठ सम पाप ॥ २४६ ॥

चौ०— सुनि बशिष्ठ मुनि आगम ज्ञानी | भले भले कहि बोले बानी ॥
जाहु प्रयाग लै बचन हमारा | लोम पाद[१] जहँ मित्र तुम्हारा ॥
नाम बिभांड महामुनि होई | सोम वंश के गुरू हैं सोई ॥
ताकौं पुत्र महा तपकारो | हैं रिषि शृंगि नाम अस धारी ॥
मृगी[२] मुनि बीरज तृन संग ग्रासा | बिधि बसात जाइ गर्भ प्रकासा ॥
मनुष्य देह सब सुन्दर अंगा | शिर पर एक भयो लघु श्रिंगा ॥
मुनि बिभांड बन महि कहुँ पाए | जतन कीए रिषि श्रिंग कहाए ॥
तासों जज्ञ कराउ बुलाई | पैहो चारि पुत्र सुषदाई ॥
हमहूँ कछुक नेम है धारा | पूरन होइ नेम बिस्तारा ॥
तावत तुम रिषि आउ लिवाई | मैं हूँ जज्ञ देषि वै आई ॥
राजा सुनि मन महि सुष पावा | मुनि सति बचन जानि शिर नावा ॥

---

८ श्रवन मरन दयो अंधो अंधा=श्रवण के पिता एवं माता द्वारा दशरथ को श्राप दिया जाना । 'रामायण' २,६३-४ में अंध-मुनि-पुत्रवध सम्बन्धी कथा का विवरण प्राप्त होता है । रघुवंश (नवम् सर्ग) में भी यह कथा मिलती है ।

९ सुखन लाल संतोष सम=संतोष के समान अन्य कोई सुख नहीं है तथा झूठ के समान कोई पाप नहीं है । कवि की इस उक्ति में संस्कृत की निम्न नीति का प्रभाव स्पष्ट है—'संतोषः परमंसुखम्, तथा नानृतात् पातकं परम्' ।

दोहा २४७ के अन्तर्गत—

१ लोमपाद जहँ मित्र तुम्हारा=लालदास ने लोमपाद को दशरथ का मित्र कहा है । महाभारत (३,११०,१९) में भी लोमपाद को 'सखा दशरथस्य' कहा गया है ।

२ मृगी मुनि ...... प्रकासा=सृष्टि की उत्पत्ति प्रायः अपत्य मार्ग से होती है और सामान्य रूप से जीव धारण की यही प्रक्रिया विज्ञान में स्वीकृत है । किन्तु श्रंगी ऋषि की उत्पत्ति भोजन विधि द्वारा गर्भाशय के अतिरिक्त होती है जो वैज्ञानिक अनुसन्धान का विषय है ।

दोहा— सूर करै पश्चिम उदय मेरु दक्षिन दिस धाइ।
अग्नि होइ जल जल अगिन मुनि के बोल न जाइ ॥ २४७ ॥

चौ०— रानी गई जहाँ गुरुबाइंनि। पूछी कुशल लगी जाइ पांइनि ॥
दीन्ह असीस सोहाग सोहाती। पावहु पुत्र होह अहिवाती ॥
आयसु पाइ चले नृप रानी। बन तपस्वी देषत मनमानी ॥
सरजू निकट बिटप तर बसहीं। जप तप करि कर तन मन कसही ॥
गनपति[१] रवि शिव सक्तिहिं जपहीं। पंचा अग्नि आदि तप तपहीं ॥
कहुँ इक चरन बाँधि ऊपरहीं। धूरम पान करत सिर तरहीं ॥
कहुँ इक जटा जूथ नष बाढ़े। कहुँ इक एक पाइ रहैं ठाढ़े ॥
कहुँ इक नग्न मौन ब्रतधारी। कहुँ इक ऊरध बाहु कपारी ॥
कहुँ इक मेघाडंबर छाए। कहुँ इक जल महि बैठि रहाए ॥
कछु इक तपत बालुका लोटे। केउ इक डूब रंग रहे घोटे ॥
केउ इक सूरज अभिमुष जोवैं। केउ इक राति द्योस नहिं सोवैं ॥
केउ इक तपा मास उपवासी। केउ इक नीर पान पर नासी ॥
केउ इक कंद मूल फल षोजी। केउ इक द्वितिय तितिय दिन भोजी ॥
केउ इक विप्र रहैं कन बीना। केउ इक दंत उलूखल कीना ॥
कहुँ कि अजाचन जाचत काही। कहुँकि शुक्ल बृति द्विज घर आही ॥
केउ[२] इक कृछहि करत चंद्रायन। केउ इक पवन भषत मन भायन ॥

दोहा २४८ के अन्तर्गत—

१ गनपति...रहे घोटे=प्रस्तुत पंक्तियों में विभिन्न साधना प्रणालियों का संकेत किया गया है, जो कवि के विस्तृत अध्ययन, लोक भ्रमण, देशांतर ज्ञान आदि का सूचक है। यहाँ पर गाणपत्य मत, सौर मत, शैव, शाक्त मत अग्निहोत्र मत का उल्लेख किया गया है। साथ ही तपस्या की विभिन्न प्रणालियों एवं उनके भेदों प्रभेदों का दिग्दर्शन कराया गया है। साधना और उपासना की इतनी विविध पद्धतियाँ एक स्थान या ग्रन्थ में दुर्लभ हैं।

२ केउ इक कुछहि करत चन्द्रायन=चन्द की कला के क्रम से ग्रास की अभिवृद्धि चन्द्र की कला के क्षीण होने के क्रम से ग्रास को घटाना। कृच्छ चन्द्रायन व्रत पूर्णमासी में प्रातः काल से उपवास करके प्रतिदिन एक ग्रास बढ़ाता हुआ पूर्णिमा के दिन पन्द्रह ग्रास खाकर फिर एक एक का अपचय (कम) करे। 'चान्द्रायण व्रत विधि वर्णनम्' 'गौतम स्मृति' में इस व्रत की विधि का सविस्तार वर्णन किया गया है। 'कृच्छ चान्द्रायण व्रत में वपन व्रत का उल्लेख प्राप्त होता है—

'अथात श्चान्द्रायणं तस्यो व्रतो विधिः कृच्छे वपनं व्रतञ्चरेत्'

बीस स्मृतियाँ, प्रथमखंड (गौतम स्मृति, पृ० २०५) आचार्य श्रीराम शर्मा

केउ कहुँ श्राद्ध करहिं जल तीरा | पित्र भक्त अति ही मत धीरा ||
पिंडा भरहिं करहिं बिधि कर्मा | होंम नेम गोदान सुधर्मा ||
श्राद्ध सुनहु जे नित्य बषाने | सावधान होइ करहिं सयाने ||
माता पिता निमित जे दोई | श्राद्ध क्षयाह कहावै सोई ||
श्राद्ध दोइ नव अन्न कराहीं | चारि जुगादि दिवस के माहीं ||
कृत कार्तिक नौमी सित एता | त्रतीया शुक्ल वैशाष जु त्रेता ||
द्वापर माघ अमावस बरना | कलि कृष्ना तेरसि नभ करना ||
चौदह श्राद्ध पित्र पक्ष केरे | पुनि मनु आदि चारि दस जे रे ||
द्वादश जे संक्रांति बषानी | पूर्णिमा और अमावस जानी ||

दोहा— श्राद्ध बहत्तरि नित्य ए षट नैमित्तिक श्राह ।
जन्म जनेऊ मूंडने तीरथ ग्रहन बिवाह || २४८ ||
बिप्र दिवस दस सुद्ध होइ क्षत्री द्वादस बुद्ध ।
वैश्य पंच दस दिवस महँ शूद्र तीसएं सुद्ध || २४९ ||
मातृ पितृ नानी आजी सासु ससुर महिमान ।
लाल वैष्नव होइ जोउ धरै सम गोत्रान || २५० ||

चौ०—केउ[१] इक निराहार नहिं षाहीं | केउ इक दुग्ध पान रहि जाहीं ||
केउ इक पंचहि ग्रास अहारा | केउ इक शाक पत्र मुष धारा ||
केउ इक गोमुष ही कछु षाहीं | केउ कर पात्रहि रहत तहाँ हीं ||
केउ मुनि बलकल पहिरत भारी | केउ मृग त्वचा बघंबर धारी ||

दोहा २४९ का शेष

'आपस्तम्ब स्मृति' में कृच्छ चान्द्रायण को विपत्ति ग्रस्तता में प्रायश्चित का साधन बताया गया है—

अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पन्तु दापयेत ।
अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छमेव विधीयते ।।'

'सम्वर्त्त स्मृति' में "चान्द्रायणन्तु सर्वेषां पापनां पावनं परम् कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव च ।" कहकर चान्द्रायण को समस्त पाप दोषों से पवित्र करने वाला, परमपद प्रदान करने वाला व्रत कहा गया है ।

दोहा २५१ के अन्तर्गत—

१ केउ इक——तहाँ हीं=आहार के आधार पर विभिन्न साधना प्रणालियों एवं साधकों का उल्लेख करते हुये निराहारी, पयहारी, पंचग्रासी, शाकाहारी गोग्रासभोजी, करपात्री आदि का संकेत किया गया है ।

केउ इक आसन करि चौरासी | साधैं जोग गुहा होइ बासी ||
केउ इक प्राणायामहि साधैं | कुंभक करहिं पवन कौं बांधैं ||
केउ इक बज्र बांधि कौपीना | जीते काम किए तन छीना ||
कहुँ इक बैठि बिरक्त विराजैं | ब्रह्म ज्ञान चरचा करि गाजैं ||
नित्यानित्य बिचार अनेका | ब्रहम जीव के करहिं बिबेका ||
तत पद[2] त्वं पद असि पद सोधा | उत्तर प्रश्न जू करहिं प्रबाधा ||
त्वं पद जीव है तत पद ईश्वर | असि पद ब्रहम कहत सब धीश्वर ||
या बिधि ब्रह्म बाद नित ठानैं | सदा ज्ञान मत रहै सयानैं ||
अमानि[3] अदंभ अहिंसा क्षांती | सौचाचार्य उपासन दांती ||
स्थैर्य आर्जव आत्म निग्रह | इंदियार्थ बिराग अपरिग्रह ||
जन्म मरण रोगा अनुदरसन | अन अहंकार बिषय नहिं परसन ||
पुत्र दार गृह आदि असक्तिहि | इष्ट अनिष्ट समान असक्तिहि ||
रहै बिबिक्त जन भीर निवारै | नित अध्यातम ज्ञान बिचारै ||
इहै ज्ञान श्री कृष्न है राषा | भारत महिं अर्जुन सों भाषा ||

---

२ तत पद त्वं पद असि पद सोधा=वैदिक महावाक्य 'तत्वमसि' का विवेचन किया गया है।

३ अमानि अदंभ...... अर्जुन सो भाषा=प्रस्तुत पंक्तियाँ श्रीमद् भागवतगीता के अध्याय १३, श्लोक ७ से ११ तक के भावों का अविकल अनुवाद है। साम्य के लिये 'श्रीमद्गवगीता' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं--

अमानित्वमदाम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्
आचार्यो पासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्म मृत्यु जराव्याधि दुःख दोषानुदर्शनम् ।।
आसक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदार गृहादिषु ।
नित्यं च समचित्त त्वमिष्टानिष्टोप पत्तिषु ।।
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी
विविक्तदेश सेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।
अध्यात्मज्ञान नित्यत्वं तत्वज्ञानार्थ दर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।।

द्वापर ही कछु नहिं समुझाए | भारत[४] व्यास अनादि हैं गाए ||
जो कछु मत भारत महिं नाही | सो कहुँ नहीं जानु मन माहीं ||
पर्व अठारह भारत आही | तिन्ह के नाम कहों सुनु ताहीं ||
आदि पर्व इक सभा बषाना | पुनि बन पर्व बिराटहिं जाना ||
एक उद्योग पर्व है राषा | भीषम पर्व द्रोण पुनि भाषा ||
कर्ण पर्व इक शल्य है बरना | सौतिक पर्व स्त्री दुष हरना ||
शाँति पर्व अनुशासन पर्वा | इक अश्वमेध पर्व गुन सर्वा ||
आश्रमवास पर्व इक होई | मौसल पर्व कहत सब कोई ||
महाप्रस्थानी पर्व है एका | स्वर्गारोहण पर्व बिबेका ||
ए अष्टादस पर्व कहाए | केवल व्यासदेव मए गाए ||
कहुँ इक कथा पुराण बषाना । श्रोता करत श्रवन मधुपाना ।।

दोहा— प्रथम श्रवन पुनि मनन करि तब निध्यासन बात ।
जिज्ञासू श्रद्धा सहित लाल होत साक्षात ।।२५१।।

चौ०— कहुँ इक पाप पुन्य होहिं बातै । स्वर्ग नर्क नर पावत जावैं ।।
भारत माँहि कथा इह राषा । नासिकेत सब रिषिन्ह सों भाषा ।।
श्रापहि दीन्ह पिता दुष पाई । स्वर्ग नर्क तब देषे जाई ।।
बापी कूप तडाग निधाना । बाग पोषरा देव स्थाना ।।
धेन भूमि ग्रह गज गउ कन्या । कनक रतन कपरा देइ धन्या ।।
क्षत्र पान हौ कंबल घोरा । दासी सेज रथहि वृष जोरा ।।
तुला दान आभरन अनेका । दधि घृत गुण पय पान बिबेका ।।
जीव दान बिद्या तिल दाना । अन्न दान महादान बषाना ।।
दीन गरीब अनाथिन देई । उपकारी होइ जग जस लेई ।।
करै न काहू आस निरासा । सो सुष जाइ करै कैलासा ।।
भइनें बहिन सुवासिन मानैं । तिन्ह के दान मान करि जानैं ।।

---

४ भारत व्यास अनादि है गाए—महर्षि व्यास द्वारा 'महाभारत' का गायन । 'महाभारत' को इतिहास, संस्कृति एवं विविध विषयों का विश्वकोष कहा कहा जाता है । 'महाभारत' की प्राचीन टीकाएँ एवं उसके हिन्दी अनुवाद सहस्रों की संख्या में उपलब्ध होते है । काशीनरेश ने १७ वीं शताब्दी में सम्पूर्ण महाभारत का हिन्दी अनुवाद कराया था । सिघन कलाँ के एक प्राचीन मंदिर से संत चंद्रमादास जी के द्वारा मुझे महाभारत के १८ अध्यायों का सम्पूर्ण हिन्दी अनुवाद हस्तलेखों के रूप में प्राप्त हुआ, जो सम्प्रति चंददास शोध संस्थान के हस्तलेखों के भंडार में सुरक्षित है ।

गऊ बेद अरु बंदि छिड़ावै । सो सुरलोक जाइ सुष पावै ।।
कुआँ[१] तलाब देवालय फूटे । पुस्तक नाव पंथ पुल टूटे ।।
जीरन होइ सँभारि सुधारै । सो नर स्वर्ग सुषेन सिधारै ।।
एते दान जु करै विख्याता । पावै स्वर्ग लोक सुषदाता ।।
पूजा देव होम ब्रत श्राधा । काहू कहूँ कहुँ करै न बाधा ।।
माता पिता सेब सुषकारी । सौचाध्येन करै अविकारी ।।
इंद्रियजीति दोष नहिं गाहै । तीरथ ब्रत तप धर्म निबाहै ।।
कातिक अगहन माघ बैशाषा । करै स्नान महाफल राषा ।।
दीपदान तुलसी कहँ देई । पीपर कहँ पानी करि सेई ।।
राषै जो शरणागत आई । आवै अतिथि बिमुष नहिं जाई ।।
ऋतु काला त्रिय गामी होई । शूर कृतज्ञ क्षमा गहै कोई ।
सत्यवादी निंदा नहिं ठानैं । दया शील संतोषहि आनैं ।।
गुरू बिप्र तपस्वी कहुँ देषै । करै प्रणाम दास जेहि लेषै ।।
बाद बिवाद तजे कुटिलाई । क्षमावंत नहिं दंभ बड़ाई ।।
हरि के चरण हृदय महँ राषै । धर्म करै मुष तें नहिं भाषै ।।
जो अस मनुष्य लाल जग माहीं । जम सो तासों भेंटा नाहीं ।।

दोहा— ए साधन हैं स्वर्ग के भाषत वेद पुरान ।
अब पैंडा सुनु नर्क को कहत है लाल सुजान ।।२५२।।

चौ०— प्रथमहिं पंच महा अपराधा । परै नर्क नर जिन्ह ए साधा ।।
कनक चोर गउ बिप्रहिं मारै । मदिरा पान करै वन जारै ।।
गुरू पतनी सों करै बुराई । सो नर घोर नर्क महिं जाई ।।
पित्र मित्र गुरु पुत्र जु भ्राता । परै नर्क मारै जे माता ।।
स्वामि द्रोह स्त्री बध करहीं । गर्भपात करि नर्कहि परही ।
परदारा पर द्रव्य अभिलाषी । लालच लागि झूँठ भरै साषी ।।
करि बिसवास दाबि रहै थाती । सो नर होइ नरक के पाती ।।
एक ओर पातक सब बरना । एक ओर कछु पापहि करना ।।

दोहा २५२ के अन्तर्गत—

१ कुंआ——सुषेन सिधारे=कवि ने कुँआ, तालाब, टूटे हुये कुओं, तालाबों देवालयों, प्राचीन दुर्लभ पाण्डुलिपियों (हस्तलेखों), पंथ और पुलों के जीर्णोद्धार को धार्मिक कृत्य कहकर उन्हें स्वर्गदायी फल वाला बताया है । लालदास ने जीर्ण वस्तुओं, ग्रन्थों आदि को सँभालने एवं उनकी मरम्मत करने का संकेत करके पुरातात्विक दृष्टि का परिचय दिया है ।

एक ओर सब सोग बषानें । पुत्र सोक इक ओरहिं जानें ।।
एक ओर सब मांसहि लीजै । एक ओर मछरी कहँ कीजै ।।
एक ओर सबही दुष भाषै । एक जोर अन को दुष राषै ।।
दान न्हान व्रत करै जु कोई । आपहुँ करै न करनहिं देई ।।
पर दुष देषि बहुत सुष होई । परत है जाइ नरक महिं सोई ।।
ताकत दोष बिराने डोलैं । सब सों कटुक बचन विष बोलैं ।।
सौचाचार नेम कछु नाहीं । जे जमलोक नरक महिं जाहीं ।।
गृहवति भूमि जो हरै बिरानो । चुगलो करै चोर होइ प्रानो ।।
मारै जीव मांस जे षाहीं । ते महा नरक माँहि नर जाहीं ।।
धूर्त्त देव द्रव्य अपहारो । महावृक्ष बध गोत्रहि कारो ।।
षेत ग्राम की सींउ मिटावै । सो नर नरक जाइ दुष पावै ।।
नास्तिका दंभी क्रत मेटी । कुल क्रम तजहिं बेचहीं बेटी ।।
रोकहिं पंथ झूठ कहैं बानो । नरकहि जाइ परैं सोइ प्रानी ।।
पंकति भेद प्रीति करै अंतर । परें जाइ सो नरक निरंतर ।।
बापी[१] कूप तडाग तुरावै । बिप्र ग्रेह देवल भहरावै ।।
जती द्रोह पतिब्रत करै भंगा । परै नरक निंदा करि गङ्गा ।।
जस कछु लाल सुनें अरु जानें । स्वर्ग नर्क के कर्म बषानें ।।
जो कोउ पढ़े सुनें करि आवै । धर्म होइ अरु पाप नसावै ।।

दोहा—
गुरू बेद मानैं नहीं बिधि निषेध नहिं जान ।
मुयें नर्क महिं जाहिगे जीवत पशु समान ।। २५३ ।।

जोइ सुष है सोइ स्वर्ग है दुष है नर्क अपार ।
पर[१] पीड़ा सोइ पाप है पुन्य है पर उपकार ।। २५४ ।।

दोहा २५३ के अन्तर्गत—

१ बापी कूप······देवल भहरावै=कवि ने बावली, कुंए, तालाबों, निवास-स्थलों और देवल (मंदिरों = पूजाग्रहों) को तोड़ने वालो को नारकीय कर्म करने वाला कहा है । तत्कालीन मुस्लिम शासकों द्वारा सांस्कृतिक स्थलों और मंदिरों के तोड़ने की घटनाओं का विरोध भी संकेत से कवि ने किया है ।

दोहा २५४ के अन्तर्गत—

१ पर पीडा;········ पर उपकार=कवि की इस उक्ति में संस्कृत की उक्ति 'परोपकारा: पुण्याय पापाय परपीड़नम्' का भावानुवाद स्पष्ट लक्षित होता है ।

कहुँ दरसन पूजा कहूँ कहुँ संभाषन कीन्ह ।
कहुँक लाल विश्राम करि नृप बहुतै सुष लीन्ह ।। २५५ ।।

चौ०— आयसु पाइ नृपति घर आए । मन्त्री सुषद सुमन्त्र बुलाए ।।
सौंपि राज्य पुर अवधि सुहांती । कीजेहु जतन देस बहु भांती ।।
कहै सुमन्त जौं आयसु पाई । रिषिहि जाइ हमहीं लै आई ।।
कहै राजा सुनु बिधि बिवहारा । धर्म काज इह आहि हमारा ।।
माता पिता गुरू बड भ्राता । तपस्वी साधु देवता जाता ।।
इन्ह के दरस आपु ही जैए । और ठौर सब दूत पठैए ।।
करि अहंकार जाइ नहिं कोई । ताके काज सिद्धि नहिं होई ।।
तिलक बिप्र कर फल अधिकाई । भोजन मात हाथ सुषदाई ।।
मर्दन अंग आनि हितकारी । दान धर्म अपनें जियकारी ।।
भोजन ब्याह धर्म कहै राजा । ए अपने निज तन के काजा ।।
तीरथ बनिज कृषी उपदेसा । औंर करै तो फल नहिं तैसा ।।
शुभ अरु अशुभ कर्म फल दोई । भुक्तइ जीव करै जो सोई ।।

दोहा— मंत्र मैथुन औषधी दान मान अपमान ।
मर्म द्रव्य ग्रह छिद्र ए प्रगट न लाल बषान ।। २५६ ।।

चौ०— इह कहि चले गये रनिवासा । सब रानिन्ह सों मंत्र प्रकासा ।।
लोमपाद नृप मम हितकारी । तहं रिषि श्रिंग आहि तपधारी ।।
चलहु सबहिं मिलि होहु तयारा । पावहु दरसन भाग्य तुम्हारा ।।
तीरथराज प्रयाग त्रिवेनी । करहु सनान स्वर्ग सुषदैनी ।।
कौशल्या कै भयो अनंदा । देखिहौं जाहि सुता मुख चंदा ।।
उमगेउ हृदय सुता सुधि आई । चलेउ नीर नहिं नैंन समाई ।।
अब धौं भई होइ कस बाला । जन्महि रही रूप की माला ।।
बालकहीं दई दीन्ह बहाई । सेवा जतन करै नहिं पाई ।।
सस को दोष बिधातहिं धरई । मन मानैं सोई कछु करई ।।
समय पाइ जौं बिछुरै प्रानी । तौ कछु मन महिं दोष न मानी ।।
जे[१] बिटियन्हुँ के बाल षिलौना । ते लए माइ सुहावने लोंना ।।
रानी हुती सात सय साढ़े । सबकैं हिये हर्ष अति बाढ़े ।।

दोहा २५७ के अन्तर्गत—

१ जे बिटियन्ह········लोंना—कौशल्य शांता के यहाँ जाते समय लड़कियों के खेलने वाले खिलौने भी साथ में ले गयी । कवि ने इस उक्ति से वात्सल्य से प्रेरित मातृ-हृदय का मनोवैज्ञानिक रेखांकन किया है ।

राजा चले बहुत करि साजा शृंगी रिषिहि लियावन काजा ||
रंग रंग डोला सुष पाला | जनु सावन की बादर माला ||
हाथी रथ नौसान चलाए | तुरी अनंत अंत नहिं पाए ||
और अनेक लोक हरषाना | तीरथ न्हान चले मनमाना ||

दोहा— संग छतीसौ ताइफा चले नृप आयसु पाइ |
अपने अपने साज लै हरषि-हरषि शिर नाइ || २५७ ||

चौ०— भये सगुन शुभ करत पयाना | राजा काज होत मन जाना ||
बिप्र तिलक धृत गाइ सवच्छा | लोवा निवुर दही शुभ मच्छा ||
बृषभ संष भेरी धुनि होई | गज रथ श्वेत अश्व भल सोई ||
पूरन कुंभ फूल फल देषा | मंगल गावत त्रिया बिशेषी ||
दीप अन्न गनिका शुभ जानी | हसत परसपर प्रिय सुनैं बानी ||
बीना नाद जंघ पर मयना | करवट एक बृषभ दोइ लयना ||
पीत बसन अहिवातनि नारी | क्षेमकरी[1] दरसन शुभकारी ||
चंदन श्वेत लेप जुत अंगा | मुष तंबोल मातु सुत संगा ||
कन्या दरसन भेंटन मिता | कारज होइ करब नहिं चिता ।।
बाए[2] पर दहिने होइ कागा । मलिन बसन मिलै रजक सभागा ।।

दोहा २५८ के अन्तर्गत—

१ क्षेमकरी = क्षेमंकरी । क्षेमकरी कहं क्षेम विसेखी (तुलसी, अयो) । इसे शकुन चिरैया भी कहते हैं । देवी भागवतपुराण (देवी भागवत, अध्याय ४०) में क्षेमकरी का दर्शन शुभ कहा गया है—

'क्षेमान्देवेषु सा देकी कृत्वा दैत्यपतेः क्षयं क्षेमंकरी शिवेनोक्ता पूज्या लोके भविष्यति ।'

वसन्तराजीय भी इसका प्रमाण देता है—

'सिद्धयै सदा सर्वं समीहितानां स्याल्लोमशी दर्शन मात्र मेव ।

२ बाँए पर दहिने होइ कागा = लालदास ने लोक संस्कृति के अन्तर्गत शकुनों का वर्णन किया है । बांए गधे का और दाहिने कौए का बोलना शुभ कहा है । जबकि मुहुर्त चिन्तामणि यात्रा प्रक०, श्लोक १०४ में दक्षिण भाग में हिरन और बाँए कौए का बोलना शुद्ध कहा गया है—

ओजा मृगाः वृजन्तोऽपि धन्या वामे खरस्वनः ।

पउमचरिय, ५४ । ३१ में भी क्षीर वृक्ष पर बाँई ओर बैठा कौआ पंख फड़फड़ा कर बोलता हुआ शुभ माना गया है —

'खीरदुमम्मि य वासइ वामत्थौं वायसो चलिय पक्खो ।

सारस मोर सोर भल चाहो । आउ आउ कहि टेरत काहो ।।
तीसर[३] मृग दहिने सुषदाई । बाएं[४] कहत सियार भलाई ।।
षंजन तीन दसा सुष दैना । पूरब पश्चिम उत्तर लैना ।।
पंक्षी नील दरस धन पावै । सनमुष दहिने लाभ जनावै ।।
बाएं भ्रमर फूल पर गूंजै । दहिने बुलबुल आशा पूजै ।।
बक इक पग दहिने रहे ठाढ़ा । लाभ हर्ष दोऊ कहै बाढ़ा ।।
चील्ह स्वान लोए मष मुष माहीं । लाभ होइ सोचब कछु नाहीं ।।
धुनि होइ वेद मृदंग नगारा । उज्जल बसन मिलै तन धारा ।।
मन उत्साह चलत जौ होई । यातें सगुन और नहिं कोई ।।
और अनेक सगुन शुभ लायक । भए आइ सबहीं फलदायक ।।

दोहा— जब नहिं जानत होत कछु तब है रहत पराइ ।
होनहारि पर लाल कहिं सगुन लेत जस आइ ।। २५८ ।।

चौ०— तीरथराज प्रयाग बिराजै । लोमपाद राजा तहँ राजै ।।
पहुँचे जाइ मिले मन माना । बहुत भांति कीन्हे सनमाना ।।
कौशल्या मुषि जे सब रानी । कन्या भेंटि बहुत हर्षानी ।।
शांता[१] दौरि लागि गर रोई । मइआ भल हिय बज्र की पोई ।।

---

३ तीसर मृग.........दुषदाई= दाहिनी ओर मृग का दर्शन सुख दान करने वाला है । जायसी ने इस सगुन का उल्लेख किया है 'दहिने मिरिग आइ गा धाई' । पद्मावत, सं. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १५२ जोगी खंड ।
४ बाँए.........सियार भलाई= बाईं ओर सियार (जम्बुक) का मिलना शुभ माना है । जायसी ने भी 'बाँए दिसि गादुर नहिं डोला' का संकेत किया है ।

वसन्तराजीय ग्रन्थ में बाईं ओर गीदड़ की गति को शुभ कहा गया है ।—
अनर्थ हेतुर्गति शब्द हीनः सदा शृगालः खलु दृष्ट मात्रः ।
शस्ता हि वामा गतिरस्य शस्तो वामो निनादो निशि यो बहूनान् (वसन्त० १४ व ४० श्लोक)
शकुन शास्त्र के ग्रन्थो में वर्णित प्रायः शकुनो का उल्लेख अवध बिलास में किया गया है ।
दोहा २५८ के अन्तर्गत—
१ शान्ता दौरि.........लिवाइ न जाते=कौशल्या और शान्ता मिलन वात्सल्य की कारुणिक भूमि पर अत्यन्त मर्मस्पर्शी है । लोक जीवन में बहन के लिये एक भाई की अनिवार्यता की ओर संकेत किया गया है ।

भल तै मोंहि डारिहो दोनी । एकहु बेर खबरि नहिं लीनी ॥
पशु पक्षी जड़ होत हैं केऊ । अपने जने संभारत तेऊ ॥
भाइउ मोंहि न दीन्ह बिधाते । तौका मोहि लिबाइ न जाते ॥
गिरी स्वर्ग तैं धरती फेलो । सोइ मोर गति भई अकेली ॥
दसरथ हु न बाप कह्यो ग्रेसें । लरिका तहं धों रहत होइ कैसे ॥
फिरि-फिरि मात लेति उर लाई । माया लगी कही नहिं जाई ॥
कंचन रतन बसन मनि मानिक । कन्या कहँ बहुतै दए बानिक ॥
राजा बहुत भांति सनमानें । अतिहि परसपर प्रेम बषानें ॥
उत्तम दिन सोई सुषदाई । जा दिन मित्र मिलै कोउ आई ॥
जगे भाग्य कछु आज हमारे । देषे दरसन पाय तुम्हारे ॥
अमृत बहुत कहे जग माहीं । अमृत मित्र मिलन सम नाहीं ॥
बहुत दिवस के तपत हैं नैंना । तुम कहं देषि भयो अब चैना ॥
संपति बिपति कहत सब कोई । बिछुरत मिलत मित्र के होई ॥
पीतम मिलन संपदा देषा । बिछुरन सज्जन बिपति बिशेषा ॥
बिधि एहिं ठौर भए बुधि हीनें । मित्र संजोग सदा नहिं कीनें ॥
पीतम मिले रहैं इक ठौरा । यातें बड़ो नहीं सुष औरा ॥
जोपै रहै एक रस दोई । बिछुरि मिलत बहुतै सुष होई ॥
जल चकमक प्रतिमा बिलगाहीं । अग्नि प्रीति कबहूँ नहिं जाहीं ॥

दोहा— सज्जन दुर्जन की पकर जोबत मरत न चाल ।
जरें बरें पर जेबरी ग्रैंठनि तजत न लाल ॥ २५९ ॥
मित्रहिं बनैं न मित्र बिनु लाल दृषउ दे ताज ।
आगि जरावत घरन्ह कौं फिरि आगिहि सों काज ॥ २६० ॥

चौं०— प्रेम पंथ[1] षांडे की धारा । चलत टिकत बिरला संसारा ॥
प्रेम तबहिं तासों मन मानै । भय लज्जा मन महिं नहिं आनै ॥
प्रीति है चारि भांति परकासा । सहज समा विपयज अभ्यासा ॥
सहज प्रीति स्वाभाविक होई । समा समान परसपर दोई ॥
विपय प्रीति स्वारथ मन भाई । हिलत मिलत अभ्यास कहाई ॥
पुनि है प्रीति षट लक्षन आही । कहियत है षट् लक्षन ताही ॥
देत लेत पूंछत कुशलाता । गुप्त प्रकाशि षिवावत षाता ॥

दोहा २६१ के अन्तर्गत—

१ प्रेम पन्थ षांडे की धारा=लालदास ने प्रेम पन्थ को तलवार की धार का मार्ग कहा है । रीतियुगीन कवि वोधा ने 'यह प्रेम को पन्थ कराल महा तलवार की धार पै धावनो है' कहकर इसी ओर संकेत किया है ।

चित्त मैं इहै होत रहै चलिए । कौन भांति कै मैं कहँ मिलिए ।।
भली करी आए मन मानें । आजु हमहिं सेवक करि जानें ।।
या बिधि बहुत भांति कर स्वासन । बैठे सभा दए सिंहासन ।।
चले प्रसंग बहुत बिधि नाना । राग रंग इतिहास पुराना ।।
और अनेक करी पहुनाई । राजनीति बहुतै मन भाई ।।
तब राजा दशरथ मन आवा । रिषि श्रिंगी की कथा चलावा ।।

दोहा— बाल जती तपसा उदित मन विकार कछु नाहिं ।
कौन भाँति बनवास तजि आए बसती माँहि ।। २६१ ।।

[इति श्री अवध विलासे बुद्धि प्रकासे सब गुन रासे भक्त हुलासेः पाप विनासे कृत लालदासे: राजा प्रयाग प्रवेश लोमपाद समागम नाम षष्ठ विश्राम]

:—: अथ सप्तमो विश्राम :—:

चौ०— कहन लगे जे लोग सयाने । भ्रिंगी रिषि जेहि भांतिन्ह आने ॥
अंग देस जहँ गंग बहाई । चंपकवती पुरी छबि छाई ॥
एक समय परे काल सुकरषा । बारह बर्ष मेघ नहिं बरषा ॥
राजा सोच बहुत मन कीना । तब काहू उपदेसहि दीना ॥
गंगा तीर महावन माहीं । तहँ कबहूँ कोउ मनुष्य न जाहीं ॥
बाल जती रिषि भ्रिंगी नामा । तिन कबहूँ नहिं देषी बामा ॥
सो रिषि आवै नगर तुम्हारें । तौ बरषा होइ अन्न अपारें ॥
महापुरुष पग धारहिं जाहीं । दुष कलेष व्यापै तहँ नाहीं ॥
लोमपाद मुनि कीन्ह उपाई । दासी सब नृप लीन्ह बुलाई ॥
मुनि तपस्वी नारिन्ह हो जाता । तहाँ तहाँ बस भए सुनीता ॥

दोहा २६२ के अन्तर्गत—

१ अंग देश—गंगा के दक्षिणी तट पर स्थित एक महत्वपूर्ण राज्य । इसकी राजधानी चंपा थी, जो अंग पुरी भी कहलाता था । वा० रा० आप्टे ने इसे शिलाद्वीप के पश्चिम में लगभग २४ मील की दूरी पर विद्यमान था । उन्होंने इसे वर्तमान भागलपुर या उसके निकट का स्थान बताया है । भौगोलिक दृष्टि से अंग देश का अस्तित्व अज्ञात है । कतिपय प्राचीन ग्रन्थों में 'चंपावती पुरी' अन्तर्वेद स्थित गंगा यमुना के मध्य महाभारत कालीन हंसध्वजपुरी आधुनिक 'हस्वा' (फतेहपुर) को हंसपुरी एवं चंपापुरी (चंपावती पुरी) कहा गया है । हस्वा के 'चंपावती पुरी' होने का संकेत संत चंददास जी ने भी किया है— 'चंपावती सतीपुर जैसे' ('भक्त विहार') । 'रामविनोद' महाकाव्य की भूमिका (पृ.७) में भी इस ओर उल्लेख किया गया है । हस्वा अत्यन्त प्राचीन एवं ऐतिहासिक स्थान हैं । कहते हैं कि यहाँ के एक राजा हंसध्वज ने महाभारत के युद्ध में भाग लिया था । हंसध्वज के पुत्र सुधन्वा एवं सुरथ जब महाभारत की लड़ाई में मारे गये थे, तब उनकी बहन व हंसध्वज की पुत्री 'चंपावती' ने यहाँ शासन किया इसलिये इसका नाम 'चंपावती पुरी (चंपापुरी) भी है" लालदास ने चंपकवती पुरी को अंग देश (गंगा वाला भूभाग) कहा है । संभव है चंपावती पुरी' (हस्वा) का समीपवर्ती भू-भाग गंगा से मिला हुआ प्रदेश ही अंग देश रहा हो ।

अति स्वरूप रहि अद्भुत रवनी । केउ कहत गणिका तहँ गवनी ॥
आयसु पाइ आइ भई ठाढ़ी । मानहुँ रूप सिंधु सैं काढ़ी ॥
हँसि मुसिक्याइ कहै जब राजा । बेगिहि जाइ करहु इह काजा ॥
गंगा तीर महाबन घोरा । सुन्दर ठौर नाम सिगरौरा[२] ॥
करिए जाइ उपाइ सुहाँती । श्रिंगी रिषि आवै जेहि भाँती ॥

दोहा— डरी सहचरी कहति सब करिबैं कहेउ तुम्हार ।
मुनि कैं सनमुष होत हीं आयो अंत हमार ॥ २६२ ॥

चौ०— पुनि त्रिय चरित आनि मन माहीं । बसि करिहैं चिंता कछु नाहीं ॥
एक कहै इह काज हमारा । श्रिंगी रिषि को आहि बिचारा ॥
इंद्र चंद्र नारद बौराए । महादेव से पीछे लाए ॥
पारासर सेवक करि डारे । ब्रम्हाऊ बस भयो हमारे ॥
शुकदेव कहत रहे तप माहीं । मैं ता समय रही तहँ नाहीं ॥
कहिए कहा डिगाए जेते । मारे नजरि परे सब तेते ॥
जब लगि दर्शन नहिन हमारा । तब मगि जप तप करत पसारा ॥
नेकउ नजरि होइ त्रिय माहीं । एकउ नेम रहत कछु नाहीं ॥
माता पिता भक्ति तब ताईं । जब लगि हम घर माँहि न आईं ॥
षान पान गृह पहिरन फूला । पुरुषहिं त्रिय बिनु सब दुष मूला ॥
चिंता कष्ट हानि कछु होई । पीड़ा भय व्यापत होइ कोई ॥
बैठहिं निकट नैकु हम जाई । होइ काम बस सब बिसराई ॥

दोहा— जे बातैं कहि लाल ए नारिन्ह के संजोग[१] ।
अपनें अपनें जीय महिं सुनि सति मनिहैं लोग ॥ २६३ ॥

चौ०— बीरा दीन्ह नृपति सनमानी । करि तसलीम[१] जु चली सयानी ॥
तब बनि चली जहाँ बन आही । बस कीयो चाहति हैं ताही ॥
कामातुर षोजत अकुलानी । मानहुँ रंभा फिरति भुलानी ॥
षोजत फिरैं गुफा बनबासा । जहाँ जाइ तहँ होइ प्रकासा ॥

दोहा २६३ के अन्तर्गत—

१ संजोग=संयोग । जहाँ नायक-नायिका की संयोगावस्था में परस्पर रति वर्तमान रहे, किन्तु वे प्रकृत संभोग का आस्वादन न कर सकें, वहाँ 'संयोग शृंगार' मानना चाहिए ।

२ सिगरौरा=शृंगवेरपुर

दोहा २६४ के अन्तर्गत—

१ तसलीम=स्वीकार करना

जुवा पुष्ट देषे मुनि बालक । तहाँ चलो गयो परघरघालक ॥
वशीकरण मोहन की घातैं । औरउ काम केलि की बातैं ॥
हाव[2] भाव[3] लावनि रुचिराई । षान पान बहु जुक्ति बनाई ॥
पिता विभांड जाइ कहुँ कामहिं । श्रिंगी रिषि कैं आवैं धामहिं ॥
गाइ बजाइ रिझावति ताही । मुनि कैं मन कोउ प्रेमो आही ॥
देषो मुनिहिं न काम कलाकर[4] । सूरदास[5] जनमत के आंधर ॥
जौं कहिए जनम्यो है तरुनी । महितारी पाई सोइ हरिनी ॥
रिषि जानैं कोउ मुनि जन आवा । बड़े भाग्य हम दर्शन पावा ॥
लंपट चोर साधु अरु जोगी । सज्जन दुर्जन किर्पन भोगी ॥

---

२ हाव=भ्रू-नेत्रादि के विकारों से संभोग की इच्छा का प्रकाशक 'भाव'। हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि विकार विशेषाः शि० १०/१३ जगुः सरागं ननृतुः सहावम् भट्टि ३/४३ । उज्जवलमणि ने हाव की परिभाषा इस प्रकार की है "ग्रीवारेचक संयुक्तो भ्रू नेत्रादि विकासकृत । भावादीषत् प्रकाशो यः स हाव इति कथ्यते ॥"

३ भाव=जन्म से निर्विकार चित्त में उद्बुद्ध मात्र काम-विकार । भाव से कवि का आशय प्रीति द्योतक हाव भाव या रस की अभिव्यक्ति से है ।

४ काम कलाकर=काम जो विभिन्न कलाओं का करने वाला है ।

५ सूरदास जनमत के आंधर=कवि ने 'सूरदास जन्म के अन्धे' मुहावरे के प्रयोग से ऋषि शृंगी के काम भावना से सर्वथा अपरिचित होने का संकेत किय है । इस पद का श्लेषार्थ होगा — सूरदास जन्म के अन्धे अथवा सूरदास जनम के अनुसार अन्धे थे, वस्तुतः अन्धे नहीं थे । सूरदास जन्मांध थे, इसकी पुष्टि विभिन्न ग्रन्थों से होती है गोस्वामी हरिराय के शब्दों में—"सो सूरदासजी के जन्मत ही सो नेत्र नाहीं है और नेत्रन को आकार गढेला कछु नाहीं, ऊपर भौंह मात्र हैं सो वा भाँति सो सूरदास जी को स्वरूप है । जन्म पाछे नेत्र जॉय तिनको आंधरो कहिये सूर न कहिये और ये तो सूर हैं ।"

"प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी ।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी ॥" भक्तमाल, नाभादास

जन्मत ते हैं नैन विहीना, दिव्य दृष्टि देखहिं सुख भीना ।
—भक्तमाल की टीका, महाराज रघुराज सिंह

जनम अन्ध हृत ज्योति विहीना, जनमि जनम कहु हरष न कीना ।
—'भक्तविनोद' मियासिंह

चन्ददास कृत "भक्त विहार" में भी सूर के अन्धे होने की पुष्टि की गयी है ।

इन्ह के मन परतीति न मानैं । ए जस आपु और तस जानैं ।।
आदर करि लै आसन दीना । पग धोवन जल बासन लीना ।।
कछु मुसिक्याइ भई रिषि सोहैं । बोलो बचन चितै तिरछौहैं ।।
बनिता कहति सुनहुँ मुनि राई । चरन धुवावत धर्म नसाई ।।
जप तप तीरथ ब्रत कछु करिए । धर्म नेम सुक्रत मन धरिए ।।
ताके पाइँ पाखरै कोई । दसा अंस पात्रत है सोई ।।
जो सुष दरस परस कछु पैए । सो सुष और भांति नहिं हइए ।।
मास बसंत सरित सर कूले । बन तरु लता सघन फल फूले ।।
बोलत शुक पिक अलि सुषदाई । शीतल पवन सुगंध सुहाई ।।
केशरि अगर चंदन कस्तूरी । उज्ज्वल वसन सुरंग सपूरी ।।
भोजन क्षीर पान पकवाना । बाजन राग रंग बिधि नाना ।।
सुन्दर नारि रूप गुनवंती । काम केलि जानत बहु भंती ।।
अधर मधुर रस करे न पाना । तिन्ह के जन्म व्यथा करि जाना ।।

सो०— सुषद त्रियन के रूप, जिन्ह नहिं देषे नैंन भरि
ते बिधि कीन्हे कूप, मुषहि बिवर चुंबन बिना ।। २६४ ।।

चौ०— मुनि कहँ देषि प्रेम अनुरागी । अपनें बाँन चलावन लागी ।।
अंगिरावति[१] ऊंचे भुज तानैं । ऐंचति मानहुँ काम कमानैं ।।
राषति एकइ अलक झुलाई । सोहति मुष पर लगति सुहाई ।।
मोहत बदन जंभांत[२] अमोला । संपुट कनक रतन जनु षोला ।।
आरसि[३] लै दृग अंजन बनावति । मानहुँ बान सिलीमुष लावति ।।

दोहा २६५ के अन्तर्गत—

१ अंगिरावति...काम कमानै अंगिरावति=अंगिड़ाई लेना (गात्रो को तोड़ना) अगड़ाई लेकर भुजाओं को ऊँचे तानती हुयी कामिनी ऐसी लगती है मानों काम की कमान को खींच रही हो । काम के धनुष वाण से शृंगी को बिद्ध करना चाहती है ।

२ जंभात—जँभाई लेना । रूपगोस्वामी ने नीवी, उत्तरीय या वेणी खुल जाना (स्रंसन), गात्रों को तोड़ना । (अंगड़ाई) तथा जंभाई आदि को शृंगार के 'उद्भास्वर' नामक नूतन अनुभाव के अन्तर्गत रखा है ।

३ आरसि लै···सिलीमुख लावत—तरुणी ने दर्पण में रूप को निहारते हुए नैनों में अंजन को कलात्मकता से सजाया । कवि ने इस पर उत्प्रेक्षा करते हुये कहा मानों कामदेव धनुष पर वाण चढ़ा रहा हो । काजल के नुकीलेपन को वाण की संगति प्रदान करना कितना औचित्यपूर्ण है । इस प्रसंग को पढ़ते ही 'कुमार संभव' में शिव की समाधि भंग करने के लिये काम द्वारा संमोहन वाण धनुष पर चढ़ाने का प्रसंग सजीव हो उठता है ।

गोर[४] ललाट देति जब बिंदा । कमल करनि मनु पूजत चंदा ॥
भौंहैं चपल करति जब चितहर । अरबरात जनु भ्रमर कमल पर ॥
लंबे बार स्याम सटकारे । मनहुँ नील मनि किरन पसारे ॥
कंचन की पुतरी जस ढारी । कारीगर मनु काम सुधारी ॥
रत्नाकर भई लेति हलोलैं । मुनि के नैंन मीन भए डोलैं ॥
बोलति मधुर मधुर मृदु बानी । करत मिलाप बात रस सानी ॥
कहो मुनि भयो है बिवाह कि होंना । आई है घर गृहनी किधौं गौंना ॥
तुम तैं छोटि सयानि कि जोरी । साँवरि है कि दुलहनी गोरी ॥
भल अबहीं किएउ उपवन वासा । कैसे धौं रहत अकेल उदासा ॥
औरउ है किधों तूं हिं अकेला । हम तुम कहुँ रहिए करि मेला ॥
मुनि पहँ साधु बात कहि आवत । ताहि फेरि रति रसकि चलावति ॥
जबहिं पिता बन तैं घर आवै । कंद मूल फल फूलहिं ल्यावै ॥
ताहि देषि तबहीं भगि जाई । बिप्र श्राप तहिं अधिक डराई ॥
जब लगि जुवा रहत तन धारी । आपुहि जाइ होहिं [illegible]बस नारी ॥
बूढ़े पुरुष त्रियन्ह बिष लागै । जैसें गाइ बाघ तैं भागै ॥
सींगी रिषि सब टहल बिसारा । मन अटकेउ छबि देषि अपारा ॥

दोहा— दरस परस करि बचन रस जाग्यो लाल अनंग ।
रिषि श्रिंगी भृंगी भयो फिरत पदुमिनी संग ॥२६५॥

चौ०— श्रिंगी रिषि कर मन जब डोला । लक्षन देषि पिता तब बोला ॥
सुन्दर मंदिर क्यों न बनावा । कहु रे पुत्र इहाँ कोउ आवा ॥
रिषि श्रिंगी बोले तब बानी । बिना बिवेक हास रस सानी ॥
अद्भुत एक महामुनि होई । मैं अस रूप न देषेउ कोई ॥

---

४ गौर ललाट......पूजत चंदा=गौर ललाट पर बिंदी लगाते हुए सुन्दरी की उत्प्रेक्षा कमलकरों से चंद्रमा की पूजा करने वाली कामिनी से की है। कवि ने यहाँ कमल, चंद्रमा और मुख को एकत्र किया है। मल्लिनाथ के अनुसार चंद्रमा, कमल तथा मुख से सौंदर्य की पूर्णता प्राप्त होती है। लालदास ने यहाँ सौन्दर्य की पूर्णता के लिये 'कमल करनि' से कमलों की कमनीयता, 'पूजत चंदा' से चन्द्रिका की शीतल-शुभ्र ज्योति किरण का सम्मिलन दिखाया है।

देषे[1] ताके तन के बाना । सोइ सोइ मुनि सों करत बषाना ।।
सुन्दर बेनी बनी रसाला । ताहि कहै इक जटा बिशाला ।।
महा अमोल जराय को टोका । ताहि कहै किएँ तिलक सुनोका ।।
कानन्ह को बीरें छवि छाई । ताको मुद्रा कहत बनाई ।।
कंठसरी गरहार बिहारी । ताहि कहै रहे माला धारी ।।
अंजन देषि जु ताहि सराहै । असि तप तेज नैंन महिं आहै ।।
कुच उतंग श्रीफल से सोहैं । होए पूजा के संपुट दो हैं ।।
केशरि चंदन अंग लगाए । ताहि कहै तन भसम चढ़ाए ।।
पहिरे चीर सुरंग निहारे । अति बिचित्र बलकल तन धारे ।।
कंकन जूरी मुंदरी राजै । अद्भुत कुश मुनि हाथ बिराजै ।।
अंग अंग गहना मन दीनें । बहुत जंत्र रक्षा तन कीनें ।।
एक कछू मैं जानत नाहीं । सूक्षम फल एक नासा ताहीं ।।
कौन[2] काव्य धों पढ़े सयानी । बोलै मधुर मनोहर बानी ।।
और रिषिन्हि कै दाढ़ी बाढ़ी । वाके मुष पर मूँछ न दाढ़ी ।।
तप करि करि जनु संजम कीनें । अल्प उदर कटि कृश अति छीनें ।।
कोमल पद कर कंज समाना । जोग जुक्ति कछु करत बिधाना ।।
देषे दंत लाल रंग भीनें । पके अनार बीज मुष लीनें ।।
जीते काम जानियतु यातें । सुन्दरता मुष ऊपर जातें ।।

दोहा २६६ के अन्तर्गत—

१ देषे ताके......हम लावत=कवि ने ठगनी की विलास चेष्टाओं और उसके शृंगारिक उपादानों में भ्रान्तिमान अलंकार के माध्यम से भक्ति रस एवं योग की स्थितियों का आरोपण किया है । लौकिक विलास चेष्टाओं के 'शृंगार' में अलौकिक एवं दिव्य 'शांत' रस की अभिव्यंजना में 'हास्य' का अद्भुत अनुबंधन रस-प्रक्रिया की कैसी विरोधी किन्तु साधरणीकरण की कैसी मंजु एवं मनोहारी योजना का उदाहरण है ?

२ कौन काव्य धों पढ़े सयानी=यह सयानी किस काव्य को पढ़े हुये हैं । यहाँ 'काव्य' का मुख्यार्थ कविता वाचक हैं, व्यंग्यार्थ 'चातुर्य' ही कवि का अभिप्रेत है ।

औरन्ह के विद्यारथी संगा । वाके³ संग भ्रमर बहु रंगा ॥
द्वै माला दोउ चरन बिराजै । जबहिं चले तबहीं धुनि बाजै ॥
मोती मांग देषि कहैं बंगा । धारा एक सीस पर गंगा ॥
मैं पूछे रहियत केहि ठांई । कौन देस का नाम गुसांई ॥
रहत हैं मनुज कुंज बन माहीं । नाम हमार गुलम रिषि आहीं ॥
अद्भुत सुन्दर गुहा गँभीरा । सीत न आतप अति न समीरा ॥
कोमल आसन पुहप बिछावत । रति समाधि तापर हम लावत ॥
हमहीं से जहं मुनि बहु बृंदा । देषहु चलिए करहु अनंदा ॥
पूजा बहुत है होत हमारी । पुरुष रहत हैं आज्ञाकारी ॥
सुनि मन मोर है होत तहाँऊँ । आयसु देहु दरस करि आऊँ ॥
जब इह बात पिता सुन पाई । तब जानेउ कोउ बनिता आई ॥
सुन्दर जुवा देषि है पायो । चाहति है कोउ कहुँ लै जायो ।
सुनि सुनि बात मनहिं मुनि हासा । वै रिषि नाहिं जाहु जिनि पासा ॥

दोहा— चंद बदन मृग लोचनी मन मैं बसी रसाल ।
मनैं किए विष से लगे पिता पुत्र कौ लाल ॥२६६॥

जद्यपि मन मै है नहीं बिषय भोग बिवहार ।
देषे तें होइ जात हैं मन के लाल बिकार¹ ॥२६७॥

जुवा पुरुष बनिता जुवा देषै सुन्दर अंग ।
लाल कहो कहं लौ रहै घीव अग्नि के संग ॥२६८॥

---

३ वाके संग भ्रमर बहुररंगा=उसके साथ अनेकों भ्रमर भी हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने जिस ठगिनी का चित्रण किया है, उसे पद्मिनी के रूप में रखा है । पद्मिनी नायिका के लक्षण में भ्रमरों का उल्लेख प्राप्त होता है—

पदमनि चंपक वरन तनु अति कोमल सब अंग ।
चहूँ ओर गुंजत भ्रमर निमष न छाँड़त संग ।

आनंद कृत कोकसार, हस्त० प्रति, पृ० ४। नाँदादेव से श्री जगत नारायण मिश्र द्वारा प्राप्त एक प्राचीन प्रति के आधार पर ।

दोहा २६७ के अन्तर्गत—

१ बिकार=बिकार रूप या प्रकृति का परिवर्तन (विक्षोभ, उत्तेजना, उद्वेग)

चौ०— चाटत पेड[1] फिरत रिषि पाए । घीव खांड रूषन्ह तब लाए ।।
बहु बिधि के पकवान मिठाई । छल करि ताहि षियावै आई ।।
लडुवा लेइ हाथ महि राषै । षाहु बेलफल रिषि सो भाषै ।।
षाझा लै मुनि कहँ दिषरावै । कहि वटपत्र ताहि बहुरावै ।।
षाहु डरहु जिनि करहु अंदेसा । बन इक पात होत है अैसा ।
सुन्दर कोमल पूरी आही । पुरइनि पत्र कहै पुनि ताही ।।
पूवा देइ कहै लग आहू । ए गूलर के फल हैं षाहू ।।
गूझा मधुर अनूप सुहाई । ए कदली फल षाहु गुसांई ।।
पागे खांड मखाने वाला । ए वा बन के बैर रसाला ।।
पेरा बरा बतासे एहू । बन बजार के फल हैं लेहू ।।
घेवर लै राषहि मुनि नेरैं । ए भू क्षत्र होत मन मेरैं ।।
बरा बनाइ देहिं मन भाए । कंद लेहु फलहार है पाए ।।
मोदक देहिं मुगद के बानें । लेहु आत फल षाहु सयानें ।।
ढूंढी बांधि देहिं कहै लेहू । मुनि जू षाहु कपिथ फल एहू ।।
भेली देति भांति भली हाथा । ए बडहर फल षावहु नाथा ।।
हँसि मुसिक्याइ रेवरी देई । मुनि चबाइ सिवरी फल एई ।।
पापर देइ षाहु मुनि भूषे । ए परास के पात हैं सूषे ।।
गटा गिदौरा दे कहैं ले तो । अरुई सकरकन्द हैं ए तो ।।
चीनी देति कहति तहँ चालू । षांवो नाम नदी की बालू ।।
रस प्यावति हँसि बोलति बानी । कोल्हू[2] नाम कुँवा को पानी ।।

दोहा २६८ के अन्तर्गत—

१ चाटत पेड.....................सयाने=कवि ने रसास्वादन की एक नूतन प्रकिया का प्रतिपादन किया है। लैकिक आस्वाद्य और योगीजनों के आस्वाद्य पृथक-पृथक होते हैं । यहाँ ठगिनी के द्वारा छल पूर्वक लौकिक आस्वादनों में ही भक्ति आस्वादनों की प्रतीति करायी जा रही है । विविध पाक व्यंजनो एवं मिष्ठानों में तपस्वियों के आस्वाद्य पदार्थों का आरोपण किया गया है । विपरीत गुणधर्म वाली वस्तुओं को रूपगत समानता के भ्रम से भिन्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है । कवि की विरोधी रसों की प्रस्तुति एवं रस चर्वणा विलक्षण कोटि की है ।

२ कोल्हू= गन्ने का रस निकालने का लकड़ी और लोहे का एक प्राचीन यंत्र ।

बुंदिया देति कहति अस दीठे । कुंड कराह के कांकर मीठे ॥
फेनी नरम देति कहै लेना । ए वहि कुंड उठत है फेना ॥
मिश्री देति कहति पुनि ताही । ऊष रूष को गोंद है षाही ॥
कोमल सरस जलेबी आनी । ए पौंनारि बौरि उरझानी ॥
मेवा और मिठाई नाना । षाति षिवावति याहि बहाना ॥
पुनि कहै चलु वाही बन जाई । ऐसे फल नित ही तहं पाई ॥

दोहा — भले भले कहं कहं कहत षात सराहत जात ।
रिषिनि जान ठगनी ठगति कहि कहि मीठी बात ॥२६८॥
बन मृग[१] ज्यों चौंकत रहै बनिता संग बन माहि ।
जीभहि रस मुनि बस भयो लग्यो बिषय रस नाहि ॥२७०॥

चौ०— त्रिया चरित्र[१] करै भरमावै । अपना रंग रूप दिषरावै ॥
कबहुँ कि कर सों कर गहि लेई । कबहुँ कि तन आलिंगन देई ॥
कबहुँ[२] कि मुष सो मुषहि लगावति । हृदय लगाइ अनंग जगावति ॥
ताके अंग अरगजा लाए । शृंगी रिषि को लगत सुहाए ॥

दोहा २७० के अन्तर्गत—

१ वन मृग·········विषय रस नाहि=मृग वन में मृगी को देखकर चौकन्ना हो जाता है । वह सतर्क होकर चारो ओर देखता है कि कहीं शिकारी उसे मृगी के आकर्षण से मारना तो नहीं चाहता । शृंगी ऋषि ने भी लौकिक आस्वाद्य रसों को अपने वश में कर लिया था इसी लिये विषय-रस उसे प्रभावित नहीं कर पाते ।

दोहा २७१ के अन्तर्गत—

१ त्रिया चरित्र·········लगावति डोरी=कवि ने छल पूर्वक की गयी विलास चेष्टाओं को त्रिया चरित की संज्ञा दी है । भर्तृहरि ने नारी के हाव भावों को पुरुषों के जीतने के लिए बंधन कहा है—

"स्मितेन भावेन च लज्जया भिया पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्या कलहेन लीलया समस्त भावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ॥
भ्रू चातुर्या कुंचिताक्षाः कटाक्षाः स्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ।
लीलामंदं च स्थितं प्रस्थितं च स्त्रीणामेतद् भूषणं चायुधं च ॥"

—शृंगार शतक, २, ३, भर्तृहरि

२ कबहुँ कि मुख······अनंग जगावति=काम का मनोवेग स्पर्श, आलिंगन आदि मानसिक कारणों से उद्दीपित होता है । कामोद्दीपन के रूप में कवि ने चुंबन और आलिंगन की चेष्टाओं का चित्रण किया है ।

कबहुँ कि दूरि होइ रहे ठाढ़ी । मारै बान कटाक्षिन्ह गाढ़ी ।।
कबहुँ कि कतहुँ न देत दिषाई । कुंज पुंज महिं रहति लुकाई ।।
कबहुँ कि पुहुप बीन गुहि माला । पहिरावति मुनि को लै बाला ।।
कबहुँ कि[३] चली जाति करि तोरा । फेरि फेरि चितवै रिषि ओरा ।।
कबहुँ कि बैठि रहे मुष मोरी । या बिधि मुनिहि लगावै डोरी[४] ।।
कबहुँ कि कर पर मुष धरि रहई । माननि[५] होइ कछू नहिं कहई ।।
कबहुँ कि[६] फूल माल सों मारति । रिषि कहुँ झझकि दूरि करि डारति ।।
कबहुँ कि डारि पकरि रहै झूली । गावति सारंग राग प्रफूली ।।
कबहुँ कि तजि आभूषन बासा । बैठि रहति मन होइ उदासा ।।
कबहुँ कि केश छोरि छिटकावति । कबहुँ कि बेनी सुभग बनावति ।।
बेनिहि देषि मोर उडि आवत । नागनि जानिहि चोंच चलावत ।।
अंगिया कसति लसति छबि जियहीं । हिय हरि लेति दिषावति हियहीं ।।
कबहुँ कि बसन बाँधि फिरि छोरै । कबहुँकि चंचल इत उत दौरै ।।
कबहुँ कि कर सो कर गहि बाला । उरज छुवावति हृदय रसाला ।।
कबहुँ कि मधुर मधुर धुनि गावै । बोलि बोलि मुनि चित्त चलावै ।।
कबहुँ कि कान लागि कछु कहही । समुझि न परै गरें लगि रहही ।।

दोहा— रूप भरी जोबन भरी भरी प्रेम गुन षानि ।
लाल ताहि देषत बनैं कहत न बनै बषानि ।।२७१।।

चौ०— चाबति पान कपूर हुलासा । प्रगटत मुष की बास सुबासा ।।
कबहुँ कि सीस उघारि उढाई । लटकि जात मुरि कै मुसिक्याई ।।

---

३ कबहुँ कि चली जाति करि तोरा=कभी हाँथों की उँगलियाँ चटकाती हुयी चली जाती है। उँगलियाँ चटकाना (कर तोरा) शृंगार का हाव है।
४ डोरी=बाँधने की रस्सी । डोरी से कवि का आशय कोमल सम्बन्धों के अनुबन्धन से है। इसी लाक्षणिक प्रयोग का एक रसात्मक बिम्ब राष्ट्रीय कवि पं० सोहनलाल द्विवेदी के एक प्रणय गीत की पंक्तियों में प्राणवंत हुआ है—
"मत गूँथों मेरा हीरक मन अपनी कोमल बरजोरी में ।
नैनों की रेशम डोरी में ।
५माननि=मानिनी। मानसूचकचेष्टा प्रेम के द्वादस प्रकारों में 'क्रान्त' के अन्तर्गत आती है ।
६ कबहुँ कि फूल माल.........लगि रहहीं=रति के उद्दीपन हेतु ठगिनी के द्वारा काम चेष्टाओं का वर्णन सांवेगिक दृष्टि से अत्यन्त उत्प्रेरक है। शृंगार के इन वर्णनों से कवि की मनोवेगों को रसान्दोलित करने वाली काव्य प्रतिभा का प्रमाण मिलता है ।

अरध सीस अंगिया कुच अरधा । दरस दिषाइ लगावति सरधा ॥
नूपुर चरन सँवारति तेई । जानु दिषाइ प्रान हर लेई ॥
कबहुँ कि कोमल पात बिछौना । लै बैठति मुनि कों छबि भोंना ॥
कबहुँ कि कहति अहो मुनि मुनिहीं । कबहुँकि पिय पिय कोमल धुनिहीं ॥
कबहुँ कि श्रवन कंडु[1] सुष पावति । भाव जँभाइ जँभाइ दिषावति ॥
कबहुँकि[2]पद नष लिषति जु धरनो । नैन नवाइ लजति मन हरनो ॥
कबहुँ कि नैन सों नैन लगाई । चितवत बड़ी देर सुषदाई ॥
कबहुँ कि चपल नचावति भौंहैं । चितवति मुसकि होइ तिरछौहैं ॥
कबहुँ कि दरपन लै मुष निरषति । रूप देषि मनहीं मन हरषति ॥
दइ मैं बृथा सिंगार बनाए । बन मानुस के मनहिं न आए ॥
षान पान आलिंगन दीनें । या बिधि मुनि अपने बस कीनें ।
हाव भाव लावनि रुचिराई । कहँ लौं कहौं ग्रंथ बढ़ि जाई ॥
कहँ रिषि साधु सुद्ध हिए भोला । कहँ इह ठगिनी काम कलोला ॥
बार बार करि करि चतुराई । रिषि फुसलाइ लियो अंगलाई ॥
अपनो रूप जाल बिथुरावा । मुनि कौं मृग ज्यौं जाइ बझावा ॥
षाए फेनी लड़ुवा षाझा । जाइ कहाँ सींगी रिषि बाझा ॥

दोहा— ज्ञान ध्यान जब लगि रहे मिली न बनिता आइ ।
उठी तरंग अनंग की सुधि बुधि गए हिराइ ॥२७२॥
संगति ही सों होत है लाल धर्म मन पाप ।
ए अति ही नाहिन भले अवलोकन आलाप ॥२७३॥
जो जाको पीछौं करै मन बच क्रम करि कोइ ।
पशु पक्षी नर नारि मुनि सो ताके बस होइ ॥२७४॥

चौ०— जबहो जब बन बाहर ल्यावै । दौरि दौरि मुनि बनहि मैं आवै ॥
जानेउँ मुनि नहिं देत धराई । तब दूती इक जुक्ति बनाई ॥

दोहा २७२ के अन्तर्गत—

१ कंडु=खुजली । लालदास ने प्रेम की द्वादस अवस्थाओं में 'ललित' के अन्तर्गत कानों में कंडु खुजली उत्पन्न होने का उल्लेख किया है। अन्य आचार्यों ने निपुण छल से उत्पन्न प्रिय को निरंतर देखते रहने की इच्छा से नेत्रों में खुजली उत्पन्न होने का संकेत किया है । धार्ष्ट्य तथा कण्डूति (खुजली) को 'अव्यक्त ललित' के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है ।

२ कबहुँ कि पदनख……अपने बस कीनें=रससिद्ध कवि ने शृंगार रस को मूर्तरूप प्रदान करने के लिये शृंगरिक चेष्टाओं, हाव-भाव एवं विलास लीलाओं का चित्रण उद्दीपन के रूप में करने में नैपुण्य का प्रदर्शन किया है ।

नौका एक विशाला बनाता । तापर सब बन जाति लगावा ॥
तिन्ह के नाम कहौं कछु पाये । नावहिं पर नृप बाग लगाये ॥
पलक्ष[1] पनस[2] पाठीर[3] पुनागा । नूत निग्रोध[4] उदंबर लागा ॥
चलदल[5] ताल तमाल बिशाला । पाटल चंपक शाल प्रियाला ।
श्रीफल कपित्थ कदंब लगाए । सीसप जंबू निंब सुहाये ॥
आतक बकुल चिंचिनी राजी । बदरी क्रमुक षजूरि बिराजी ॥
नारिकेर कदली दल गोभा । केशरनाग केवला शोभा ॥
संषु बिभीतक दारु पलासा । कुबज हरीतकी बेनु उलासा ॥
षोटक षदिर कुरंट जंभीरा । अर्जुन भोज नारिंगी भीरा ॥
धात्री अरु मधु श्रवा बिकेका । दाष बदाम अंजीर अनेका ॥
रक्तबीज निंबू सपतालू । तूत आत तेंदू जरदालू ॥
पीचू कमरष कयर करौंदा । पिस्ता मधुर छुहार षिरौंदा ॥
बातहरन मुनि तरु तहँ ठाढ़े । सेंवर सिरसि सुहावत बाढ़े ॥
भोजपत्र भेलातक बरना । आलधूप जोवायत करना ॥
मेंहदी तुनि षिरनी·जु लहसोरा । अकउल और बकाइसि होरा ॥
छितउनि फरहद जींगनि रींठा । बिजैसार किरवारा मीठा ॥
बेरी धामिन षरहर भेरा । पारस पीपर तज बहुतेरा ॥
असनाहरफा फरसा मेदा । गेंठि समुदफर रीवां भेंदा ॥
षाझा करम रैनि कचनारा । म्यौंडो मैन कटाइ अपारा ॥
आंठिल दंत रंग भुरकुंडा । वारबना षुरहरी प्रचंडा ॥
गुरसकरी पिंडारक मीला । बेंत बबूर हौंसिजैति मीला ॥
अंवरा चीढ़ जाइफर पोदन । सौंध सजीवनि कारी कांदन ॥
कुचिला सतपुर पीया बांसा । रूष षंभारि करिरवा रासा ॥
पारजात मंदार अनूपा । हारसिंगार बिराज सुरूपा ॥

दोहा २७५ के अन्तर्गत—

१ पलक्ष=पलास, ढाक का पेड़

२ पनस=कटहल का वृक्ष

३ पाठीर=पटीर (चंदन की लकड़ी)

४ निग्रोध=न्यग्रोध (बरगद का पेड़)

५ चलदल=पीपल

करुना[६] कुंद मल्लिका जाती[७] । कर्णिकार[८] करबीर सुभाती ॥
केतकि जूथी[९] बेल सभंगा । गुल गुलाब मोगर बहुरंगा ॥
सतपत्री[१०] मरु वामन हरना । जाही जुही चंबेली[११] बरना ॥
पुनि बंधूक निवारी[१२] फूले । मधुकर रहत बास बस भूले ॥
केसरि रूप मंजरी[१३] राजी । और फूल फुलवाइ बिराजी[१४] ॥

---

६ करुना=सं० करुण= वसंत में खिलने वाला श्वेतपुष्प । (हेमचन्द्रकृत अभिधान चिन्तामणि, करुणे मल्लिका पुष्प :, ४। २१५)

७ जाती=चमेली जाति का एक पुष्प । रामायण (किष्किंधा २८।२५) और वासवदत्ता (पृ० १०८) के अनुसार मालती वर्षा का पुष्प है। कालिदास ने मेघदूत (२/८८) में मालती का वर्षा में वर्णन किया है । अभिधान राजेन्द्र (४/२१३) के अनुसार मालती का ही पर्याय जाति है । वासवदत्ता (पृ० ६४) के अनुसार जाति पुष्प वसन्त में नहीं फूलता ।

८ कर्णिकार=(कर्णि+कृ+अण्)=कनियार का वृक्ष । "कर्णिकार के कर्णाभरण दिये मदमाते प्रणय में प्रियाल. ओ रे वसंत, 'डा० ललित दीक्षित ।

९ जूथी=सं० यूथिका (जूही) । गर्मी में खिलने वाला अत्यन्त कोमल श्वेत पुष्प ।

१० सतपत्री=सं० शतपत्रिका—अप० सयवत्तिय—से वत्तिय—सेवती

११ चंबेली । चमेली आई न० पृ०८८ में दो प्रकार की चमेली का उल्लेख पाया जाता है=एक राय चमेली, दूसरी चमेली ।

१२ निवारी=सं० नवमालिका, वसन्त में फूलने वाला सफेद फूल ।

१३ रूपमंजरी= चमेली की तरह का लाल रंग का फूल जो सदाबहार रहता है।

१४ करुना कुंद······फुलवाइ बिराजी=विभिन्न प्रकार के पुष्पों का उल्लेख किया गया है । अवधविलास में जिन पुष्पों का उल्लेख किया गया है, उनके नाम विविध ग्रंथों में पाये जाते हैं, किसी एक ग्रंथ में नहीं । सन्देश रासक (१४ वीं शती के लगभग) में सेवती, मालती, जूही, चम्पा, वकुल, केतकी, कमल का उल्लेख है । पृथ्वीचन्द्र चरित की सूची में अशोक, चम्पा नाग, पुन्नाग, प्रियंगु, पाडल, सेवती, जाई, जाई, जूहो, वेउल, बडल, श्री दमण, मरुआ, मंदार, मचकुन्द, केती के नाम है । (पृथ्वीचन्द्र चरित, १५०) । जायसी ने भी दोहा सं० ५८ और ४३३ में लगभग इन्हीं पुष्पों को गिनाया है ।

दोहा— गुलम[१५] लता त्रण लाल द्रुम बल्ली औ तुक सार ।।
बनस्पती षट् जाति हैं तिन्ह के नाम अपार ।।२७५।।

चौ०— रस हीं रस मुनि कौं बहराई । लहरा लाइ गई जु लिवाई ।।
मगन भये मुनि भेद न पावा । दगा भयो नौका पर आवा ।।
नाचति गावति करति उछाहा । गंगा हीं गंगा मुनि वाहा ।।
छल बल करि दूती चतुराई । बस्ती महि रिषि कौं लै आई ।।

दोहा— बन सरवर महि मीन मुनि करत हीं लाल बिनोद ।।
नृप त्रिय बंशी डारि करि काढ़ि कियो इक कोद ।।२७६।।

चौ०— जहँ तहँ शोर भयो रिषि आए । नगर लोग देषन कौं धाए ।।
लोक लाज मुनि कै कछु नाहीं । बनिता के पीछें लगि जाहीं ।।
निंदा लाज मान अपमानैं । बनबासी ए सब का जानैं ।।
केउ कहै मुनि मदन धकावा । अपना जप तप धर्म नसावा ।।
केउ कहैं यहि दोष न कोई । कर्त्ता करै सोइ कछु होई ।।
नारद कहँ नारी करि डारा । धीमर लै दीनों भरतारा ।।
केउ कहैं भावी अस आही । भल अनभल को दोष न काही ।।
केउ[१] कहै काम है महा अनीती । जरैं ब्ररैं पर जात न जीती ।।

१५· गुल्म······अपार=कवि ने पादप साम्राज्य को अपरमित बताते हुये उनकी प्रमुख षट जातियों का उल्लेख किया है। यह वर्गीकरण भारतीय वनस्पतिशास्त्र के अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिये नवीन है।

दोहा २७७ के अन्तर्गत—

१. केउ कहैं.........न जीती=काम महा अन्यायी है। यह शिव के द्वारा जलाये जाने पर नहीं जीता जाता। काम के दुर्दम और सार्वभौम स्वरूप के चित्रण के लिये 'अभिशप्त शिला' की निम्नलिखितपंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं=काम के महानद का कैसा आदिम प्रवाह। तटस्थित प्रज्ञ किन्तु पाते जिसकी न थाह। शिव के त्रिशूल में तने हैं त्रिलोक लोक किन्तु काम लोक यह विशिष्ट और न्यारा है। कुसुमायुध काम की सुसज्जित सेना वसंत। काम की कला के फूल से त्रिशूल हारा हैं। फूल में त्रिशूल चुभते हैं चुभने से और। फूलों की सुगन्ध फैल जाती है दिगत में। वृंत पुष्प से सहस्र बीज झरते हैं और एक बीज का विराट रूप है वसंत में।

तांडव में प्रलय विभीषिका में विश्व का समस्त बल वैभव विलीन, ध्वस्त हो सकता। काम के विरुद्ध युद्ध करने से जीवन अवरुद्ध रुद्ध हो सकता। काम को समूल नष्ट करने में सृष्टि के विनाश की विडंबना है। महाकाल शिव के उस तांडवी प्रलय में भी लास्य अनुप्राणित रहता है काम। ध्वंस में, धरा में, ध्वांत

इह तो जुवा जुक्त है आहे । सौभरि मुनि बूढ़े होइ ब्याहे ॥
सौभरि तर्पण करत गंग तट । देषे मच्छ करत क्रीडा इट ॥
पुत्र कलत्र कुटुम्ब विहारी । अस हमहूँ न भए घरबारी ॥
उठे गये कन्या के काजा । रह्यो कोई जहँ देस पति राजा ॥
कन्या बहुत रहीं घर ताहीं । देहौं एकइ बेर बिबाहीं ॥
रिषि कहै एक देहु नृप बाला । धन संतान बढ़ो भूपाला ॥
कन्या अलप बूढ़ कहँ देई । इह अपराध कौन मुनि लेई ॥
माला जो डारै गर माहीं । लेहु जाहु मैं करत हौं नाहीं ॥
मुनि महा रूप दिषायो जाई । माला लै कन्या सब धाई ॥
संग लगाइ लिए रस भीने । भोग विलास अनेकन्ह कीने ॥
महा बृद्ध होइ डिगे उद्दालक । रघु कन्या ब्याहे तप पालक ॥
ब्रह्म पुत्र रह्यो सदा उदासी । किये बरष तप सहस क्षयासी ॥
काजौं बहुत क्रिया तप कीना । स्वर्ग नहिन त्रिय पुत्र बिहीना ॥
सुनतहि हृदय बसो त्रिय बाता । स्वप्न समय बीरज भयो पाता ॥
ताहि कमल धरि गंग बहावा । रघु को कुंअरि न्हात तहँ पावा ॥
सषि सो बहत मँगाइ लयोरी । सूँघत रहि गयो गर्भ किशोरी ॥
आई रहत महल अस माहीं । देव दनुज नर की गमि नाहीं ॥
प्रगटेउ गर्भ सषिन्ह जब जान्यों । नृप रानीं सों जाइ बषान्यों ॥
राजा सुनत बहुत दुष लागा । चंदवती बन मैं लै त्यागा ॥
कोउ इक मुनि भयो देषि दयाला । कन्या मानि किए प्रतिपाला ॥
पूरन गर्भ भयो जब आही । नाँक की ओर जनत भई ताही ॥
दूध पियाइ मंजूस बनाई । बालक को दयो गंग बहाई ॥
नाकहि तैं निकसेउ गुन धामा । नासिकेत[2] ताको भयो नामा ॥

चेतना में, प्रलय समुद्र में अशेष रहता है काम । काम एक दुर्दम है, सत्य और सार्वभौम ।
दग्धशेष काम महा शिव का प्रदान है । पार्थिव शिव रूप में अनंग विश्ववंद्य है ।"
'अभिशप्त-शिला'—डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', 'वोध' सर्ग से उद्धृत ।

२. नासिकेत=रघु पुत्री से नाशिकेत के जन्म की कथा के प्रकारांतर से उद्दालक ऋषि पर काम के प्रभाव का वर्णन करना कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है । काम की दुर्दम प्रवृत्ति को चित्रित करने के लिये कवि ने सौभारि मुनि, उद्दालक ऋषि आदि की कथाओं को प्रासंगिक कथाओं के रूप में प्रबंध में विनियोजित किया है ।

बहुत अन्हात उदालक भैंटा । देष्यो जान आपनो बेटा ।।
माया लगी माइ पुनि धाई । षोजत ताहि मिली कहुँ जाई ।।
पूत को मात उदालक जानी । लैहौं याहि जाँचि रघुदानी ।।
साँची भई जान बिधि कहनी । होइहै प्रथम पुत्र पुनि ग्रहनो ।।
धावा अवधि उदालक आवा । नृप मोहि कन्या देहु सुनावा ।।
कन्या एक रही घर ओही । सो मरि गयी देत मुनि तोही ।।
बोले मुनि सुनि नृप बहु भंती । जीवति है न मुई सत्यवंती ।।
दीन्ह बिवाहि बुलाइब नोगी । या विधि भए उदालक भोगी ।।
केउ कहै ए नारि सयानी । इन्ह तैं कोइहि न बांचे प्रानी ।।
अबला नाम महाबल माँही । सब बस करैं आप बस नाहीं ।।
केउ कहै टोंना बस कीनों । षान पान महि है कछु दीनों ।।
जहाँ तहाँ अचिरज सुनि मानी । जेते मुष तेती भई बानी ।
और कोउ जो करै बुराई । काहू पहि कछु कह्यो न जाई ।।
एक अतीत करै कछु आनै । तौ उपहास सबै जग ठानै ।।

दोहा— बात पाप की पातकिन्ह देषी सुनी सुहाइ ।
जहाँ तहाँ कहै जाइ जब तब छाती हलुकाइ ।।२७७।।

चौ०— राजा सुने महामुनि आये । लैं पूजा सनमुष होइ धाये ।।
हाथ जोरि पायन्ह जाइ लागे । दरसन देषि बहुत अनुरागे ।।
अति आदर सों आसनु दीना । वेद उक्त पूजा विधि कीना ।।
बेर बेर कहैं भागि हमारे । आए गृह ए चरन तुम्हारे ।।
सफल आजु भई कृपा हमारी । आजु दान भये सब फलकारी ।।
तीरथ आजु फले जे कीनें । जनम सफल भये दरसन लीनें ।।
मुनि कहै होह सफल सब कर्मा । राज्य तेज बाढै धन धर्मा ।।
रानी जाइ चरन सब लागी । पाइ असीस जो भई सभागी ।।
बरषा भई सरे सब काजा । लै कन्या दीनी तब राजा ।।
तब सब डरहिं रिषिन्ह सों प्रानी । श्रापहि देहि होइ क्षय मानी ।।
पाइ पूजि मुनि परसन कीनें । देस ग्राम बहुतै धन दीने ।।
षबरि विभांड कहूँ सुनि पावा । लोमपाद राजा तहँ धावा ।।
देउँ श्राप सब देसहिं जारों । कुटुम्ब सहित राजहि संघारों ।।
बालक मोर पुत्र भरमावा । बिनु अपराध मोहि संतावा ।।
बन महँ रहहिं षांहि फल बीनी । मृग पशु सषा सभा हम कीनी ।।
षेत न जोतत लेन न देना । हम सों कवन अनाहक ठेना ।।
वाकै लाष लोग सिवकारी । मेरे एक रहे ब्रतधारी ।।

की तौ मोर पुत्र मोहि देहैं । की इह जीव आजु नृप लैहैं ।।
रुदन करत पछतावत भारी । पढ़ेउ[1] सुगा लिये हाइ मंजारी ।।
नृप सों तो मन मैं सो कैहों । प्रथम श्राप रांड़ो को दैहों ।।
पूछत चल्यों कौन इह ठामा । काको देस कौन के ग्रामा ।।
राजा इहाँ सयानप राखे । रिषि श्रिंगी के सब करि भाखे ।।
ग्राम नाम सुत के सुनि पाये । तब मुनि कै मन धीरज आये ।।
राजा रह्यो संतान बिहीनों । सकै तो राज्य पुत्र कहं दीनों ।।
पूत पतोहु देषि अनुरागे । मुनि विभांड तब नाचन लागे ।।
फिरि श्रिंगी रिषि बनहि सिधारे । अपने जप तप फेरि संभारे ।।

दोहा— कहँ राजा कहँ मुनि बसै कहँ कन्या वह देस ।
अनइक्षा दोऊ मिले लाल मिटै नहिं लेष ।।२७८।।

[इति श्री अवध विलासे : बुद्धि प्रकासे : सब गुन रासे : भक्तहुलासे : कृत लालदासे : रिषि श्रिंगि लोमपाद दर्शन नाम सप्तम विश्राम]

दोहा २७८ के अन्तर्गत—

१ पढ़ेउ सुगा लिये हाइ मंजारी=मार्जारी (बिल्ली) ने पढ़े हुये सुग्गे (शुक) को ले लिया । यहाँ मार्जारी ठगिनी के लिये और सुग्गे (शृंगी) के लिये प्रयुक्त है और मुख्यार्थ को छोड़कर ध्वनि पर आधारित है ।

:—: अथ अष्टम विश्राम :—:

चौ० — इह सब सुन राजा मनमना । गुन औगुन मन मै नहिं आना ॥
जप तप हरि सुमरन करि जागै । ता कहँ कर्म कछू नहिं लागै ॥
भाव अनन्य भजै जो कोई । ता कहँ कछु बाधा नहिं होई ॥
राम कृष्न जो जपै गोपाला । नीर कमल ज्यौं रहै निराला ॥
पावक को घुन कबहुँ न षाई । कंचन कों लागत नहिं काई ॥
रसना दधि घृत षात मिठाई । ताको नहिं लागत चिक काई ॥
ज्यौं जल पंछि रहत जल माहीं । अंग पंछ भींजत कहुँ नाहीं ॥
पवन धूरि धूआ लपटाने । जानत लगे लोग अनजाने ॥
बाहर भीतर घट घट वासा । सदा सुद्ध ज्यौं रहत अकासा ॥
फटिक पषान सेत है अंगा । स्याम पीत लागत है संगा ॥
दर्पन सुतह सुद्ध परकासैं । वस्तु निकट राषे आभासैं ॥
रंग रूप प्रतिविंबु जो आगे । दर्शन फटिक रहै नहि लागै ॥
काहुक कर्म लगै नहि कोई । कर्म फले जो स्पृहा न होई ॥
जिन्ह सब एक ब्रहम करि जाना । ताके भेद दृष्टि नहिं नाना ॥
आतम सदा अकर्ता जानै । विधि निषेध ज्ञानी नहिं मानै ॥

दोहा— प्रकृति[१] पुरुष तें जग भयों बिनु इच्छा अनयास ।
दूरहि ते रबि फटिक जिमि पावक लाल प्रकास ॥२७९॥

चौ०— त्रिया पुरुष सो भ्रम अविवेका । वस्तु विचारे नाहि अनेका ॥
एक[१] आतमा द्विधा प्रकासा । पति पतिनी मिलि कीन्ह विलासा॥
त्रिया पुरुष जग मँहि जे होई । शिव सक्तिहि बिनु और न कोई ॥
घटो पट नाम अनेकन्ह कहिए । केवल सूत मृत्तिका है ये ॥
बरणाश्रम जे वेद पुकारा । ए सब नाम देह के धारा ॥

दोहा २७९ के अन्तर्गत—

१ प्रकृति पुरुष ते जग भयो—पुरुष और प्रकृति के संयोग से जगत की सृष्टि हुयी । छान्दोग्य में जीव को क्रतुमय पुरुष (अथ खलु क्रतमयः पुरुषः ………छान्दोग्य, ३/१४/१) कहा गया है । बृहदारण्यक २/५/१८ के अनुसार सम्पूर्ण जगत परमपुरुष से व्याप्त है । इसी प्रकार देवी भागवतपुराण उत्तरार्ध, ९/१/५-७ के अनुसार सृष्टि में जो देवी उत्कृष्ट है वह प्रकृति है ।

पंच तत्व रचना सब जानो । तत्वहिं तत्व मिले नहिं आनो ।।
तैसे देह देह लपटानो । माटी सों माटी मिलि जानो ।।

दोहा — अमिले तत्व अपंचिकृत मिले पंचिकृत होत ।
सूक्ष्म स्थूल हैं देह द्वै प्रकृत पचीस सब होत ।।२८०।।

दोहा २८० के अन्तर्गत—

१ एक आत्मा·······और न कोई==सृष्टि के आरम्भ में एक आत्मा दो रूपों में विभक्त हुयी पुरुष और नारी के रूप में विलास किया तथा वे शिव शक्ति से अभिन्न थे । लाल दास के इस कथन में देवी भागवतपुराण ६/१/६ का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

"योगेनात्मा सृष्टि विधौ द्विधारूपो बभूव सः ।"
पुमाँश्च दक्षिणा र्धांगो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता ।।

(सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा दो रूपों में विभक्त हुआ । उसका दक्षिण अर्धांग भाग पुरुष के रूप में तथा वामार्ध भाग प्रकृति के रूप में परिणत हुआ । लालदास ने दर्शन को व्यावहारिकता प्रदान करने हेतु यह भी कहा है कि संसार में जितने भी पुरुष और स्त्री हैं वे सब उसी शिव और शक्ति के ही रूप हैं ।

२ घट पर······मृत्तिका हइये==घट में मृत्तिका और पट में तन्तु (सूत्र) कारण कार्य के रूप में विद्यमान है । घट पट के दार्शनिक सूत्रों से सृष्टि में शिव शक्ति की व्याप्ति का संकेत कवि के दर्शन शास्त्र की प्रवीणता का भी सूचक है । संत चंददास ने 'साँस छीजत पंथ आवन घटत घट पट वान तेरो' में भी घट पट के विम्ब से जीवन दर्शन का प्रतिपादन किया है । विप्र विहारी ने भी इसी प्रकार का संकेत किया है —"घट पट कुंडल नाम अधारा । माटी सूत्र हेम तहँ सारा ।"

'कृष्णायन'* विप्र विहारी, पृ०२५८

*'कृष्णायन' की एक मुद्रित प्रति विप्र विहारी के वंशधर पं० मोतीलाल शुक्ल जी के सौजन्य से प्राप्त हुयी । विप्र विहारी प्रसिद्ध तात्याटोपे द्वारा सेहुँडा में बाँदा नवाब के कामदार थे । अंग्रेजों के विद्रोह में इन्हे प्राणदंड की सजा दी गयी जिसे कवि ने मंडफा में 'सूर' नाम के किसी संत के साथ अज्ञातवास के रूप में व्यतीत किया । कालान्तर में मटौंध मे रहकर 'कृष्णायन' नामक ललित प्रबन्ध काव्य की रचना की ।

चौ०—पंच पचीस समूह सरीरा । जड़ अरु दृश्य अनित्य अधीरा ।।
सो आतम सों सदा निराला । उपजै बिनसै बृद्धहु बाला ।।
सुनहु पचीस प्रकृति के नामा । माया रचित देह कैं कामा ।।
अस्थि मांस नस त्वचा जु केशा । ए पृथिवी तें पंच प्रवेसा ।।
रेत रक्त पित लार औ स्वेदा । ए हैं पंच नीर के भेदा ।।
आलस कांति क्षुधा तृष निद्रा । ए है तेजहि पंच उपद्रा ।।
धावन चलन संकोच प्रसारन । उत्तम पंच है वायुहि कारन ।।
कंठ उदर कटि हृदय सकासा । सोस पंचधा होत अकासा ।।
एइ परसपर मिले निधाना । तब पंचीकृत होत विधाना ।।

दोहा— सौच अशुद्ध दुरगंधता दग्ध षंड औ तूल ।
शिथिल रोग स्थिति अध्रुव तन दस दोष स्थूल ।।२८१।।

चौ०—वाक श्रोत्र नभ तैं दुइ होई । कर अरु त्वचा वायु तै दोई ।।
चक्षु चरन दोउ तेज तैं जानब । जल तैं जीभ उपस्थिति मानब ।।
नासा मूल द्वार जे होई । ए पृथिवी तैं होत हैं दोई ।।

दोहा— पृथिवी गंध वायु सपरस तेज रूप रस पानि ।
शब्द अकाश ए पंच के लाल पंच गुनि जानि ।।२८२।।

चौ०—पंच तत्व दस इंद्रिय लीजै । पंच विषय मिलि एकत कीजै ।।
बुद्धि अव्यक्त एक अहंकारा । सुष दुष इच्छा द्वेष संचारा ।।
धृति चैतन्य मिलाइ संघाता । तब तन क्षेत्रहि रचत विधाता ।।
ए सब क्षेत्र जानु सविकारी । क्षेत्रज आपु रहत अविकारी ।।

दोहा— विषय भोग साधन इंद्रिय देह भोग स्थान ।
मन बुधि हैं दोउ भोक्ता कारन कर्महि जान ।।२८३।।
चित सत औ आनन्द अज अचल अद्वैत अषंड ।
स्वयं ज्योति अक्रीय ब्रह्म लाल व्याप ब्रह्मंड ।।२८४।।
स्व विषया जड़ स्वाश्रया स्वा अनभव गमि होइ ।
है जु अवस्तु स्वाभासया अवच अविद्या सोइ ।।२८५।।
जड़ अनित्य अन आत्मा ताहि आत्मा मान ।
गौर श्याम स्थूल कृश इहइ लाल अज्ञान ।।२८६।।
मन[1] बुद्धि चित अहंकार औ इन्द्री देव समाज ।
लाल भ्रमत तेरै करत हों तोहिं भ्रम तन लाज ।।२८७।।

चौ०—अग्नि धूम गृह को अंधियारा । गर्भ चर्म दर्पनु मल धारा ।।

दोहा २८७ के अन्तर्गत—

---

१ मन बुद्धि........लाज = प्रस्तुत दोहा व० प्रति में अनुपलब्ध है ।

जल सिवार सूरज घन छाये । तैसेंइ ज्ञान अज्ञान छिपाये ॥
जो कहै पाप जीव कहँ लागा । जीव ब्रह्म है एक सभागा ॥
रहत है जीव देह में वरता । कछु न करावत होत न करता ॥
मानि[2] लिये मानत हैं कोई । मन मानें राजा को होई ॥
पाप पुन्य कछु है नहिं आगै । मन की सबै कलपना जागै ॥
मन माया को कारज आही । झूँठी सबै कहत हैं ताही ॥
गीता सांख्य वेदांत बताया । साँचा ब्रह्म झूठ है माया ॥
दुष सुषउ कछु है नहिं कोई । मानि लिये व्यापत है सोई ॥
घाव सूल तन माँहि रहाई । जागत पीर सोवत मिटि जाई ॥
मिथ्या पंच तत्व विस्तारा । सांच मानि भयो जीव विचारा ॥
ज्ञानी आप मानि नहि लेई । जाको कर्म ताहि सिर देई ॥
त्वक चक्षु जीभ श्रवन अरु घ्राना । पंच ज्ञान इंद्रिय ए माना ॥
सपरस त्वचा रूप दृग जानै । रसना रस के स्वाद बषानै ॥
श्रवन सबद सुन नासा गंधा । पाँचौं लगे पंच के धंधा ॥
वाक पानि पग गुदा उपस्था । पंच कर्म इन्द्रिय ए स्वस्था ॥
बोलै वाक ग्रहन कर लागै । चलत है चरन मूल मल त्यागै ॥
करत है मूत्र मैथुन शिश्ना । जानै पंच पंच के विश्ना ॥
आन की आन विषय न जानै । तातै जड़ इंद्रिय बुधि मानै ॥
दस इंद्रिय दश देव विराजै । करत प्रकाश करावत काजै ॥
सूरज नैंन वायु त्वक माँहीं । नासा अश्वनिकुमार रहाहीं ॥
श्रवन माहि दिग देवहि जाना । कीन्ह जीभ महि बरुण ठिकाना ॥
वाक अग्नि कर इंद्र बिराजा । लिंग प्रजापति सृष्टि कैं काजा ॥
मित्र देवता गुदा समाने । विष्णु चरन मैं रहें सयाने ॥
मन महि चंद्र बुद्धि मैं ब्रह्मा । चित मै वासुदेव आश्रमा ॥
इंद्रियन कौं ए देव प्रकासै । देवन्ह को पर ब्रह्म हुलासै ।
अहंकार के स्वामी शंकर । करत रहतु हैं कर्म भयंकर ॥
कर्ता काल कर्म अहंकारा । सत्व रज तम गुन कृया अपारा ॥
ए सब जड़ माया कृत जानों । आतम चैतन्य प्रेरक मानों ।
रवि दीपक बिनु कर्म न होई । तिन्ह कों कर्म लगै नहिं कोई ॥
देषै करै कृया सब ज्ञानी । साक्षी भूत निरा अभिमानी ॥
कारन अहंकार संसारा । अहंकार अज्ञान अपारा ॥

पाठान्तर : २ मान लिये लागत कहै कोई (व० प्रति)

दोहा— जिनकी बुधि अहंकार सों परेसत करत न कर्म ।
तिन्ह कों लाल लगै नहीं कहा पाप कहा धर्म ॥२८८॥

चौ०—स्वर्ग नर्क और जीवन मरना । पाप पुन्य शुभ अशुभहि करना ॥
बद्ध मुक्त अरु सुष दुष दोई । ए सब मन कृत सत्य न कोई ॥
जाही अंग त्रिया संग लेटा । ताही अंग सुता कहँ भेंटा ॥
तो कछु पाप लग्यो नहि जाना । उह कन्या उह त्रिय करि माना ॥

दोहा— नहीं मुक्ति पाताल महि नहीं मुक्ति आकास ।
लाल मुक्ति जल थल नहीं मुक्ति आस भये नास ॥२८९॥

चौ०—जो कछु बचन दृष्टि महि आवै । मन अरु बुद्धि जहाँ लगि धावै ॥
ते सब झूठ जानिये माया । ज्ञान ग्रंथ वेदांत बताया ॥
मिथ्या देह देह के संगी । सत्य आत्मा सदा अभंगी ॥
जैसें वन्ध्या पुत्र विवाहा । झूठे पुत्र कलल सराहा ॥
ज्ञानी निर्भय करै बिवहारा । स्वप्न समान जानि संसारा ॥
गंधर्व नगर सदा किहि देषा । मृग तृष्णा पानी का लेषा ॥
ससा सींग का धनुष बनावा । को मारा तासों केहि पावा ॥
चित्र बाघ कहा सर्प है सांचा । तासों डरै अज्ञानी काँचा ॥
गगन के पुहुप वास किन पावा । बाजीगरा आंव किन षावा ॥
शुभ मर्कट मकरी अगि एई । अपना बंधु आपु करि लेई ॥
सोक मोह भय अज्ञ कै जागै । ज्ञानी के निभरे नहिं लागै ॥
मिथ्या जग इमि सत्य प्रकासै । रज्जु अहि सीप रजत्व अभासै ॥
सोक अस्थान हजारन्ह हैं ए । भय अस्थान सयकरे कहिए ॥
मूरष होइ सोच : बिस्तारै । पंडित हृदय एक नहिं धारै ॥
जो जल सिंधु करत सब धामा । ज्ञानिहि जाइ भजत सब कामा ॥
सागर नीर विषय मुनि मांही । परे जाइ आभासत नाहीं ॥
ज्ञानी लोक दिषाव न होवै । आन के घर नाउँनि ज्यों रोवै ॥
जैसे पशु पक्षी बिस्तारा । घर करि करि भरि रहे अपारा ॥
दावानल प्रगटै जब आई । तब गिरि तजि सब जाइ पटाई ॥
तैसें ब्रह्म ज्ञान जब जागै । ज्ञानहि कर्म भर्म तजि भागै ॥

दोहा— अहंकार[1] बुधि प्रति कहत ज्ञान न सोवत जगाउ ।
उठिहैं परमानन्द जब तू न मैं न जग भाउ ॥२६०॥

चौ० — आया ज्ञान जानिये जबहीं । लज्जा भय उपजै नहिं कबहीं ॥
राग द्वेष निंदा सनमाना । माता सुता त्रिया सम जाना ॥
संपति बिपति भोग दुष भारी । जीवन मरन एक अनुहारी ॥
स्वपच वृषभ पर विप्र समाना । सब महँ एक ब्रह्म जिन्ह जाना ॥
आपु समान समुझि सब[1] माँहीं । काहुइ कबुंहि सतावै नाहीं ॥
अपनो देह आनि करि लेषै । साक्षी भयो तमासा देषै ॥
हठ करिकै कछु करै न काजा । सहजै सहज जो बनैं समाजा ॥
विषय बतास डेर[2] नहिं भारी । पर्वत सम धीरज रहै धारी ॥
अटकि न रहै भोग सुष पाई । मधुकर जिमि रस लेत बंधाई ॥
हरष न सकुच जाइ कछु वैसा । राजा सन घूरासन तैसा ॥
ज्ञानी लाल ढोल भयो डोलै । सहजहिं मौन बुलाएहि बोलै ॥
जैसे अग्नि जगाएहि जागै । ज्ञानवान तैसेहि जग लागै ॥
स्वल्प लाभ संतोष सदाहीं । ज्ञानी लाल जानिए ताहीं ॥
वापी कूप तडागन्ह जोई । कृपा गहत जल मैं सब होई ॥
जो फल सकल बेद आराधै । सो सब एक ज्ञान कै साधै ॥
इह उपदेश लाल हैं साँचा । या बिनु और सबै मत कांचा ॥

दोहा— ब्याह कियो बिगरै जती लाल कहै कोउ कूर ।
जिन्ह के भ्रम उपजै हुतो सो नृप कीयो दूर ॥२६१॥

चौ०—और अनेक कहे नृप गाथा । बैठे सभा रहैं एक साथा ॥
कबहुँक अश्व देषै दौराई । कबहुँक गज को होत लराई ॥
कबहुँ कि देषै मल्ल अषारा । कबहुँकि मृग चीता कर मारा ॥
कबहुँ कि चौपर औ सतरंजा । कबहुँ कि गूढ़ अर्थ मन रंजा ॥
कबहुँक बान निसान चलाई । कबहुँक नाच होत मनभाई ॥
कबहुँक नट विट भांड तमासा । देषत लाल होहिं रस हासा ॥
कबहुँक षेलै चढ़ि चौगाना । कबहुँ कि करहि शिकार सयाना ॥
कबहुँ कि जल अरु बाग बिहारा । कबहु कि मल्लन्ह केर अषारा ॥
कबहुँ कि बैठि करहिं कविताई । गीत छन्द गाहा मन भाई ॥
ते सब छन्द हैं पिंगल गाए । कहत हौं कछुक नाम सुनि पाए ॥

दोहा २६० के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ अहंकार बुधि..........जग भाउ=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में अनुपलब्ध है ।

दोहा २६१ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ मन (व० प्रति)
२ डिगै (व० प्रति)

छन्द सुगीतक रमनक हीरा[1] । सोमराज मधु छन्द अभीरा ॥
मरहट्ठा[2] कुंडलिया[3] सोहा । गाहा प्रिया सोरठा दोहा ॥
छप्पय[4] नाग स्वरूपी[5] रोला[6] । पदमावती नाराच अमोला ॥

दोहा २८२ के अन्तर्गत—

१ हीरा=हीरा छंद का लक्षण इस प्रकार है—

"भगन सगन रगना जगन मगन रगन पुनि जानि ।
एक चरन यो चारिहू छंद हीर पहिचान ॥

छंदसार, वैष्णव नारायणदास (चित्रकूट, राज आश्रम से प्राप्त एक दुर्लभ हस्तलेख, छ० सं० ३४)

२ मरहट्ठा='मरहट्ठा' छंद का लक्षण इस प्रकार है—

(अ) "छक्कल चौकल पंच पुनि अंतह गुरु लघु देहु ।
दस वसु ग्यारह करि विरति मरहट्ठा लषि लेहु ॥

—पिंगल, सुखदेव, चंददास शो० सं० प्रति, छ० ६८

(ब) "सबै कला उनतीस दस वसु रुद्रनि विश्राम ।
पिंगल मत कवि कहत हैं छंद मरहठा नाम ॥

—छन्दसार, वैष्णव नारायणदास छ० सं० ३८

३ कुंडलिया="प्रथम दोहरा कीजिये पुनि रोला तिहि ठाम ।
प्रथम भाग चौथे जमक कुंडलिया इक नाम ॥"

—छन्दसार, वैष्णव नारायणदास, छ० सं० ४४

४ छप्पय="रोला प्रथम बखानिये उल्लाला धरि अंत ।
एक रीति छप्पै यहै लक्षण कहत अनंत ॥"

छन्दसार, 'वैष्णव नारायणदास, चित्रकूट राज आश्रम से प्राप्त एक दुर्लभ हस्तलेख,

५ नाग स्वरूपी=नाग स्वरूपिणी छन्द । इस छंद के पाद का दूसरा, चौथा छठा और आठवाँ अक्षर दीर्घ हो उसे नागस्वरूपिणी छन्द कहते हैं—

'द्वितुर्यषष्ठमष्टमं गुरू प्रयोजितं यदा ।
तदा निवेदयन्ति तां बुधा नगस्वरूपिणीम् ॥"

—श्रुतिबोध, कालिदास, ६१३

६ रोला=रोला का लक्षण इस प्रकार है—

"वीस मत्र जामे प्रथम अंत गुरू द्वै जानि ।
सबै मत्त चौबीस इक चरन सो रोला मानि ॥"

छन्दसार, वैष्णव नारायणदास, चित्रकूट आश्रम से प्राप्त एक दुर्लभ हस्तलेख, छ० ३५ ।

छन्द तरुनिजा षटपद धूता । तोमर[7] कुलका स्वागत द्रुता ।।
छंद नवपदी अरिलहु मोदक । चंद्रवर्त्म[8] मनि चामर तोटक[9] ।।
सिंहावलोकन[10] बंधुक माला । बान तुरंगम हंस बिशाला ।।
मनोरमा मनसिज अनकूला । अमृत गति[11] तारक[12]सुषमूला ।।
पंकज वाटिका प्रमिताक्षरा[13] । मधुभारा अमृत गति मदिरा ।।

---

७ तोमर=आदित्य वर्ग के छन्दों में तोमर १२ मात्रिक छन्द हैं। कहीं-कहीं तोमर छन्द का लक्षण वर्णवृत्त को भाँति सजज भी मिलता है किन्तु महाकवि तुलसी ने तोमर को मात्रिक छन्द ही माना है और यही उचित भी प्रतीत होता है क्योंकि वर्णवृत्त की अपेक्षा मात्रिक छन्द का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।
(छन्द प्रभाकर, जगन्नाथ भानु, पृ० ४५)

८ चंद्रवर्त्म=चन्द्रवर्त्म निगदन्ति रनभसैः। (गण=र, न, भ, स, (४,८)

९ तोटक=वद तोटकमब्धिसकारयुतम् । (गण=स, स, स, स, (४,४,४)
इसके प्रत्येक चरण में १२ मात्राएँ होती हैं तथा चरण के अन्त में गुरु लघु होता है।

१० सिंहावलोकन=एक छन्द विशेष।

११ अमृत गति=अमृतगति का लक्षण इस प्रकार है—
"भत्रय शोभित संगत कर्णः एक सुसंगत पंक्तिक वर्णः
पन्नग राज निवेदित बंधुः राजति भूपति संसदिबंधुः ।।"
—वाणी भूषण, दामोदर, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति) पृ० ८
"करनु हस्तु पुनि करनु करु सुषमा कहियतु ताहि ।
विप्र हास पुनि विप्र गुरु वहै अमृत गति आहि ।।"
—पिंगल, सुखदेव, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति, ६७४

१२ तारक="तोटक के गुरु अंत दै कहिए तारक छंद"
—पिंगल, सुखदेव, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति छन्द २३

१३ प्रतिमाक्षर= (अ) प्रतिमाक्षरा सजससैः कथितः (गण=न,न,र,र (७,५)
(ब) "कुसुम गंध रस भगन द्वै रगनु सुंदरी जानि ।
हस्थ पयोवन हस्थ द्वै प्रतिमाक्षरा वषानि ।।"
—पिंगल, सुखदेव, चंददास सा० शो० सं०, हस्त० प्रति छन्द १४

बहुत अन्हात उदालक भैंटा। देष्यो जान आपनो बेटा ॥
माया लगी माइ पुनि धाई। षोजत ताहि मिली कहुँ जाई ॥
पूत की मात उदालक जानी। लैहौं याहि जाँचि रघुदानी ॥
साँची भई जान बिधि कहनी। होइहै प्रथम पुत्र पुनि ग्रहनी ॥
धावा अवधि उदालक आवा। नृप मोहि कन्या देहु सुनावा ॥
कन्या एक रही घर ओही। सो मरि गयी देत मुनि तोही ॥
बोले मुनि सुनि नृप बहु भंती। जीवति है न मुई सत्यवंती ॥
दीन्ह बिवाहि बुलाइब नोगी। या विधि भए उदालक भोगी ॥
केउ कहै ए नारि सयानी। इन्ह तैं कोइहि न बांचे प्रानी ॥
अबला नाम महाबल माँही। सब बस करैं आप बस नाहीं ॥
केउ कहै टोंना बस कीनों। षान पान महि है कछु दीनों ॥
जहाँ तहाँ अचिरज सुनि मानी। जेते मुष तेती भई बानी ॥
और कोउ जो करै बुराई। काहू पहि कछु कह्यो न जाई ॥
एक अतीत करै कछु आनै। तौ उपहास सबै जग ठानै ॥

दोहा— बात पाप की पातकिन्ह देषी सुनी सुहाइ।
जहाँ तहाँ कहै जाइ जब तब छाती हलुकाइ ॥२७७॥

चौ०— राजा सुने महामुनि आये। लैं पूजा सनमुष होइ धाये ॥
हाथ जोरि पायन्ह जाइ लागे। दरसन देषि बहुत अनुरागे ॥
अति आदर सों आसनु दीना। वेद उक्त पूजा विधि कीना ॥
बेर बेर कहैं भागि हमारे। आए गृह ए चरन तुम्हारे ॥
सफल आजु भई कृपा हमारी। आजु दान भये सब फलकारी ॥
तीरथ आजु फले जे कीनें। जनम सफल भये दरसन लीनें ॥
मुनि कहै होह सफल सब कर्मा। राज्य तेज बाढै धन धर्मा ॥
रानी जाइ चरन सब लागी। पाइ असीस जो भई सभागी ॥
बरषा भई सरे सब काजा। लै कन्या दीनो तब राजा ॥
तब सब डरहिं रिषिन्ह सों प्रानी। श्रापहि देहि होइ क्षय मानी ॥
पाइ पूजि मुनि परसन कीनें। देस ग्राम बहुतै धन दीने ॥
षबरि विभांड कहूँ सुनि पावा। लोमपाद राजा तहँ धावा ॥
देउँ श्राप सब देसहि जारों। कुटुम्ब सहित राजहि संघारों ॥
बालक मोर पुत्र भरमावा। बिनु अपराध मोहि संतावा ॥
बन महँ रहहिं षांहि फल बीनी। मृग पशु सषा सभा हम कीनी ॥
षेत न जोतत लेन न देना। हम सों कवन अनाहक ठेंना ॥
वाकै लाष लोग सिवकारी। मेरे एक रहे ब्रतधारी ॥

की तौ मोर पुत्र मोहि दैहैं । की इह जीव आजु नृप लैहैं ॥
रुदन करत पछतावत भारी । पढ़ेउ[1] सुगा लिये हाइ मंजारी ॥
नृप सों तो मन मैं सो कैहों । प्रथम श्राप रांड़ी को दैहों ॥
पूछत चल्यो कौन इह ठामा । काको देस कौन के ग्रामा ॥
राजा इहाँ सयानप राषे । रिषि श्रिंगी के सब करि भाषे ॥
ग्राम नाम सुत के सुनि पाये । तब मुनि कै मन धीरज आये ॥
राजा रह्यो संतान बिहीनों । सकै तो राज्य पुत्र कहँ दीनों ॥
पूत पतोह देषि अनुरागे । मुनि बिभांड तब नाचन लागे ॥
फिरि श्रिंगी रिषि बनहि सिधारे । अपने जप तप फेरि संभारे ॥

दोहा— कहँ राजा कहँ मुनि बसै कहँ कन्या वह देस ।
अनइक्षा दोऊ मिले लाल मिटै नहिं लेष ॥२७८॥

[इति श्री अवध विलासे : बुद्धि प्रकासे : सब गुन रासे : भक्तहुलासे : कृत लालदासे : रिषि श्रिंगि लोमपाद दर्शन नाम सप्तम विश्राम]

दोहा २७८ के अन्तर्गत—

१ पढ़ेउ सुगा लिये हाइ मंजारी=मार्जारी (बिल्ली) ने पढ़े हुये सुग्गे (शुक) को ले लिया । यहाँ मार्जारी ठगिनी के लिये और सुग्गे (शृंगी) के लिये प्रयुक्त है और मुख्यार्थ को छोड़कर ध्वनि पर आधारित है ।

:—: अथ अष्टम विश्राम :—:

चौ० — इह सब सुन राजा मनमना । गुन औगुन मन मै नहिं आना ॥
जप तप हरि सुमरन करि जागै । ता कहँ कर्म कछू नहिं लागै ॥
भाव अनन्य भजै जो कोई । ता कहँ कछु बाधा नहिं होई ॥
राम कृष्न जो जपै गोपाला । नीर कमल ज्यौं रहै निराला ॥
पावक को घुन कबहुँ न षाई । कंचन कों लागत नहिं काई ॥
रसना दधि घृत षात मिठाई । ताको नहिं लागत चिक काई ॥
ज्यौं जल पंछि रहत जल माहीं । अंग पंछ भींजत कहुँ नाहीं ॥
पवन धूरि धूआ लपटाने । जानत लगे लोग अनजाने ॥
बाहर भीतर घट घट वासा । सदा सुद्ध ज्यौं रहत अकासा ॥
फटिक पषान सेत है अंगा । स्याम पीत लागत है संगा ॥
दर्पन सुतह सुद्ध परकासैं । वस्तु निकट राषे आभासैं ॥
रंग रूप प्रतिबिंबु जो आगे । दर्शन फटिक रहै नहि लागै ॥
काहुक कर्म लगै नहि कोई । कर्म फले जो स्पृहा न होई ॥
जिन्ह सब एक ब्रह्म करि जाना । ताके भेद दृष्टि नहिं नाना ॥
आतम सदा अकर्ता जानै । विधि निषेध ज्ञानी नहिं मानै ॥

दोहा— प्रकृति[१] पुरुष तें जग भयों बिनु इच्छा अनयास ।
दूरहि ते रबि फटिक जिमि पावक लाल प्रकास ॥२७९॥

चौ०— त्रिया पुरुष सो भ्रम अविवेका । वस्तु विचारे नाहि अनेका ॥
एक[१] आतमा द्विधा प्रकासा । पति पतिनी मिलि कीन्ह विलासा॥
त्रिया पुरुष जग महिं जे होई । शिव सक्तिहि बिनु और न कोई ॥
घटो पट नाम अनेकन्ह कहिए । केवल सूत मृत्तिका है ये ॥
बरणाश्रम जे वेद पुकारा । ए सब नाम देह के धारा ॥

दोहा २७९ के अन्तर्गत—

१ प्रकृति पुरुष ते जग भयो—पुरुष और प्रकृति के संयोग से जगत की सृष्टि हुयी । छान्दोग्य में जीव को क्रतुमय पुरुष (अथ खलु क्रतमयः पुरुषः ·········छान्दोग्य, ३/१४/१) कहा गया है । बृहदारण्यक २/५/१८ के अनुसार सम्पूर्ण जगत परमपुरुष से व्याप्त है । इसी प्रकार देवी भागवतपुराण उत्तरार्ध, ९/१/५-७ के अनुसार सृष्टि में जो देवी उत्कृष्ट है वह प्रकृति है ।

पंच तत्व रचना सब जानो । तत्वहिं तत्व मिले नहिं आनो ।।
तैसे देह देह लपटानो । माटी सों माटी मिलि जानो ।।

दोहा — अमिले तत्व अपंचिकृत मिले पंचिकृत होत ।
सूक्ष्म स्थूल हैं देह द्वै प्रकृत पचीस सब होत ।।२८०।।

दोहा २८० के अन्तर्गत—

१ एक आत्मा·········और न कोई==सृष्टि के आरम्भ में एक आत्मा दो रूपों में विभक्त हुयी पुरुष और नारी के रूप में विलास किया तथा वे शिव शक्ति से अभिन्न थे । लाल दास के इस कथन में देवी भागवतपुराण ६/१/६ का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

"योगेनात्मा सृष्टि विधौ द्विधारूपो बभूव सः ।"
पुमांश्च दक्षिणा र्धांगो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता ।।

(सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा दो रूपों में विभक्त हुआ । उसका दक्षिण अर्धांग भाग पुरुष के रूप में तथा वामार्ध भाग प्रकृति के रूप में परिणत हुआ । लालदास ने दर्शन को व्यावहारिकता प्रदान करने हेतु यह भी कहा है कि संसार में जितने भी पुरुष और स्त्री हैं वे सब उसी शिव और शक्ति के ही रूप हैं ।

२ घट पर·····मृत्तिका हइये==घट में मृत्तिका और पट में तन्तु (सूत्र) कारण कार्य के रूप में विद्यमान है । घट पट के दार्शनिक सूत्रों से सृष्टि में शिव शक्ति की व्याप्ति का संकेत कवि के दर्शन शास्त्र की प्रवीणता का भी सूचक है । संत चंददास ने 'साँस छीजत पंथ आवन घटत घट पट वान तेरो' में भी घट पट के बिम्ब से जीवन दर्शन का प्रतिपादन किया है । विप्र विहारी ने भी इसी प्रकार का संकेत किया है —"घट पट कुंडल नाम अधारा । माटी सूत्र हेम तहँ सारा ।"
'कृष्णायन'* विप्र विहारी, पृ०२५८

*'कृष्णायन' की एक मुद्रित प्रति विप्र विहारी के वंशधर पं० मोतीलाल शुक्ल जी के सौजन्य से प्राप्त हुयी । विप्र विहारी प्रसिद्ध तात्याटोपे द्वारा सेहुँडा में बाँदा नवाब के कामदार थे । अंग्रेजों के विद्रोह में इन्हे प्राणदंड की सजा दी गयी जिसे कवि ने मँडफा में 'सूर' नाम के किसी संत के साथ अज्ञातवास के रूप में व्यतीत किया । कालान्तर में मटौंध मे रहकर 'कृष्णायन' नामक ललित प्रबन्ध काव्य की रचना की ।

चौ०—पंच पचीस समूह सरीरा । जड़ अरु दृश्य अनित्य अधीरा ।।
सो आतम सों सदा निराला । उपजै बिनसै बृद्धहु बाला ।।
सुनहु पचीस प्रकृति के नामा । माया रचित देह कैं कामा ।।
अस्थि मांस नस त्वचा जु केशा । ए पृथिवी तें पंच प्रवेसा ।।
रेत रक्त पित लार औ स्वेदा । ए हैं पंच नीर के भेदा ।।
आलस कांति क्षुधा तृष निद्रा । ए है तेजहि पंच उपद्रा ।।
धावन चलन संकोच प्रसारन । उत्तम पंच है वायुहि कारन ।।
कंठ उदर कटि हृदय सकासा । सोस पंचधा होत अकासा ।।
एइ परसपर मिले निधाना । तब पंचीकृत होत विधाना ।।

दोहा— सौच अशुद्ध दुरगंधता दग्ध षंड औ तूल ।
शिथिल रोग स्थिति अध्रुव तन दस दोष स्थूल ।।२८१।।

चौ०—वाक श्रोत्र नभ तैं दुइ होई । कर अरु त्वचा वायु तै दोई ।।
चक्षु चरन दोउ तेज तैं जानब । जल तैं जीभ उपस्थिति मानब ।।
नासा मूल द्वार जे होई । ए पृथिवी तैं होत हैं दोई ।।

दोहा— पृथिवी गंध वायु सपरस तेज रूप रस पानि ।
शब्द अकाश ए पंच के लाल पंच गुनि जानि ।।२८२।।

चौ०—पंच तत्व दस इंद्रिय लीजै । पंच विषय मिलि एकत कीजै ।।
बुद्धि अव्यक्त एक अहंकारा । सुष दुष इच्छा द्वेष संचारा ।।
धृति चैतन्य मिलाइ संघाता । तब तन क्षेत्रहि रचत विधाता ।।
ए सब क्षेत्र जानु सविकारी । क्षेत्रज आपु रहत अविकारी ।।

दोहा— विषय भोग साधन इंद्रिय देह भोग स्थान ।
मन बुधि हैं दोउ भोक्ता कारन कर्महि जान ।।२८३।।
चित सत औ आनन्द अज अचल अद्वैत अषंड ।
स्वयं ज्योति अक्रीय ब्रह्म लाल व्याप ब्रह्मंड ।।२८४।।
स्व विषया जड़ स्वाश्रया स्वा अनभव गमि होइ ।
है जु अवस्तु स्वाभासया अवच अविद्या सोइ ।।२८५।।
जड़ अनित्य अन आत्मा ताहि आत्मा मान ।
गौर श्याम स्थूल कृश इहइ लाल अज्ञान ।।२८६।।
मन[1] बुद्धि चित अहंकार औ इन्द्री देव समाज ।
लाल भ्रमत तेरै करत हों तोहिं भ्रम तन लाज ।।२८७।।

चौ०—अग्नि धूम गृह को अंधियारा । गर्भ चर्म दर्पनु मल धारा ।।
दोहा २८७ के अन्तर्गत—

---

१ मन बुद्धि........लाज=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में अनुपलब्ध है ।

जल सिवार सूरज घन छाये । तैसँइ ज्ञान अज्ञान छिपाये ॥
जो कहै पाप जीव कहँ लागा । जीव ब्रह्म है एक सभागा ॥
रहत है जीव देह में वरता । कछु न करावत होत न करता ॥
मानि[2] लिये मानत हैं कोई । मन मारें राजा को होई ॥
पाप पुन्य कछु है नहि आगै । मन की सबै कलपना जागै ॥
मन माया को कारज आही । झूंठो सबै कहत हैं ताही ॥
गीता सांख्य वेदांत बताया । सांचा ब्रह्म झूठ है माया ॥
दुष सुषउ कछु है नहिं कोई । मानि लिये व्यापत है सोई ॥
घाव सूल तन माँहि रहाई । जागत पीर सोवत मिटि जाई ॥
मिथ्या पंच तत्व विस्तारा । सांच मानि भयो जीव विचारा ॥
ज्ञानी आप मानि नहि लेई । जाको कर्म ताहि सिर देई ॥
त्वक चक्षु जीभ श्रवन अरु घ्राना । पंच ज्ञान इंद्रिय ए माना ॥
सपरस त्वचा रूप दृग जानै । रसना रस के स्वाद बषानै ॥
श्रवन सबद सुन नासा गंधा । पांचौं लगे पंच के धंधा ॥
वाक पानि पग गुदा उपस्था । पंच कर्म इन्द्रिय ए स्वस्था ॥
बोलें वाक ग्रहन कर लागै । चलत है चरन मूल मल त्यागै ॥
करत है मूत्र मैथुन शिश्ना । जानै पंच पंच के विश्ना ॥
आन की आन विषय न जानै । तातै जड़ इंद्रिय बुधि मानै ॥
दस इंद्रिय दश देव विराजै । करत प्रकाश करावत काजै ॥
सूरज नैन वायु त्वक माँहीं । नासा अश्वनिकुमार रहाहीं ॥
श्रवन माहिं दिग देवहि जाना । कीन्ह जीभ महिं बरुण ठिकाना ॥
वाक अग्नि कर इंद्र बिराजा । लिंग प्रजापति सृष्टि कैं काजा ॥
मित्र देवता गुदा समाने । विष्णु चरन मैं रहें सयाने ॥
मन महिं चंद्र बुद्धि मैं ब्रह्मा । चित मै वासुदेव आश्रमा ॥
इंद्रियन कौं ए देव प्रकासै । देवन्ह को पर ब्रह्म हुलासै ।
अहंकार के स्वामी शंकर । करत रहतु हैं कर्म भयंकर ॥
कर्ता काल कर्म अहंकारा । सत्व रज तम गुन कृया अपारा ॥
ए सब जड़ माया कृत जानों । आतम चैतन्य प्रेरक मानों ।
रवि दीपक बिनु कर्म न होई । तिन्ह कों कर्म लगै नहिं कोई ॥
देषै करै कृया सब ज्ञानी । साक्षी भूत निरा अभिमानी ॥
कारन अहंकार संसारा । अहंकार अज्ञान अपारा ॥

पाठान्तर : २ मान लिये लागत कहै कोई (व० प्रति)

दोहा— जिनकी बुधि अहंकार सों परसत करत न कर्म ।
तिन्ह कों लाल लगै नहीं कहा पाप कहा धर्म ॥२८८॥

चौ०—स्वर्ग नर्क और जीवन मरना । पाप पुन्य शुभ अशुभहि करना ॥
बद्ध मुक्त अरु सुष दुष दोई । ए सब मन कृत सत्य न कोई ॥
जाही अंग त्रिया संग लेटा । ताही अंग सुता कहँ भेंटा ॥
तो कछु पाप लग्यो नहिं जाना । उह कन्या उह त्रिय करि माना ॥

दोहा— नहीं मुक्ति पाताल महि नहीं मुक्ति आकास ।
लाल मुक्ति जल थल नहीं मुक्ति आस भये नास ॥२८९॥

चौ०—जो कछु बचन दृष्टि महि आवै । मन अरु बुद्धि जहाँ लगि धावै ॥
ते सब झूठ जानिये माया । ज्ञान ग्रंथ वेदांत बताया ॥
मिथ्या देह देह के संगी । सत्य आत्मा सदा अभंगी ॥
जैसें वन्ध्या पुत्र विवाहा । झूठे पुत्र कलत्र सराहा ॥
ज्ञानी निर्भय करै बिवहारा । स्वप्न समान जानि संसारा ॥
गंधर्व नगर सदा किहि देषा । मृग तृष्णा पानी का लेषा ॥
ससा सींग का धनुष बनावा । को मारा तासों केहि पावा ॥
चित्र बाघ कहा सर्प है सांचा । तासों डरै अज्ञानी काँचा ॥
गगन के पुहुप वास किन पावा । बाजीगरा आंव किन षावा ॥
शुभ मर्कट मकरी अगि एई । अपना बंधु आपु करि लेई ॥
सोक मोह भय अज्ञ कै जागै । ज्ञानी के निभरे नहिं लागै ॥
मिथ्या जग इमि सत्य प्रकासै । रजु अहि सीप रजत्व अभासै ॥
सोक अस्थान हजारन्ह हैं ए । भय अस्थान सयकरे कहिए ॥
मूरष होइ सोच बिस्तारै । पंडित हृदय एक नहिं धारै ॥
जो जल सिंधु करत सब धामा । ज्ञानिहि जाइ भजत सब कामा ॥
सागर नीर विषय मुनि मांही । परे जाइ आभासत नाहीं ॥
ज्ञानी लोक दिषाव न होवै । आन के घर नाउँनि ज्यों रोवै ॥
जैसे पशु पक्षी बिस्तारा । घर करि करि भरि रहे अपारा ॥
दावानल प्रगटै जब आई । तब गिरि तजि सब जाइ पटाई ॥
तैसें ब्रह्म ज्ञान जब जागै । ज्ञानहि कर्म भर्म तजि भागै ॥

दोहा— अहंकार[१] बुधि प्रति कहत ज्ञान न सोवत जगाउ ।
उठिहैं परमानन्द जब तू न मैं न जग भाउ ॥२६०॥

चौ०— आया ज्ञान जानिये जबहीं । लज्जा भय उपजै नहिं कबहीं ॥
राग द्वेष निंदा सनमाना । माता सुता त्रिया सम जाना ॥
संपति बिपति भोग दुष भारी । जीवन मरन एक अनुहारी ॥
स्वपच वृषभ पर विप्र समाना । सब महँ एक ब्रह्म जिन्ह जाना ॥
आपु समान समुझि सब[१] माँहीं । काहुइ कबंहि सतावै नाही ॥
अपनी देह आनि करि लेषै । साक्षी भयो तमासा देषै ॥
हठ करिकै कछु करै न काजा । सहजै सहज जो बनैं समाजा ॥
विषय बतास डेर[२] नहिं भारी । पर्वत सम धीरज रहै धारी ॥
अटकि न रहै भोग सुष पाई । मधुकर जिमि रस लेत बंधाई ॥
हरष न सकुच जाइ कछु वैसा । राजा सन धूरासन तैसा ॥
ज्ञानी लाल ढोल भयो डोलै । सहजहिं मौन बुलाएहि बोलै ॥
जैसे अग्नि जगाएहि जागै । ज्ञानवान तैसेहि जग लागै ॥
स्वल्प लाभ संतोष सदाही । ज्ञानी लाल जानिए ताहीं ॥
वापी कूप तडागन्ह जोई । कृपा गहत जल मैं सब होई ॥
जो फल सकल बेद आराधै । सो सब एक ज्ञान कै साधै ॥
इह उपदेश लाल हैं साँचा । या बिनु और सबै मत कांचा ॥

दोहा— व्याह कियो बिगरै जती लाल कहै कोउ कूर ।
जिन्ह के भ्रम उपजै हुतो सो नृप कीयो दूर ॥२६१॥

चौ०—और अनेक कहे नृप गाथा । बैठे सभा रहैं एक साथा ॥
कबहुँक अश्व देषै दौराई । कबहुँक गज की होत लराई ॥
कबहुँ कि देषै मल्ल अषारा । कबहुँकि मृग चीता कर मारा ॥
कबहुँ कि चौपर औ सतरंजा । कबहुँ कि गूढ़ अर्थ मन रंजा ॥
कबहुँक बान निसान चलाई । कबहुँक नाच होत मनभाई ॥
कबहुँक नट विट भांड तमासा । देषत लाल होहिं रस हासा ॥
कबहुँक षेलै चढ़ि चौगाना । कबहुँ कि करहि शिकार सयाना ॥
कबहुँ कि जल अरु बाग बिहारा । कबहुँ कि मल्लन्ह केर अषारा ॥
कबहुँ कि बैठि करहिं कविताई । गीत छन्द गाहा मन भाई ॥
ते सब छन्द हैं पिंगल गाए । कहत हौं कछुक नाम सुनि पाए ॥

दोहा २६० के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ अहंकार बुधि..........जग भाउ=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में अनुपलब्ध है ।

दोहा २६१ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ मन (व० प्रति)
२ डिगै (व० प्रति)

छन्द सुगीतक रमनक हीरा[१] । सोमराज मधु छन्द अभीरा ।।
मरहट्टा[२] कुंडलिया[३] सोहा । गाहा प्रिया सोरठा दोहा ।।
छप्पय[४] नाम स्वरूपी[५] रोला[६] । पदमावती नाराच अमोला ।।

दोहा २६२ के अन्तर्गत—

१ हीरा=हीरा छंद का लक्षण इस प्रकार है—

"भगन सगन रगना जगन मगन रगन पुनि जानि ।
एक चरन यो चारिहू छंद हीर पहिचान ।।

छंदसार, वैष्णव नारायणदास (चित्रकूट, राज आश्रम से प्राप्त एक दुर्लभ हस्तलेख, छ० सं० ३४)

२ मरहट्टा='मरहट्टा' छंद का लक्षण इस प्रकार है—

(अ) "छक्कल चौकल पंच पुनि अंतह गुरु लघु देहु ।
दस वसु ग्यारह करि विरति मरहट्टा लषि लेहु ।।
—पिंगल, सुखदेव, चंददास शो० सं० प्रति, छ० ६८

(ब) "सबै कला उनतीस दस वसु रुद्रनि विश्राम ।
पिंगल मत कवि कहत हैं छंद मरहठा नाम ।।
—छन्दसार, वैष्णव नारायणदास छ० सं० ३८

३ कुंडलिया="प्रथम दोहरा कीजिये पुनि रोला तिहि ठाम ।
प्रथम भाग चौथे जमक कुंडलिया इक नाम ।।"
—छन्दसार, वैष्णव नारायणदास, छ० सं० ४४

४ छप्पय="रोला प्रथम बखानिये उल्लाला धरि अंत ।
एक रीति छप्पै यहै लक्षण कहत अनंत ।।"

छन्दसार, वैष्णव नारायणदास, चित्रकूट राज आश्रम से प्राप्त एक दुर्लभ हस्तलेख,

५ नाग स्वरूपी=नाग स्वरूपिणी छन्द । इस छंद के पाद का दूसरा, चौथा छठा और आठवाँ अक्षर दीर्घ हो उसे नागस्वरूपिणी छन्द कहते हैं—

'द्वितुर्यषष्ठमष्टमं गुरू प्रयोजितं यदा ।
तदा निवेदयन्ति तां बुधा नगस्वरूपिणीम् ।।"
—श्रुतिबोध, कालिदास, ६१३

६ रोला=रोला का लक्षण इस प्रकार है—

"वीस मत्र जामे प्रथम अंत गुरू द्वै जानि ।
सबै मत्त चौवीस इक चरन सो रोला मानि ।।"

छन्दसार, वैष्णव नारायणदास, चित्रकूट आश्रम से प्राप्त एक दुर्लभ हस्तलेख, छ० ३५ ।

छन्द तरुनिजा षटपद धूता । तोमर[7] कुलका स्वागत हुता ॥
छंद नवपदी अरिलहु मोदक । चंद्रवर्त्म[8] मनि चामर तोटक[9] ॥
सिंहावलोकन[10] बंधुक माला । बान तुरंगम हंस बिशाला ॥
मनोरमा मनसिज अनकूला । अमृत गति[11] तारक[12] सुषमूला ॥
पंकज वाटिका प्रमिताक्षरा[13] । मधुभारा अमृत गति मदिरा ॥

---

७ तोमर=आदित्य वर्ग के छन्दों में तोमर १२ मात्रिक छन्द हैं। कहीं-कहीं तोमर छन्द का लक्षण वर्णवृत्त की भाँति सजज भी मिलता है किन्तु महाकवि तुलसी ने तोमर को मात्रिक छन्द ही माना है और यही उचित भी प्रतीत होता है क्योंकि वर्णवृत्त की अपेक्षा मात्रिक छन्द का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।
(छन्द प्रभाकर, जगन्नाथ भानु, पृ० ४५)

८ चंद्रवर्त्म=चन्द्रवर्त्मं निगदन्ति रनभसैः। (गण=र, न, भ, स, (४,८)

९ तोटक=वद तोटकमब्धिसकारयुतम्। (गण=स, स, स, स, (४,४,४)
इसके प्रत्येक चरण में १२ मात्राएँ होती हैं तथा चरण के अन्त में गुरु लघु होता है।

१० सिंहावलोकन=एक छन्द विशेष।

११ अमृत गति=अमृतगति का लक्षण इस प्रकार है—
"भत्रय शोभित संगत कर्णः एक सुसंगत पंक्तिक वर्णः
पन्नग राज निवेदित वंधुः राजति भूपति संसदिवंधुः ॥"
—वाणी भूषण, दामोदर, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति) पृ० ८
"करनु हस्थु पुनि करनु करु सुषमा कहियतु ताहि ।
विप्र हास पुनि विप्र गुरु वहै अमृत गति आहि ॥"
—पिंगल, सुखदेव, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति, ६७४

१२ तारक="तोटक के गुरु अंत दै कहिए तारक छंद"
—पिंगल, सुखदेव, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति छन्द २३

१३ प्रतिमाक्षर= (अ) प्रतिमाक्षरा सजससैः कथितः।(गण=न,न,र,र (७,५)
(ब) "कुसुम गंध रस भगन द्वै रगनु सुंदरी जानि ।
हस्थ पयोवन हस्थ द्वै प्रतिमाक्षरा वषानि ॥"
—पिंगल, सुखदेव, चंददास सा० शो० सं०, हस्त० प्रति छन्द १४

पृथिवी[१४]पद इक कुसुम विचित्रा[१५]। इंद्र बज्र[१६] कलहंस पवि ॥
चंचरीक[१७]ससि बरना[१८] छंदा। सादू बिक्रीडत कंदा ॥
छंद पद्धरी ललित कुमारा[१९]। बिज्ञोहा संजुता[२०] अपारा ॥
जग मोहन गंगोदक सोहै। कमल मनोहर सुनि जग मोहै ॥

१४ पृथिवी=जसौ असलया वसुग्रहयश्तिच पृथ्वी गुरुः। (गण—ज, स, ज, स, य, ल, ग (८,९)

१५ कुसुम विचित्रा="नयाभ्योसहितौ नय सहितौ एव विधौ नगन यगणौ कुसुमविचित्रा नाम छंदो भवति।"
भट्ट केदार कृत 'वृत्तरत्नाकर' की टीका, टीकाकार जनार्दन वुध, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति।

१६ इन्द्रवज्र='ततज गुरु द्वै अन्त में इन्द्रवज्र सुषकंद।
'छन्दसार' वैष्णव नारायणदास (चित्रकूट राज आश्रम से प्राप्त एक दुर्लभ हस्तलेख)

१७ चंचरीक=चंचरी। चंचरी का लक्षण इस प्रकार है—

"रगन सगन दुइ जगन जहु भगन रगन पुनि जानु।
छन्द चच्चरी कहत तेहि जे कवि चतुर सुजान॥"
—छन्दसार, वैष्णव नारायणदास, छ० स० ४५

१८ ससि बरना=शशि वदना। इसका लक्षण इस प्रकार है—
"अगुरु चतुष्कं भवति गुरू द्वौ। सुविशद बुद्धे। शशि वदनासौ॥"
श्रुतबोध, कालिदास, छ० ८

१९ ललित कुमार="जगण सगणौ गुरुश्चवैको भवति तदाकुमार ललिता नाम छन्दः।"
जनार्दनवुध कृत वृत्तरत्नाकर टीका, हस्त० चन्ददास शो० सं० प्रति पृ० ८

२० संयुक्ता=संयुक्ता छन्द का लक्षण इस प्रकार है—

"हत्थ पयोधर द्वै वहुरि अंत दीजिए हारु।
याही विधि चारयो चरन संयुत छन्द विचार।"
—पिंगल, सुखदेव, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति,

छन्द त्रिभंगी[२१] भुजंग प्रयाता । द्रुत जु बिलंवित सुनत सुहाता ॥
तिलक वसंत सवैया गायो । मालती एक मल्लिका पायो ॥
हरिलीला इक मौक्तिक दामा । कुसुम पवित्रा सुंदरी[२२]. कामा ॥
छंद डिघृत बंसजु स्वनिता । निस पालिकउ बिजयक भनिता ॥
छंद चंचला ब्रह्म है रूपक । छंद विशेषक सुषदा हूतक ॥
मदन मनोहर छंद गोपाला । हरि प्रिया मकरंद रसाला ॥
छंद झूलना जगती कहिए । रूपमाल एक छंदहि लहिये ॥
रिला तामरस[२३] एक प्रमानिक[२४]। निस पालिक[२५]एक छंद बषानिक ॥

---

२१ त्रिभंगी=त्रिभंगी छन्द का लक्षण इस प्रकार है—

"दस वसु वसु षट चरन इक होहि चारि विश्राम ।
चरन सरन वत्तीस कल छन्द त्रिभंगी नाम ॥"

छन्दसार, वैष्णव नारायणदास, (चंददास शो० संस्थान, हस्त० प्रति) छंद सं० ३३

'काव्य प्रभाकर' (प्रथम अ०, पृ० २९) में जगन्नाथ 'भानु' कवि ने 'त्रिभंगी' का लक्षण इस प्रकार बताया है—'दस वसु वसु संगी, जन रस रंगी, छन्द त्रिभंगी गन्त भलो ।'

त्रिभंगी में १०, ८, ८, ६ के विश्राम से ३२ मात्राएं होती हैं। 'जन' इसमें जगण का निषेध है। 'गन्त' अन्त में गुरु होता है। इसमें आठ चौकल होते हैं। चंददास ने 'रामविनोद' में छंद त्रिभंगी दीर्घ की रचना की है। त्रिभंगी के आठ चौकल के पूर्व १०,८ के विश्राम से चार चौकल और जोड़ दिये हैं।

२२ सुन्दरी=सुन्दरी छंद का लक्षण आचार्य सुखदेव के पिंगल (छ० ४७) के अनुसार इस प्रकार है—

सस जग पहिले तीसरे समरल गुरु पुनि आनि ।
दूजे चौथे चरन में यों सुन्दरी बषानि ॥"

२३ तामरस=इह वद तामरसं न ज जायः ।
गण० (न, ज, ज, य, (५, ७)

२४ प्रमानिक=प्रमाणिक । प्रमाणिक का लक्षण इस प्रकार है—
नभ लगा गजगतिः । गण० न, भ, ल, ग (४,४)

२५ निसिपाल=इसका लक्षण इस प्रकार है—

"गुरु लघु क्रम पन्द्रह वरन चामर कहत रसाल ।
तीनि आदि गुरु दंय कल अन्त रमन निशिपाल ॥"

—पिंगल, सुखदेव, चंददास शो० सं० हस्त० प्रति, ६.३५

वृहती छंद अनुष्टप एका[२६] । लाल छंद है और अनेका ।

दोहा— उदाहरन सब छंद के कहते लाल बनाइ ।
बीचहि अवध बिलास के कथा ओर बढ़ि जाइ ।।२६२।।

गीत छंद दोहा कबित हरि बिनु अक्षर जेह ।
लाल जीव बिनु व्यर्थ ज्यों नष सिष सुंदर देह ।।२६३।।
अस्थंभन आसन द्रवन उवन काम स्थान ।
अंजन लेपन बसिकरन कोककला सब षान ।।२६४।।

चौ०— सुत पति रिपु सारङ्ग बषाने । भष प्रीतम गूढ़ारथ आने ।।
दधि गिरि शिव भू जल ए लीजै । इन्ह के सुत अरु सुता जो कीजै ।।
होइ बिरोध परसपर जासीं । तहं रिपु जानि अर्थ परकासै ।।
जेइ जेइ जीव षात हैं जाही । भष प्रीतम वर्णन करि ताही ।।
जाको जो सुषदायक होई । प्रीतम करि वर्णत तहं सोई ।।
ठाकुर षसम होइ जो जाको । पति असि नाम जानि कहि ताको ।।
हरि सारंग कहे हैं जेते । तिन्ह के नाम कहौं सुनो तेते ।।
हरि कहि इंद्र भानु जम होई । हरिहै विष्नु जान सब कोई ।।
हरि कपि सिंह मरुत हरि बाजी । हरि सुक सर्प किरनि हरि राजी ।।
हरि कंचन ससि भेक बषाना । हरि जो डरै चोर हरि जाना ।।
अब सारंग सुनो मन लाई । तिन्ह के नाम कहों समुझाई ।।
सारंग चातक पिक गिरि होई । ससि चंदन मृग भ्रमर है सोई ।।
नाग दीप गृह कुंभ औ पानी । सारंग राति मेघ त्रिय जानी ।।
सारंग धनुष चीर गज कहिए । सेज कमल अरु मोरउ लहिए ।।
सारंग अग्नि पवन अरु बाहन । पंथ अर्क दादुर नभ पाहन ।।
सारंग हेम रत्न कर पूरा । बीना षंजन संष जे तूरा ।।
मन्मथ लेषनि सारंग है ए । भूमि अजा कह सारंग कहिए ।।
सारस अगर सुगंध सुहाए । सिंह शुक्ल कपि सारंग गाए ।।
मोती बन अस सारंग राषा । जहं तहं लाल कबिन्ह अस भाषा ।।

---

२६ अनुष्टुप—अनुष्टुप छंद गायत्री से भी प्राचीन छंद है। अनुष्टुप का विकास आर्यभाषाओं के वर्णिक छंदों के रूप में हुआ। आचार्य हलायुध भट्ट में 'पिंगल छन्द सूत्र' की संजीवनी टीका में छन्द को अक्षर संख्यावत माना है। ऋक प्रातिशाख्य में अनुष्टुप के लक्षणों में ३२ अक्षर का छन्द कहा गया है—"द्वात्रिंशदक्षरा नुष्टुप, चत्वारो ष्टाक्षरा: समा,' ऋक प्रतिशाख्य, पाताल, १६ मंत्र 'संत कवि चांददास-काव्यात्मक मूल्यांकन,' डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, (शोध प्रबन्ध की टंकितप्रति, पृ० ५४५)
आचार्य सुखदेव ने पिंगल, में अनुष्टुप का लक्षण इस प्रकार बताया है—
"चरन चहूं लघु पाँचवों त्यों छठओं गुरु होइ ।
दूजे चौथे सातवों लघ्वै अनुष्टुप सोइ ।।"

दोहा— नव ग्रह अरु जे देवता तिन्ह के चढ़न है जौन ।
लाल अर्थ आरंभ महि बाहन बरनो तौन ॥२९५॥

चौ०— सुरपति बाहन कहिये हांथी । छिगरा बाहन अग्नि के साथी ॥
रवि बाहन अश्व कीन्ह[1] बषाना । शशि बाहन शिव मृग मुनि जाना ॥
शिव सुत बाहन मोरहि कहिए । गणपति बाहन मूसहि लहिए ॥
देवो बाहन सिंह कहाए । बिधि बाहन भए हंस सुहाए ॥
जम बाहन महिषासन बरना । बृषभ चढ़े शंकर सुष करना ॥
नारायण बाहन गरुडासन । श्री बाहन कहि कमल सुषासन ॥
बुध बाहन षरहा मनमाने । दादुर पर चढ़े शुक्र सयाने ॥
कछुआ पर चढ़ि राहु बिराजे । सुर गुरु बाहन निडरहि माजै ॥
मोन शनीचर बाहन भाए । मेढ़ा पर मंगल चढ़ि धाये ॥
नागिन पर चढ़ि केतु जे सोहैं । जल बाहन बदरा जग मोहै ॥
घन बाहन इह पवनहि जाने । बाहन नाम ए लाल बषाने ॥

दोहा— मृग चीता गज सिंह सों स्वान मेष अहि मोर ।
मूंस मंजारीहि[2] जल अगनि बैर राहु शशि घोर ॥२९६॥
गऊ[1] व्याघ्र महिषहि अश्वहि हरिन श्वान अरि भाव ।
साप नेउर वानर भिडक सेन कपोतहि घाव ॥२९७॥

चौ०— अब सुनु अमर कोश के नामा । कहत हौं कछु एक अर्थ के कामा ॥
अमर त्रिकांड औ वर्ग अठवीसा[1] । एक स्वरादि भूमध्य जु ईशा ॥
स्वर्ग व्योम दिग काल धी जाना । पुनि शब्दादि जु नाट्य बषाना ॥
एक पताल भोग्य के आदिहि । नर्क वारि इक कांड स्वरादिहि ॥
भूमि सैल बन औषधि आनैं । पुर सिंहादि मनुष्य पुनि जानें ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य मनोजैं । सूद्रहु ये भू कांड भनोजै ॥

दोहा २९६ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ कबिन्ह (व० प्रति)

२ मंजारी = माजरी (बिल्ली)

दोहा २९७ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ गऊ व्याघ्र ……घाव = प्रस्तुत दोहे के पूर्व तथा मृग चीता……घोर के बाद व० प्रति में निम्नलिखित दोहा पाया जाता है, जो च० प्रति में नहीं है ।

सोन सुहागा दोप पट बादर पवनहिं बैर ।
देव असुर हर काम सों इन्द्र पहारहिं बैरु ॥

दोहा २९८ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ तीसा (व० प्रति)

निघ्न विसेष्य संकोर्णा नाता । मध्य कांड ये नार्थ षांता ॥
अमर नाम गुन अर्थ मिलाई । तिन्ह करि करत है साधु बड़ाई ॥
सूर्य[२] सूर दिवाकर कहिऐ । आदित्य द्वादस आत्मा है ऐ ॥
अहुकर भास्कर हंस विभाकर । भास्वत सविता तपन प्रभाकर ॥
सप्तास्व रिवि अर्क अरुन गनि । हरिता अस्व ग्रिहुपति अरु दिनमनि ॥
पूषन सुरतम द्युमनि विरोचन । अहपति मित्र तरनि जग लोचन ॥
पद्मिनि वल्लभ अर्जम जानी । चित्रभानु अरु भानु बषानी ॥
मिहर मिर्त्तंड त्र्यैतन आक्षीं । अंसूमाल एक कर्म है साक्षी ॥
षद्योतो तुषपति कहि भाषा । लोक बांधव नाम है राषा ॥
सहस आंसु प्रद्योतन होई । उस्न रस्मि रवित्तर्कन सोई ॥
नाम धाम निधि एक है गाए । ब्रधन विभावस नाम हैं पाए ॥
और अनेक नाम रवि राषा । एतो अमर कोष के भाषा ॥
सूरज समा साधु विष्याता । लेत देत होइ ग्राहक दाता ॥

---

२ सूर्य सूर.........अमर कोष के भाषा=कवि ने 'सूर्य' के पर्यायवाची 'अमरकोष' के अनुसार दिये हैं—

"सूर सूर्यर्यमादित्यद्वादशात्मदिवाकराः
भास्कराहस्कर ब्रध्न प्रभाकर विभाकराः ॥
भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्व हरिदश्वोष्णरश्मयः ।
विकर्तनार्कमार्तण्डमिहिरारुण पूषणः ॥
द्युमणिस्तरणिर्मित्रश्चित्रभानुर्विरोचनः ।
विभावसुर्ग्रहपतिस्त्विषाम्पतिरहर्पतिः ॥
भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः ।
पद्माक्षस्तेजसांराशि पूछाया नाथस्तमिस्रहा
कर्मसाक्षी जगच्चक्षुर्लोकबन्धु स्त्रयीतनुः
प्रद्योतनो दिनमणिः खद्योतो लोकबान्धवः
इनो भगो धामनिधिश्चांसुमाल्यब्जिनी पतिः ।"
—अमर कोष, प्रथमकाण्ड, दिग्वर्ग (२८ से ४१ तक)

अग्नि[३] धनंजय अनल हुतासन : ज्वलनि वह्नि पावक जु प्रकासन ॥
जातवेद हवि बाहन कहिए । वायु सषा हुत भुक पुनि हैइए ॥
सिषावान तनु नप तेहि जानो । वरुद भानु रोहितास्व बषानो ॥
उप बुध केस कृषानु कहाए । एक कृतपोठि जोनि कहि गाए ॥
सुसुछनि आश्रय आस है जाना । कृष्न वर्त्तमा वर्हि बषाना ॥
बीति होत्रि वैस्वानर दमुना । बडवानल बडवा है वरुना ॥
सोचि सुविश्रमा नाम है धारा । सुचि रवि भावसु शुक्र उचारा ॥
चित्रभानु सप्तार्चि एता । और्व वित्त हिरन्य है रेता ॥
एक दहन है जोति सरूपा । ए पावक के नाम निरूपा ॥
अग्नि साधु नहि स्वाद बषानैं । तम भव सोति दूरि करि जानै ॥

---

३ अग्नि धनंजय ···नाम निरूपा=अग्नि के पर्यायवाची 'अमरकोष' के अनुसार दिये गये हैं—

"अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः
कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात् ।
वर्हिः शुष्मा कृष्णवर्त्मा शोचिष्केश उषर्बुधः
आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः ॥
रोहिताश्वो वायुसखः शिखावानाशुशुक्षणिः ।
हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः ॥
सप्तार्चिर्दमुनाः शुक्रश्चित्रभानुर्विभावसुः ।
शुचिरप्पित्तमौर्वस्तु वाडवो वडवानलः ॥
वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्
त्रिषुस्फुलिङ्गोऽग्निकणः सन्तापः संज्वरः समौ ॥
उल्का स्यान्निर्गतज्वाला भूतिर्भसितभस्मनी ।
क्षारो रक्षा च दावस्तु दवो वनहुताशनः ॥"

—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्गवर्ग, ५३ से ५७ तक

स्वसन[४] सपरसन वायु कहाए। मातरिस्वा गन्धवाह सुहाए ।।
वृषदश्व अनिल सदागति होई। मारुत मरुत समीर है सोई ।।
नभस्वत वात समीरन जाना। आसुग पवन प्रभंजन माना ।।
जगतप्रान पवमान सुहाए। एते नाम पवन के गाए ।।
साधु पवन फिरै जग माँहीं। होति सर्वंगत बंधन नाहीं ।।

दोहा— प्रान अपान[५] समान औ व्यान उदान जु जान।
पंच लाल देह मैं सबके पवन प्रधान।।२८८।।

चौ०— आप स्त्री भूभनि अव वारि। सलिल कमल जल कुश यापारि ।।
पापकि लाल अमृत है जीवन। पाथ उदक कंबंध भुवन वन ।।
पुष्कर अंभक हरि पानी अस। नीर क्षीर संबर अरु घन रस ।।
मेघ पुहुप श्रवती मुष जाना। तोय अंबु जल नाम बषाना ।।
प्यास हरन तन पावन करहीं। लाल साधु जल जिमि अनुसरहीं ।।
भू[१] अरु भूमि है अचला धरनी। रसा अनंता क्षिति धर बरनी।

---

४ स्वसन सपरसन…पवन परधान=पवन के पर्यायवाची शब्द 'अमरकोष' के अनुसार ही है—

"श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः ।
पृषदश्वो गन्धवाहो गन्धवाहानिलाशुगाः ।
समीर मारुत मरुज्जगत्प्राण समीरणाः ।।
नभस्वद्वात पवन पवमानप्रभञ्जनाः ।
प्रकम्पनो महावातो झंझावातः सवृष्टिकः
प्राणोऽपानः समानञ्चोदानव्यानौ च वायवः ।।
हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभि मण्डले
उदानः कण्ठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ।
शरीरस्था इमे रंहस्तरसी तुरयः स्यदः ।।"
—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्गवर्ग

५ प्रान अपान……पवन प्रधान=शरीर में पंच प्रधान पवनों का उल्लेख किया गया है। वायु सर्वव्यापक है।

दोहा २८८ के अन्तर्गत—

१ भू अरु भूमि…धरित्री नामा=भूमि के पर्याय भी 'अमरकोष' के अनुसार वर्णित है—

"भूभूमिरचलानंता रसाविश्वंभरा स्थिरा
धरा धरित्री धरणी क्षोणीज्याकाश्य वीक्षितः
सर्वं सहा वसुमती वसुधोर्वी वसुंधरा'
गोत्रा कुः पृथवी पृथ्वीक्ष्मावनिर्मेदिनी मही ।।"
—अमरकोष, द्वितीयकाण्ड (२, ३)

विश्वंभरा स्थिरा गाई । इज्या औ वसुमती कहाई ॥
ऊर्वी गोत्रा क्षमा बषानी । धात्री भूत मेदनी जानी ॥
बसुधा पृथिवी वस्वंधरा । विपुला मही सागरांबरा ॥
सर्व सहा कस्यपी सुधामा । छोनी पृथ्वी धरित्री नामा ॥
रत्नगर्भ कू अवनी माता । ए बसुधा के नाम विष्याता ॥
कोउ षनि भरै सुधारि बिगारै । धीरज साधु धरा सम धारै ॥
अब आकास नाम सनु जेते । सूक्षम व्यापक अचल रहेते ॥
अंबर नभ पुष्पकर [२]दिव नामा । सुर बर्त्म सबको बिश्रामा ॥
गगन अनंत वियत है सोई । अंतरिक्ष षंद्यो पुनि होई ॥
अभ्र व्योम आकास कहाइसि । एक बिष्नु पद और बिहायसि ॥
सदा एकरस जिमि आकासा । लषि न परत तिमि रहु हरि दासा ॥

सो०— अधी[३] भुअन पाताल, नाग लोक कलि पद्म कहि ।
जाहि रसातल लाल, अनदेषो अकहो कहै ॥२९९॥

चौ० – चंद्र[१] चन्द्रमा इंदु हिमांसू । कुमुद है बांधव और सुधांसू ॥
बिधु हिमकर हिम रोष निशापति । औषधीश सुभ्रांश नषतपति ॥
सोम सुधाकर गलौ बषाना । आतृक अब्जो नो कै आना ॥
एक मृगांक कलानिधि होई । शशधर शशि द्विजराज है सोई ॥
एक छपाकर नाम कहाए । नाम नक्षत्र ईश एक पाए ॥

दोहा— ताप हरन अमृत द्रवन जोति करन जग माँहि ।
लाल चंद्र सम साधु है दया करहिं जहँ जाँहि ॥३००॥

पाठान्तर : २ पुहकर (व० प्रति)
३ अधीभुअन—अकहो कहै=प्रस्तुत सोरठा व० प्रति में नहीं है ।

दोहा ३०० के अन्तर्गत—

१ चन्द्र चंद्रमा–एक पाए='चन्द्र' के पर्यायवाची शब्दों की रचना में 'अमरकोष' का प्रभाव स्पष्ट है—

"हिमांशुश्र्चन्द्रमाश्र्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः
विधुः सुधांशुः शुभ्रांशुरोषधीशो निशापतिः
अब्जो जैवातृकः सोमो ग्लौर्मृगाङ्कः कलानिधिः ।
द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकरः ।"
—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, दिग्वर्ग (१३-१४)

चौ०—अमर[1] देव निर्ज्जर सुर बिबुधा। त्रिदशा दैवत भुगुता सुसुधा ॥
सुमनस दिवौकस दिविषद लेषा। आदित्या षेचरा सुबेषा ॥
क्रतभुज रिभव बर्हिमुंष कहिए। वृंदारका अमर्त्या हइए ॥
अदितिनंदना पति गीर्वानां। अग्नि जिह्व अति ओप बषाना ॥
स्वपर्वान स्वप्ना त्रिदिवेशा। अमृतांधसा जानि अमृतेशा ॥
आदित्येय विमान गति एई। दान वारि अनमृयते तेई ॥
साधु देवता भाव संतुष्टा। रहैं पवित्र संग तजि दुष्टा ॥
असुर[2] दैत्य दैत्येय दानव। पुनि इंद्रादि दनुज भष मानव ॥
दिव्य सुत राक्षस कौनप सुर द्विष। पूर्वदेव सुक्र संस्य मुष विष।
अश्रपया सर पुनि कव्यादा। दरस असुभ देवन्ह सहवादा ॥
रात्रि वरा कर्बुर बनवासी। नैरित निकर वात्मजा तासी ॥
जातुधान अरु पुन्य जन बरना। जाहु राक्षसी है दष हरना ॥
देव सुभाव साधु जिय धरहीं। राक्षस असुर प्रकृति परिहरहीं ॥
अभ्र[3] मेघ धन जलधर जानै। बारिद मुदिर बलाहक मानै ॥

दोहा ३०१ के अन्तर्गत—

१ अमरदेव…अनमृयते तेई='देवता' के पर्यायवाची शब्द 'अमरकोष' के अनुसार ही हैं—

"अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः।
सुपर्वाणः सुमनसस्त्रिदिवेशा दिवौकसः ॥
आदितेया दिविषदो लेखा अदितिनन्दनाः।
आदित्या ऋभवोऽस्वप्ना अमर्त्या अमृतान्धसः ॥
बर्हिमुंखाः क्रतुभुजो गीर्वाणा दानवारयः।
वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवताः स्त्रियाम् ॥"
—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्ग वर्ग (७ से ९)

२ असुरदैत्य…मुष बिष='असुर' के पर्यायवाची शब्दों का आधार अमरकोष ही है—

"असुरा दैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवाः
शुक्रशिष्या दितिसुताः पूर्वदेवाः सुरद्विषाः ॥"
—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्ग वर्ग, (१२)

३ अभ्रमेघ…वादर नामा = मेघ के पर्यायवाची शब्दों का नियोजन 'अमरकोष' पर आधारित है—

"अभ्रं मेघो वारिवाहः स्तनयित्नुर्बलाहकः
धाराधरो जलधर स्तडित्वान् वारिदोऽम्बुभृत्।
धनजीमूत मुदिर जल मुग्धू मयोनयः ॥"
—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, दिग्वर्ग (६-७)

धाराधर तनयित्नु अंबुभृत । जलमुक् तडितवान अरु रविकृत ॥
वारिवाह जीमूत षधामा । धूमदा जोनि वह बादर नामा ॥
जैसे घन सब पर सम बरषै । साधु कृपा सब पर कहि हरषै ॥
सोभा[४] प्रभा कांति छवि आभा । द्युति परमा सुषमा दिषि लाभा ॥
दीप्ति कांति रूपभा क्रांती । प्रभु जग रचे लाल बहु भाँती ॥
शोभा रूप सबहि मन भावै । हरि जेहि देइ सोइ परि पावै ॥
सुभग सुसम बंधुर रुचिराई । कांति कमन कमनीय निकाई ॥
सुंदर रूपवंत सोइ राजै । जा मुष हरि गुन नाम बिराजै ॥

दोहा— नर मानव मानुष मनुष्य मर्त्या मनुज पुमान ।
पुरुष सोई संसार महि लाल भजै भगवान ॥३००॥

चौ०— बुद्धि[१] मनीषा धिषना कहिए । ज्ञप्ति चेतना धी मति लहिए ॥
प्रति प्रज्ञु मेधा चिन्त बषानी । संवित प्रेक्षा शेमुषी जानी ॥
एक संकल्प धारनावंती । है उपलब्धि प्रज्ञा बहुभाँती ॥
साधु सुबुद्धि देहि उपदेसा । दुरमति दूर करै तम जैसा ॥
ब्राह्मी[२] वाक भारती बानी । भाषा व्याहरगी बच ज्ञानी ॥
उक्ति सरस्वती भाषित लपितं । बचन जलपनं कथित जपितं ॥

दोहा— मधुर नाम जुत सत्य हित बानी बोलै साधु ।
लाल सुनत संसार के दूरि होंहि अपराधु ॥३०१॥

---

४ सोभा...लाभा—'शोभा' के पर्याय भी अमरकोष के अनुसार हैं—
"सुषमा परमा शोभा शोभा कान्तिद्युतिश्छविः ।"
—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, दिग्वर्ग (१७)

दोहा ३०१ के अन्तर्गत—
१ बुद्धि मनीषा······प्रज्ञा बहुभाँती=बुद्धि के पर्याय 'अमरकोष' के अनुसार हैं—
"बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः ।
प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः ॥"
धीर्धारणावती मेधा ।
—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, धीवर्ग, (१)

२ ब्राह्मी वाक...जपितं='वाक' के पर्यायवाची शब्द भी 'अमरकोष' से चुने गये हैं—
ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती ।
व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः ॥"
(अमरकोष, प्रथमकाण्ड, शब्दादिवर्ग, १)

चौ०—सदन छद्म संकेत निकेता । गृह अरु गेह भवन सुष हेता ।।
मंदिर भवन सात स्थाना । आलय निलय वासइक जाना ।।
वेरमवस्यउद वसति विश्रामा । घर आगार औ आश्रम नामा ।।
गृह सोई जहँ हरि आराधन । सेवा साधु धर्म होइ साधन ।।
अब नारायन[१] नामहि कहिए । सुमिरन करत परम पद लहिए ।।
कृष्न विष्नु बैकुंठ मुकुंदा । हृषीकेश केशव गोविंदा ।।
माधव मधुरिपु श्रीपति गाई । दैत्या अरि त्रिविक्रम जलसाई ।।
दामोदर पीतांबर हइये । पुंडरीकाक्ष गरुडध्वज कहिये ।।
विष्व क्सेन चतुर्भुज स्यामा । चक्रपानि मधुसूदन नामा ।।
अच्युत इंद्र वज्र सारंगी । इक उपइन्द्र है नाम त्रिभंगी ।।
पद्मनाभ है देवकी नंदन । वासुदेव सौरी जगवंदन ।।
कैटभ मुर अरि कालिय मर्दन । जज्ञ पुरुष विश्वरूप जनार्दन ।।
बिष्नु कंसारि अधोक्षज गाए । विश्वंभर पुरुषोत्तम पाये ।।
वनमाली बलि ध्वंसी होई । श्रीवत्सलांक्षन है स्वयंभू सोई ।।
इक नरकान्तक नाम बषाना । पुरुष पुरान जो कहत पुराना ।।

दोहा ३०२ के अन्तर्गत—

१ अब नारायण……कहत पुराणा='विष्णु' के पर्यायवाची 'अमरकोष' के अनुसार ही हैं—

"विष्णुर्नारायण: कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवा: ।
दामोदरो हृषीकेश: केशवो माधव: स्वभू: ।।
दैत्यारि: पुण्डरीकाक्षो गोविन्दो गरुडध्वज: ।
पीताम्बरोऽच्युत शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जर्नादन· ।।
उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुज: ।
पद्मनामो मधुरिपुर्वासुदेवस्त्रिबिक्रम: ।।
देवकीनन्दन: शौरि: श्रीपति: पुरुषोतम: ।
वनमाली बलिध्वंसी कंसारातिरधोक्षज: ।।
विश्वम्भर: कैटभजिद्विधु: श्रीवत्सलाञ्छन: ।
पुराणपुरुषो यज्ञपुरुषो नरकान्तक: ।।
जलशायी विश्वरूपो मुकुन्दो मुरमर्दन: ।
वसुदेवोऽस्य जनक: स एवानकदुन्दुभि: ।।"

—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्गवर्ग (१८,२२)

मुंजकेस दासारह नामा । गदाग्रज पूरन सब कामा ।।
विषूश्रवा समुद है साई । नाम अमर प्रभु के कहि गाई ।।
ए हरि नाम लाल मन आवन । केते पतित कीन्ह इन्ह पावन ।।
दोहा— श्री चपलामा[२] इंदिरा सिंधु सुता कहि ताहि ।
लक्ष्मी पद्मा पद्मालया विष्नु वल्लभा आहि ।।३०२।।
चौ०— कमला अरु एक हरि प्रिय जनया । माता लोक छीरादधि तनया ।।
लक्ष्मी गुरुन्ह[१] देषि भजि जाई । ताते मैं नहि कीन्ह बड़ाई ।।
चंचल भई फिरत हम जाना । आपु नवीन है पुरुष पुराना ।।
संभु[२] ईस पशुपति सिव सूली । ईश्व सर्व महेश्वर मूली ।।
इंद्र चंद्रशेषर इसानं । खङ्ग परसु भूतेश बषानं ।।

---

२ श्री चपलामा......छीरादधि तनया=‘लक्ष्मी’ के पर्याय में भी ‘अमरकोष’ का आधार ग्रहण किया गया है—

“लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिमा ।
इन्दिरा लोक माता मा क्षीरोदतनया रमा ।
भार्गवी लोकजननी क्षीरसागर कन्यका ।।”
—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्गवर्ग (२९)

दोहा ३०३ के अन्तर्गत—

१ मुनिन्ह (व० प्रति)

२ संभु ईस ....और अनेका=शंभु के पर्याय ‘अमरकोष’ पर आधारित है—

“शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः ।
ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः ।
भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः ।
मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः ।।
उग्रः कपर्दी श्रीकण्डः शितिकण्ठः कपाल्भृत ।
वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्त्रिलोचनाः ।।
कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः ।
हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ।।
गङ्गाधरोऽन्धकरिपुः क्रतुध्वंसी वृषध्वजः ।
व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणु रुद्र उमापतिः।।
अहिर्बुध्न्योऽष्टमूर्तिश्च गजारिश्च महानटः ।
कपर्दोऽस्य जटाजूटपिनाकोऽजगवं धनुः ।।”
—अमरकोष, प्रथमकांड, स्वर्ग वर्ग

गिरिसि गिरीस मृत्युंजय कहिए । कृतवासा प्रथमाधिप है ए ॥
भृडज पिनाकी नामहि पाए । श्री कंठोसित कंठ कहाए ॥
वामदेव महादेव है संकर । नाम त्रिलोचन करम भयंकर ॥
भर्ग कपर्दी त्रिंबक होई । हर सरवज्ञ कपालभृत सोई ॥
विरूपाक्ष समर हर जेता । अंधक रिपु जो कृसानु है रेता ॥
गंगाधर निल लोहित भाषा । त्रिपुरांतक क्रत ध्वंसी राषा ॥
इक बृष भद्धज नाम प्रकासा । व्योम केस भव भीम सकासा ॥
रुद्रा स्थानु उमापति एका । नाम शंभु के और अनेका ॥
हरि सोइ हर हर सोइ हरि बरना । हरिहर बीच अंत नहि करना ॥
उमा गौरि काली रुद्रानी । सर्वमंगला स्वरा सर्वानी ॥
हेमवंती कात्यायनी मानी । दुर्गा अपर्णा सिवा भवानी ॥
पार्वती अंबिका जु मृडानी । देवि चंडिका नाम बषानी ॥
पूजहिं गौरि जुवति जगधन्या । पावहिं वर मन भावना कन्या ॥
आत्म भूसुर जेष्ट पितामह । हिरनिगर्भ लोकेस स्वयंभुअह ॥
अब्ज जोनि कमलासन धाता । वेधाबिधि जु बिरंचि विधाता ॥
सृष्टा विस्व सृक द्रुहिन प्रजापति । चतुरानन ब्रह्मा क्रम कृति रति ॥
मूरष धनिक औगुनी भिषारी । लाल बिधाता बात बिगारी ॥

दोहा— वाक[३] सरस्वती सारदा भाषा इड़ा जु जानि ॥
लाल भारती बुद्धिदा धाता सुता भवानि ॥३०३॥

चौ०— जापर दया सरस्वती करई । बानी कंठ विमल मन हरई ॥
इंद्र मरुत मघवा पुरहूता । जिष्नु पुरंदर मातलि सूता ॥
रिषभ शक्र सत मान्य जु लेषा । वज्री वृष वासव हरि देषा ॥
वास्तोपवी विडौजा सुरपति । बलाराति जंभेदी सुरगति ॥

---

३ वाक सरस्वती······सुता भवानि—'सरस्वती' के पर्याय का आधार भी 'अमरकोष' ही है—

"ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती ।
व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः ॥"

हरि है [१] नाम चौसपति गाए । संक्रदन दुश्च्यवन कहाए ।।
सुनासीर वृद्धश्रवा जु जानी । सूत्राभा वृत्रहा बषानी ।।
सहस्राक्ष आषंडलु हइए । सूदन मुंचि गोत्रभिद कहिए ।।
सासन पाक दिवस पति होई । वाहन मेघ कहति सब कोई ।।
का जौ इंद्र स्वर्ग भये वासी । बिनु हरि भक्ति फिरत चौरासी ।।
एक दंत[२] द्विमातु गण नायक । लंबोदर हेरंब बिनायक ।।
नाम गजाधिप एक गजानन । बिघ्न राज ओ गौरी नंदन ।।
नाम गणेस जपै मुष जाके । कारज सिद्धि होइ सब ताके ।।

दोहा ३०४ के अन्तर्गत—

१ हरि है नाम......चौरासी='इन्द्र' के पर्यायवाची 'अमरकोष' से संग्रहीत किये गये हैं—

इन्द्रो मरुत्वान्मघवा विडौजाः पाकशासनः
वृद्धश्रवा सुनासीरः पुरुहुतः पुरन्दरः ।।
जिष्णुर्लेखर्षभः शक्रः शतमन्युर्दिवस्पतिः
सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री वासवो वृत्रहा वृषा ।।
वास्तोष्पतिः सुरपतिर्वलारातिः शचीपतिः
जम्भभेदी हरिहयः स्वाराण्नमुचि सूदनः
सङ्क्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः ।
आखण्डलः सहस्राक्ष ऋभुक्षा............।।"

—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्गवर्ग, (४१-४४)

२ एकदंत......सब ताके='गणेश' के पर्यायवाची 'अमरकोष' में दिये गये नामों से अभिन्न हैं—

"विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपा :
अप्येकदन्तहेरम्बलम्बोदर गजाननाः ।।"

—अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्ग वर्ग (३८)

काम नाम[३] अब सुनहु प्रवीना। अपने बस सब जग जिन कीना ॥
मदन दर्प मन्मथ संवरारी। भार अनंग रूप अधिकारी ॥
मीन केत कंदर्प पंचसर। मनसिज रतिपति समर जीत हर ॥
काम मकरध्वज अनन्य जे होई। है प्रद्युम्न आतम भू सोई ॥
नाम मनोज होइ कुसुमेषु। पुहुप है धन्वा बल सर्वेषु ॥
साधु न होइ काम वस गामी। रामहिं भजै होइ निःकामी ॥

दोहा— आकर्षन[४] औ बसिकरण सोषन द्रवन उन्माद।
पंच वाण ए काम के लाल दूत है नाद ॥२०४॥

चौ०— अब नारिन्ह के नाम बषानौं। एक जोषिता स्त्री जानौं ॥
जोषा अबला बनिता होई। भामिनि एक कोपना सोई ॥
तीय दरसनी महिला बामा। बधू सीमंतनी नारी रामा ॥
अंगना भीरु कामिनी कांता। प्रमदा ललना कामा शांता ॥

---

३ काम नाम......नाद='काम' के पर्यायवाची शब्दों की रचना कवि ने 'अमरकोष' के आधार पर की है—

"मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः
कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः ॥
शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः।
पुष्पधन्वा रतिपतिर्मकरध्वज आत्मभूः ॥
अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका
नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकः।
उन्मादनस्तापनश्च शोषणा स्तम्भनस्तथा
सम्मोहनश्च कामस्य पञ्चवाणा प्रकीर्तिता ॥"

— अमरकोष, प्रथमकाण्ड, स्वर्ग वर्ग (२५-२६)

४ आकर्षन......दूत है नाद=लालदास ने काम के पंच वाण इस प्रकार बताये हैं—१ आकर्षण, २ वशीकरण, ३ शोषण, ४ द्रवण, ५ उन्माद। काम के पंचवाण कोष ग्रन्थों में इस प्रकार बताये गये हैं—"अरविंदमशोकं च चूतं च नवमल्लिका, नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य नायकः ॥

—आप्टे हिन्दी संस्कृत कोष, ५ व २

बाम[1] लोचना भामिनि रमनी । वरारोहा उत्तमा तरुनी ।।
मन हरनी तनु उदरी बाला । एक त्रिया प्रिय नाम रसाला ।।
अपनी त्रिया धर्म है राषा । पर त्रिय मिलन[2] अधर्मंहि भाषा ।।
कया कलेवर वपु तन अंगा । देह आत्मा कुणप पतंगा ।।
विग्रह संग्रह धाम शरीरा । विद्युत सम चंचल नहि थीरा ।।

दोहा— मृत[3] मृत्कामृग मृत्सना मृत्सा प्रस्ताएहु ।
मट्टी में मिल जाइगो देह भक्ति कर लेहु ।।३०५।।
पट दुकूल वस्त्र वसन चैल निचोलहु जान ।
लाल चीर जौ देह इह दिन दिन होत पुरान[4] ।।३०६।।

चौ०— बालक बाल औ मानौ को है । अर्भक सिसु उतान सय सोहै ।।
भ्रूण डिंभ अस्तनया कहिए । अस्तन धई नाम इक लहिए ।।
साधु सयानप कछु न कराहीं । बालक ज्यों बिचरैं जग माँहीं ।।

दोहा— अगद राज[1] अमृत अमी सोम सुधा पीयूष ।
लाल मधुर सुर भोग सम साधु बचन नर ऊष ।।३०७।।

दोहा ३०५ के अन्तर्गत —

पाठान्तर : १ बाम लोचन..........तरुनी=प्रस्तुत पंक्ति का पाठ व० प्रति में इस प्रकार है—

बाम लोचना भानिनि रवनी । एक नितम्बिनि गज गति गवनी ।
मतकसनो सुन्दरि वर वरनी । बरारोहा उत्तमा एक तरुनी ।।

२ मिलन (व० प्रति) । 'गवन' के स्थान पर व० प्रति में मिलन पाठ प्राप्त होता है ।

३ मृत.........कर लेहु='मृतिका' के पर्यायवाची शब्द 'अमर कोष' के अनुसार हो हैं—

मृन्मृतिका प्रशस्ता तु मृत्सामृत्स्ना च मृतका
उर्वरा सर्व सस्या त्र्यास्याद्रषः क्षार मृतिका ।।"
—अमरकोष, द्वितीयकांड, ४

४ मृत मृत्कामृग...... होत पुरान=प्रस्तुत दोहे व० प्रति में अनुपलब्ध हैं

दोहा ३०७ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ अगदराज अमृत......... नर-रूप=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में अनुपलब्ध है ।

चौ०— प्रथम[१] अब्धि समुद्र अरु सागर । उदधि सिंधु जलनिधि रत्नाकर ॥
पारावार सरितपति है ए । नाम उदन्वा अर्णव कहिए ॥
आकू पार जाद प्रति वरना । एक सरस्वान अपपति तरना ॥
साधु[२] समुद्र समान सदूरे । रामचरित रतना गुन पूरे ॥

दोहा ३०८ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ प्रथम समुद्र अब्धि अरु सागर (व० प्रति)

२ साधु समुद्र समान सदूरे रामचरित रतना गुन पूरे=यह पद श्लिष्ट पद है।

अ—साधुजन समुद्र के समान गांभीर्य से युक्त होते हैं तथा राम के चरित रूपी रत्नों के गुणों से आपूर्ण होते हैं । समुद्र का पर्याय रत्नाकर भी है । कवि ने साधु का रूपक समुद्र से दिया है और रत्नाकर के गुण धर्म के लिये रामचरित के गुण धर्म को रूपक में प्रयुक्त किया है ।

ब—सभंग-श्लेष के अन्तर्गत उक्त पंक्ति का पाठ होगा 'साधु समुद्रस मानस दूरे रामचरित रतना गुन पूरे' इसका अर्थ इस प्रकार होगा 'साधु समुद्र के समान है जिनका मानसिक जगत दूरियों (गहराईयों एवं विशिष्टताओं) से युक्त होता है । वे राम के चरित के गुण रूपी रत्नों से आपूर्ण रहते हैं ।

स—इस पद का एक अर्थ 'रामचरित मानस' के रचनाकार तुलसी की ओर संकेत करता है । प्रथम अर्द्धाली का मानस और अर्द्धाली के उत्तरार्द्ध का रामचरित को अन्वय से एक पद में लाने से 'रामचरित मानस' की संगति बैठती है और चौपाई का अर्थ इस प्रकार होगा 'रामचरित मानस' साधुओं का समुद्र है जो गुणों के रत्न से आपूर्ण है किन्तु गुणरत्न तलस्पर्शी (सुदूर) हैं ।

द—इस पद का एक अर्थ' 'रामचरित मानस' के कवि तुलसी की पत्नी रत्ना (रतना) की ओर संकेत करता है । 'रतना गुन पूरे' से कवि का संकेत है कि तुलसी के इस अमृत काव्य की रचना की प्रेरणा रत्ना से मिली । महाकवि तुलसी ने 'क्वचिदन्यतोपि' से रत्ना के प्रति अनाम कृतज्ञता व्यक्त की है । क्वचिदन्यतोपि से महापंडित राहुल सांकृत्यायन का संकेत प्राकृत कवि 'स्व्यांभू' की ओर संकेत करना है, किन्तु 'रामचरित मानस' के एक अचर्चित किन्तु अत्यन्त विशिष्ट विद्वान आचार्य गोविंद प्रसाद जी सांवल का यह कथन कि तुलसी ने 'क्वचिदन्यतोपि' से प्राकृत कवि स्व्यंभू का नहीं वल्कि अपनी पत्नी 'रत्ना' की ओर संकेत किया है । लोक मर्यादा के महाकवि ने सीता के द्वारा कहीं भी सीधे पति का नाम नहीं कहलाया । ऐसे अवसरों पर कवि ने संकेतों और अनुभावों से ही काम लिया है......।

नदी सरित तटनी सैवलिनी । ह्रदनी धुनी तरंगिनि बरनी ॥
श्रोतवती श्रवती अपगा है । द्वीपवती निम्नगा नदि आहैं ॥
साधु नदी सीतल सुषदानी । हरि की कथा लिए वह पानी ॥
पद्म नलिन अरिविंद महोत्पल । सहस्र पत्र सतपत्र कमल दल ॥

दोहा ३०८ का शेष —

इसीलिये कवि ने ग्रन्थ प्रणयन के विशिष्ट प्रेरक तत्वों का पृथक पृथक उल्लेख किया है किन्तु अपनी पत्नी 'रत्ना' का नामोल्लेख करने में लोक मर्यादा की दृष्टि से संकोच करते हुये 'क्वचिदन्यतोपि' के संकेत से काम लिया है । महाप्राण निराला के प्रधान शिष्य पं० जयगोपाल मिश्र ने 'रत्नावली' काव्य में रत्ना के विदुषी होने तथा फतेहपुर के एकडला में रहकर संस्कृत अध्ययन का उल्लेख किया है । 'कविता कला अनाम हो, शीर्षक, मेरी एक कविता में भी 'रत्ना' के तुलसी का दार्शनिक प्रेरक कहा गया है—

'कविता कला अनाम हो
तुम तुलसी या राम हो
या कि किसी परिचिता रत्ना के सपनों के घनश्याम हो ।
प्रेयसि ने देखा प्रियतम की रूप स्वप्न की वासना
बोली प्रिया शरम की मारी बुझे रूप से प्यास न ।
रूप तृषा की चेरी होकर तृप्ति नहीं आने वाली
मिट जाता है फूल किन्तु मर सकता है मधुमासा ना
अंतिम कोई ठौर है
जीवन तो कुछ और है
एक सबेरा बनो कि जिसमें कभी न उतरी शाम हो ।
कविता कला अनाम हो ।

('तुलसी परिशीलन' सं० आचार्य बाबूलाल गर्ग पृ० १ में प्रकाशित डॉ० चन्द्रिक प्रसाद दीक्षित ललित, की 'कविता कला अनाम हो' शीर्षक कविता से उद्धृत)

य—एक अन्य अर्थ महर्षि वाल्मीकि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने वाला है । 'रतना' शब्द रत्नाकर के अर्थ में प्रयुक्त है और वाल्मीकि का मूल नाम 'रत्नाकर' ही बताया गया है । 'वाल्मीकि' के साथ इस पद के अर्थ की संगति इस प्रकार होगी 'साधु—समुद्र (साधना का सिन्धु) और रामचरित (रामायण-वृत्त) महर्षि रतना (रत्नाकर=वाल्मीकि) से पूर्णता (पूरे) प्राप्त करके विश्वव्यापी (दूरे) हुआ ।

सारस एकु कुसेसय होई । सरसीरुह पंकेरुह सोई ।।
बिस प्रसून राजिव है पुष्कर । अंभोरुह पुंडरीक सुमन वर ।।
पंकज कंज तामरस जानें । लाल कमल के नाम बषाने ।।
जल संसार माहँ चिर काला । साधु कमल जिमि रहै निराला ।।
मधुकर मधुव्रत मधुलिट जाने । मधुप द्विरेफ पुष्पगहु बषाने ।।
षटपद अलिन भ्रमर अलि कहिए । चंचरीक सारंग पुनि हइए ।।
साधु भ्रमर भए फिरहिं सचेता । सेवक पुहुप भाव रस लेता ।।

दोहा— वन प्रिय कलरव वभृता लाल नाम पिक साधु ।
कोइलि ज्यों बोलै मधुर काक शब्द तजि साधु ।।३०८।।
अटवी विपिन अरन्य वन कानन गहन बषानि ।
पादप मंडप कुंज गृह एक महारन्य जानि ।।३०९।।

चौ०— भजन विक्षेप[१] जानि पुर तजहीं । कवि वनवास साधु हरि भजहीं ।।

दोहा— द्रु: द्रुम अगम दली फली पालासी कुट शाल ।
षग नग पत्री अनेकहा फलक्ष पाकर लाल ।।३१०।।

दोहा ३०८ का शेष—

र–एक अन्य अर्थ महाकवि भवभूति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने वाला है । साधुओं का मानस समुद्र करुणा से युक्त भवभूति की काव्यकृति (रामचरित) के गुणरत्न (करुणा) से आपूर्ण है । आचार्य गोविन्द प्रसाद जी साँवल ने भी इस अर्थ की पुष्टि के प्रमाण के लिये 'रामचरित' और 'दूरे' की ओर संकेत किया । द्रष्टा साहित्य मनीषी ने 'दूरे' से दूर=पश्चात=उत्तर का अर्थ संधान करके 'उत्तर रामचरित' (महाकवि भवभूति की करुणामूलक कृति) की अर्थ संगति प्रदान की ।

वस्तुतः यह पंक्ति लालदास के आचार्य की प्रतिभा की संकेतक है । समुद्र के पर्याय से कथावस्तु को सूत्रवद्धता प्रदान करने एवं रामकथा के रचयिता महर्षि बालमीकि भवभूति, तुलसी, रत्ना आदि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करके चंददास जैसी असाधारण अभिव्यक्ति क्षमता (शिल्प कौशल) का परिचय दिया है ।

दोहा ३१० के अन्तर्गत—

१. विक्षेप=वाधा, श्लेषार्थ—विक्षेप नामक वृत्ति । 'विक्षेप' का सम्बन्ध कवि से है । 'विक्षोभ और विक्षेप' नामक चित्तवृतियाँ होती है जो क्रमशः क्रोध तथा शोक एवं घृणा तथा भय नामक मनोविकारों को जन्म देती हैं जिनसे क्रमशः रौद्र करुण, बीभत्स और भयानक नामक रस निष्पन्न होते हैं ।"

—काव्य सर्जना और काव्यास्वाद, डॉ वेंकट शर्मा पृष्ठ ४८८

दोहा— बृक्ष महोरुह तरु बिटप पत्री पादप हेत ।
साषी ज्यौं फल फूल करि साधु सबहि सुष देत ।।३११।।

चौ०— मयुर बहि बरहिन पुनि पाई । सिषावंत केकी सिखि गाई ।।
मेघनाद अकुलासि बषाना । शिव सुत वाहन अहि भजि जाना ।।
नीलकंठ पुनि होइ कलापी । चित्र है पत्र सिषंडी थापी ।।
मोर मगन होइ घन देषि बरषैं । तैसे साधु साधु देषि हरषैं ।।

दोहा— सिषोरी महिधर अद्रि गिरि ग्रावा गोत्र पहार ।
सैल सिलोय कूधर हरि पर्वत अचल अपार ।।३१२।।

चौ०— इंदी विषय देषि सुष नाना । डरै न साधु सुमेर समाना ।।
सर्प पृधाक भुजग अहि विषधर । भ्रंसी बिष चक्री दर्वीकर ।।
फनी मनी काकोदर व्याला । पवनासन है बिले सो काला ।।
उरग भुजगंम सृप कहि ताहो । जिव्हक पन्नग भोगी आहो ।।
सरी कुंडली तृष्वा हेयं । गूढ़पाद चक्षुश्रवा जु एयं ।।
दीर्घ दृष्टि ले लिहा कहिए । दंत सूक द्वैरसनी लहिए ।।
नाग साधु नहि भीर सोहाई । रहै कहूँ एकांत समाई ।।
आश्रम आपु करै नहिं अंगा । पाँच सात मिलि चलै न संगा ।।
निकर प्रकर बृज पूग समूहा । कंद जाल कलापहै ब्यूहा ।।
निचय कदंब अनंत अनेका । बहुत निवह कुल अधिक है एक ।।
गन[१] औ बृंद अलं बिस्तारा । जूथ पुंग निकुरंव अपारा ।।
सबहो ठौर बहुत नहिं हो रे । दाता साधु सती हहिं थोरे ।।
संष धनंजय तक्षक कहिये । कमलासतर वासुकी लहिये ।।
कर्क्कोटक आवार्त्तिक जाना । इलावार्त है एक बषाना ।।
ए कुल आठ नाग जग माँहीं । अवर भस्म किये अग्निहि माँहीं ।।

सो०— वामन औ पुंडरीक, ऐरावत अंजन कुमुद ।
पुष्पदंत सु प्रतीक सर्व भौम ए दिग्गाजा ।।३१३।।

चौ०— तैसे साधु कीन्ह गोपाला । भक्ति भूमि रक्षक दिग्पाला ।।
बिहग बिहंगम षग जु बिहंगा । सकुनि सकुंत सकुंति दिवंगा ।।
पक्षी सकुन पतत एक अंडज । पत्री पत्रग पत अपुनी द्विज ।।
नागो काशु विहायस जाना । एक पत्रीरथ नाम वषाना ।।

दोहा ३१३ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १. गन बहु बृंद अलं बिस्तारा (व० प्रति)

जैसे पक्षी पिंजरी देषा । तैसे जीव देह का लेषा ।।
कोप क्रोध रुट क्रोधों रोषा । अति धय अमरष तामस दोषा ।।
अहंकार मद दर्प गुमाना । गर्वस्मै अभिमान औ माना ।।
औगुन अगम साधु नहिं जानैं । क्रोध कबहुँ अभिमान न आनैं ।।

दोहा— दुग्ध क्षीर पयसा जु पय गोरस उज्ज्वल दूध ।
जैसे केवल गाइ को साधु चाहिए सूध ।।३१४।।
आज्य सार्प्यि घृत नाम हवि माषन नव नवनीत ।
साधु हृदय कोमल रहन कहत है लाल सुनीत ।।३१५।।

चौ०— मारग अपन जुवर्त्म पद्धति । पदवी पंथ सरन्य इक संसृत ।।
अधा एक आवर्त्ति पधा। पद विकार येक नाम है सधा ।।
साधु सुपंथ वलैं संभारी । तजै कुपंथ पथ दोष विकारी ।।
अवलम्वित द्रुत छि लघु आतुर । तूर्णं त्वरित चपला जव स्वातर ।।
आसु झटित अरु वेग उताला । सिघ्रहिं चंचल जात है काला ।।
जावतकी परतीति न कीजै । आतुर होइ हरि नामहि लीजै ।।
निसा सर्वरी राति त्रिजामा । छनदाक्षपा निसथिनी नामा ।।
रजनी तमी तमसी जामिनी । तमस्वनि राति चंद्र की कामिनी ।।
एक तमिस्रा नाम कहाई । पुनि एक नाम विभावरि पाई ।।
कामी विषय लागि निसि जागै । साधु जागि हरि सुमिरन लागै ।।
द्यौस अहन वासन द्युह अरु पुनि । उदय ना दिवस दिवा दिन इह पुनि ।।
साधत साधु सदा मन लाई । एकौ दिन बिनु धर्म न जाई ।।

दोहा— अंघ्रिपाद गतिवंत पद चलन पाय पग नाम ।
साधु जहाँ धारनि चरन होइ पवित्र सो धाम ।।३१६।।
हरि सत्यांके नाम सब कहते करि बिस्तार ।
याते मैं नाहीं लिषे बाढ़ै ग्रन्थ अपार ।।३१७।।
अमर अनेक अर्थ औ सुतपति रिपु जा माहि ।
लाल सवैये तव भले श्री पति बरने जाहि ।।३१८।।

चौ०— और अनेक[१] करहि चतुराई । समय प्रस्ताव प्रसंगहि पाई ॥
पिंगल कोक काव्य को चर्चा । कबहुँ कि करहि परसपर अर्चा ॥
कबहुक गंगा तीर विधाना । होम नेम करि दे गउ दाना ॥
कबहुक ब्रह्म भोज बहु भांती । देहि दक्षिना विप्र सुहाती ॥
कबहुक गज छोरे वक साही । भिक्षुक भार लेइ ले जाही ॥
षेलत हँसत करत पहुनाई । निसदिन जात जानि नहि जाई ॥

दोहा— नृप सों नृप बुध सो बुध दास दास सो मेल ।
बाल बाल सो लाल कहि तिय तिय सो भै केल ॥३१९॥

चौ० — भीतर राज लोक महरानी । गति विनोद होत हरषानी ॥
भूषन वसन विविध तन धरहीं । रंग सिंगार अनेकन करहीं ॥
मंजन करि करि अंग बनावै । अपनि अपनि रुचि तेल लगावै ॥
गोरे तन उवटन करि एरी । जनु कंचन पर उपरी फेरी ॥
चंपा तेल चबेली बेला । विविध फुलेल केवरा तेला ॥
बेनी रचै विचित्र विसाला । कंचन षंभ चढ़त जनु ब्याला ॥
बांधे केस समेटि सुधारी । मनु सबके मन बांधत नारी ॥
पुनि कस मांग सीस बिच भाषा । जनु कुआर मग मध्य अकासा ॥
मोती मांग सीस पर राजै । मनहु नक्षत्र अकास विराजै ॥
पाटी स्याम सुधारिन्ह कैसी । सारसुता मनु झलकत जैसी ॥

दोहा ३१९ के अन्तर्गत—

१ और अनेक······प्रसंगहि पाई=कवि साहित्य के अन्तर्गत विभिन्न रचना विधाओं काव्य, नाटक, इतिहास, आख्यायिका आदि की ओर संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। कवि ने प्रसंगार्थ से भिन्न यह भी संकेत दिया है कि साहित्य के अनेक रचनाकार समय, प्रस्ताव और प्रसंग के आधार पर रचना चातुर्य प्रदर्शित करते हैं। समय से कवि का तात्पर्य कदाचित कांड अथवा सर्ग लक्षित होता है। 'पृथ्वीराज रासो' में कवि चंद ने कांड अथवा सर्ग के लिये 'समय' शब्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार 'प्रस्ताव' से कवि का 'प्रसंग' आशय नाटक के पूर्व प्रयुक्त 'प्रस्तावना' से है। 'प्रसंग' से कवि का आशय आख्यान अथवा काव्यनाटक में मुख्य कथा विकास के लिये नियोजित प्रासंगिक कथाओं से है। 'चतुराई' शब्द से कवि का संकेत काव्य-चातुर्य अथवा काव्य-नैपुण्य की ओर है।

वेनी फूल सीस फूल जो है । मनु मनि मागन्ह सिर पर सोहै ।।
केसन वीच फूल रचि काढ़े । मनन्हु जमुन जल फेन सुवाढ़े ।।
केसरि आड जराव के टीका । मोहन मंत्र लिषे जनु नीका ।।
विंदु सिंदूर भृकुटि बिच राषे । मनु अहि सिसु दोउ चाहत चाषे ।।
नयन मीन दल कंज नवीने । अंजन दै षंजन सम कीने ।।
कहु अलकन्ह विच नयन बिराजै । मनु मष तूल जाल झष बाझैं ।।
कंठन्ह[१] पोति देति छवि कैसी । मनहु कपोत रेषगर जैसी ।।
कानन्ह बीच जराउ छवीली । सोभा मनहु आइ सब मीली ।।
नथ[२] नक वेसरि नाकन्ह सोही । जनु सुक रतन चुनत मन मोही ।।

दोहा २२० के अन्तर्गत—

१ कठन्ह पोति···रेषगर जैसी—कंठ की छवि में कवि ने कपोत की ग्रीवा की रेखाओं की उत्प्रेक्षा की है । महाकवि तुलसीदास के 'युगल ध्यानपद' पाण्डुलिपि में इसी प्रकार की एक विशिष्ट उत्प्रेक्षा की गयी है—

"कंठ तट तिलरी त्रिरेष सुमुक्ति मन बनि दाम ।
लषि लियौ बननि कपोत कंवुनि सहत सीत सुघाम ।।"

जिसका आशय है कि कंठ तट पर तिलरी और त्रिरेष मुक्ति की त्रिगुणात्मक माला है, जिसे देखकर कपोत वन में घाम में तथा कंतु (शंख) सागर (शीत) में छिप गये हैं ।

'युगल ध्यानपद' रामचरित मानस के रचयिता महाकवि तुलसीदास की एक अचर्चित किन्तु अत्यन्त विशिष्ट पाण्डुलिपि है, जो दुर्लभ हस्तलेखों की खोज करते समय मुझे चित्रकूट के एक प्राचीन मंदिर से पं० केशव प्रसाद द्विवेदी के सौजन्य से प्राप्त हो गयी और सम्प्रति बाँदा के चंददास शोध संस्थान के पाण्डुलिपि विभाग में सुरक्षित है । इस कृति को तुलसी साहित्य के अनन्य अध्येता साहित्यविद् श्री गोविंद प्रसाद साँवल के एवं मेरे संयुक्त सम्पादन में चंददास शोध संस्थान द्वारा यथाशीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है ।

२ नथनक······चुनत मनमोही कवि ने नासिकाभरणों में नथ और नथवेसरि का उल्लेख किया है । कवि ने इस प्रसंग में एक सरस उद्भावना की है-नथ और नकवेसरि नाक में शोभित है तथा मोतियों और रत्नों का प्रतिबिम्ब अधरों पर इस प्रकार पड़ रहा है मानों नासिका रूपी शुक के द्वारा रत्नों को चुना जा रहा हो । नासिका कीर के द्वारा अधर पर प्रतिबिम्बित रत्नों का चुना जाना कवि की कल्पना की रमणीयता के साथ ही रसात्मक उक्ति सौन्दर्य का भी सूचक है ।

पान चवात लगत अरुनाई । परत दंत रतन विलगाई ॥
गोर कपोल गोल रस भारे । कनक पत्र जनु घोटि सुधारे ॥
अधर लाल बरने नहिं जाई । विद्रुम फूल वन्धूक लजाई ॥
अंगिआकस तिउरोज रसाला । पहिरे हार मनोहर माला ॥
केउ केसरि केउ चन्दन केरी । अंगिआ[३] चित्र विचित्र रचेरी ॥
रंग रंग के चीर अनेका । ओढ़ति[४] पहिरति[५] विविधि विवेका ।
केउ चौकिन्ह केउ बैठि दुलीचे । केउ सत रज पर सेजन्ह बीचे ॥
केउ चढ़ि झाकति महल झरोखे । शोभा नगर देषि द्रग पोषे ॥
कहुं पंषा कहुं विजना ढारै । होइ वतास सषी जन कारै ॥
नाउनि वारिन जोवन माती । फूली फिरहिं काज रंग राती ॥

दोहा— पसमी[६] जर कस रेसमी जैसे जाहि वनंत ।
सूतऊ सादे रंग रंग प्रगटे वसन अनन्त ॥३२०॥
त्रिय कुच कसे अंगिआ जिरह चौकी ढाल षगहार ।
लाल वे मुष विप्र सो लरन सुभटन्ह करति तयार ॥३२१॥

चौ०— बाजूवन्द भुज टाड नवेली । कंकन पहुँची चुरी सहेली ॥
मेहदी मन्डित हाथ रंगीले । सोहत नष जनु लाल नगीने ॥
कोउ कर मोती लै हन्स चुगावत । चकृत मराल चकोर चवावत ॥
उदर सरन्ह पर राजी देषा । मनु जल भ्रमर चलत भइ रेषा ॥
त्रिवली लहरि लहरि पर जोरै । जनु दरिआइ की तहाँ कोरै ॥
गोरे वरन उपमा एक दीटी । मनहु करक महल की सीटी ॥
कटि तट छुद्र घन्टिका कीना । मानहु काम वजावति बीना ॥
रजनी केस निलंवर जानौ । ससि मुष उदय भए तहाँ मानौ ॥
उपमा और किंकनी जाला । मनहु मदन गृह वन्दन माला ॥
जे हरि नूपुर पाव विराजा । मनहु काम नौवति के बाजा ॥
वेद बहुत ब्रह्मांडव भाए । तिन्ह के चन्द सवहि जनु आए ॥

दोहा— लाल सुभग सब सुन्दरी मिलि बैठी इक ठौर ।
नयन परसपर यौवने चितवत मनहु चकोर ॥३२२॥

---

३ अंगिया प्रक्षेप्य वस्त्रों में अंगिया (चोली) का उल्लेख कवि ने किया है तथा चित्र विचित्र चोलियों का उल्लेख करके विभिन्न प्रान्तों एवं अंचलों में प्रयुक्त चोलियों का संकेत किया है ।

४ ओढ़ति=कवि ने उत्तरीय, चादर, दुपट्टा आदि आरोप्य वस्त्रों की ओर संकेत किया है ।

५ पहिरति=साड़ी आदि निबन्धनीय वस्त्रों की ओर संकेत किया गया है ।

६ पसमी=विशिष्ट ऊन का शाल

चौ०— कहुँ तिल मुष पर सोहत नीके । कहु गोदना कहु अलक डिठौके ॥
नारि अनेकन्ह हसत विराजत । मनहु रूप को सागर गाजत ॥
या विधि रचे सिंगार सयानी । रानी गुनी बहुत तहँ आनी ॥
देहि परसपर रीझि रसाला । मुक्ता वसन रतन मनि माला ॥
वैठि लेइ वसन रतन अनमोला । मनहु वजार जौहरिन्ह षोला ॥
पान फूल मेवा मनमाने । भोजन होंहि अनेकन्ह वाने ॥
चावहि[१] पान कपूर ललंगा । इलाजार पत्र फल संगा ॥
लेषति वोलति करति कलोलै । राय मुनी जनु आंगन डोलै ॥
बैठे सभा जुवति जनु सोहै । देषि देषि रम्भादिक मोहै ॥

दोहा— लाल सुकवि जुवती सवै कवित नयन तिन्ह केर ।
काजर सवहो देति हैं चितवनि में है फेर ॥३२३॥
कोउ पदमिनि कोउ चित्रनी कोउ तरुनी कोउ वाल ।
देषि रूप रवि चन्द्र के रथ न चलत भए लाल ॥३२४॥

चौ०— कोउ पदमिनि कोउ चित्रनी राजी । कोउ संषनी कोउ करनि विराजी ॥
अब सुन चारिहु के मन देरे । कहत हो गुन लक्षन तिन्ह केरे ॥
पदुमिनि अंग सुगन्ध अनूपा । कनक वरन लघु तन अति रूपा ॥
जज्जल वसन निर्मल सुभ अङ्गा । पियत सुवास भ्रमर फिरै संगा ॥
लाज बहुत मृदु हास रसाला । नयन फेप दोइ होहि विशाला ॥
छोटे मुष लघु देत प्रकासी । मनहु चन्द्रमा पूरनमासी ॥
सुवुधि उदार पुन्य सुषदाई । पिय सो प्रेम प्रीति मनभाई ॥

दोहा ३२३ के अन्तर्गत—

१ चावहि पान...फल संगा —लालदास ने पान के साथ कपूर, लवंग, इलाजार, पत्र, फल (पुंगीफल) आदि पदार्थों का उल्लेख किया है। पान कपूर से कवि का आशय ताम्बूल की कपूरी जाति की ओर संकेत करना भी हो सकता है। अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में बिलहरी, काकेट, कपूरी, बंगला आदि ताम्बूल की विभिन्न जातियों का उल्लेख किया है। कालिदास कृत 'शृंगार तिलक' पंडितराज जगन्नाथ कृत 'भामिनी विलास' राजशेखर कृत 'काव्य मीमांसा' 'चंददास कृत' 'शृंगार सागर' (हस्त० चंददास शो० सं० प्रति) में ताम्बूल के विविध प्रसंग आए हैं, किन्तु लालदास ने पान बनाने के सहायक पदार्थों का उल्लेख करके महत्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं। वाराह मिहिर (७७/३४-३५) ने 'वृहत्संहिता' में ताम्बूल की भूरिशः प्रशंसा की है।

नृत्य गीत वाजन कविताई । चंचल नयन अलप चित होई ।।
वहरति सो मानै मन सोई । हास विलास कलोल सो होई ।।
चित्र विचित्र अनेक बनावति । सोइ चित्रनी तिय नाम धरावति ।।
संषनि कोप कपट कुटिलाई । दया दान नहि सील समाई ।।
निलज निसंक न धीरज आनै । क्षार गंध नष सो रुचि मानै ।।
रहति मलीन असुचि मन भाई । अनाचार निद्रा अधिकाई ।।
निलज सलोम शरीर बषानो । सोइ वनिता संषनि करि जानो ।।
हस्तनी चरन भुजा मुष भारी । चलति मन्द नवावति नारी ।।
अंगुरी अधर पयोधर थूला । पीन सरीर उदर कटि मूला ।।
भूरे केस सलोम सरीरा । स्वेद द्विरज मद सबद गंभीरा ।।
चित चंचल भोजन अधिकाई । हस्तनी ताहि जानिए भाई ।।
काम अष्ट गुन षट गुन लाजा । दुगुन अहार चतुर गुन काजा ।।
कलह झूठ छल दोष निधाना । निरदय असुचि स्वभाव बषाना ।।
पुरुष अहार क्षार तिय जानो । मिटै न काम लाल सति मानो ।।

दोहा— पदुमनि[१] चित्रनि हस्तनी एक संषनी मानि ।
त्रिय जेती संसार मह चारि जाति सब जानि ।।३२५।।
बहुधा लक्षन परसपर कोउ एक जाति निराल ।
परषै पंडित नर चतुर रूप रङ्ग गति लाल ।।३२६।।

चौ०— कन्या[१] वरष सात लगु जानो । पुनि गौरी तेरह लघु मानो ।।
बाला वरष वीस लगु वरनो । जानहु नारि तीस लगु तरुनी ।।
प्रौढ़ा होइ वरष चालीसा । वरष पचास भई वृद्ध षीसा ।।

दोहा ३२५ के अन्तर्गत—

१ पदुमनि...सब जानि=कवि ने 'जाति' के आधार पर विश्व भर की स्त्रियों को चार भागों में विभाजित किया है—१ पद्मिनी, २ चित्रणी, ३ शंखिनी, ४ हस्तिनी ।

दोहा ३२७ के अन्तर्गत—

१ कन्या बरष......वृद्ध षीसा=लालदास ने आयु के आधार पर विभाजन इस प्रकार किया है—

१ कन्या (७ वर्ष तक), २ गौरी (१३ वर्ष तक), ३ बाला (२० वर्ष तक), ४ तरुणी (३० वर्ष तक), ५ प्रौढ़ा (४० वर्ष तक), ६ वृद्धा (५० वर्ष से अधिक)

वैसंध्या एक कहत हैं प्यारी । उह छवि लाल होत है न्यारी ॥
उरज उकसि कछु देत दिषाई । चपल नयन मुष पर अरुनाई ॥
बढ़त नितंब घटत कटि दिन दिन । कबहुँ कबहुँ बहु होत सकुच मन ॥
भूषन वसन सँभारत लहिये । वैसंध्य जानि ताहि कछु कहिये ॥
आदिहि त्रिय त्रय देवहि जो पाई । भुक्त वरष अढ़ाई पाई ॥
देत गंधर्व कन्ठ स्वर बानी । ससि सुन्दरता मुष पर आनी ॥
अग्नि प्रसन्न होइ वर दीन्हा । सदा सुद्ध त्रिय को तन कीन्हा ॥
साढ़े सात वरष पर ताही । देव विवाहिं मनुष्य वर चाही ॥

सो०— रचो विधाता वाम आदि तीनि है नायका ।
स्वकीया प्रक्रिया नाम लाल एक सामानिता ॥३२७॥
स्वकिया पुनि प्रक्रिया सामान्याहू लीन ।
पति उप पति वैसेष कहि तीनहु के पति तीन ॥३२८॥

चौ०— स्वकीया विधि तीनि बषानी । मुग्धा मध्या प्रौढ़ा जानी ॥
मुग्धा बाल वधू सो कहिए । मध्या होइ सयानी लहिए ॥
प्रौढ़ा पूरण जोवनवन्ती । रूप अपार होइ गुनवन्ती ॥
स्वकिया[१] के त्रय भेद गंभीरा । धीर अधीरा धीरा धीरा ॥
धीरा धीर धरै मन मांही । जानु अधीरा धीरज नाही ॥
होइ अधीरज कछु एक धीरा । ताहि कहत हैं धीरा धीरा ॥
स्वकिया[२] दोइ भांति विष्याता । ज्ञाता जोवन एक अज्ञाता ॥
ज्ञाता जोवन लज्या मानै । होइ अज्ञाता नलज्या आनै ॥
होत है भेद दुहिन के दोई । एक अनूढ़ा ऊढ़ा होई ॥
व्याही ताहि कहत हैं ऊढ़ा । बिना व्याह सोइ जानु अनूढ़ा ॥

दोहा ३२९ के अन्तर्गत —

१ स्वकिया...कहत है धीराधीरा=लालदास ने गम्भीरता के आधार पर स्वकीया के तीन अवान्तर भेद किये हैं, धीरा, धीराधीरा तथा अधीरा । 'धीरा' मन में धैर्य धारणकरती है और 'अधीरा' के धैर्य का बाँध टूट जाता है । 'धीराधीर' धीरा और अधीरा दोनों की भाँति होती है ।

२ स्वकिया...नलज्या आनै=स्वकीया के अन्तर्गत ज्ञात यौवना और अज्ञात यौवना का उल्लेख किया गया है ।

अपनी होइ स्वकीया आही । परतिय परकीया[3] कहु ताही ।।
गणिका दासी धन हित भाषी । ए दोउ नारि सभा नहि राषी ।।
दोउ के भेद पंच है लहिए । अन्य । संभोग दुषिता कहिए ।।
वक्रोक्ति गर्विता जानी । मानवती पुनि ताहि बषानी ।।
रूप औ प्रेम गर्विता होई । जानहु पंच भेद है सोई ।।

दोहा— क्रिया विदग्धा वाक पुनि गुरुजन भीता होइ ।
रूपाधीन सषीवसा गात गर्विता सोइ ।।३२६।।
परिकीया के भेद षट मुदिता गुप्ता जान ।
एक विदग्धा लक्षिता कुलटा अनूसयान ।।३३०।।
सुषी दुषी ही पीय को होइ मान अपमान ।
जीवन मरनहुँ पीय संग स्वकिया ताहि बषान ।।३३१।।
प्रोषितपतिका[1] षंडिता कलहंतरिका[2] नाम ।
विप्रलब्धा उतकंठिता वासकसज्या वाम ।।३३२।।
एक स्वाधीना भर्तिका पुनि अभिसारिका तीय ।
अष्टनायका लाल कहि कही कवीन्ह रमनीय ।।३३३।।

चौ०—मुग्धा भय लज्जा अति होई । चाहै रति न चातुरी कोई ।।
मध्या मदन सकुच सम पाई । रति प्रिय मिलवन देत जनाई ।।
प्रौढ़ा प्रगट मदन बस जानी । डरै न लाज रहै गरवानी ।।
मध्या प्रौढ़ा लक्षन जनाए । तिन्ह करि आठ नाम तिन्ह पाए ।।
प्रेम रूप गुण दोषहि जाके । पिय आधीन रहे बस ताके ।।
पाइ सोहाग प्रमुदित सयानी । सास्वाधीन पत्रिका जानी ।।
हर्षित मन शृंगार बनाई । जहँ पिय होइ तहाँ चलि जाई ।।
अथवा पुरुषहि बोलि पठावै । सोइ अभिसारिका नारि कहावै ।।
पिय सों प्रथम कलह करि लीनी । फिरि पछिताइ मैं भली न कीनी ।।

---

३ परकीया…अनूसयान=लालदास ने परकीया नायिका के छः भागों में विभाजित किया है—१ मुदिता, २.गुप्ता, ३। विदग्धा, ४ लक्षिता, ५। कुलटा, ६ अनुशयाना ।

दोहा ३३२ के अन्तर्गत—

१ प्रोषितपतिका…कविन्ह रमनीय=लालदास ने कवि परम्परा द्वारा वर्णित अष्ट नायिकाओं का नामोल्लेख इस प्रकार किया है—

१ प्रोषितपतिका, २ खण्डिता, ३ कलहंतरिता (अभिसंधिता), ४ विप्रलब्धा ५ उत्कंठिता, ६ वासकशय्या, ७ स्वाधीनपतिका, ८ अभिसारिका ।

जतन मिलाइ मिलै पुनि जाई । कलहंतरिता बनिता गाई ।।
आए न पिय हिय ताप नेवारन । दई का भए रहे केहि कारन ।।
वहै मिलन पिय कुशल मनावै । उक्ता वाम नाम कहि आवै ।।
आवन कहि आवै नहिं जाके । रहै निसि जाइ आन बनिता के ।।
रति रस देषि प्रात पुन साई । ताहि षंडिता बामा गाई ।।
जाके पति परदेस सिधाए । जरै विरह दुष सुष बिसराए ।।
मन मलीन छीनत न लहिए । प्रोषितपतिका बनिता कहिए ।।
पान फुलेल सेज रचि राषै । सषी सों रति पिय के गुन भाषै ।।
चितवत पन्थ चपल दृग सोही । वासकसज्या जानहु ओही ।।
जाहि जहाँ पिय बोलि पठावै । आपु कहूँ उठि जाइ न पावै ।।
होइ उदास निरास बिचारी । जानहु विप्रलब्धा सो नारी ।।
पिय कहुँ गमन करत है काली । करिहौं कहा जियब कैसो आली ।।
असगुन होइ मनावति जिय ही । प्रीतम गमन न जानु सुतिय ही ।।
पुरुष हैं दोइ भांति जग आए । एक पुरुष कुपुरुष कहाए ।।
विद्या विनय सूर आचारी । दाता वृत्ति स्वनेष्ठा धारी ।।
क्षमावंत उत्तम सतसंगी । कुल कुसल सज्जन सब अंगी ।।
जस धन रूपवन्त कुल मानो । ताको लाल सुपुरुष बषानो ।।

दोहा— नायक है अनुकूल क्षल पुनि सठ धृष्ट बषानि ।
लक्षण हैं रसमंजरी[1] ते तहँ लीजेहु जानि ।।३३४।।
लाल नायका आठ हहिं नायक चारि प्रकार ।
भेद तीन सै साठि हैं कौन करै विस्तार[1] ।।३३५।।

दोहा ३३४ के अन्तर्गत—

१ रसमंजरी =भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' (१४वीं शताब्दी) लालदास ने नायक-नायिका भेद निरूपण प्रकरण में लक्षण निरूपक 'रसमंजरी' का संकेत किया है। आचार्य लालदास लक्षण ग्रहण करने में भानु की 'रसमंजरी' के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। भानुकृत 'रसमंजरी' हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों का ही नहीं भक्तियुगीन आचार्य कवियों का भी प्रेरक ग्रन्थ रहा है।

दोहा ३३५ के अन्तर्गत—

१ विस्तार= कवि ने नायक-नायिका भेद के प्रकरण में केवल संक्षिप्त भेदों की ही चर्चा की है।

क०— मज्जन[1] बसन अरु अन्जन तिलक चारु,
चंदन पुहुप माल हार हिये जानिये ।
कुन्डल तांबूल नक वेसरि विराजमान,
अंगिया अनूप कर कंकनहि बानिये ।
केहरि वलय कटि किंकणी नूपुर धुनि,
बेनि वो विसाल सीस व्याल ऐसो ठानिये ।
तरुनी के तन मन मोहिबे को मोहन को,
सोरह सिंगार लाल एई जो बषानिये ।

चौ०—एक दिवस कौसिल्या रानी । पठई सषी सिषाई सयानी ।।
मिलहि मिलि कहँ रहे लोभाई । देव वास की सुधि बिसराइ ।।
कुसल दुहुन कै जो विधि करिहै । होहु विदा प्रीतम फिरि मिलिहै ।।
लोमपाद चिंता मन एही । जनि कबहूँ कहै चलन सनेही ।।
दिन दिन प्रेम बढ़त है ऐसे । पक्ष उजियार चंद्रमा जैसे ।।
रानी विधि हरि हरहि मनावै । बेगि बेगि दसरथ नृप आवै ।।
हाथ जोरि कह दशरथ राजा । सुनहु मित्र आये जेहि काजा ।।
रिषि शृंगी नित रहत तुम्हारे । एक बेर जौ चलहिं हमारे ।।
पुत्र इष्टि एक यज्ञ कहावै । रिषि शृंगी जौ यज्ञ करावै ।।
तौ संतान होइ मनमाना । सबहिं कहतु हैं लोग सयाना ।।
लोमपाद सुनि अति सुष पावा । रिषि बैठे रहि ते तहँ धावा ।।
बहुत विनय करि कहि समुझाए । राजा तुम्हहि लेन हैं आए ।।
होहु दयाल हमहिं जस दीजै । जाइ मनोरथ पूरन कीजै ।।
राम जन्म को आगम जाना । रिषि उठि चले बहुत मनमाना ।।

दोहा ३३६ के अन्तर्गत

१ मज्जन···वषानिये =लालदास ने जिन षोडशशृंगार की गणना की है, वह इस प्रकार है—मज्जन (स्नान), वसन (चीर) अंजन, तिलक, चंदन, पुहुपमाल, (पुष्पमाला), हार, कुंडल, ताम्बूल, नकवेसरि, अंगिया (कंचुक), कंकण, वलय, किंकिणी, नूपुर और वेणी। षोडश शृंगार की चर्चा १५वीं शताब्दी के वल्लभदेव कृत 'सुभाषितावली, एवं १८वीं शताब्दी के चंदवरदायी (चंददास) कृत 'पृथ्वीराज रासो' एवं 'शृंगार सागर' तथा केशवदास कृत 'कवि प्रिया' में पाया जाताहै. । चन्ददास ने षोडश शृंगार का वर्णन इस प्रकार किया है—

दो०— नृप रानी के चलत महँ कहब मिलब कछु जौन ।
एक जीभ करि लाल कवि कहि को वरनै तौन ।। ३३६ ।।

[इति श्री अवधविलासे : बुद्धि प्रकाशे: सब गुन रासे : भक्त हुलासे: पाप विनासे :

कृत लालदासे: रिषि शृंगी अवध आगमन नाम अष्टमो विश्राम: ।।]

मंजन प्रकाश पोत कुंडल कपोल धीर,
अंजन सुधार नैन मैनता विहार की ।
माल वाल तिलक विशाल चारु मुकतन,
मनि माल मोहन सुबोधन सो चारु की ।
चंदन सो लेप अंग कंचुकी सुधार रंग,
किंकिनी अरंभ राग नूपुर सुधार की ।
बाजत मंजीर धीर सुखद सुधा शरीर,
चातुरी कला प्रवीन लोल वोल नारि की।।
—(शृंगार सागर' चंददास, सं० डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित,
(टंकित प्रति) छ० १०)

:—: अथ नवम विश्राम :—:

चौ० -- यहि बिधि राजा रिषिहि लै आई । नगर अजोध्या पहुँचे जाई ॥
उत्तम मास दिवस जब जाना । पुत्र इष्टि[१] तब जज्ञहि ठाना ॥
सागर छीर जहाँ आरंभा । गाड़े जाइ जज्ञ के षंभा ॥
बड़े बड़े रिषि मुनि औ राजा । आइ जुरे जहँ बड़े समाजा ॥
बेद बिहित सब बिधि बिस्तारा । दान दयो को गनै अपारा ॥
कौसिल्या कैकेई सुमानी । बैठी गाँठि जोरि नृप रानी ॥
सुंदर जज्ञ बेदि मन मोहै । तापर अग्नि देवता सोहै ॥
और जज्ञ सामग्री साजा । ते बहुतै लै बैठे राजा ॥
पंच रत्न हबि गबि है जेता । पंचामृत औ समिध समेता ॥
पत्र पुहुप फल बसन अनेका । पात्र धात्र गंध बिबिध बिबेका ॥
मोती मूंगा कनक अनूपा । पंचरत्न[२] ए चूनी रूपा ॥
तिल जव धान्य घीव गुड़ लेई । षोरि सुपारी हवन द्रव्य एई ॥
दूध घीव दधि मधु गुड़ लहिए । अमृत पंच नाम ए कहिए ॥
गोबर मूत्र गऊ के होई । दूध घीव दधि गवि कहि सोई ॥
आवाहन करि करि जो बोलाए । पूजा लेन देवता आए ॥
बाजा बजत बिबिध चहुँ ओरा । मनु पावस गाजत घनघोरा ॥
साढ़े सात सयकरे रानी । गावत गीत कोकिला बानी ॥
नाचत नटी मगन भइ ठाढ़ी । दामिनी से दमकत द्युति बाढ़ी ॥
ठौर ठौर गुनि जन लए बाजा । गावत राग नृत्य करि साजा ॥
बिप्रन्ह बेद पढ़े अरु गाए । मानहुँ बेद देह धरि आए ॥
राजा तहाँ भए दक्षोता । मुनि बशिष्ट रिषि श्रृंगी होता ॥
और सबै मुनि साकल लेहीं । वै दोउ होम तया सब देहीं ॥
जज्ञ रक्षक चौदह निःपापा । तिन्हको जज्ञ भीतर लै थापा ॥
ब्रह्मा बिष्नु रुद्र तहँ सोहे । इंद्र कुबेर चंद्रमा मोहे ॥

दोहा ३३७ के अन्तर्गत—

१. पुत्र इष्टि=पुत्रेष्टि-यज्ञ । ऋष्य श्रृंग द्वारा पुत्रेष्टि-यज्ञ सम्पादित करने का उल्लेख बाल्मीकि रामायण में भी पाया जाता है ।

पाठान्तर ; २. पंच रत्न एइ चुन्नी रूपा (व० प्रति)

सूरज पावक औ दिगपाला। बिद्याधर गंधर्व बिशाला ॥
लोकपाल अरु बरुण गणेशा। अपनि अपनि[३] दिसि बैठ सुदेशा ॥
पूरब इंद्र अग्नि अग्नियं। दक्षिण जम नैरित रक्ष सेयं ॥
पश्चिम बरुण बाइवे बाई। उत्तर बैठ कुबेर सुहाई ॥
ईशानें शंकर सुषदाई। ब्रह्मा स्वर्ग सेष भू पाई ॥
ए दिगपाल नाम दस आए। पुनि नव ग्रह बैठे जहँ जाए ॥
जेहि जेहि ठौर देवता भाषे। तहँ तहँ बिप्र देवता राषे ॥
जोइ जोइ नाम देवता होई। बिप्रन्ह नाम धरत गै सोई ॥
देवन्ह के रुचि के जु अहारा। देत गये तिन्हको बेवहारा ॥
केसरि चंदन फूलन्ह पूजे। होहु प्रसन्न कृतारथ हूजे ॥
सील क्षमा षट कर्मन्ह माँहीं। ते सब ब्राम्हन टहल कराहीं ॥
पढ़ै पढ़ावै देइ अरु लेई। जज्ञ करै करवावै जेई ॥
ए षट कर्म बिप्र के होई। जामहँ ए षट कर्मी सोई ॥
पात्र सोई जो बेद बषानै। गायत्री जप तप ब्रत ठानै ॥
अथवा बिष्नु भक्त जो होई। ता ब्राह्मन सम अवर न कोई ॥

दोहा— चंदन फूलै ऊष फल षांड़ परै पय माँहि।
लाल बिप्र पुनि बैष्नो ता सम तुल्य कोइ नाँहि ॥ ३३७ ॥

चौ०— होम करत संतुष्ट हुतासन। भए प्रसंन जो पुत्र प्रकासन ॥
दिव्य रूप पावक अधिकाई। जज्ञ पुरुष[१] प्रगटे तहँ आई ॥
अद्भुत रूप अग्नि मह राजै। कनक थार दोउ हाँथ बिराजै ॥
तामहँ सुंदर षीर अहारा। लेहु लेहु कहे हांथ पसारा ॥
मुनि रिषि उठि आदर करि लीए। उभय भाग कर राजहि दीए ॥

पाठान्तर : ३ अप अपनी दिस बैठ सुदेशा। (व० प्रति)

दोहा ३३८ के अन्तर्गत—

१. जज्ञ पुरुष=पुत्रेष्टि-यज्ञ की अग्नि से यज्ञ पुरुष का प्रकट होना तथा दशरथ द्वारा पायस ग्रहण करना। बाल्मीकि रामायण में पुत्रेष्टि-यज्ञ की अग्नि से अग्निदेव प्रकट होकर पायस दान करते हैं। भट्टिकाव्य तथा रामायण ककविन् में किसी दिव्य पुरुष द्वारा दिये गये पायस का उल्लेख नहीं मिलता। पद्मपुराण का पातालखण्ड अध्याय ११२-२३ और उत्तरखण्ड (अध्याय २६६, ४७)'कृत्तिवास रामायण (१,४१) बलरामदास रामायण ; रामरहस्य (२,१४२) में अग्नि के स्थान पर विष्णु स्वयं यज्ञाग्नि से प्रकट होकर पायस प्रदान करते हैं।

सीस चढ़ाइ लिये नृप रानी । धन्य धन्य रिषि मुनि कहि बानी ॥
पूरन जज्ञ भयो जब जाना । दीन्ह दक्षिणा करि सनमाना ॥
भूमि भोग बहुतै दियो ग्रामा । पाइँ परे सबके नृप बामा ॥
आजु भये सब काज हमारे । आवत हो रिषि पायँ तुम्हारे ॥
बिप्र कृपा करि आवहि जाके । पूरन होहि मनोरथ ताके ॥
जा घर बिप्र धरै पगु जाई । ता घर कीरत होइ बड़ाई ॥
बिप्र प्रसाद इंद्र भए लोगा । बिप्र प्रसाद पुत्र धन भोगा ॥

दोहा – बनिता बसन सुगंध औ भोजन गीत सुपान ।
मंदिर बाजी लाल कहि आठ भोग ए जान ॥ ३३८ ॥

चौ०— बिप्र प्रसाद राज अधिकाई । बिप्र प्रसाद बिपति दुष जाई ॥
बिप्र प्रसन्न भए जेहि जाना । ताहि प्रसन्न भए भगवाना ॥
बिप्र बचन[1] पूजे जेहि प्रानी । भए कृतारथ ताकहँ जानी ॥
भोजन हव्य उष्न जो होई । मौन सहित द्विज जेंवैं कोई ॥
जब लगि भले बुरे न बषाने । तब लगि पित्र षाँहि मनमाने ॥

दोहा— पित्र होहु केहु जोइन[2] पुत्र करै पिंडदान ।
लाल मंत्र बस करि तिन्हैं पहुँचे जाइ निदान ॥ ३३९ ॥

चौ०— कपिला दान दिये फल होई । पुष्कर कुंड अन्हावे कोई ॥
इह सव बेद पुरान सुनावै । बिप्र चरन धोए फल पावै ॥
ब्राम्हन हस्त षेत जिन्ह करषा । दान बीज सर्द्धा[1] जल वरषा ॥
बिनु कंटक बिनु कर्दम बाने । जन्म जन्म नहि लवत सिराने ॥
बिप्र वृक्ष पालै जो कोई । भल भोजन करि सींचै सोई ॥
ताहि कल्प तरु होइ पृथ्वीतल । अर्थ धर्म देइ काम मुक्ति फल ॥
हरि के चरन शंभु मन मोहे । बिप्र चरन हरि के हिय सोहे ॥
पाप समुद्र तरन हम जाना । केवट बिप्र नाउ गउदाना ॥
पावक बिप्र बेद होइ नाहीं । तौ सब जीव रसातल जाहीं ॥
ए सब देव लोक आधीना । ते सब देव मंत्र वस कीना ॥

दोहा ३३९ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १. विप्र चरन (व० प्रति)
२. जोनि मँह (व० प्रति)
दोहा ३४० के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ श्रद्धा (व० प्रति)

मंत्र भए बस बिप्र के हाँथा । बिप्र बिना सब देव अनाथा ।।
बिष्नु प्रसन्न कियो चहै कोई । ब्राम्हन को आराधै सोई ।।
ब्राम्हन बोलि जो करै निरासा । ताकों[2] होइ नरक महिं बासा ।।
बिप्र बिना जज्ञ दान न होई । दान बिना कछु पाव न कोई ।।
बिप्र आठ दस बर्ण को राजा । बिप्र बिना कछु होइ न काजा ।।
आदि चारि जुग चारिहु बर्णा । पुनि कहैं चारि बेद दुष हरणा ।।
संध्या तीनि लोक त्रय लेई । बर्ण अठारह कहिअतु एई ।।
बर्ण शिरोमणि बिप्र बषाना । बिप्र वचन सबके परमाना ।।
नामधरन घर ब्याहु बराता । ब्राम्हन बिना न पिंड प्रदाता ।।
आवन जान कुसल परदेसा । ब्राम्हन बिना न जाइ अंदेसा ।।
जब ग्रह क्रूर होइ दुषदाई । तब[3] ब्राम्हनैं जो होत सहाई ।।
बोवत लवत करत हर साजा । बोलि पूछियत पंडित राजा ।।
ग्रन्थ सुनाइ पढ़ाइ बनेवा । पशु ते मनुष्य करत द्विज देवा ।।
और कुटुंब स्वारथी हाथी । ब्राम्हन है परलोक के साथी ।।
पंडित मूरष भेद न आनी । ब्राम्हन सबै बिष्नु करि जानी ।।
ब्राम्हन मिले भले नहि रूठे । बिंध्यावल अजहूँ नहिं ऊठे ।।
रहे अगस्त्य सिंधु तट जाई । किये क्रोध जब कुटी बहाई ।।
अंजुलि[4] तीनि कियो जब ताही । पी गए सिंधु बिप्र अस आही ।।
पुनि प्रस्वेद करि कै तजि डारा । तब तें भयउ सिंधु जल षारा ।।
मुनि[5] महा चवन इंद्र मद मारा । ब्रम्ह तेज कर सुर.पुर जारा ।।
जय अरु बिजय पारषद हरि कै । ब्राम्हन श्राप असुर भए गिरि कै ।।
सुक एक बिप्र रहे उपकारी । राक्षस रिपु सुर के हितकारी ।।
राक्षस कुल द्विज श्रापहिं पाई । रावन को मंत्री भयो आई ।।
ब्राम्हन श्राप इंद्र कहँ दीए । जाना सबहि सहस भग कीए ।।
देवन मिलि मुनि प्रसंन जो कीन्हे । भग की ठौर नयन तब कीन्हे ।।
चंद्र क्रोध गौतम उपजाही । छई भई छूटत नहिं स्याही ।।

---

२. ताको होइ नरक महिवासा (व० प्रति) यह अर्द्धाली च० प्रति में नहीं है । संभवतः प्रतिलिपिकार के अनवधान से छूट गयी है ।

३. तब ब्राम्हन ही होत सहाई (व० प्रति)

४. अंजुरी (व० प्रति)

५. मुनि महा चवन..............पुर जारा = प्रस्तुत चौपाई व० प्रति में अनुपलब्ध है ।

ब्राम्हन जबहिं धरे बेगारे । अजगर भए नहूष बिचारे ।।
धोषे बिप्र गए कल्पाए । तब नृग जाइ गिरगिट तन पाए ।।
स्वर्ग गए जब नृपति जजाती । देषि इंद्र की जरी जो छाती ।।
छल करि देवन्ह ताहि गिरावा । ब्राम्हन बचन गिरे नहिं पावा ।।
बिश्वामित्र जज्ञ करवाए । देह सहित नृप स्वर्ग पठाए ।।
ताहि बशिष्ठ जो दीन्ह गिराई । बिश्वामित्र पुनि लीन्ह बचाई ।।
स्वर्ग न मृत्युलोक रहि पाला । बीचहि रहे त्रिसंकु भुआला ।।
अष्टाबक्र बिप्र रिषि होई । आठौ अंग टेढ़ रहै सोई ।।
ताहि देषि एक हँसो गंधर्बा । श्राप पिशाच भयो गयो गर्बा ।।
महादेव अति रूप बनाई । देव बधू देषहिं नित जाई ।।
गीत नृत्य करि तिन्हहि रिझावै । काम अग्नि सबके उपजावै ।।
भई बिरूप सबै प्रिय रानी । बिरह बाइ उपजी बौरानी ।।
देवन श्राप दियो करि तावा । रुद्र लिंग अजहूँ नहिं पावा ।।
टूटेउ लिंग परेउ होइ षंडा । फूलत बढ़त चलेउ ब्रम्हंडा ।।
तबहि देवता डरे बिचारे । पार्वती[६] पहिं जाइ पुकारे ।।
तबहि भवानी भग महं लीना । घटि गयो लिंग भयो बल हीना ।।
और एक बिधि है अस दूजा । जाते भई लिंग की पूजा ।।
दक्ष प्रजापति जज्ञ अरंभा । नेवते सबै देव मुनि रंभा ।।
महादेव को नहिन बोलाए । अवगुन आनि कछू बिसराए ।।
पारवती कहै आयसु पाऊँ । पिता जज्ञ देषौं फिरि आऊँ ।।
बलि बिभाग देवन्ह कै लेषा । महादेव को भाग न देषा ।।
शिव अपमान जान सरमानी । परी अग्नि महँ जरी सयानी ।।
महादेव सुनि भए उदासा । व्याप्यौ बिरह तज्यौ कैलासा ।।
पारवती के बिरह बहाए । फिरत फिरत गुजरातहिं आए ।।
तीरथ जहँ बड़ नगर सुचारी । नागर बिप्र बसत अधिकारी ।।
तहाँ जाइ बैठे जल तीरा । सोभा देषि भई त्रिय भीरा ।।
देषि सबै रीझी मन माहीं । बिसरा काम धाम नहिं जाहीं ।।

६ पार्वती पहिं जाइ पुकारे (व० प्रति) । प्रस्तुत अर्द्धाली च० प्रति में अनुपलब्ध है ।

दोहा— साहिब सेवक नारि नर जती सती सुष दात ।
सुंदरता [७] को देषि कै लाल सबहिं ललचात ।। ३४० ।।

चौ०— पुरुषन्ह सुना भई बस नारी । जोगिन्ह कछुक मोहिनी डारी ।।
दौरे बिप्र क्रोध करि ताहू । याको लिंग पतन होई जाहू ।।
टूटेउ लिंग परेउ महि फाटी । गयो पताल आय अस बाढ़ी ।।
तब बिप्रन्ह जानेउ महदेवा । लिंग थाप करी तिन्ह की सेवा ।।
लिंग कनकमय गढ़ि अस भाषा । नाम हाटकेश्वर[१] तब राषा ।।
बिप्र श्राप ऐसो है आही । तहँ अबहूँ पूजत हैं ताही ।।
भोगवती के तीर बिराजा । पूजत शेषनाग तहँ राजा ।।

दोहा - पाँच रत्न शिव कर्ण के पाँच पांडवा थाप ।
पार्वती भइ द्रोपदी कामधेनु को श्राप ।। ३४१ ।।

चौ०— रिषि कन्या एक बन तपधारी । रूपवंत[१] अति ही सुकुमारी ।।
ताहि देषि गंधर्व लोभाना । करि बलात तासों रति माना ।।
ताहि श्राप मिलि रिषिन्ह दियौ ही । राक्षस योनि बिराध भयो ही ।।
प्रतिवादिहि लोमस कलपाए । काकभुसुंडि काक तन पाए ।।
एक बेर कहु रिषि दुर्वासा । गै बैकुंठ दरस हरि आसा ।।
ताहि दई प्रभु जू बनमाला । सीस चढ़ाइ जो लई रसाला ।।
इंद्र मिले कहुँ बीच बिहारा । ऐरावत पर भये सवारा ।।
पूछे इंद्र कहाँ मुनि आए । माल मनोहर किन्ह पहिराए ।।
यह हरि दई मोहि मुनि भाषा । अब तुम लेहु इंद्र कर राषा ।।
माला लेइ तबहिं तेहि बारा । देवराज गज के शिर धारा ।।
लेइ गज माल लात तर दीन्हा । तब रिषि देषि कोप मन कीन्हा ।।
एते मान गुमान तुम्हारा । किय अपमान प्रसाद हमारा ।।
परिहै बिपति संपदा जैहैं । फिरिहहु भगे असुर दुष दैहैं ।।
मुनि के श्राप वृथा नहिं जाई । परे बंदि रावन घर आई ।।

---

७ सुन्दरता को……ललचात=सौन्दर्य समस्त प्राणियों के लिये आकर्षक होता है । तपस्वी शिव का यह तेजोमय सौन्दर्य किसे आकृष्ट न करेगा !

दोहा ३४१ के अन्तर्गत —
१ हाटकेश्वर=शिव

दोहा ३४२ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ रूपवन्त अति रही कुमारी । (व० प्रति)

महादेव[२] दक्ष के जज्ञ माहीं । श्राप दयो पुजियत बिधि नाहीं ।।
एक बेर शंकर मन डोला । करत रहे सुष काम कलोला ।।
पर्वत ऊँच अगम कैलासा । निर्जर सुषद एकांत नेवासा ।।
रति पति रीति रची मनमानी । भये काम बस संभु भवानी ।।
देवन्ह बात जानि यह लेषी । चलहु जाइ हंसिए तिन्है देषी ।।
आए हँसत देव रहे जेता । नारद ब्रह्मा बिष्नु समेता ।।
कस तुम्ह महापुरुष अस होंऊ । भले जोग साधत हौ दोऊ ।।
यह सुनि बचन सकुचि गिरिजाही । दयो श्राप सब होहु जड़ताही ।।
तब ते भये रूप सब देवा । कोउ परास कोउ पीपर मेवा ।।
मम संतान होत कुल धारन । राक्षस सब अशेष संघारन ।।
काज बिघ्न तुम्ह कीन्ह हमारे । जाहु पुत्र जनि होहु तुम्हारे ।।
तब पछिताइ देव सब रोवा । आनहि हँसि अपना घर षोवा ।।
जाप करत नारद दयो श्रापा । इंद्र दवन हाथी करि थापा ।।
विश्वामित्र राज रिषि भाए । तप बल करि रिषि ब्रह्म कहाए ।।
ताहि बशिष्ट राज रिषि भाषा । गायत्री श्रापित करि राषा ।।
पानी पवन भूमि गउ आगी । विप्र श्राप इन्हहूँ कहँ लागी ।।
सकुल गयो नृप भान प्रतापा । भोजन करत बिप्र दयो श्रापा ।।
जहाँ[३] बिहार करत पग गाहा । बिप्र श्राप गंधर्व भयो ग्राहा ।।
नलकुबर जो कुबेर कुमारा । बिप्र श्राप भयो वृक्ष बेचारा ।।
करि अस्तुति एहि बिधि उत्साहा । राजा अपने भाग्य सराहा ।।
अहो अहो मम भाग्य बड़ाई । कौंन कौंन मुनि पहुँचे आई ।।
केते विघ्न रहे भए दूरी । पूरन जज्ञ आस भै पूरी ।।
बड़े भाग्य प्रगटै जब कोई । दरसन संग साधु के होई ।।
भागहिं बड़े गये धन आवै । बड़े भाग सुष संपति पावै ।।

दोहा— तीरथ ब्रत यज्ञ देवता लाल मंत्र द्रुम षेत ।।
काल पाइ फल देत हैं साधु सद्य फल देत ।।३४२।।

चौ०— धन्य धन्य कह सब रिषि राजा । पूरण होहु तुम्हारे काजा ।।
कस न करहु अस बिप्र बड़ाई । बड़े बंश रबि कुल चलि आई ।।
बिप्र गऊ अरु दीन जो कोई । तिन्ह के नृप प्रतिपालक होई ।।

---

२ महादेव दक्ष के..........घर षोवा प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

३ जल विहार कर तैं पग गाहा (व० प्रति)

ई सब बात सत्य कहि तैसी । फलत भावना जाके जैसी ॥
तीरथ मन्त्र बिप्र अरु देवा । औषधि सगुन गुरू की सेवा ॥
व्रत अरु दान होम करै कोई । पावै सिद्धि भाव जस होई ॥
पुनि[1] दोउ भाग दोउन्ह कहँ दीये । कौसिल्या कैकेई लीये ॥
ताही समय सुमित्रा रानी । ठाढ़ी आइ कही यह बानी ॥
हमहूँ कहँ कछु आहि सहेली । सावधान जनि षाहु अकेली ॥
पुत्र जन्म व्याहत दिन होई । भोजन करत जो आवै कोई ॥
बोवत लवत लेत षरिहाना । उत्सव पर्व दीजिये दाना ॥
यथा शक्ति जौ देइ न कोई । सो परलोक दरिद्री होई ॥
काक स्वान बलि औ गौ ग्रासा । अतिथि अग्नि नहि करब निरासा ॥
ए सब बेद बतावत धर्मा । धर्म करत नहि लागत कर्मा ॥
ए सुनि बचन दोऊ मुसकानी । सहित सनेह सुनी हित बानी ॥
आवहु लेहु बहुत कछु आही । जौ तुम कही बात अस चाही ॥
आधेइ आध दोउन्ह दिये ताहू । एह लेहु यज्ञ भोग है षाहू ॥
वै दोउ भाग सुमित्रा षावा । तातें दोइ पुत्र तिन्ह पावा ॥
जानहु उहै अंस की रीती । दोउ भाइन्ह महँ निबही प्रीती ॥
कौसिल्या लिए आध सभागा । आधे के किये तीन बिभागा ॥
ताही क्षण हरि गर्भहि··आए । रहे एक बपु चारि बनाए ॥
आये गर्भ माहि हरि ऐसे । जोगी जाइ गुफा महँ वैसे ॥
रज बीरज कहुँ भेटा नाहीं । शुद्ध स्वरूप रहे तन माहीं ॥
अग्नि पवन गत सब सब माहीं । जतन करत प्रगटत जहँ ताहीं ॥
और गर्भ उपजत सब जाती । ए कछु नहि आए तेहि भांती ॥
और गर्भ के सुनहु बिधाना । होत है देह कर्म सब नाना ॥
पंच तत्व के हैं सब देहा । कीट पतंग ब्रह्मादिक जेहा ॥

दोहा ३४३ के अन्तर्गत—

१ पुनि दोउ भाग······तिन्ह पावा=अवधविलास में पायस का विभाजन इस प्रकार है—कौशल्या को १/२, कैकेयी को १/२ और सुमित्रा को दोनों ने आधे भाग का आधा-आधा अर्थात २/४ अंश दिया । वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ (सर्ग १६-२७) के अनुसार कौशल्या को आधा भाग मिला था, सुमित्रा को एक चतुर्थांश और एक अष्टमांश तथा कैकेयी को एक अष्टमांश । वाल्मीकि रामायण के उदीच्य पाठ तथा रामचरित मानस में पायस का विभाजन इस प्रकार है—कौशल्या को आधा, कैकेयी को एक चतुर्थांश और सुमित्रा को दो अष्टमांश ।

दोहा— गर्भ धरन मंगल करन दुःख हरन कहै लाल।
तीरथ पुत्र प्रकास कर भयो षेर[2]बना ताल ।।३४३।।

[इति श्री अवध विलासे : बुद्धि प्रकाशे : सब गुन रासे : भक्त हुलासे : पाप विनासे : कृत लालदासे : राम गर्भ प्रकासक नवम विश्राम:]

---

२ षेर बना ताल = ताल बन गया और खेल प्रारम्भ हुआ। ताल बन जाने से कवि का आशय पुत्रविहीन जीवन में जो निराशा थी, वह ताल में संगीत के आनन्द में परिणित हो गयी और खेल (षेर) = क्रीड़ा प्रारम्भ हुयी। श्रीमती शशिप्रभा दीक्षित के अनुसार इस पद में आये हुये ताल पर विचार करने के लिये 'तीरथ' पद पर विचार करना अपेक्षित है। उनके अनुसार 'ताल' में जल होता है और जल को ही तीर्थ कहते हैं किन्तु यहाँ ताल के बिना ही तीर्थ प्रकाशित हुआ अर्थात ताल = गर्भ में बिना आये हुये ही पुत्र तीर्थ (पवित्र धाम) की भाँति अवतरित हुये। श्रीमती दीक्षित के अनुसार 'षेर बना ताल' पाठ न होकर 'षेरब न ताल' पाठ होना चाहिये। और जिसका अर्थ ताल में क्रीड़ा नहीं हुयी अर्थात माँ के गर्भ में शिशु के जन्म से विकास की क्रीड़ा और उसकी पीड़ा नहीं हुयी। इसका संकेत कवि लालदास ने 'गर्भधरन मंगल करन दुःख हरन' पदों से व्यंजित किया है। साथ ही उक्त दोहे के पूर्व का प्रसंग भी राम के अयोनिज होने का प्रमाण देता है। संत मीता साहेब ने भी ईश्वर तथा संत को अयोनिज सृष्टि कहा है।

:—: अथ दसम विश्राम :—:

दक्षिण[१] के जे पंडित होई। राम जन्म मानत है ओई॥
सागर क्षीर जज्ञ जहँ ठाना। मानत ताहि जन्म अस्थाना॥
आए अवध ब्रम्हादिक देवा। गर्भ स्तुति कीन्हा बहु भेवा॥
धनि एह अवधपुरी तिन्ह माना। बैठे आइ स्वयं भगवाना॥
नमो नमो नारायण स्वामी। आदि पुरुष हरि अन्तरजामी॥
बैठे आइ गर्भ जगधारी। भक्त मनोरथ पूरनकारी॥
अज अविनासी रहित विकारा। कहिबे को है नाम तुम्हारा॥
अध: ऊर्ध मध्य बाहर भीतर। व्यापत सकल स्वर्ग पृथिवीतल॥
भाग्य बड़े प्रगटत हहु जाही। सोऊ ठौर कहाँ तुम नाहीं॥
जैसे पवन रहत सब ठौरा। बिजना करतहि उठत झकोरा॥
पावक बाहन काठ निवासा। जतन करत ही प्रगट प्रकासा॥
तुमको जे नर नहिन सयाने। आए गये भए जे जाने॥
निराकार निरदेह कहावै। तुमको भजै सो गर्भ न आवै॥
ब्रम्हादिक सब गर्भ तुम्हारे। बैठे बहु ब्रम्हांड सुधारे॥
तुम्हरे पुत्र जहाँ लगि कोई। पूत के पूत बाप कैसे होई॥
तुम कहँ और जीव सम मानैं। गर्भ बास महँ आए जानैं॥
ते नर परहि नर्क महँ तबहीं। जन्म मरण छूटै नहिं कबहीं॥
मनुष रूप प्रभु स्वांग बनाए। गर्भ माहिं रहि लोक भ्रमाए॥
पुत्र भए हरि अचरज कैसो। मांगेउ भक्त दियो बर तैसो॥
जाके उदर मध्य ब्रम्हंडा। सात समुद्र पृथिवी नव षंडा॥
रूप अनंत अपार बषानें। आइ भक्त बस गर्भ समानें॥
पूरब दिसा कियो परकासा। तौ का चंद गर्भ रहे बासा॥
तैसे तुम प्रगटत हो आई। तौ का गर्भ रहत है छाई॥
भक्त काज भू भार उतारन। सगुन स्वरूप धरत भव तारन॥
निर्गुण रूप कहा कहि गाई। रूप रेष कछु जानि न जाई॥

दोहा ३४४ के अन्तर्गत—

१ दक्षिण के जे·········जन्म अस्थाना=लालदास ने राम जन्म का स्थान दक्षिण के विद्वानों द्वारा स्वीकृत क्षीर सागर के यज्ञ स्थल को बताया है। 'अवधविलास' के अतिरिक्त अन्य रामकथात्मक ग्रन्थों में जन्म स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है।

जन्म कर्म गुण गावै दासा । सो संसार तरै अनयासा ॥
जिनको[२] मति रही पद रति आही । तिनके सुष आनंद सदा ही ॥
अभय पद राम चरण जिन्ह त्यागे । भटकत भुक्कत दुषनि अभागे ॥
इह कहि पुष्प बृष्टि तब कीन्हा । निर्भय भये दुंदभी दीन्हा ॥
बेर बेर करि बहुत बड़ाई । बैठे अपने लोकन्हि जाई ॥
दमकत गर्भ अर्भ आभासा । जनु दीपक फानूस प्रकासा ॥
परम जोति तहँ सोहत कैसा । सीसी माँह रंग कियो जैसा ॥
जिन्ह के तन हरि आइ समाए । और अनेक शक्ति तिन्ह पाए ॥
भूत भविष्य सबै लगि जाने । होइ सोइ जो मातु बषाने ॥
करिए कछु मन महँ इह साजा । होइ रहत तबहीं सोइ काजा ॥
काहू के[३] बात कछू मन आवै । सो कहि देत कहन नहिं पावै ॥
हाथ छुवै कबहुँ कछु चाना । सो बहुतै होइ न सिराना ॥
सुन्दरता तन की मन भाई । होत चली दिन दिन अधिकाई ॥
सौति समूह रहै कछु बासा । जाहि जहाँ जनु भानु प्रकासा ॥
चौपरि चारु करहि कछु लीला । जीतति रानि सदा कौसिल्या ॥
चाहत जित यो हारति कोई । बैठत रानी कियो रसोई ॥
नृप दसरथ देषत इन्ह घाहीं । माया[४] कृत कछु व्यापत नाहीं ॥
परमानंद मगन मन रहई । होइ पुत्र मुष देषेउ चहई ॥
दुर्जन दुष्ट रहे कहु कोई । आपुहि आइ मिले नृप सोई ॥
देस प्रकास भयो कछु ऐसा । पूरन चंद प्रकासत जैसा ॥
आगम राम के लाल बषाने । चौगुन आइ जु भरे षजाने ॥
हरि अवतार सो इच्छाचारी । रहित बिकार दिव्य तनु धारी ॥
जन्म होइ पुनि रहै बढ़ाई । रूप बिरूप छीन बिनसाई ॥
ए षट देह बिकार कहावै । सो हरि माँह न एकौ पावै ॥

दोहा — अगुण सगुण दोइ रूप हैं हरि के गावत वेद ।
लाल अवर पावैं नहीं बिना भक्त यह भेद ॥३४४॥

पाठान्तरः २ जिनको मति.........दुषनि अभागे=प्रस्तुत पंक्तियाँ 'ब'० प्रति में नहीं हैं ।

३ काहू के......अधिकाई=प्रस्तुत पंक्तियाँ च० प्रति में नहीं हैं ।

४ माया कृत कछु व्यापत नाहीं=माया के द्वारा गर्भ होने के कारण रानियों को दौड़ने में कोई कष्ट नहीं होता ।

और गर्भ के सुनहु बिधाना । होत है देह कर्म बस नाना ॥
पंच तत्व के हैं सब देहा । कीट पतंग ब्रम्हादिक जेहा ॥
जीव प्रथम आवत जल माहीं । पुनि जल ते अन्न माहि समाहीं ॥
जहँ जाको चहिए अवतारा । सोइ अनाज नर करै अहारा ॥
अन्न तें रस रस शुक्रउ पावा । तब वह जीव बिंद महं आवा ॥
तीनि धातु बीरज ते होई । मज्जा अस्थि नसैं सब सोई ॥
तैसे रज भयो चारि प्रकारा । त्वचा मांस लोहू अरु बारा ॥
धातु जो तीनि पिता की कहिए । चारि धातु माता की लहिए ॥
ऐसे सप्त धातु यह होई । ताकी देह जानु सब कोई ॥
पुत्र होत बीरज अधिकाई । रज अधिकार कन्यका जाई ॥
रज बीरज जो होइ समाना । होइ नपुंसक कहत सयाना ॥
ग्रन्थ स्वरोदय को मत आही । सो मैं कहौं सुनों अब ताही ॥
बीरज पतन प्रथम जौ होई । पुत्र होत संशय नहिं कोई ॥
जौ रज प्रथम चलै तेहि बारा । कन्या जानु गर्भ बिस्तारा ॥
एकहि बेर गिरै जौ दोई । जानहु पुत्र नपुंसक सोई ॥
बीरज पतन भए पर चालन । होत हैं दोइ गर्भ एहि कारन ॥
कन्या पुत्र परीक्षा आही । जानै गर्भ सुनो अब ताही ॥
माता रूप पुष्ट रहै जोए । तौ जानहु कन्या है लोए ॥
छीन शरीर रंग पियराई । जानहु पुत्र गर्भ रहे आई ॥
पिय पंडित जौ होइ सयाना । तौ कन्या नहिं होत बिधाना ॥
इला पिंगला करत बिचारा । तब रति दान देइ तेहि बारा ॥
आगै प्रगट कहत नहिं प्रातैं । सब संसार करै यह बातैं ॥

दोहा— स्याम गौर गुन रूप छबि सोभा सुष तब होत ।
नर नारिन्ह के लाल ए न्हान दान ते होत ॥३४५॥

चौ०— अब सुनु लेहु गर्भ की बाता । रज बीरज मिलि रचत बिधाता ॥
जब पिय देत त्रियहि रति दाना । तब बीरज रज माँह समाना ॥
एक दिवस मँह मिलत हैं दोई । दिवस पंच मँह बुद बुद होई ॥
दिवस सात मँह फेन समाना । दिन[1] दस माँह पिंड परमाना ॥
दिवस पंचदस होत है अंडा । मास एक माँह निकसत मुंडा ॥
भुज अरु जंघ मास दोइ पाई । तिसरे मास पेट बिलगाई ॥

दोहा ३४६ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ दिन दश महि पिंडो परमाना । (व० प्रति)

हाथ[२] पांउ साषा अरु पिंडुरी । चौथे मास प्रगट भई अंगुरी ॥
पूरन पंच मास सब अंगा । षष्टम मास हाड़ दृढ़ संगा ॥
कन्या[३] मुष पेडू दिसि रहही । माता दृष्टि पुत्र मुष अहई ॥
अंग अंग सो छपटत भाष्यौ । मानो मोट बांधि धरि राष्यो ॥

दोहा— पंच मास में तन भयो छठे जीव रह आइ ।
जैसे घर कह होत है पुनि कोउ बैठे जाइ ॥३४६॥

चौ०— पूरन गर्भ सातयें मासा । कोउ निकसत कोउ गर्भहि बासा ॥
अठयें हलत चलत सब गाता । जानै और कवन बिनु माता ॥
स्वांस उस्वाँस लेत अँगराई । जन्म एक से बिधि सुधि आई ॥
जेहि जोहि जोनि लिए अवतारा । जानैं सबै कर्म व्यवहारा ॥
पाप पुन्य के फल मन आनै । स्वर्ग नरक दुष सुष सब जानै ॥
देषे नर्क बहुत दुषदाई । करि करि सुरत बहुत पछिताई ॥
अष्ट धातु पुतरी करि ताती । लंपट को छपटावत छाती ॥
मदिरा पान करै नर बंगा । अवटत ताहि पिआवत रंगा ॥
निंदा अरु पर त्रिया कहानो । सुनत हैं मूढ़ महा रुचि मानो ॥
जरत तेल औ तप्त सलाके । डारत दूत कान में ताके ॥
पर त्रिय नग्न देषि ललचाई । फोरत आँषि काक दुषदाई ॥
जोवहिं मारि मांस जो षाहीं । कृमि कूपन में ते नर जाहीं ॥
जिन पक्षिन के पंष उचेरे । संडसिन्ह तन तोरत तिन्ह केरे ॥
झूठी साषि भरै जो कोई । कुंभी पाक परै जाइ सोई ॥
काहू कहँ कोउ दोष लगावै । सो जम लोक जाइ दुष पावै ॥
बिनु अपराध सतावै काही । सूरो[१] ताहि देत जम आही ॥
चुगुल चोर होइ जमपुर जाई । तिन्हकौं तेल कराह पचाई ॥
बिना सुनी बिनु देषो भाषो । छेदत कान औ काढ़त आंषो ॥
कुंभी पाक ब्रम्हहा डारे । रौरव नर्क गऊ हत्यारे ॥

---

२ हाथ पाउ साखा ज्यों पिंडुरी । (व० प्रति)
३ कन्या मुष............बैठे जाइ – प्रस्तुत पंक्तियाँ 'व'० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

दोहा ३४७ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ सूरी तहाँ देत जम ताही । (व० प्रति)

कन्या देत बिघ्न जो करै । स्त्री मारि गर्भ कहँ डारै ।।
मारै जीव करै बरियाई । तिन कहँ घानी घालि पिराई ।।
बिनु आहूति अतिथ बिनु षाँही । बिष्टा कूप परै ता माँही ।।
ब्रत अरु दान भंग करै कोई । पराश्रय[२] स्वान से भूसै सोई ।।
गुरु अरु स्वामि द्रोह करि मारा । तिन्ह कहँ जम काटत छुरि धारा ।।
धन हित बृध बालक जो मारैं । जरत कराह तेल महँ डारै ।।
सब कहँ दुष दाता जो आही । ब्याधि कूप महँ डारत ताही ।।
षेत ग्राम की सींव चुरावै । परत्रिय हरहि द्रोह उपजावै ।।
ताहि चक्र मारत जम राई । पुनि सब नर्कन माहिं फिराई ।।
घृत गुड़ तेल जो षाइ चोराई । तिन कहँ तिनही माहिं पचाई ।।
सबहिं कलेस देत जो फिरहीं । कृमी कूप मँह ते नर परहीं ।।
पर दारा धन आसा राषै । तीर्थ बिप्र श्रुति निंदा भाषै ।।
लोह बसन पानहीं जो चोरै । काटै बाग देवालय फोरै ।।
भोजन विघ्न करै कछु काही । लोह जंत्र मँह पेरत ताही ।।
घर बन अग्नि देत है कोई । अग्नि कुंड मँह परत है सोई ।।
दुषिता तीय बाल भृत्य बृद्धा । पूजत इन्हहिं न जे कर श्रद्धा ।।
मानत[३] बिप्र न देव सयाने । ते जमराज ब्रम्हहा माने ।।
सो जम लोक है जानु इहाँसो । जोजन पंथ है सहस छियासो ।।
प्रथमहिं जोजन एक हजारा । सिंह[४] भयानक रुद्राकारा ।।
जोजन पंच हजार है बरना । महा तीक्षन कंटक पर चलना ।।
जोजन दोइ हजार बषाना । तप्त बालुका ता पर जाना ।।
जोजन दस हजार छुर धारा । आठ हजार अग्नि माझारा[५] ।।
जोजन सहस पंच दस जाही । काल रात्रि अंधियारे माँहीं ।।
जोजन आठ हजारहिं जानी । बूड़त पैरत पानिहिं पानीं ।।
कहुँ इक सीतहिं भीतर चाला । जाड़[६] होइ ता महँ अति पाला ।।

पाठान्तर : २ परै असि पत्र स्वान गुण सोई । (व० प्रति)

३ मानत देव न विप्र सयाने (व० प्रति)

४ सिंह भयानक..........तापर जाना=प्रस्तुत पंक्तियों का पाठ 'व०' प्रति से ग्रहण किया गया है ।

५ मँझारा (व० प्रति)

६ जड़ होइ जाते महा अति पाला । (व० प्रति)

कहुँ इक जात हैं धाम मँझारी । द्वादस सूरज तेज पसारी ॥
दस हजार हाँथी कै जेती । भूष प्यास लागत तहँ तेती ॥
पुनि सौ जोजन उतरब तामा । महाधुनी[७] वैतरणी नामा ॥
कोसन तीनि लक्ष बिस्तारा । चारि और चालीस हजारा ॥

दोहा— अश्व रथ पनहीं सेज गो क्षत्र जल तरु दिप धान ।
लाल चलत महा पंथ महँ पावत हैं नर दान ॥३४७॥

चौ०— तहँ ते उतरि जात जम आगे । धर्मराज लेषा तब माँगे ॥
जो जेहि कर्म किए कछु आही । चित्रगुप्त समुझावत ताही ॥
गुप्त प्रगट कछु करत है जानी । साषि भरत तहँ चौदह प्रानी ॥

दोहा— रवि शशि पवन अकास भू जम जल हृदय जु राषि ।
अग्नि अहो निसि सांझ द्वै लाल भरत एइ साषि ॥३४८॥

चौ०— साधु संग[१] जिनके नित वांक्षा । परगुन प्रीति धर्म की कांक्षा ॥
बड़ेन सौं नवनि दीन दया अति । विद्या विसन त्रिया अपनी रति ॥
डरत रहत अपवाद लोक सों । हरि हर भक्ति विमुक्त शोक सो ॥
इंद्री दमन शक्ति अधिकारी । खल संगति परिहरहिं बिचारी ॥
एते गुन जिनके तन धरिए । नमस्कार ता नर को करिए ॥
शुभ अरु अशुभ कर्म जे होई । तिनके फल भुक्तावत सोई ॥
पुनि तहँ ते छूटत नर अंधा । फिरि 'चौरासी परै निबंधा ॥
जे[२] अदेष है हम कछु कीना । तिनको अंध जानि मति हीना ॥
देषै जीव जन्तु जहँ जेते । वन पर्वत देषत हैं तेते ॥
ताते अब अस कर्म न करिहौं । भजि तुम कहँ संसारहि तरिहौं ॥
देषी गर्भ बास मलिनाई । मल अरु मूत्र अंग लपटाई ॥
माता तात तीत कछु षाई । आँवलि लवन अन्न अधिकाई ॥
आगि तीर से लागत ताके । माता स्वाद करत अपनाके ॥
तन कोमल अरु तेज अहारा । व्याकुल होत हैं गर्भ बिचारा ॥

पाठान्तर : ७ महा नदी वैंतरनी नामा । (व० प्रति)

दोहा ३४९ के अन्तर्गत:—

१ साधु संग·······ता नर को करिए=प्रस्तुत पंक्तियाँ 'व०' प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

२ जे अदेष·········देषत हैं तेते=प्रस्तुत पंक्तियाँ 'व०' प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

औंधे मुष दुष कहिय न जाई । काटत कृमि बल कछु न बसाई ।।
तब बैराग होत मन माँहीं । अब अस कर्म करब कछु नाहीं ।।
जाते जन्म मरण बहु बानक । फिरत रहत जिय जोनि भयानक ।।
अंध पंगु होइ कुष्ट बहावै । दुषी दरिद्रिहि मरण न भावै ।।
अस यह जीव अधम धन गाड़ै । मरण होत ममता नहिं छाड़ै ।।

दोहा— मांस रुधिर मल मूत्र कृमि हाड़ चाम नस बार ।
लाल दोषमय देह को मूढ़ करत अहंकार ।। ३४९ ।।
रूप अनित जौवन अनित लाल अनित धन धाम ।
देह अनित सुष दुष अनित नित्य एक सत राम ।। ३५० ।।

चौ०—चारि ठौर बैराग्य बषाना । गर्भ बसत अरु सुनत पुराना ।।
पुनि एक त्रिय रति अंत जो होई । चौथे मृतक जरावत सोई ।।
ऐसे सदा रहत मन त्यागी । ताको नाम जानु बैरागी ।।
जौ यह गर्भ बंध होइ भंगा । लै अवतार करौ सतसंगा ।।
करि सतसंग ज्ञान उपजावै । ज्ञानउ पाइ मुक्ति पुनि पावै ।।
भक्ति भये मिलिहै भगवाना । जन्म मरण मिटिहै तप नाना ।।
करत पुकार महा दुष पाई । तब हरि दरस देत हैं आई ।।
हाँथ जोरि कहै भाग्य हमारे । भयो कृतारथ दरश तुम्हारे ।।
तुम समरथ उधरन सब नाथा । मैं हौं दीन गरीब अनाथा ।।
महा नर्क ते काढ़हु मोंही । सेवक होइ भजब मैं तोंही ।।
मैं अतिहीन[१] अधम अपराधी । एकौ जन्म भक्ति नहि साधी ।।
स्वर्ग पताल फिरेउँ चौरासी । भक्ति तुम्हारि बिना अविनासी ।।
बहुत बेर मैं तोंहि बिसारा । अब तो सदा करत संभारा ।।
तुम कहँ दोष कछू नहिं दीजै । सेवा सदा तुम्हारी कीजै ।।
जन्म देत हौ तुमहिं दयाला । पुनि तुम ही करते प्रतिपाला ।।
नर मूरष तुमको बिसराई । सेवक होत आन को जाई ।।
माता[२] पिता त्रिया सुत होई । ए सब आप स्वारथी लोई ।।

दोहा— मात पिता कहँ पुत्र मम त्रिय पति सुत कहँ तात
देव पित्र कहँ भक्त मम भष कहँ जे जिव षात ।। ३५१ ।

दोहा ३५१ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १. मतिहीन (व० प्रति)
२. मात पिता.........जिव षात—प्रस्तुत दोहा व० प्रति में अनुपलब्ध है ।

चौ०— यह सब नाव बैठि का मेला । जन्मत एकै मरत अकेला ॥
जेहि जेहि जोनि हौं फिरेऊँ अलेषा । तहँ तहँ एक तोहि मैं देषा ॥
तुमहीं दीन दयाल सदा ही । देत हौ बाहर करि तब ताही ॥
नवम मास उघरत नव द्वारा । दशवें मास लेत अवतारा ॥
तब एक पवन चलत अधिकाई । बल करि गर्भहि देत गिराई ॥
अंगुलि बारह जोनिहि जाना । चौदह बालक तन परमाना ॥
काढ़त सूत सुनार ज्यों जंतो । निकसत कष्ट होत बहुभंती ॥
भयो अचेत जबहिं बहिराना । बिसरेउ जीवहि गर्भ को ज्ञाना ॥
कहाँ कहाँ कहि रोवन लागे । माया मोहित भये अभागे ॥
सूतक[१] जन्मत होत है ताता । दिवस पंच चालीसहि माता ॥
दिन चौबीस पिता कह बरना । द्वादस दिवस ज्ञाति कह करना ॥
बालक सुद्ध होत जब सोई । संस्कार जाके दस होई ॥
देव पित्र जप तप व्रत धारी । संस्कार बिनु नहि अधिकारी ॥
जेती बात गर्भ महं भाषो । बाहेर आइ एक नहि राषो ॥
वाचा चोर भयो जब जाना ॥ तब फिरि गर्भ दीन्ह भगवाना ॥
जैसे पक्षी पकरत कोई । छूटे फेरि बाझत है सोई ॥
तैसे जीव अंध नहि डरई । फिरि फिरि गर्भ माँहि सो परई ॥

दोहा— बालकपन पशु ज्यों रह्यो जौवन[२] अंध जो लाल ।
बूढ़ भये रह्यो पंगु ज्यों मारि[३] लेत तब काल ॥ ३५२ ॥

चौ०— सब शुभ कर्म सत्व गुन जुक्ता । पावै देव जोनि होइ मुक्ता ॥
पापहि पाप तमो गुण होई । पावै जोनि त्रिजग नर सोई ॥
रज गुण पाप पुन्य सब कर्मा । पावै मनुष्य देह नर धर्मा ॥
फिरि[१] वैसी तेहि भई सेहाला । जम की मारि गर्भ महँ डाला ॥
हरि यह भाँति नहिन कछु आए । गर्भ देषाइ लोक भरमाए ॥

दोहा ३५२ के अन्तर्गत—
१ सूतक जन्मत..............नहिं अधिकारी=प्रस्तुत पंक्तियाँ 'व०' प्रति में नहीं है ।
पाठान्तर : २ ज्वान । (व० प्रति)
३ मारि लै गयो काल । (व० प्रति)
दोहा ३५३ के अन्तर्गत—
१ फिरि वैसेई भये हवाला । (व० प्रति)

अल्प ज्ञान नर भेद न पावै । ब्रह्म होइ सो गर्भ न आवै ॥
राम कृष्ण लीला अवतारी । तिन्हको कहैं मनुज तनुधारी ॥
देह गलानि लाल उपजाई । गए निबुकि[२] लोकन भरमाई ॥
एह कछु भेद भक्त केहु पाया । प्रगटल माया करि रघुराया ॥

दोहा— जे यह गर्भ कथा सुनै राम भक्त से होइ ।
लाल बसै वैकुन्ठ ही गर्भ न आवन होइ ॥ ३५३ ॥

चौ०— घर घर नगर नारि नर जानी । गर्भ धरेउ कौशिल्या रानी ॥
मुनि वशिष्ट रिषि शृंगी आनें । तिन्ह कछु कीन्ह उपाय सयानें ॥
अब लौ तौ कछु रहो न बाता । गर्भ धरे जज्ञ करत बिधाता ॥
याते पुत्र अवसि अब होई । हरषे जहाँ तहाँ सब कोई ॥
उत्सव किये बहुत पुरवासी । गीत विनोद दान दिये दासी ।
देहि असीस सबहिं नर नारी । माँगहि विधि पहँ गोद पसारी ॥
हरषी धरा धीर मन होई । अब डर मो कहँ नहि कछु कोई ॥
अब हो जियत्र मरत दुषदाई । आपुहि षसम पहूँचे आई ॥
बहले परति गऊ कहुँ कोई । षसमहि देषि हरष जिय होई ॥
सब गुन जुक्त समय जब आवा । प्रगटे राम सबहि मन भावा ॥
चैत मास[१] पाष उजियारा । नौमी तिथि अरु दिन शशि वारा ॥
नषत[२] पुनर्वसु अभिजित देषा । कर्क लग्न ग्रह सात विशेषा ॥
राम को जन्म पत्र है जैसा । सो मैं कहौं सुनो अब तैसा ॥
तब लिषि रिषिन्ह संस्कृत राषा । तापर मैं अब करत हौं भाषा ॥
लेखा जाँहि आठ अरु बीसा । तब अवतार लेत जगदीसा ॥

दोहा— बावन जुग की बात है लाल अवधि बिस्तार ।
तेरह त्रेता होइ गये भए राम अवतार ॥ ३५४ ।

---

२ निमुकि (व० प्रति) निबुकि = निवृत (गर्भ-बंधन से मुक्त)

दोहा ३५४ के अन्तर्गत—

१ चैत मास..........शशि वारा = कवि ने राम की जन्म तिथि चैत्र शुक्ल नवमी मंगलवार बताई है । बाल्मीकि रामायण से रामचरित मानस तक प्रायः सभी रामायणों में इसी तिथि का उल्लेख किया गया है ।

२ नषत पुनर्वसु..............सात विशेषा = कवि ने राम जन्म की लग्न का उल्लेख किया है ।

सोरह वर्ष विवाह करि द्वादस घर बिश्राम ।
बनोबास करि चारि दस राज्य करत पुनि राम ॥ ३५५ ॥
॥ अथ संस्कृत लिष्यते ॥

श्लोक— मधुमासे[1] सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे
पुनर्वस्वरिक्षे सहिते उच्चस्थे·ग्रह पंचके ।
मुखे पूषनि संप्राप्तो पुष्य वृष्टि समाकुले
आविरासीज्जगन्नाथ परमात्मा सनातनः ॥

चौ०— जा दिन जन्म होत जेहि बारा । भुक्तत फल तस सब संसारा ॥
ऊँच नीच शुभ कहत हौं सोई । ग्रह जस परै राशिगत होई ॥
सूरज ऊँच मेष के बरना । बृष के चंद्र मकर कुज करना ॥
बुध कन्या गुरु कर्कहि जानें । शुक्र मीन·शनि तुला बषानें ॥
राहु केतु दोउ मिथुनहि सूचे । या विधि ए नव ग्रह भए ऊँचे ॥
सुनहु स्वगृहो होत हैं जैसे । रासिहि मिलत कहत हौं तैसे ॥
सूरज सिंह कर्क के चंदा । मंगल मेष·बृश्चिक सुष कंदा ॥
बुद्ध मिथुन कन्या के राषे । गुरू मीन औ धन के भाषे ॥
बृष अरु तुला शुक्र जो कोई । मकर कुम्भ·शनि स्वयं ग्रह सोई ॥
सूरज तुला नीच ग्रह कहिए । चन्द्र बृश्चिक.कुज कर्कहि लहिए ॥
बुध होइ नीच मीन जो आवै । मकर बृहस्पति नीच कहावै ॥
कन्या शुक्र मेष शनि बीचे । धन के राहु केतु कह नीचे ॥

दोहा— जन्म मरण जीवन जरा नाम रूप ग्रह भाग ।
लाल राम को कछु नहीं देह धरे गुण लाग ॥ ३५६ ॥

चौ०— सुष दुष होत लगत जे प्रानी । ते सब इन्ह नव ग्रह करि जानी ॥
जेहि जेहि राशि मिलत ग्रह जोई । ऊंच नीच शुभ कहत हों सोई ॥
आपुहि रचे आपु कहलाये । रोग दोष ग्रह मान बढ़ाये ॥

दोहा ३५६ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ मधुमासे सिते पक्षे नवम्यां कर्कटे शुभे
पुनर्वस्वृक्षे सहिते उच्चस्थे ग्रह पंचके ॥
मेषे पूषनि संम्प्राप्ते पुष्प वृष्टि समाकुले
आविरासी जगन्नाथः परमात्मा सनातनः ॥ (व० प्रति)

जोतिष[१] मंत्र औषधी नाना । गुण देषाइ प्रभु कीन्ह प्रमाना ।।
करत हैं कृपा देह धरि जाई । पीछे जीव करत सब कोई ।।
अयन मास तिथि वार बषानो । लग्न नषत ग्रह रितु फल आनो ।।
अब कहौं सुनहु भाव फल जे हैं । उत्तरायन के होत कहे हैं ।।
रूपवंत गुण शील प्रतापा । सुष सज्जन ईश्वरता थापा ।।
रितु बसंत फल कहत बषानो । जन्मत कौतुक धर्मरत प्रानो ।।
लावनि युत कीरति आनंदा । तप अरु तेज ज्ञान गुन कंदा ।।
मास चैत फल सुनहु जो पावै । निठुर संदेह विदेश भ्रमावै ।।
फल पक्ष शुक्ल होत सुषकारी । बल्लभ बुधि आनंद उपकारी ।।
तिथि नौमी संतति तप तेजा । कोविद काम कला त्रिय हेजा ।।

दोहा— मृदु[२] मनस्वी सुकुमार तन सुधीमान विद्वान ।
ग्रंथाभ्यासी दृग बड़े चंद्रवार फल जान ।। ३५७ ।।

चौ०— नषत[१] पुनर्वसु राहहि पावै । साधु अनंद तेज बुधि आवै ।।
सूरज दसम त्रिया दुष होई । आपुहि एक भाइ नहिं कोई ।।
चंद्र[२] बारहे दुसरै आहो । द्विज हत्या लागै पुनि ताही ।।
वन पर्वत सोइ भ्रमै विषादी । षाइ कंद फल है सतवादी ।।
मंगल सप्तम त्रिया बिछोहा । व्यापै बिरह परै दुष मोहा ।।
बुध दसएँ जु प्रताप भवंता । कीरतिवंत राज्य धनवंता ।।
चौथ बृहस्पति जो होइ जाता । महा प्रताप असुर भय दाता ।।
तपस्वी होइ तजै गृह वासा । जती मित्र होइ फिरै उदासा ।।
ऊँच नजरि घटि कर्म न कारी । राजासन बैठे बलधारी ।।
कला अनेक न्याय निपुनाई । होइ दीन पर अति करुनाई ।।
नवमे शुक्र धर्मरत बरना । धर्म आत्मा शुभ आचरना ।।
सासि चौथे जड़ मुग्ध दुषी जन । जोगी जती उदास कष्ट तन ।।

दोहा ३५७ के अन्तर्गत—

१ जोतष । (व० प्रति)

२ मृदु मनस्वी········फल जान = प्रस्तुत दोहा छ० प्रति में अनुपलब्ध है । और उसके बाद 'व०' प्रति में निम्नलिखित चौपाई पायी जाती है—

"बार बुद्ध दाता गुन ग्राही । त्रास अधीर प्रसिद्ध विद्या ही" । (व० प्रति)

दोहा ३५८ के अन्तर्गत—

१ नषत पुनर्वस राजहि पावै । (व० प्रति)

२ चंद्र बारहे दुष पेरे आहो । (व० प्रति)

राहु बारहें बिग्रह कारी। कठिन काज करै तजि गृह नारी ॥
फिरे प्रदेस होई जग विजई[3]। पूरन करै मनोरथ सजई ॥
छठएँ केतु शत्रु सुष हंता[4]। पशु सों बहुत सनेह मित्रता ॥
रहै शरीर निरोग[5] सदा हीं। नाना घर प्राप्ति कछु नाहीं ॥
अब सुनु होत जोग फल जैसा। कहत हैं ग्रन्थ जोतिषो तैसा ॥
चौथे शनि दसएँ रबि जोई। दुख सुष दोउ पिता कहँ होई ॥
मंगल ते तिसरे शुक जाके। भ्राता सब सेवक होइ ताके ॥
शशि ते चौथे ग्रह बुध पावै। क्रूरइ संग क्रूर ग्रह आवै ॥
सब जानत इह जोग बिष्याता। ता सुत की दुष पावै माता ॥
शुक्र ते बुध सतयें घर क्रूरा। पावै दुष ताकी त्रिय पूरा ॥
शनि[6] ते सतयें आयु घर सूचा। होत[7] शुक्र का संगहु ऊंचा ॥
धर्म अस्थान परै जो आई। पावै आयु और अधिकाई ॥

दोहा— वर्ष मास फल राम के लाल करत बिस्तार।
दस हजार संवत लिषत कागद करै[8] भंडार ॥३५८॥

चौ०— अब नव ग्रह स्थिति कहौं गाई। दिन अरु मास रासि भुगताई ॥
सूरज मास एक रहै रासी। चंद्र सवा द्वै दिन सुष रासी ॥
मंगल दिवस पंच चालीसा। बुद्ध रहत दिन रासिहि तीसा ॥
तेरह मास होत गुरु चारा। मास एक रहु शुक्र करारा ॥
तीस मास शनि की ठकुराई[1]। मास अठारहि राहु रहाही ॥
कोउ सुष कोउ दुष होत है दाता। राहु केतु दोउ एक विष्याता ॥
अब इन्हके कहै देस सुनाई। जहँ जे रहत करत ठकुराई ॥
सूरज पुरासान के राजा। चन्द्र हिमालय रहत बिराजा ॥
मंगल जहँ तुरकान है गाजै। बुद्ध रूम गुरु चीन विराजै ॥

पाठान्तर : ३ दिग विजई (व० प्रति)
४ सब हंता (व० प्रति)
५ निरोग शरीर (व० प्रति)
६ शनि ते अठयें आयु घर सूचा (व० प्रति)
७ होइ शुक्र का स्वगृही ऊंचा (व० प्रति)
८ भरै। (व० प्रति)

दोहा ३५९ के अन्तर्गत—
१ ठकुराई=साम्राज्य, शनि की प्रधानता को ठकुराई से व्यंजित किया गया है.।

शुक्र चाच सनि हिन्दुस्थाना । राहु केतु के मैं 'नहिं जाना ।।
वास स्थान ग्रहन के सुनहू । सूरज चौथ स्वर्ग पर गनहूँ ।।
चंद्र प्रथम पंचम कुज राषे । बुध दूसर षष्टम गुरु भाषे ।।
त्रितिया शुक्र शनि सप्तम जाने । जन्म पत्र यह लाल बषाने ।।

दोहा— लग्न नषत गृह वार तिथि जन्म होत जेहि काल ।
तिन्ह के वहि क्रम देस दिसि पाइ होत फल लाल ।।३५९ ।।

चौ०— साठक[1] नाम कहौं सुनु ताही । होत चरित्र सबै इन्ह माही ।।
प्रभव विभव अरु शुक्ल प्रमोदी । एक प्रजापति अंगिरा बिनोदी ।।
श्री मुष भाव जुवा इक धाता । ईश्वर अरु बहु धान्य बिष्याता ।।
एक प्रमाथी बिक्रम जाना । वृष अरु चित्रउ भान बषाना ।।
एक सुभान है तारन लेषा । पार्थिव एक सर्वजित देषा ।।
एक सब धारि विरोधी पाए । विकृत षरनंदन एक गाए ।।
विजय जए मन्मथ हूँ जाने । दुर्मष हेम बिलंब बषाने ।।
एक बिलंब बिकारी लहिए । और सर्बरी पलवहि कहिए ।।
सुभ कृत सोभन क्रोधी राऊ । विश्वावासु[2] पराचव गाऊ ।।
एक प्लवंग है कीलक सोभी । सौम्य एक साधारण ओभी ।।
नाम बिरोधी कृत पर धावी । प्रमादी आनंद सुभावी ।।
राक्षस नल पिंगल एक औद्रा । काल जुक[3] सिद्धार्थ रौद्रा ।।
दुर्मति दुंदुभि रुधिरोद्गारी । रक्त अक्ष क्रोधन क्षय भारी ।।

दोहा— सब संवत मँह होत हैं राम जन्म के ष्याल ।
नारद सुत एउ भक्त हैं तातें बरनें लाल ।। ३६० ।।

चौ०— जन्म पत्र लिषि राषु बनाई । पुछिहैं नृप तब कहब सुनाई ।।
सूरज गगन मध्य जब आवा । जन्म भयो तिय मंगल गावा ।।
चले पवन अति ही सुषदाई । शीतल मंद सुगंध सुहाई ।।

दोहा ३६० के अन्तर्गत —

१ साठक नाम······क्षय भारी=कवि ने साठक (ज्योतिष के एक प्राचीन ग्रन्थ) के अनुसार विभिन्न संवतसरों के नामोल्लेख किये हैं ।

पाठान्तर : २ विश्वावसु औ पराभव गाऊ (व० प्रति)

३ कालजुक्त (व० प्रति)

ग्राम ग्राम वंक्षित भए सबही । मंगल मय पृथ्वी भइ तबही ॥
साधू धर्म आत्मा जेते । भये प्रसन्न मगन मन तेते ॥
राम जन्म देवन्ह जब जाना । गगन मगन होइ हने निसाना ॥
बाजन सुनि सुनि कहै सुभाही । आजु कहा देवन्ह के आही ॥

छन्द— करै किन्नर गान गंध्रव सिद्ध चारन गावहीं ।
नटत विद्याधरी रंजित जंत्र ताल बजावहीं ।
देव नारि सुधारि स्वर सब जन्म गीत गावन लगीं ।
अप्सरा गनि हरषि रंभा नचत अति हो रस पगीं ।
देवता सब अवधपुर पर चढ़ि विमान देखैं हरी ।
जय राम जय रघुवंश मणि कहि पुष्प वृष्टि बहुतैं करी ।
बेर बेर कर जोरि शिर धरि देवता मुनि गन नए ।
गीत छन्द[१] स्तुती करि करि बाल मूरति मन दये ।
गिरत केसरि परत चोवा अरगजा बरषा रची ।
करत उत्सव देव दिव पर कीच बीथिन्ह बिच मची ।
सुने जिनहीं हरष मनहीं भयो सबके देषिये ।
जन्म आगम सुष समागम अवध माँह विशेषिये ।
हरत दधि भरि हरष करि करि अवधवासी लेषहीं ।
परत हंसि हंसि उठत षसि षसि लसत परस्पर पेलहीं ।
देव गर्जत असुर तर्जत अवध के बाजन सुने ।
भये निर्भय लाल रिषि मुनि बिप्र वेद जय जय भने ।

दोहा— टीढ़ी[२] मूसक कटक द्वै अनावृष्टि अति पानि ।
सप्त ईति ए भय गए राम जन्म भय जानि ॥३६१॥

[इति श्री अवधविलासे : बुद्धि प्रकाशे : सब गुन रासे: भक्त हुलासे: पाप विनासे: कृत लालदासे : रामजन्म देव उत्सवे नाम दसमो विश्राम:]

दोहा ३६१ के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ गीत छन्द······मन दये के पश्चात तथा गिरत केसरि······बरषा बरी के पूर्व व० प्रति में निम्नलिखित पंक्तियाँ पाई जाती है—

रहे ठाढ़े हरष बाढ़े कर्म के शुभ फल जगे ।
दिव्य देव सुगंध··· ···परसपर षेलन लगे ।

२ टीढ़ी········भया जानि — प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं हैं ।

:—: अथ एकादश विश्राम :—:

चौ०— बैठे सभा रहे भूपाला। दौरी बहुत सुनावत बाला ॥
हरषत हँसत बसन उड़ि जाहीं। राजा देषि जानि मन माँहीं ॥
दूरिहि ते बोलत अकुताई। बेटा भयो बधाइ बधाई ॥
भाग्य हमारा भए मन भाए। कौशल्या रानी सुत जाए ॥
एती बात कहत सुष रेली। आई धावत और सहेली ॥
देहु बधाई जीवै बेटा। भयो अबहीं कैकेई के पेटा ॥
यह[1] उत्सव कहनै नहिं पाई। धाई अवर सषी चलि आई ॥
राजा देहु बधाइ हमारा। जने सुमित्रा दोइ कुमारा ॥
राजा सुनत हरष अस बाढ़े। बोले न तो भये उठि ठाढ़े ॥
सुष समाधि मन को भइ जोई। जानै उहै अवर नहिं कोई ॥
हँसि हँसि कहैं लाग दै तारी। चाहत रहे एक भए चारी ॥
नारायण परब्रम्ह जो आही। कौशल्या सुत मानों ताही ॥
रूप चतुर्भुज जबहिं देषावा। माता देषि परम सुष पावा ॥
दरसन करत ज्ञान अधिकाई। पूरब जथा रहे सुधि आई ॥
राष्यो बचन आपनो स्वामी। धन्य धन्य तुम अंतरजामी ॥
अब हम भये कृतारथ देवा। करिहौं भक्ति तुम्हारी सेवा ॥
तुम कौ जन्म जोनि हमकारी। क्षमा करब यह चूक हमारी ॥
तब तप करि हम भए सकामी। अब निहकाम करौं घन नामी ॥
अरु यह रूप तुम्हारो जो है। पुत्र कहत हमको नहिं सोहै ॥
ब्रम्ह रुद्र सो पुत्र तुम्हारा। ते कत होत है पुत्र हमारा ॥
माता कथा कही रुचिकारी। रहे चतुर्भुज द्वै भुजधारी ॥
सुंदर बाल देषि मन भाए। हृदय लगाइ पयोधर प्याए ॥
पियत दूध माता मनमाना। देव करत जनु अंमृत पाना ॥
षेलत हिय पर अति हुलसाई। किलकि किलकि हँसि-हँसि सुषदाई ॥
बेर बेर मुष चूंबति माता। तप को तपनि जुड़ावति गाता ॥
पीयत दूध गिरत मुष धारा। मनु शशि बरसत अंमृत धारा ॥
हिय की प्रीति पयोधर काढ़ी। बेर बेर पीवत रुचि बाढ़ी ॥

दोहा १६२ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ इहऊ बात कहन नहि पाई। (व० प्रति)

भूषे राम दूध के नाहीं । भक्ति भाव सों देहि सो पाँहीं ।।
अति स्वरूप बल जासु बहूना । पुत्र एक कैकेइ प्रसूता ।।
बालक दोइ सुमित्रा जाए । राजा सुने हरष हिय छाए ।।
जन्म हमार सुफल अब जाना । देषइ पुत्र बदन मनमाना ।।
अति आतुर प्रभु गुरुहि बोलाए । साधत लग्न जोतिषा धाए ।।
साधे[2] लग्न प्रतीति जनाई । पूछि सखी मुनि लीन्ह बोलाई ।।
घीव बसन दस रंग प्रकासा । कहे सबहिं जे रहे सकासा ।।
पुत्र जात विधि कीन्ह स्नाना । तब नंदी मुष श्राद्धहि ठाना ।।
बैठे भूप पहिरि पट सोहै । देषत[3] इंद्र चन्द्र मन मोहै ।।
बाढ़े हरष गात भए मोटे । पट संकेत भए कोउ छोटे ।।
जात कर्म बिधिवत सब कीन्हे । देव पित्र पूजा करि लीन्हे ।।
दीन्हे दान गनै को लेषा । कहियत कछुक देत जिन्ह देषा ।।
धेनु लक्ष दस दीन्ह भुआला । भूषन बसन सहित संग बाला ।।
तिल के दीन्ह पहार बनाई । रत्न समूह हेम पट छाई ।।

दोहा— नाक दादि[4] दोक अरु चौसाला नय पंज ।
मले पन्ज नाहिन दए दिए चाल मन रंज ।। ३६२ ।।

छन्द— दिये बाजी तुरकि तजि एराक कच्छी पनपथी,
दश लाष घोरे साज जोरे दिये[1] आय तुरत सारथी ।
दिये ताते हाँथि माते कज्जली बिंध्याचली,
दरिआव के गिरि राव के महि चलत दल[2] मति गति भली ।
केउ कुंम्हड़ा केउ बेला केउ अन्जी जाति के,
केउ मिर्गा केउ दुर्गा रंग नाना भाँति के ।
कनक साजे घंट बाजे स्याम जनु मेघावली,
दंत[3] दमकत ध्वजा चमकत बग्ग पंक्ति बीजुली ।

---

२ साधे लग्न……सकासा = प्रस्तुत पंक्तियाँ 'छ' प्रति में नहीं हैं ।
३ 'देषत चंद्र इंद्र रवि मोहे' । (व० प्रति)
४ 'दीये दंता दोष अरु चौसाला नये पंज' । (व० प्रति)

दोहा ३६३ के अन्तर्गत—
१ दीये अयुत रथ सारथी । (व० प्रति)
२ दलकति मति भली । (व० प्रति)
३ दंत दमकत वग्ग पंकति धुजा चमकति वीजुली । (व० प्रति)

दिये लक्षिन्ह बिप्र दक्षिन ग्राम पट्टन[४] को गनै,
दान दसरथ दये जेते कहत नहि देषत बनै ।।

दोहा.— भकना[५] एक .दता द्विरद मयमंता बलवंत ।
लाल दए मोटेन ए ऊँचे गज गरजंत ।।३६३।।

चौ

चौ०— गज[१] घोरे जेते रहे भाए । करि करि साज सिंगार बनाए ।।
डोला बहल ऊंट सुष पाला । षच्चर तंबु कनात बिशाला ।।
बकुचा बोरि सिंदूक अनंता । डबा जराव जरे नहि अंता ।।

छन्द— दये भाट्टनि घोर थहनि कनक बसन मनि पट्टिया ।
बैठि रत्थनि लगे पत्थनि भरे घर जनु हट्टिया ।।
घोर नाधे हाथि बांधे राय दसरथ के दये ।
ग्राम पाए दाम ल्याए भाट राजा तब भये ।।
सूत काब्य पुरान बाँचत बंस कुल गनै मागधा ।
वंदी छंद कबित्त भाषत गायका ·गावत बिधा ।।
आए तेते जग में तेते पाइ जाके जो चहै ।
अवध नेरा दए डेरा मनहुँ महीप कहु के रहे ।।
केर द्वारनि अंब पल्लव बिबिध ध्वज फल राषियो ।
चित्र भीति बिचित्र बाला लिषित मंगल भाषियो ।।
भीर भारी पुरुष नारी सिद्ध जो घर घर भरे ।
किते धावत किते पावत देत लेत न सुधि परे ।।
दान लै लै असीस दै करत जय जय जग सबै ।
जियो बालक भूमि पालक जन्म का फल भा अबै ।।
दूब दधि और हरद अक्षत परे हरषि हाथनि घने ।
लदे भूपति भए भारो दबे उठत नाहिन बने ।।

---

४ पट्टन=नगर

पाठान्तर : ५ मकना एक दंता..............गज गरजंत=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं है ।

दोहा ३६४ के अन्तर्गत—

१ गज घोरे........नहि अंत=कवि ने राम जन्म के अवसर पर दशरथ द्वारा दिये गये दान का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है । दान के प्रकरण से कवि ने दशरथ की दानशीलता एवं पुत्र प्राप्ति से उनका उल्लास अभिव्यंजित किया है ।

बिप्र मंगल देव गावत गीत गावत कामिनी ॥
देव नभ हरि कर्म गावत सुनत भावत नृप मनी ॥
उपकारकारी भारहारी जगतधारी अवतरे ।
त्रैलोक मंगल भए सुष बल दैत्य-दानव मौतरे ॥
देव हरषे पुष्प बरसे भयो हित मन जानि कै ।
राम जू को जन्म मंगल लहेउ लाल बषानि कै ॥

दोहा— मास एक गत बीति कै देत देत ही दान ।
राम जन्म जा दिन भयो राति दिवस[१] नहिं जान ॥३६४॥
आए[१] जहाँ रानी मंगत लाल कठिन प्रण जेहि ।
मरद न जाचहिं मरत हू रानी देहि से लेहि ॥३६५॥

चौ०— मंगत जन जे रचै बिधाता । पावा दान भए फिरि दाता ॥
सोभा अमित अवधपुर छावा । घर घर आनंद द्वार बनावा ॥
केसरि अगर गुलाब के पानी । लोपति[१] हरषति मन हरषानी ॥
सब घर मंगल बजत बधाई । तोरण बंदन माल बनाई ॥
मुक्ता कनक रतन की माला । फूल माल बन माल विशाला ॥
महलनि पर चहुँ ओर झुलाए । मानहुँ पुष्प बिमान बनाए ॥
भवन[२] भवन सोहत सषि गाए । मानहुँ पूत हजारक आए ॥
देस देस के जे कछु बाना । संचित रहत नृपति गृह नाना ॥
ते सब ब्रह्म रिषिन्ह कहँ दीन्हें । सादर सहित बसनि[३] सब लीन्हे ॥
बनि बनि चले नगर नर नारी । कंचन थार हाथ सब धारी ॥
हरद दूब दधि अक्षत राषे । नारिकेरि फल रत्न जु भाषे ॥
पहिरे पट भूषन बहु भांती । सब के मन भई बात सुहाती ॥
राम जन्म जिन्ह के न सुहाने । तिन्ह पर श्री सुष सुजस कोहाने[४] ॥
रानी हुती अवर सब जेती । गावत भई सोहिला तेती ॥

दोहा ३६४ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ द्यौस । (व० प्रति)
दोहा ३६५ के अन्तर्गत—
१ आए जहाँ......देहि से लेहि=प्रस्तुत दोहा 'व०' प्रति में नहीं है ।
दोहा ३६६ के अन्तर्गत—
१ लोपति छिरकति मन हरषानी । (व० प्रति)
२ भुवन भुवन सोहिल सषि गाये । (व० प्रति)
३ सबनि । (व० प्रति)
४ कोहाने=रूठना ।

तिन्हके पुत्र लगे हिय ऐसे । अपने उदर होत हैं जैसे ॥
सूर सुभट सुनि अति सुष पाए । भाइन्ह बन्धुन्ह माल लुटाए ॥
सुनि सुनि राम जन्म मनमाना । अब रघुबंस अचल भय जाना ॥

दोहा— चलीं कमीनिनि कामिनी करि करि साज समाज ।
सोहर सोहिल गावती लै लै अपने काज ॥३६६ ॥
हलबलान हरषेउ जगत सुनि नृप के भए बाल ।
लेहु लेहु करि अवध में भई लूटि सी लाल ॥३६७॥

छन्द— चलीं सुनि सुनि राज पत्नी दसौं दिसि की कामिनि ।
आइ नृप मंदिर मिली ज्यों सरित सागर गामिनी ॥
कोउ गोरी कोउ साँवरि एक एक ते आगरी ।
कोउ मुग्धा कोउ मध्या कोउ प्रौढ़ा नागरी ॥
कोउ पद्‌मिनि कोउ चित्रिनि कोउ बनिता हस्तनी ॥
कोउ वय संध्य कोउ प्रसूता कोऊ प्रगटत अस्तनी ।
सबै बोले चे अबोले आपु हँसि हँसि हँसि मिले ।
मिटे बैर बिरोध जाके जन्म दिन भये मन भले ॥
दास दासी रूप रासी फिरत चंचल छबि लही ।
बहुत हरषे दान बरषे भए मन भाने सही ॥
नगर नारी बनी भारी काज डारी सब चली ।
एक धावति एक आवति एक गावति छबि भली ॥
चलत चंचल उठत अंचल कुच नितंब भारे भरी ।
रंभसी कोउ उर्वसी सी किन्नरी सी गति धरी ॥
हार माला पहिरि बाला कंठ रत्न बिराजहीं ।
बीर कानन पान आनन नाग बेनी लाजहीं ॥
नयन अंजन बने षंजन नाक मोती नथ बनी ।
बदन गोरी तिलक रोरी चीर पहिरी छवि घनी ॥
हाथ चूरी रंग पूरी टाड़ कंकन सोहई ।
पहिर मुंदरी चली सुंदरी घूंघरू मन मोहई ॥
नटी पातुरि नृत्यकी यौही ज माँगे पावई ।
नचत गावत तजत लज्या हँसत षलक हँसावही ॥
बहुत रानी जुरी आनी अवधपुर मंगल हए ।
परे गहना चीर लहँगा बहुत धगरा दबि मुए ॥
जती जोगी तपी भाषत धर्म हैं भूपाल का ।
सेव सबकी करत पाए चिरंजीयो बालका ॥

दान दीन्हें बिदा कीन्हें जथा जोग जो आइया ।
लाल[1] ता दिन राम जू की भक्ति अबिचल पाइया ॥

दोहा— गयो[2] सीत के नीर ज्यों तन की मन की पीर ।
कृपा दृष्टि कर लाल पर जब चितए रघुबीर ॥३६८॥

चौ०— धनियाँ सोंठि जिवाइन जोरा । लौंग कपूर पान रचि बीरा ॥
किसिमिसि गरी बदाम सिघांरे । दाष छुहार चिरौंजी धारे ॥
पीपर मिरच मूठ अरु ईला । तेज पत्र जाइपत्र कबीला ॥
मेवा और कंद मिलि मिस्री । गावत मंगल गीतन्ह निसरी ॥

अरिल्ल— कोइ[1] एक नारि[2] सयानि रही मनभावती ।
महारानि गइ सकुचि देषि तेहि आवती ॥
बालपने की सदा संग हित जानिये ।
अपने जिव अरु ताहि दोइ नहि मानिये ॥
सनमुष भेटैं ठाढ़ि सेज लषि हँसि दियो ।
देहु बधाइ हमारि पुत्र तुम्हारे भयो ॥
कहहु बात कुसलात कछू जान्यों सही ।
पुत्र होत केहि भाँति कहत हम सो रही ॥

दोहा— रानी के लग सब गई देषन पुत्र महीप ।
जैसे भीर पतंग की होत है दीप समीप ॥३६९॥

दोहा ३६८ के अन्तर्गत—

१ लाल ता दिन······अविचल पाइया=राम जन्म के अवसर पर मंगल बधाई के उत्सव में लालदास कवि ने भी अपने को सम्मिलित किया। लीला में प्रवेश करने वाले भक्त कवियों की भांति लालदास ने भी देश-काल की परिधि को तोड़कर अपने आप को राम जन्म उत्सव पर पहुँचाया है और इतना ही नहीं भक्त कवि ने उसी दिन अविचल भक्ति का दान प्राप्त किया है ।

२ गयो सीत···रघुबीर=प्रस्तुत दोहा के बाद ब० प्रति में निम्नलिखित दोहा पाया जाता है—

वैश्य वधू कल विधुमुषी रचि रचि अंग सिंगार ।
लाल पंजीरी लै चली भरि भरि कंचन थार ॥

दोहा ३६९ के अन्तर्गत—

१ कोइ एक नारि·············दीप समीप=प्रस्तुत पंक्तियाँ ब० प्रति में नहीं हैं ।

२ नारि=स्त्री । यहाँ कवि ने स्वयं को लाल सखी के रूप में जन्म अवसर पर सीधे अन्तःपुर में प्रवेश करा दिया है ।

चौ०—कौन कौन तप नृप अति कीन्हें । कौन दान अस कब केहि दीन्हें ।।
कौसिल्या कैकेई रानी । और सुमित्रा सबनि बषानी ।।
पत्निन्ह सहित पुरोहित माना । कौसिल्या पूजे करि दाना ।।
आभूषण दीये मन भाए । बिबिध बसन पहिराइ पठाए ।।
राजा रानिन्ह राज भंडारा । दीन्ह लुटाइ न कीन्ह विचारा ।।
राम[1] रमा गृह चितये ऐसे । रितये रहे भरे पुनि वैसे ।।
गुरु बशिष्ठ की कीन्ह बड़ाई । पूजे पाँइ बहुत मन लाई ।।
एक हजार दिए नृप ग्रामा । दासी दास बहुत दिये दामा ।।
हाथ जोरि ठाढ़े भए राजा । सेवत तुमहिं सरे सब काजा ।।
भयो सुफल अब जन्म हमारा । पाये पुत्र प्रसाद तुम्हारा ।।
पूजे पुनि रिषि शृंगि सयाने । बहुत जतन करि नृप गृह आने ।।
बेद उक्त पूजे संतोषे । दान मान करि बहु बिधि पोषे ।।
महा पुरुष तुम. नाथ हमारे । पुत्र भये सब दीन्ह तुम्हारे ।।
बिनु संतान हौं रहेउँ अनाथा । अब प्रभु मोंहि तुम कीन्ह सनाथा ।।
विद्यावंत रहे कोउ जेते । भए कुबेर सभासम तेते ।।
देस ग्राम गज रथ धन दीने । कन्या भगिनिन्ह मन भरि लीने ।।
सर्वस[2] त्याग किये नृप सोई । रहिगे क्षत्र चमर सिर दोई ।।
राजा बिदा किये जेइ आये । हरष लाभ सो सबहिं सिधाए ।।
छठी पूजि गृह पूजि द्विजाती । कुलाचार बहु कीन्ह सुभाँती ।।
एक दिवस राजा मन आवा । नामकरन[3] कों बिप्र बोलावा ।।
आए रिषि मुनि पंडित जेते । विद्यावंत रहे कोउ तेते ।।
आदि अंत लौं जोतिष जाना । चारि वेद षट काव्य बषाना ।।

दोहा ३७० के अन्तर्गत—

पाठान्तर : १ राम रमा चितये कछु ऐसे (व० प्रति)

२ सर्वस त्याग...सिर दोई=पुत्र जन्मोत्सव पर दशरथ ने छत्र और चमर छोड़कर सर्वस्व दान दे डाला । दानशीलता की यह पराकाष्ठा आनन्दातिरेक को अभिव्यंजित करती है ।

३ नामकरन=नामकरण संस्कार । नामकरण के अवसर पर ऋषियों, पंडितों विद्यावंत और ज्योतिषियों को आमंत्रित करना एवं राजमहल के आंगन में माताओं द्वारा पुत्रों को लेकर बैठने का उल्लेख कवि की नूतन उद्भावना है ।

बैठे राजमहल अँगनाई । लै लै पुत्र मात सब आई ।।
मोतिन्ह चौक चारु रंग राजे । तापर बैठे बाल बिराजे ।।
गावत गीत सबै हरषानी । ब्राम्हनि भाटिनि जे सब रानी ।।

दोहा— नषत[४] पुनर्वसु मिथुन ते होत हैं केशव नाम ।
ए द्वै नाम अनादि हैं रामचन्द्र अरु राम ।।३७०।।

चौ०— लक्षण पुरुष बतीस बषाना । देषि देषि सबके मनमाना ।।
दीरघ पंच चारि लघु होई । सूक्ष्म पंच उन्नत षट सोई ।।
रक्त सात पुनि दोइ गंभीरा । विस्तीरण भल तीनि सरीरा ।।
बाहु नैन नासा कुक्ष अस्तन । दीरघ पंच सु होइ सुषी जन ।।
ग्रीव कर्ण जंघा अरु पृष्टी । चारि भले लघु पूजिये सृष्टी ।।
अंगुली पर्व दंत नष केसा । त्वक सूक्षम ए पंच जीवेसा ।।
नासा भाल हृदय कंध जाना । ?ाद पृष्टि नष ऊँच बषाना ।।
हाथ पांव नष नैन औ तालू । अधर जीभ ए रक्त रसालू ।।
स्वर नाभी गम्भीर भलाही । उर शिर कटि विस्तीरम चाही ।।
रेषा औरहु सुभग सुहाए । ते सब आइ चहुँन के छाए ।।
अंकुस कुलिस ध्वजादिहि रेषा । श्री वत्स भृगुपद राम विशेषा ।।
प्रथमहि कौशिल्या सुत जाए । तिन्ह तौ नाम राम अस पाए ।।
सब महिं रमै रमावै जोई । ताको नाम राम अस होई ।।
भक्त चकोर चाहि रहैं जातैं । रामचन्द्र कहियतु हैं तातैं ।।
केकई उदर लीन्ह औतारा । ताको नाम भरत अस धारा ।।

---

४ नषत पुनर्वसु...अरु राम = राम के नामकरण का आधार ज्योतिष के नक्षत्रों के आधार पर बताया गया है, जो सर्वथा नवीन है और कवि के ज्योतिष विषयक पांडित्य का भी सूचक है । अध्यात्म रामायण में 'रमणाद् राम इत्यादि' का प्रसंग आया है; लालदास ने भी 'सब महिं रमै रमावै जोई, ताको नाम राम अस होई' कहकर अध्यात्म रामायण के मत का अनुमोदन किया है ।

पोषन[१] भरन करै जो कोई । ताको नाम भरत अस होई ॥
जे सौमित्रा द्वै सुत जाए । तिन्हके नाम सुनहु जे पाए ॥
लक्षिमन एक शत्रुघन एका । नाम अर्थ कहौं सुनहु बिवेका ॥
लक्षि[२] निसाने जो मन राषै । लक्षिमन नाम तासु को भाषै ॥
शत्रु होइ तहि मारि बहावै । सोई नाम शत्रुघन पावै ॥
हँसि मुष बसन सुमित्रा दीये । फिरि फिरि नाम समुझि तिन्ह लीये॥
पुनि सब बालक तुला[३] चढ़ाये । पंच रतन सब धातु बढ़ाये ॥
नारायण[४] सोइ राम कहाए । लक्षिमन होइ शेष हैं आए ॥
शंष भरत हैं चक्र शत्रुघन । लक्ष्मी आइ धरेउ सीता तन ॥
देव भये वन चरे अपावन । राम काज रावन संघारन ॥
प्रथमहिं जब सुत देषे भुवाला । चारि चारि भुज चारिउ बाला ॥
अति सुंदर कछु कहे न जाही । कोटि काम लावनि तन मांही ॥

दोहा ३७१ के अन्तर्गत—

१ पोषन भरन···भरत अस होई=पोषण और भरन करने वाले का नाम भरत होगा। अध्यात्म रामायण में भी 'भरणाद् भरतो नाम' कहा गया है। रामचरित मानस में भी 'विश्व भरण पोषण कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई, से भी यही संकेत स्पष्ट है। वैदिक साहित्य में भी भरतको 'दण्डाइवेद्गो जमास आसन्परिच्छिन्ना भरत: अर्भकास: ।' कहकर विश्व की पोषक शक्ति के रूप में चित्रित किया है। विशेष विवरण के लिए चंददासकृत 'रामविनोद' की सम्पादकीय भूमिका पृ० ३१ द्रष्टव्य है।

२ लक्षि निसानें···शत्रुघन पावै=लालदास ने लक्ष्य को मन में धारण करने वाले को लक्ष्मण और शत्रुहंता को शत्रुघ्न नाम से अभिहित किया है। अध्यात्मरामायण (१, ३, ४०-४१) में 'लक्षणान्वितं शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेव, गुरुरभाषत' कहा गया है।

३ तुला=बालकों का तुलादान दिया गया। चारों बालकों के भार के बराबर पँच रत्न युक्त धातुएँ दान में दी गयीं। तुलादान का उल्लेख कवि की मौलिक उद्भावना है।

४ नारायण···सीता तन=लालदास ने राम को 'नारायण' लक्ष्मण को शेष, भरत को शंख, और शत्रुघ्न को चक्र तथा सीता को लक्ष्मी का अवतार बताया है।

चारि चंद[५] ज्यों दोइ चकोरा । अरबरांहि नृप नैंन न थोरा ।।
नमस्कार करि पुत्र निहारा । पिता पिता तब बचन उचारा ।।
पुनि[६] भए चारि एक ही देहा । पारा फूटि मिलत हैं जेहा ।।
राजा देषि कहत मन माहीं । जागत हौं किधौं जागत नाहीं ।।
स्वप्न भये किधों भर्म विशेषा । रहे चारि पुनि एकइ देषा ।।
जब बिराट होइ दरसन दीना । राजा तब अस्तूतिहिं लीना ।।
ब्रह्म रुद्र है गर्भ तुम्हारे । सो काहे के पुत्र हमारे ।।
पाउँ[७] पताल सीस असमाना । उदर अकास नहीं परमाना ।।
चंद्र सूर दोउ नैंन बिराजै । चारि भुजा चहुँ दिसि सोइ भ्राजै ।।
पर्वत हैं सोइ अस्थि तुम्हारा । बनस्पती रोमावलि धारा ।।
मांस मेदिनी शक्ति भवानी । अन्तःकरण सदा शिव जानी ।।

---

५ चारि चन्द...... न थोरा=दशरथ के दो नेत्र चकोर हैं और उनके सामने दृश्य के रूप में चारों पुत्र चार चाँद की भाँति हैं । चकोर और चन्द्र की संख्या की विषमता से रूप दर्शन की मनोहारी अभिव्यंजना की गयी है । अपरमित वात्सल्य सुख से अतृप्ति की आकुलता अत्यन्त कलात्मक है ।

६ पुनि भए.........जेहा=बाललीला के अन्तर्गत विराट रूप एवं ऐक्यरूप का प्रदर्शन लोक.लीलाओं के बीच में अतिप्राकृत चरित्र की अभिव्यंजना हेतु संघटित किया गया है । चारों भाइयों ने अपने पृथक पृथक शरीर को एक ही देह में मिला लिया जैसे पारा फूटकर बिखरता है तथा पुनः मिलकर एक विराट रूप ग्रहण करता है । इस ऐक्य को देखकर दशरथ को विराट का बोध हुआ और अनेकता में एकता के रूप के दर्शन से आश्चर्य उत्पन्न हुआ ।

७ पाँउ पताल.........अस्थिर नाहीं=विराट रूप का वर्णन भव्य एवं रसात्मक है । भगवद्गीता (अध्याय ११) के अनुसार अर्जुन, भागवत पुराण (१०, ७, ३५-३७) के अनुसार यशोदा ने कृष्ण का विराट रूप देखा था । राम लिंगामृत (सर्ग २, २४) रामचरितमानस (१, २०१-२०२) में राम के द्वारा कौशल्या को विराट रूप दिखलाने का वर्णन किया गया है । पद्मपुराण के उत्तरखण्ड (२६६. ८०) के अनुसार राम ने अपना विष्णु रूप प्रकट करते समय विश्व रूप का भी प्रदर्शन किया । लालदास ने भी विराट रूप एवं विश्व रूप का दर्शन कराया है ।

नाड़ी नदी बहति[1] थिर नाहीं । नीर प्रश्वेद रहत तन माहीं ॥
अग्नि बदन सोइ आदि अपारा । जज्ञ होम आहुति अहारा ॥
सागर कृषि पवन है स्वांसा । चौदह लोक अंग है बासा ॥
भूर्भुवः स्वः महर्जन लोका । तप औ सत्य ए ऊरध ओका ॥
तल अरु वितल सुतल जे आही । और तलातल महातल आही ॥
पुनि पाताल रसातल लहिये । चौदह लोक नाम ए कहिये ॥
षट रितु मास बर्ष बिस्तारे । ए हैं प्रकृति स्वभाव तुम्हारे ॥
शरद शिशिर रितु पुनि हिमवंता । ग्रीषम वरषा और बसंता ॥
ए षट रितु तुम्हरे तन माँही । फिरत रहत है अस्थिर नांहीं ॥
ऐसे तुम ठाकुर जगधारी । हम तो जीव गरीब विकारी ॥
अब हमको सेवक करि राषै । पिता पिता कबहुँ जिनि भाषै ॥
मर्यादा बिनु धर्म न कोई । धर्म बिना परलोक न होई ॥

दोहा— मनु सनकादिक स्वप्न रिषि लाल प्रजापति धार ।
ए बिधि के मन ते भये बिधि हैं भाव तुम्हार ॥ ३७१ ॥

चौ०— तिन्हके प्रजा लोक भये उमहीं । सबके आदि अन्त मधि तुमहीं ॥
सूक्षम थूल सबनि मधि ब्यापा । कहुँकि समान विशेष है आपा ॥
सुनहु विभूति स्वरूप विशेषा । कहियत कछुक सबहि नहिं लेषा ॥
जल महि रस शशि सूरज कांती । वेद प्रणव षेश शब्द सुभांती ॥
नर पौरुष पृथिवी महँ गंधा । सूरज तेज जीवन बंधा ॥
तप तपसिन्ह महँ बुधि बुधिमानी । तेज तेजस्विन महँ तुम जानी ॥
बल बलवंतहि मांहि तुम्हारा । काम धर्म अविरुद्ध सम्हारा ॥
द्वादस जे आदित्य महाही । तिन्ह महँ विष्नु नाम तुम आही ॥
जोति स्वरूप प्रकाशक जोई । तिन्ह महँ अंशुमान सब होई ॥
मरुतन्ह मांहि मरीचि है नामा । शशि नक्षत्रन्ह माँहि सुधामा ॥
साम वेद बेदन महँ गाजा । देवन्ह माँहि है इन्द्र बिराजा ॥
इन्द्रिन्ह[2] माँहि बड़ो मन कहिए । भूतन्ह माँहि चेतना लहिए ॥
रुद्रन्ह माँहि जु शंकर मानें । जक्षन्ह माँहि कुबेर बषानें ॥
अष्ट बसुन्ह महँ पावक गाए । पर्वत तिन्ह महँ मेरु सुहाए ॥
जिते पुरोहित हैं जग माँहीं । बड़े बृहस्पति सम कोउ नाहीं ॥

पाठान्तर : १ थापा (व० प्रति)

दोहा ३७२ के अन्तर्गत—

२ इन्द्रियनि माँहि.........कुबेर बषानें=प्रस्तुत पंक्तियाँ 'व०' प्रति से पाठ के रूप में ग्रहण की गयी है, जो च० प्रति में अनुपलब्ध है ।

सेनापति जग मँह जे ज्ञानी । षड़मुष सबके मुषि सेनानी ।।
सरन माहि सागर तुम सोहे । आगर मँह बैरागर मोहे ।।
महा रिषिन्ह महँ भृगु रिषि राषै । बाणी मँह अक्षर हैं भाषै ।।
जज्ञन्ह मह जप जज्ञ बिधाना । स्थावर माहि हिमालय माना ।।
बृहस्पति महँ पीपर मानैं । देव रिषिन्ह महँ नारद जानैं ।।
सिद्धन्ह माँहि कपिल मुनि राई । गंध्रब माँहि चित्र रथ पाई ।।
उच्चैश्रवा अश्व मह बरना । गजन माँहि ऐरावत करना ।।
मनुष्यन माहि नराधिप राषे । आयुध माँहि बज्र वद्ध भाषे ।।
कामधेनु धेनुन्ह मह धन्या । प्रजनिन्ह मँह कंदर्पहि मन्या ।।
सर्पन्ह माहि वासुकी स्वामी । जादन्ह माहि वरुण बड़ नामी ।।
पितृन्ह माँहि अर्जमा पाऊ । जानु संजमिन्ह मँह जमराऊ ।।
दैत्यन्ह मँह प्रहलाद सुपाता । काल कलपतन्ह मँह विष्याता ।।
मृगपति सिंह मृगन्ह मँह जैसा । पक्षिन्ह माँहि गरुड़ है तैसा ।।
पवन पवित्र पवित्रन्ह माँहीं । राम समान धनुर्धर नाहीं ।।
मीनन्ह माँहि मकर बलधारी । नदियन महँ गंगा अधिकारी ।।
स्वर्गन्ह माँहि स्वर्ग है मध्या । विद्या मँह अध्यातम विद्या ।।
वादिन्ह माँहि जो वाद निरूपा । अक्षर माँहि अकार अनूपा ।।
द्वन्द समासन्ह माँहि समासा । अक्षय काल कालन्ह महँ भासा ।।
कर्ता जिते काज के ध्याता । तिन्ह महँ मुषि तुम रचत विधाता ।।
हरता और मृत्यु सम नाहीं । कीरति श्री नारिन्ह के माँही ।।
गायत्री छंदन महँ भाषा । मासन्ह महँ अगहन बड़ राषा ।।
षट रितु माँहि बसंत है राजो । सप्त पुरिन्ह मँह अवध बिराजो ।।
तेज तेजस्विन माहि जो जानै । छल द्यूतन महँ बड़े बषानै ।।
मुनिन्ह माँहि है व्यास सुबकता । कविन्ह मैं शुक्र समान न कविता ।।
जीतिन्ह माँहि नीति जुध ठाना । गुप्तन माँहि न मौन समाना ।।
जव सम और अन्न नहिं दूजा । सालग्राम समान न पूजा ।।
कंचन धातु धातु सिरताजा । ब्राह्मण सर्व वर्ण के राजा ।।
आश्रम चारि दरस षट पावा । सबके सिर सन्यास बतावा ।।
ज्ञानिन्ह माँहि जो ज्ञान बिवेका । और तुम्हार बिभूति अनेका ।।

दोहा— सोभा गुन श्रीमंत जे लाल देषि धरि ध्यान ।
इह बिभूति[3] गीता कह्यो सर्व बीज भगवान ।। ३७२ ।।

---

३ विभूति=गीता के विभूति योग की भाँति कवि ने विभु की सर्वव्याप्त विभूति का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है ।

रामहि जानें ब्रम्ह करि एक रंच रह्यो ज्ञान ।
लाल सबल भगवान की फिरि माया लपटान ।। ३७३ ।।

चौ०— तोतरे बचन बोलि किलकाहीं । नृप रानी सुनि सुनि मन माँहीं ।।
धन्य जन्म भये सूफल हमारा ! पुत्र बचन श्रवनन्ह अवधारा ।।

छन्द— करहि[1] रानी तेल बुकवा अंग अंग सुधारहीं ।
बेर बेर बलि गई कहि कहि रीझि तन मन बारहीं ।।
देषि सुंदर ललचि ललकैं बदन चुंबति जूथहीं ।
बैठि कोमल केश शिर के ललित हाथन्ह गूँथहीं ।।
नैन अंजन करहिं रंजन अंग मंजन नागरी ।
कबहुँ कुलही कबहुँ पटुका कबहुँ बांधति पागरी ।।
धातु काठ के लाह मृनमय फूल फल बहु ल्यावहीं ।
रंग नाद सुसाजि षिलुना देहिं हाथ षिलावहीं ।।
केउ चटुकी केउ तारी ओंठ पत्र बजावहीं ।
थेइ थेइ ता कहति ललना राम ललहि नचावहीं ।।
पाइँ पैजनि बजैं घुँघरू कनक किंकिनि कटि धुनी ।
चरन वनिता[2] बजत गहना चलत नाचत जति बनी ।।
आरसी लै हार मुँदरी दूरि राषि दिषावहीं ।
कौन देषी दौरि ल्यावत चतुर चालि सिषावहीं ।।
कबहुँ कनिया कबहुँ पलना कबहुँ सेज बिराजहीं ।
कबहुँ लाल के सोस पग धरि तात मात हिए राजहीं ।।

दोहा— मुष माटी तन रज भरे भूप सुतन्ह कहँ दूरि ।
लाल कनक मनिमय अजिर कहँ मृत्तिका कहँ धूरि ।। ३७४ ।।

दोहा ३७४ के अन्तर्गत—

१ करहिं रानी········हिए राजहीं—वात्सल्य की रसात्मक अनुभूतियों एवं चेष्टाओं का बिम्ब विधान कवि की रागात्मक रसिक साधना का परिणाम प्रतीत होता है। वात्सल्य के अन्तर्गत सन्तति-पालन की मातृक भावों की अत्यन्त गहन एवं महिमामयी संवेदना का आलोक दिखाई पड़ता है ।

पाठान्तर : २ नूपुर (ब० प्रति)

चौ०— पुत्र[1] कुशल कुल कीरति काजा । देवालएं रचे बहु राजा ॥
जहं तहं तीरथ बाग लगाए । मठ मंदिर जल कुंड षनाए ॥
महादेव देवी बहु देवा । ठौर ठौर थापे करि सेवा ॥
हरि मंदिर सुन्दर बहु कीन्हे । ब्रम्हपुरी बिप्रन्ह कहँ दीन्हे ॥
सरजू तीर तीर मन भाए । मंडप बेदी बहुत बनाए ॥
बिप्र बेद जहँ पढ़ै पुराना । जप तप पूजा होम बिधाना ॥
पन्थ पन्थ महँ रचे ठिकाना । षान पान राषे बहु बाना ॥
परजन धन भरि भरि कर ल्याए । राजा फेरि दए पहिराए ॥
राम जन्म पूरन भये काजा । काहू के कछु लियो न राजा ॥
इह बिलास जाके मन माना । राम जन्म दै सुनैं जु काना ॥
गावै प्रेम सहित मन धारै । आपु तरै औरन्ह सोइ तारै ॥
गावहिं नारि जन्म बड़ भागा । पावैं पुत्र अहिवात सुहागा ॥
मच्छ कच्छ नरसिंह बाराह । वामन परसुराम सिय नाह्य ॥
कृष्न बुद्ध और कल्कि बषानै । सबकौं भक्त एक करि मानैं ॥
जेहि जेहि दिवस लीन्ह औतारा । माधै जन्म कर्म व्यौहारा ॥
प्रेम सहित प्रभु के गुन गावै । सो भक्ता पुनि गर्भ न आवै ॥

छंद— राम जू को जन्म मंगल लाल हित करि जो कहै ।
पाप बाधन मोक्ष साधन हरि अराधन है इहै ॥
ज्ञान ध्यान अनेक की जै जोग जज्ञ बनाइए ।
राम जू को जन्म मंगल लाल सोई फल पाइए ॥

दोहा— बालमीक[2] जो कछु कह्यो सो कापै कहि जाइ ।
अपने बुधि अनुमान तें कह्यो कछु लाल बनाइ ॥ ३७५ ॥

दोहा ३७५ के अन्तर्गत—

१ पुत्र कुशल········बहु बाना = पुत्र की मंगल कामना हेतु दशरथ द्वारा दान के अतिरिक्त देवालयों की स्थापना, तीर्थों की स्थापना, बाग एवं तड़ागों का निर्माण, शिवलिंग की स्थापना आदि किये जाने का उल्लेख सर्वथा नवीन है और कवि के द्वारा रागात्मकता को सृजनात्मक दिशा देने वाला एक कलात्मक प्रयत्न है ।

२ बालमीक········लाल बनाई = लालदास ने राम कथा के आदि कवि बाल्मीकि के अनिवर्चनीय योगदान के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है । महर्षि बाल्मीकि द्वारा किये गये सांस्कृतिक साहित्यिक एवं धार्मिक प्रयत्नों के प्रति लालदास ने आस्था व्यक्त की है । अपने पूर्ववर्ती कवियों एवं मनीषियों के प्रति लालदास की यह कृतज्ञता उनके साहित्यिक-सांस्कृतिक ॠण मुक्ति की भी चिंता है ।

चौ०— अब सुन राम जन्म[1] अस्थाना । जन्म भयो जेहि ठौर ठिकाना ॥
जाको दरस करै नर कोई । माता गर्भ बास नहिं होई ॥
देव सिद्ध रिषि मुनि जन जेते । बंदत हैं ता ठौरहिं तेते ॥
बिघ्नेश्वर के पूरब ओरा । आठ हजार धनुध वह ठौरा ॥
लोमस्थल के पश्चिम देसा । धनुष पचास और कछु ऐसा ॥
है उन्मत्त की दक्षिण घाहीं । धनुध एक सय आधिक नाहीं ॥
मुनि बशिष्ट के उत्तरभागा । राम जन्म जहँ मध्य विभागा ॥
नौमी चैत मास उजियारी । व्रत्त करै दरसन नर नारी ॥
जो बालक परसै जन्मासन । रोग दोष गृह ब्याधि बिनासन ॥
जन्म स्थान के उत्तर सुंदर । धनुष बीस पर कैकेई मंदिर ॥
भरत जन्म[2] रघुवंश उजागर । भक्ति ज्ञान गुण शील के सागर ॥
महल सुमित्रा कहौं बषानी । तीस धनुष दक्षिण कौं जानी ॥
जहाँ जनत भई दोइ सुमित्रा । लक्षिमन और शत्रुघन पुत्रा ॥
धनुष[3] प्रमान कहत सब कोई । साढ़े तीनि हाथ कर होई ॥
पुनि अब तब के मनुष्य विशेषा । इह कछु मैं जानत नहिं लेषा ॥
और एक गणना है आही । जोजन धनुष दंड कहौं ताही ॥
षट तिल समा एक जब राषा । तीन जबहिं भरि अंगुल भाषा ॥
अंगुल चारि मुष्टिका कहिये । करि षट मुष्टि दंड को लहिए ॥
अष्ट दंड कर धनुष बषाना । धनुष सहस्र द्वै कोस प्रमाना ॥
चारि कोस कर जोजन सोई । जोजन करि सब संख्या होई ॥
जोजन और एक है लेषा । लोलावती ग्रन्थ महँ देषा ॥
अष्ट बार अश्व पुच्छ प्रमाना । ता सम एक जवोदर जाना ॥
अष्ट जवोदर अंगुल एका । कर अंगुल चौबीस बिवेका ॥
चारि हाथ को धनुष भरोसा । दोइ हजार धनुष कर कोसा ॥

दोहा ३७६ के अन्तर्गत—

१ जन्म अस्थाना—जन्म स्थान । कवि ने राम जन्म स्थान की भौगोलिक स्थिति बतायी है जो सर्वथा नवीन हैं । लालदास ने अवधविलास की रचना अयोध्या में ही रहकर की । इसलिए उन्होंने लोक विश्वास और रसिक साधना के द्वारा स्वीकृत राम जन्म के स्थान को प्रामाणिक मानकर उसका वर्णन किया है ।

पाठान्तर: २ बंश । (व० प्रति)

३ धनुष—एक प्राचीन माप । साढ़े तीन हाथ की माप को एक धनुष कहा जाता है ।

बिधि बसुधा जब रचि इह थापी। जोजन कोटि पचास है नापी ॥
सय जोजन का देसहि कीजै। देस एक सम मंडल लीजै ॥
मंडल होंहि एक सय जबहीं। तासों षंड कहत हैं सबहीं ॥
द्वीप षंड बहु बिधि बिस्तारा। जल ऊपर राषे करतारा ॥
जल को पार वार कछु नाहीं। कच्छप एक रहत ता माँहीं ॥
सौ सहस्र जोजन तन कोरी। महाकाय अति पृष्ट कठोरी ॥
तापर शेषनाग को बासा। एक हजार शीश हैं तासा ॥
ताके एक मूंड पर धरनी। धरी रहति सरसौं सम बरनी ॥
केऊ कहैं शेष शीश पर आहू। धरा देत पर धरे बराहू ॥
अस महानाग देह बड़ जाना। कच्छप पर हैं सूत समाना ॥
दोइ हजार दोइ सय जोजन। रवि रथ चलत निमिष एक जोजन॥
कवि जन मिलि कहैं मत इक सजिये। सब महँ बड़े होइ तेहि भजिये ॥
केउ कहत हैंहि सिंधु बड़ेरे। तिन्ह महँ रतन रहत बहुतेरे ॥
केउ कहत धरनी बड़ि भारी। सो तौ शेषनाग शिरधारी ॥
शेषउ तौ शिव भूषन कीनें। शिव हूँ कहं कैलास है लीनें ॥
गिरिहुँ लिएउ दसकंस उषारी। रावन बालि किएउ बलहारी ॥
बालिहु कौ पुनि रामहि मारे। तौ भया राम बड़े गुनयारे ॥
रामहु तो हैं भक्ताधीना। सब तैं बड़े भक्त तब कीना ॥
भक्तहि लाल अतेव बड़ाई। भक्त हिए भगवंत समाई ॥

दोहा— दरसन[४] ही ते लाल कहि दूर होत अपराध।
बरनाश्रम षट दरस में सकल शिरोमनि साधु ॥३७६॥
पारवती पूछेउ हुतो कौन जन्म स्थान।
जैसो कछु शंकर कह्यो तैसो लाल बषान ॥३७७॥

[इति श्री अवध विलासे : बुद्धि प्रकासे : सब गुन रासे : भक्त हुलासे : पाप विनासे: कृत लालदासे: राम जन्म उत्सवे नाम एकादस विश्राम:]

पाठान्तर : ४ दरसन ही·········शिरोमणि साधु=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं है।

:—: अथ द्वादस विश्राम :—:

चौ०— पुनि एक बेर राम लरिकाई । रोवत रहे न केहुँ रहाई ।।
लाषन लोग खिलौना दीन्हें । जुवतिन्ह जतन बहुत बिधि कीन्हें ।।
राजा कहन कहनियाँ[१] लागे । चुप हुइ रहे सुनत अनुरागे ।।
सत जुग असुर भयो इक राजा । बलि अस नाम दैत्य शिरताजा ।।
सो कहैं मैं इन्द्रासन लैहौं । इंद्रहि षेदि स्वर्ग तैं दैहौं ।।
सो अश्वमेध कियो महाबीरा । इंद्र डरान भई मन पीरा ।।
नारायण पहँ जाहि पुकारा । असुर लेन हैं लोक हमारा ।।
बिष्नु दैत्य छलिबे कौं धाए । नान्हं मून्हं[२] बाम्हन होइ आए ।।
दंड कमंडल पुस्तक लीने । द्वादस तिलक[३] बिराजत दीने ।।
एक भाल किये टीका नीका । दोइ कान तर कीन्ह सुटीका ।।
इक इहाँ गर कूप बिराजा । एक नारि पीछै लै साजा ।।
दोइ बाहु के मूलहि कीन्हा । एक तिलक हीए महँ दीन्हा ।।
एक नाभि दुइ कुच्छहि मांड़े । एक पृष्टि दै डगरे पांड़े ।।
भूप तिलक मिसि सुत बहरावत । अंग अंग करि राषि हँसावत ।।

दोहा ३७८ के अन्तर्गत---

१ कहनियाँ=कहानी (कथा) । कहानी सुनने के लिये बालकों का मन सदैव लालायित रहता है । कहानी बालकों की जिज्ञासा, कल्पना, एवं मनोविज्ञान के अनुकूल होती है । 'कहानी' के द्वारा रोते हुये राम के चुप होने का वर्णन कवि की प्रवंध पटुता के साथ ही कवि की कथा एवं बूझौवलों के प्रति गहरी अभिरुचि का भी संकेत देता है ।

२ नान्हँ मून्ह=नन्हे मुन्हे का आँचलिक रूप ।

३ द्वादस तिलक=रसिक साधना के अन्तर्गत तिलक को युगल स्वरूप का प्रतिनिधि मानते हैं । द्वादस तिलक से संत लालदास का आशय शरीर में बारह स्थानों में श्री सहित ऊर्ध्वपुण्ड्र की रचना से है । डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने 'राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय' (पृ० १८१) शोध प्रबंध में रसिक साधना में तिलक की महत्ता पर प्रकाश डाला है । लालदास ने द्वादस तिलक धारण करने के स्थानों का भी उल्लेख किया है । ये द्वादस स्थान इस प्रकार हैं—ललाट का मध्य भाग, दोनों कानों के नीचे, एक ग्रीवाकूप, एक नारि के पृष्ठ भाग पर, दो बाहुमूल पर, हृदय स्थल पर, नाभि, पर दो कुक्षियों पर, एक पृष्ठ भाग पर । कवि ने रसिक साधना की परम्परा के अनुसार ही द्वादस तिलक का वर्णन किया है, जो उनके भक्त हृदय की रसमयी भवना का सूचक है ।

दोहा— बंस[४] पत्र सम भाल पर हृदय कमल दल जेहु ।
और अंग चंदन सुभग तुलसी दल सम देहु ॥ ३७८ ॥

चौ०— गावत बम्हना बेद पुकारी । देषन कौं दौरे नर नारी ॥
बलि के द्वार जाइ भयो ठाढ़ो । ताहि देषि जग अचरज बाढ़ो ॥
तनक तनक से हाथ रुपाई । देह बूढ़ देषत लरिकाई ॥
भीतर काहूँ जाइ सुनाए । जज्ञ करत बलि बाहर आए ॥
ताहि देषि कैं रीझे राजा । कहु बाम्हन आयो केहि काजा ॥
बावन आंगुर गात तुम्हारा । कहु पितु मातु दीन्ह अवतारा ॥
रहत हौ कहाँ कहौ समुझाई । माँगहु लेहु जोइ मन भाई ॥
माइ न बाप नहीं कहुँ आसा । सबही ठौर हमारी बासा ॥
साढ़े तीन पैग[१] भुंइ पाऊँ । तहँ इक राम मड़ैया छाऊँ ॥
देस ग्राम गढ़ सों नहि काजा । हम संतोष वृत्ति हैं राजा ॥

दोहा — असंतोष वैं बिप्र क्षय संतोषी क्षय राज ।
नासै निलज कुलांगना गणिका नासै लाज ॥ ३७९ ॥

चौ० — लोग पाप को मूल बषाना । ब्याधि मूल रस[१] कहत सयाना ॥
दुष[२] को मूल सनेह न कीजै । चिन्ता बहुत करे तन छीजै ॥
पंडित होइ कि मूरष कोई । जो ए तजै सुषी सोइ होई ॥
तीन ठौर संतोष बषाना । असंतोष भल तीन ठिकाना ॥
इक संतोष धरे मन माहीं । अपनी नारि आन रति नाहीं ॥
पुनि संतोष जु संजम जाना । स्वादि लागि बहुतै नहिं खाना ॥
धन संतोष सदा मन दीजै । लालच लागि अधर्म न कीजै ॥
असंतोष भल दान बिचारी । पढ़त सुनत संतोष नकारी ॥
जप तप करत संतोष न मानो । स्वारथ झूठ धर्म सत्य जानो ॥
दाता असंतोष भल आही । भिक्षुक कौं संतोषहि चाही ॥
दान देत बरजै कोउ दाता । ताको भल नहिं करै विधाता ॥

पाठान्तर : ४ बंस पत्र······सम देहु=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं है ।

दोहा ३७९ के अन्तर्गत—

१ परग (व० प्रति)

दोहा ३८० के अन्तर्गत—

१ रस=सुस्वाद भोग पदार्थ (सुमधुर रस पेय आदि)

२ दुष को मूल सनेह न कीजै=स्नेह के ही दुख का मूल कहा है । महा कवि सूर ने 'प्रीति करि काहू सुख न लह्यो' से इसी ओर संकेत किया है । संत चंददास 'ऐसो नेह करो मत कोय, जा कीन्हे पाछे दुख होय' से स्नेह को दुख मूलक कहा है ।

बलि जब देन लग्यो जल धारा । तबहिं पुरोहित शुक्र[३] संम्हारा ।।
झारी[४] माँझ बैठ जब जाई । पानी बूंद परै नहि पाई ।।
तब कुश बिप्र चलावा•टूंटी[५] । भीतर आंषि शुक्र की फूटी ।।
बाहर निकसि बहुत पछितानें । तब ते[६] शुक्र भये भैया कानें ।।
जब संकल्प किये नृप बीरा । वामन बहुत बढ़ाय शरीरा ।।
तीनि पाइँ दरि त्रिभुवन नापे । देषि स्वरूप असुर बलि काँपे ।।
पाउं पताल सीस आकासा । तीनि चरण किये भयो तमासा ।।
ब्रम्ह लोक इक पाउँ चलावा । ब्रम्हा ताहि धोइ शिर नावा ।।
सोइ जल भर राषे जु कमंडल । गंगा भई बहो भूमंडल ।।
भागीरथी ल्याये करि सेवा । पित्र मुक्ति के कार्जहिं भेवा[७] ।।
दोइ पैग कियो ब्रम्हंडा । एक पैग कौं बच्यो न षंडा ।।
बलि बोले गति लषि न तुम्हारी । नापि लेहु इह पीठि हमारी ।।
भए प्रसन्न हरि दीन्ह पताला । मैं दरबार रहब रषवाला ।।
राजा जब इह कही कहानी । हँसे राम सुनतहि मनमानी ।।
उह ब्राम्हन मैं हो तहँ होई । नृप जानत रह्यो और है कोई ।।
तब दषरथ मुष चुंबन चाहे । विश्वरूप[८] तब दरसहि पाए ।।
दशरथ देषि कहै दई[९] बापा । हम तो याहि पूत करि थापा ।।

---

३ शुक्र दैत्यगुरु शुक्राचार्य

४ झारी=पात्र (लोटा)

५ टूंटी=टोंटी

६ तब ते……काने=दान जैसे पुण्य कार्य में विघ्न डालने वाले शुक्राचार्य के लिये 'भैया' शब्द का प्रयोग करके कवि ने अपनी विशिष्ट व्यंग्य के सामर्थ्य का परिचय दिया है। कवि ने उपहास के लिये व्यंग्योक्ति का भैंया शब्द के द्वारा सफल प्रयोग किया है ।

७ भेवा=भेद (रहस्य) । अथवा भया (हुआ) क्रिया के रूप में प्रयोग। तुलसी ने भी भेद (रहस्य) के अर्थ में 'भेद' का प्रयोग किया है।

८ विश्वरूप=विराटरूप । कवि ने दशरथ को राम के विराट रूप में दिखाने का प्रसंग वाल्मीकि कथा के प्रसंग के अन्तर्गत चित्रित किया है। कवि ने गीता के विराटदर्शन का प्रभाव ग्रहण किया है।

९ दई=दैया (हाय)

दोहा— या बिधि नृप स्तुति करि देषे हरि धरि ध्यान ।।
पायो फल वा जन्म को लाल भयो मन ज्ञान ।। ३८१ ।।

चौ० — एक समय इक बार सुहाए । अवधपुरी दुर्वासा आए ।।
मिले बशिष्ट बहुत सनमानें । सुनि नृप जाइ मदिर लै आनें ।।
आसन अर्घ पूजि बिधि भाषे । बालक लै सब चरनन्ह राषे ।।
प्रफुलित बदन प्रसंन मन कीने । सबकें सीस हाथ मुनि दीने ।।
मनहीं मन मुनि राम निहारे । जगपति जान चरण शिर धारे ।।
पूंछत[1] भूप कहहु मुनि जैसी । देषहु आयु शिशुन्ह की कैसी ।।
तुम सर्वज्ञ कुशल सुषदाता । जानत[2] हहु घर घर की बाता ।।
कहु भगवन इन्ह चहुरि[3] मझारी । राज्य बंश मम को अधिकारी ।।
नाती कहहु किते सुषदाई । करिहैं हमार कवन सिवकाई ।।
राम हाथ देषि मुनि अस भाषा । यातैं नृप बढ़िहै कुल साषा ।।
ग्यार हजार बर्ष इन पायू । करिहै राज्य होइ चिर आयू ।।
महाबीर दृढ़ शत्रु बिनासी । होइ अल्प सुष दुष बहु पासी[4] ।।
त्रिया बियोग होइ बन माँहीं । पुत्र दोइ दुलराइव नाहीं ।।
तेज प्रताप बहुत जस पैहै । जब तब तोहि बिधुरि दुष दैहै ।।
लक्षिमन भरत शत्रुघन ध्याता । ए सब सुषी होहिंगे भ्राता ।।
सुनि राजन यह पुत्र तुम्हारा । मनुष्य न होइ राम अवतारा ।।
राजा कहै ए अंतरजामी । मनुष्य भये केहि कारन स्वामी ।।
मुनि कहैं भूप सुनहुं मनलाई । पुरा वृत्तान्त कहौं समझाई ।।
देवासुर संग्राम भयो जब । जीते देव भगे दानव तब ।।

दोहा ३८२ के अन्तर्गत—

१ पूंछत भूप······राम अवतार—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने एक नये प्रसंग का पल्लवन किया है। दशरथ द्वारा ज्योतिषी से ·पुत्रों के भविष्य के सम्बन्ध में पूंछे जाने पर ज्योतिषी द्वारा आगामी घटनाचक्र का संकेत प्रबंध के सूत्र विन्यास को पुष्ट करने एवं राम के विभु रूप को उद्घाटित करने के लिये किया गया जान पड़ता है।

पाठान्तर : २ जानत भूत भविष्य सब बाता । (व० प्रति)

३ चारि । (व० प्रति)

४ पासी=पायेगा । पासी की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में श्री गोविंद प्रसाद जी साँवल का मत है कि 'पासी' संस्कृत के प्राप धातु के भविष्यत् के रूप का तद्भव रूप है । अथवा भविष्यत क्रिया का राजस्थानी भाषा का प्रयोग है। जिसे कबीर ने बहुलता से अपनी साखियों में प्रयोग किया है।

दैत्य देव भय त्रसित सकाने । भृगु पत्नी के शरण लुकाने ।।
तब देवन मिलि बिष्नु पुकारे । अभय किए त्रिय शत्रु हमारे ।।
हरि करि कोप चक्र कर धारे । हति भृगु त्रियहि असुर संघारे ।।
तब भृगु देषि स्वपत्निहि मारा । दीन्ह श्राप करि कोप अपारा ।।
कहा भयो ईश्वर अधिकारी । अबला अबुध त्रिया इन्ह मारी ।।
दीजै[५] दंड नीति इह होई । कर्म अजुक्त करै नर कोई ।।
तजि बैकुण्ठ श्राप मम पाई । होहु मनुष्य जग महँ अब जाई ।।
त्रिया बियोग कियो जस मोही । होत हीं जुवा होहि तस तोहीं ।।
इह कहि त्रिया शोक तजि दीन्हा । भावी भई मानि मुनि लीन्हा ।।
बिप्र बचन सत्य करन मुरारी । भये आइ मानुष तन धारी ।।
तातें तुम इह भर्म निवारो । मानहुँ जिनि[६] है पुत्र हमारो ।।
तुमहूँ तप कीने हैं भारे । रहे आइ हरि गर्भ तुम्हारे ।।
करि उपदेस गये दुर्वासा । राजा मन भयो हर्ष हुलासा ।।

दोहा— अशुभ कर्म कियो क्रोध करि नर होइ भुक्तै तौन ।
लाल कर्म हरि कौं लगे और बापुरो कौन ।। ३८२ ।।

चौ०—सुनहुँ रतन मंडप की शोभा । देषत सुनत लगत मन लोभा ।।
ग्रंथ अगस्त संहिता[१] आहीं । कथा कहत हौं कहो जा माँहीं ।।
श्रोता शिव नारद हनुमाना । रामचरित मुनि करत बषाना ।।
जोजन एक कनकमय धरनी । सरजू निकट बहति अघ हरनी ।।
नाना द्रुम पुहुपित फल तीरा । सीतल मंद सुगंध समीरा ।।
हंस कमल अलि पिक सुषदाई । छह रितु सदा रहति छबि छाई ।।
बेदी एक रत्नमय बाना । साठि धनुष चहुँ फेर बषाना ।।
दोइ धनुष की रचित उचाई । तापर मंडप है सुषदाई ।।

पाठान्तर : ५ कर्म अजुक्त करै जो कोई । दीजै दंड नीति इह होई ।। (व० प्रति)
६ जिनि—पूर्वी अवधी का रूप, पश्चिमी अवधी में 'जनि' प्रयोग प्रचलित है ।

दोहा·२८३ के अन्तर्गत—

१ अगस्त संहिता—कवि ने साकेतपुरी के कनक भवन (रत्न मंडप) की शोभा का वर्णन 'अगस्त संहिता' के अनुसार किया है ।

सोरह धनुष उतंग[3] है थंभा । कनक रूप मनिमय आरंभा[4] ।।
सोरह थंभ बिचित्र बिराजा । चारि चारि चहुँ ओर हैं भ्राजा ।।
सुभग सिवान[5] बिबिध नग जोरा । द्वादश द्वादश हैं चहुँ ओरा ।।
जय अरु विजय समान सुभासा । छरीदार ठाढ़े त्यहुँ पासा ।।
छाजे[6] ताहि झरोषे सोहैं । इंद्रादिक देषत मन मोहैं ।।
हीरा लाल अनेक बिशाला । झूलत चहूँ ओर मणि माला ।।
जोग पृष्टि दल अष्ट तहाँ ही । है नव षट त्रैकोन तमाँही ।।
तापर अग्नि सूर शशि जौना । सोहत नवधा भक्ति बिछौना ।।
इक मंदार हास तरु अहई । मंडप के पूरब दिशि रहई ।।
पश्चिम पारिजात द्रुम बाढ़ा । बृक्ष संतान[7] पश्चिम दिसि ठाढ़ा ।।
उत्तर हरि चंदन के गोंभा[8] । बेदी बीच कल्प तरु सोभा ।।
ता तरु तर मंडप छबि छाई । बैठे राम लाल सुषदाई ।।
आभा[9] इंद्र नीलमणि को है[10] । कोमल ललित गात मन मोहै ।।
चरण अरुण पैंजनि जुत नूपुर । रत्न जटित किंकनि कटि ऊपर ।।
अंगुली झलक तडित दुति हारी । अल्प उदर पर हार बिहारी ।।
बघ नष होए बने छबि बाला । मोती रतन मणिन्ह की माला ।।
कुंदन कल करधनी बिशेषा । मनहुँ कसौटी कंचन रेषा ।।
लघु लघु हाथ ललित रतनारे । पहुँची बलय मुद्रिका धारे ।।
कठुला कंठ भरे छबि झूले । कानन्ह नागफनी रबि भूले ।।
सुंदर बदन कमल की शोभा । कुंचित केश भ्रमर जनु लोभा ।।
लोल बिशाल रसाल सुलोचन । चितवत चित चोरत दुष मोचन ।।
भृकुटी निकटहि तिलक दिठौंना । मात दीन्ह मति लागै टोंना ।।
सोहत सीस क्रीट सुषदाई । सोभा सकल उदय भई आई ।।

---

३ उतंग - उत्तुंग ४ प्रारंभा=प्रारंभिक भाग ।
५ सिवान=सीमा । ६ छाजे=छज्जे
७ वृक्ष संतान=संतति प्रदान करने वाला वृक्ष ।
८ गोभा=छोटा वृक्ष ।
९ आभा इंद्र नीलमणि.........उदय भई आई=वाल्य सौन्दर्य की मनोमूर्तियों के मानस साक्षात्कार में कवि का कौशल, सौन्दर्य के अमूर्त दृश्यों को मूर्त रूप प्रदान करने में अपनी रसवंत कवि प्रतिमा का प्रमाण देता है । सौन्दर्य की ये मनोमुद्राएँ महाकवि की वाणी के कला-वलय में कैसे कुलेंलें मारती है ?
१० कोहै=कौंधती हैं ।

गहना और कहे को जेते । राजन्ह के सोहत घर तेते ।।
उर भृगुलता वत्स श्री जोहै । अंग ही लगे रंग से सोहै ।।
केसरि चंदन मृग मद लाए । और सुगंध अनेक सुहाए ।।
तुलसी कुंद पुहुप मंदारा । माल अनेक प्रकार हैं धारा ।।
सोहत संग सबै सुष दाता । लक्षिमन भरत शत्रुघन भ्राता ।।
ब्रह्मादिक इंद्रादिक देवा । नारद आदि करैं सब सेवा ।।
विद्याधर गंधर्व सुजाना । करत स्तुती अनेक बिधाना ।।
सनकादिक संमुष हैं ठाढ़े । करि करि दरस हर्ष अति[11] बाढ़े ।।
ग्यारह रुद्र ध्यान उर धरहीं । द्वादस सूरज दरशन करहीं ।।
तिनके नाम कहूँ समुझाई । जे बारह संक्रांति रहाई ।।
सूरज बरुण बेदांग औ भानू । रबि जम इंद्र गभस्तिहि जानू ।।
विष्नु दिवाकर मित्र समेता । और एक कहि सुबरण रेता ।
और[12] एक बिधि कहूँ सुहाती । द्वादस सूरज भए जेहि भांती ।।
विश्वकर्मा तनुजा इक संज्ञा । सूरज कहँ दोनौं सोइ मंज्ञा ।।
जब रवि अंग संग लपिटाई । महातेज तप सह्यो न जाई ।।
माया करि छाया तहँ राषी । आप पिता गृह गई दुष भाषी ।।
विश्वकर्मा जामात बुलाए । द्वादस षंड कीन्ह मन भाए ।।
आउ पुत्र इक बात सुनाऊँ । रूप तुम्हार अनूप बनाऊँ ।।

दोहा— छाया सुत शनि रक्तिमथ जम जमुनाऊँ धार ।
रवि संज्ञा अश्व अश्वनी तिनतें अश्वनी कुमार ।। ३८३ ।।

चौ०— अब सुनु रुद्र कहत हौं नामा । राम चरण जिन्हके विश्रामा ।।
पशुपति भैरव रुद्र बषाना । विश्व विश्वेस अघोरहि जाना ।।
पुनि विश्वरूप त्र्यंबक कहिए । और कपर्दी सूलिन लहिए ।।
इक ईशान नाम है पाए । ग्यारह रुद्र पुराणन्ह गाए ।।
बाहर बालक रूप निहारैं । भीतर ब्यापक ब्रह्म विचारैं ।।
आदि[1] जोति इक अलख अभेवा । जामैं तीनि प्रगट भए देवा ।।
ब्रम्हा बिष्नु सदा शिव नामा । देविउ प्रथम प्रगट भइ तामा ।।
लागी कहन बिष्नु सों माया । तुम मोहिं बरहु करहु प्रभु दाया ।।

---

११ मन (व० प्रति)
१२ और एक........अश्वनी कुमार=प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में नहीं हैं ।

दोहा ३८४ के अन्तर्गत—
१ आदि जोति..........निरदंभु= प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में नहीं है ।

बोले बिष्नु बिबाह न होई । हम तुम एकहि तें भए दोई ॥
शक्ति श्राप दीन्हों तब ताहो । उपजत बिनसत रहो सदा हो ॥
तब शिव बैठ समाधि लगाई । ब्रम्हा बुधि बल सृष्टि उपाई ॥
पञ्च तत्व मिलि करि बिस्तारा । देव दनुज नर रचे अपारा ॥
जागे शिव देषे बहु मेला । डरे आपु कहँ जानि अकेला ॥
पोंछि कपाल प्रश्वेद गिरावा । भए दश बीर देषि सुष पावा ॥
ते सब हो तहँ रोइ पुकारा । तिन्ह के नाम रुद्र शिव धारा ॥

दोहा— या बिधि ग्यारह रुद्र ए भए अजोनी शंभु ।
परम जोतिमय राम कहँ भजत लाल निरदंभु ॥३८४॥

चौ०—बिश्वामित्र बशिष्ट ब्यास मुनि । सेवैं राम चरण मनहो मुनि ॥
रबिकुल कमल सभा मन भाई । तिन्ह को रबि सम है दुषदाई ॥
जो यह ध्यान कथा सुनि गावै । ताकें लाल राम होए आवै ॥

दोहा— पिता अंक भ्राता निकट रबि कुल सभा मझारि ।
लाल रत्न मंडप सरों करत ध्यान त्रिपुरारि ॥३८५॥

चौ०—काक महामुनि कीन्ह बिचारा । सुनियनु राम भए अवतारा ॥
पूरन सब घट ब्यापक सोई । उहै राम किधौं और है कोई ॥
परषन ताहि अवध उड़ि आयो । बालक रूप देषि भ्रम छायो ॥
षेलत षात रहे अंगनाहीं । कछु पकवान राम कर माहीं ॥
ताहि लेन कों चोंच चलावा । अंतरजामी हाथ उठावा ॥
बढ़ेउ हाथ ब्रम्हांड उलंघा । उड़े काक ता हाथहि संघा ॥
दोइ अंगुर अंतर रहै धावा । हारि परेउ पर हाथ न आवा ॥
तब मुनि काक मनहि पछितायो । उहइ राम मैं मर्म न पायो ॥
ब्याकुल काक भए तेहि काला । अंतरजामी राम दयाला ॥
राष्यो ताहि उहीं अंगनाई । षेलत आपु रहे जेहि ठाई ॥
पुनि तहि राम फेरि समुझावा । औंचि श्वास संग उदर दिषावा ॥
देषे काक लोक सब जेते । देवन्ह सहित स्वर्ग सुष लेते ॥
और अनेक रूप बहु वेषा । रामहि एक जहाँ तहाँ देषा ॥
लै उह ध्यान बाल मन रामा । बैठा जाइ लाल निज धामा ॥

दोहा— राम उदर मैं जाइकै काक भुशुंड जु शोष ।
लाल बात सौ कल्प की एक पलक मैं दोष ॥३८६॥

चौ०—नौमी राम जन्म कौं जेते । आवत हैं तीरथ सब तेते ॥
दश[1] हजार दशै दश क्रोरी । तीरथ आइ होत इक ठौरी ॥

दोहा ३८७ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ दश हजार दश सय दश क्रोरी (व० प्रति)

तिन्ह के नाम कहाँ सब पाऊँ । जे कछु सुने सु कहि समझाऊँ ॥
गंगा[१] सरस्वती जमुना रेवा । चंद्रभगा सतद्रू पुनि एवा ॥
शिवा देविका और विपासा । ऐरावती सरजू हि सकासा ॥
कुल[३] भाषा पल छाइ छुमंती । एक रथोग्रा चर्मणवंती ॥
बृहदरथा अवसोदा बाहू । एक भूसरा हिरनिद आहू ॥
ए उत्तर दिशि तें चलि आवति । अब कहूँ दक्षिण तें जे धावति ॥
कावेरी गोदावरी बेना । कुंकनावति सीता सुष दैना ॥
सुक्रमती तमसा बैतरनी । पुहुप बाहनी तामसपरनी ॥
ज्योतिरथा उतपाला बितस्ता । भीमरथा चपला चली मस्ता ॥
बेना कृष्न दुंबरावंती । कालिंदी सोनद गोमंती ॥
महानदी बीदर्भा गाई । आतुर होइ नर्मदा धाई ॥
दक्षिन सिंहल द्वीप रहाई । त्रिकुटा चल लंका जहँ छाई ॥
तहाँ ते नदी चलति हैं जेती । तिन्ह के नाम कहूँ सुनु तेती ॥
गंगा श्वेत बेतवे गंगा । गंगा धर्म पताल बहूंगा ॥
पुनि गंगा आकास कहाई । मानिक धारा कालुक गाई ॥
तहँ तीरथ श्रीपद है नामा । पावन और अनेक बुधामा ॥
अब कहियत पश्चिम तें गवनी । शिप्रा चर्मन्वती सिंधु रवनी ॥
पुन्यामहि शुभ्रावति सरिता । बेत्रवती भोजांता चलिता ॥
पूर्वभद्र ओ परा जु भद्रा । चली चर्मिला करत अरद्रा ॥
बन बालिक बर द्रुमा बिचित्रा । चली बाहुदा उमा पवित्रा ॥
चित्र विश्रुता मित्र धनि पावनि । प्रजावतीं मधुमती सुहावनि ॥
गुरू नदी बिमला बिमलोदा । मत गंगा पयस्वनी बिनोदा ॥
इंदुमाल चांबिल पुनि धाई । पश्चिम ते पूरब दिसि आई ॥

दोहा— तीनि ग्राम नव ऊषला सप्त पुरी फल दानि ।
नव आरण्य जग आदि ए रचे लाल बिधि जानि ॥३८७॥

चौ०— आए सात समुद्र सयाना । पर्वत सबहिं करन अस्नाना ॥
तीरथ चक्र गन्डकी सलिता । आए मानसरोवर मिलिता ॥
तीरथ और सुधाम बषानो । तिन्ह के नाम ध्यान हिए आनो ॥

---

१ गंगा सरस्वती……पूरब दिसि आई=कवि ने भौगोलिक दृष्टि से देश की नदियों का उल्लेख करते हुये उनके उद्गम एवं प्रवाह पथ का भी संकेत किया है जो कवि के भौगोलिक ज्ञान एवं देश भ्रमण का भी प्रमाण देता है ।

पाठान्तर : ३ कुल भाषा पक्षा इक्षुमती (व० प्रति)

नैमिष[1] पुष्कर गया प्रयागा । है प्रभास कुरुक्षेत्र सभागा ॥
मथुरा माया द्वारावंती । काशी कांची अंत्यकामंती ॥
गंगा द्वार राम ह्रद गाए । गौतम आश्रम श्रीकंठ आए ॥
सोमोद्भव जंबू मारग । स्ववरण बिंदु गए होइ पारग ॥
पिंगल कनक दशा अश्वमेधा । करत केदार जु पाप निषेधा ॥
तीरथ एक फाल्गुन नामा । कोका मुष बिल्वक बिश्रामा ॥
ब्रम्हपुत्र बद्रिकाश्रमा । गंगासागर न्हान सुधर्मा ॥
कुशावर्त ब्रम्ह तीरथ सोई । पर्वत नील भद्र बट होई ।
गया बैकुंठ सूकर उद्भेदन । सुनों पाप मोचन हर बेदन ॥
रिषीकेश लोहागर जाना । और पृथूदक सौरूं बषाना ॥
चित्रकूट विंध्याचल आवत । सेतबंध रामेश्वर धावत ॥
बिंदुसरोवर गढ़ मुक्तेश्वर । संभल सरवोद्वार कलंजर ॥
दारक बन पिंडारक कालो । द्विषद बती पुन पुन नदि चालो ॥
ब्रम्हावर्त मल्लिका अर्जुन । हेमाचल गोकर्ण तपोवन ॥
रैवत अचल रेवती कुंडा । सुबरण रेता बहति प्रचंडा ॥
पोति स्वामि पुरुषोत्तम गाम्रे । शैलादिख रेनुका जु आये ॥
अर्बुद अचल बंकटाद्रि । गालब आश्रम तमसा साद्रि ॥
ब्रम्ह जोनि अरु जंबू मारग । तीरथ जटे बटेश्वर पारग ॥
तीरथ गुरु पुष्कर कहि गाए । तीरथ राज प्रयाग कहाए ॥
स्वर्ग द्वार सरजू सुषदाई । तीरथ सब न्हावत तहँ आई ॥
सुर नर असुर नाग गंधर्बा । जक्ष किन्नर चारण रिषि सर्बा ॥
सिद्ध सूत मागध अप्सरऊ । बंदीजन अरु बिद्या धरऊ ॥
ग्रह इंद्रादि लोक सब पाला । भूत रुद्र ब्रम्हादि बिशाला ॥
सरजू नीर सबहि गति दावन । पै कछु सप्त घाट हैं पावन ॥

दोहा— गुप्त पुन्य हरि बिष्नु हरि चक्र चंद्र हरि धाम ।
लाल धर्म हरि बिल्व हरि सप्त हरिन्ह के नाम ॥ ३८८ ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल के तीरथ देवा लाल ।
सिद्ध साधु गंधर्व सब अवर्धहि करत त्रिकाल ॥ ३८९ ॥

दोहा ३८८ के अन्तर्गत—

१ नैमिष······प्रयाग कहाए—कवि ने विभिन्न तीर्थों का उल्लेख करते हुए साकेत और सरयू के महत्व को प्रतिपादित किया है ।

चौ०— अब सुनि लेहु पतित गति लायक । तीरथ होत जाहि फलदायक ।।
मल अरु मुत्र न जल लग करई । बाहन बिनु पाइन्ह अनुसरई ।।
आनहिं दे परि आप न लेई । ताही कहँ तीरथ फल देई ।।
बोलै सांच झूठ नहि भाषै । पर त्रिय धन पर मन नहिं राषै ।।
काहू कौं कबहूँ न सतावै । सो प्रानी तीरथ फल पावै ।।
हाँथ पाँव जल सौच बनाई । निस कटि बसन धोइ तब न्हाई ।।
राषैं शुद्ध नैन मन बानी । सो पावैं तीरथ फल प्रानी ।।
जपै नाम तीरथ ब्रत साधैं । पित्र अतीत देव आराधैं ।।
दान मान करि बिप्र संतोषैं । ताही को तीरथ फल होषैं ।।
होइ निष्काम रहै तेहि ठाईं । अल्प अहार करै जब ताईं ।।
इंद्री बस संजम करि धारै । तीरथ ताहि बहुत फल कारै ।।
दूषन डरत कुसंगति त्यागै । कथा कीर्तन करि निशि जागै ।।
गहि संतोष रहै बल हीना । तीरथ जानु ताहि फल दीना ।।
क्रोधहि करै न देइ न गारी । बोलै मधुर बचन सुषकारी ।।
तीरथ ताहि होत फल दाता । कहत लाल इह बात बिधाता ।।
इह सब मैं अपने मन जाना । तीरथ सेवत होत है ज्ञाना ।।
सात[१] बरष रह्यो अवधहि माहीं । जानि पाप कीए कछु नाहीं ।।
तब मम हृदय भई इह बानी । राम धाम की कथा बषानी ।।
मेष[२] राशि भयो शनि दुषदाई । तीरथ शरण रह्यो में जाई ।।
ग्रह के गुण भयो चित्त विक्षेपा । तातें ग्रंथ यह कीन्ह संक्षेपा ।।
जो शनि मोंहि विक्षेप न करतो । तौ कछु बहुत बात मैं धरतो ।।
जो न हौं तीरथ सरन रहातो । तौ शनि मोंहि मारि लै जातो ।।
जो कोउ[३] तीरथ सरन रहावैं । ताकि बात जमहू न चलावैं ।।

दोहा ३९० के अन्तर्गत—

१ सात बरष......कथा बषानी=कवि ने अयोध्या में सप्त वर्षीय प्रवास काल के बीच 'अवध विलास' काव्य-ग्रंथ का प्रणयन किया ।

२ मेष राशि.....मारि लै जातो=शनि के कुप्रभाव की ओर संकेत करते हुये कवि ने कहा है कि ग्रह के परिणाम स्वरूप उसके चित्त में विक्षेप हुआ अन्यथा वह इस प्रबंध काव्य को और विस्तार प्रदान करता ।

३ जो कोउ........चलावैं=प्रस्तुत पंक्ति व० प्रति में नहीं है ।

दोहा -- राम[४] भक्त निर्दोष मन जग सों रहत उदास ।
लालदास ता भक्त की तीरथ करत हैं आस ॥३८०॥
तीरथ[१] बारह बरष करि पंद्रह काशी बास ।
सात बरष रहि अवध मैं तब कियो अवध विलास ॥३८१॥

चौ०— पुनि सब देव गये हरि लोका । लक्ष्मी बैठि करति मन शोका ॥
लागत सून भवन बिनु साईं । भोग सुगंध कछू न सुहाईं ॥
चितवति[१] रहति कछू नहिं बोलै । विरह लहरि कै परी झकोलैं ॥
मन मैं बहुत हीनता आनो । छीन शरीर भयो पियरानो ॥
बैठी ऊंचे लेत उसांसा । कर कपोल चित उड़त अकासा ॥
जानैं और पीर नहिं कोई । भई आइ पिय बिछुरत जोई ॥
मनहीं मन महिं करति बिचारा । पुरुषारथ अब कौन हमारा ॥
कछु नहिं कह्यो गए केहुं देसा । आवति है मन माँहि अंदेसा ॥
काधौं भयो केहुं भरमाए । कैसे मोहि तजत बनि आए ॥
सदा समीप रहत मोहि लीये । राषत रहे बहुत सुष दीये ॥
आजु कहा मन महिं कछु आई । पूछौं काहि कहै समुझाई ॥
अस को नारि और जग माहीं । राषैं रोकि आवतै नाहीं ॥
गरुड़ पार्षद भए उदासा । बिनु दर्सन जनु जीव निकासा ॥
देषत रहे कमल दल नैना । सुंदर बदन परम सुष दैंना ॥
कोमल ललित चिन्ह मन भावन । पाऊं कहाँ चरन वै पावन ॥
जब संदेह होत कछु मेरैं । पूंछत रही रहत रहे नेंरै ॥
देते आपहीं रीझि प्रसादा । माला पुष्प लेत रही स्वादा ॥
कोमल बचन मधुर सुषदाई । कहते कथा बहुत मन भाई ॥
जो कछु कियो चहत रहे साजा । करते मोंहि पूंछि सब काजा ॥

---

४ राम भक्त..........आस =प्रस्तुत दोहे के पश्चात तीरथ बारह से लेकर अवध विलास वाला दोहा व० प्रति में नहीं है। साथ ही व० प्रति मैं उक्त दोहे के पश्चात एक नवीन चौपाई है जो च० प्रति में नहीं है। चौपाई इस प्रकार है—

अब सीता कों जन्म सुनाऊँ । जाकी कृपा राम मन भाऊँ ॥

दोहा ३८१ के अन्तर्गत—

१ तीरथ.....अवध विलास =कवि ने १२ वर्ष तक विभिन्न तीर्थों में १५ वर्ष तक काशी में तथा ७ वर्ष तक अवध में रहकर कुल ३४ वर्ष तीर्थाटन में रहकर 'अवध विलास' काव्य का प्रणयन किया ।

दोहा ३८२ के अन्तर्गत—

१ चितवति........झकोलै = विरह की लहरों के झकोलों में पड़ी हुयी विरहणी प्रिय की आकुल प्रतीक्षा में अपलक नेत्रों से देखती रहती है। आँसू की इस पीड़ा को वाणी द्वारा नहीं व्यक्त करती है।

जाते कहूँ भक्ति आधीना । मोहिं संग बिनु कबहुँ न कीना ॥
देषि भक्ति समुझावत मोहीं । भक्ति हितै मैं राषत तोहीं ॥
कहते श्री मैं सब बस कीना । रहत हौं सदा भक्त आधीना ॥
मेरो तन मोहिं नहि न संभारा । जैसे भक्त लगत मोहि प्यारा ॥
आवत रहे सनकादिक दौरे । इत उत झांकि जातु है भोरे ॥
पूँछत सबैं कहाँ गए नाथा । उत्तर कवन देउँ कहि गाथा ॥
सदा रहे अनुकूल हमारे । अंतरगति के जाननिहारे ॥
आज्ञा भंग किए हम नाहीं । कारन कौन मोहिं तज जाहीं ॥
जे अनुकूल पीव हैं जाके । तिय पतिबरत लिए घर ताके ॥
तिन्ह को छल नाहीं भल करना । पिय को कपट त्रिया को मरना ॥
देव सिद्ध जोगी सब आवत । षबरि खोज कोउ नाहिं बतावत ॥
समाचार पाइए कहुँ देसा । मै ही जाउं कि देउं संदेसा ॥
होत[२] है दुष जिय मुष अनदेषे । पिय संग बिनु दिन जात अलेषें ॥
मधुर हसनि अरु कहनि निहारनि । बिसरति नहिं करगहनि बिहारनि ॥
लर्षनि संग बिछुरे तब जानी । मीन कमल को जीवन पानी ॥
धन्य कमल अरु मीन बिचारे । बिछुरत प्रीतम तन तजि डारे ॥
इंद्रानी ब्रम्हानि भवानी । गई जहाँ लक्ष्मी महरानी ॥
बैठी जाइ निकट सनमानी । बिरहनि भई देषि मुसकानी ॥
तुम जु कहति रहीं हरि बस मेरे । राषत मोहिं सदा हिए नेरे ॥
अब कस छांड़ि गए तजि माया । बोलनि क्यों न मरम कछु पाया ॥
पुरुषन्ह को परतीति न कीजै । अपने पतिव्रत पर मन दीजैं ॥
ऐसी भांति बहुत समझाई । जिनि अकुताहु मिलहिंगे आई ॥

दोहा— पीव[३] पीव पल पल रटत नैंन बहत जलधार ।
सपनेहुँ माहिं बिरहनी जिनि सिरजै करतार ॥३९२॥

चौ०— बिलपत श्री देषी दुषहरनी । देवन्ह कथा अवध की बरनी ॥
बैठी हौ कहा सीस कर दीए । मिलहु जाइ लागहु पिय हीए ॥
तुमहूँ जाहु करहु जिनि बारा । क्षिति कै जाइ धरहु अवतारा ॥
सीता जाइ कहावहु नामा । वै भगवान भए तहँ रामा ॥

२ होत है दुष.........तन तजि डारे— प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में नहीं हैं ।
३ पीव पीव..........सिरजै करतार—विरह की मर्मान्तिक पीड़ा की व्यंजना अत्यन्त कारुणिक है । विधाता स्वप्न में भी किसी विरहणी की रचना न करे । कवि के इस कथन में विरह की कैसी विदग्ध व्यंजना की गयी है ।

सोरह बरष अधिक कछु नाहीं । मिलि हौ दोउ जनकपुर माहीं ॥
जौ लगि जाहु नहीं तुम ताहीं । तौ लगि काज हमारे नाहीं ॥
लक्ष्मो हरष भयो सुधि पावा । अब तो सहल बात है आवा ॥
इह कहि तब सब देव सिधारे । लक्ष्मी मन अवतार बिचारे ॥
तब तपसिन्ह को तप सिधि जानी । शक्ति रूप होइ आइ समानी ॥
रावण दंड सबन्ह को दांड़े । देव असुर नर कोउ न छांड़े ॥
जहँ तहँ अनुचर फिरत अलेषैं । जप तप करत रिषिन्ह कौं देषैं ॥
असुर कहन रावण घर जाहीं । ब्राम्हण बहुत बदे बन माहीं ॥
गाइ न भैंसि षेत नहिं जानै । षाइ षाइ कछु बहुत मोटानै ॥
कबहूँ कछू देत नहिं पैसे । बन मैं राज करत हैं वैसे ॥
अति अहंकार धरे मन माहीं । देव रह्यो मुजराऊ नाहीं ॥
रंच एक मानत नहिं शंका । बड़े धीठ डोलत निहशंका ॥
षाइ षाइ कछु पेट फुलाई । बैठत एक ठौर सब आई ॥
बकत परस्पर सोर मचावत । इंद इंद कहि हाथ नचावत ॥
ओ ओ आ आ द्योसरु राती । झगरत बकत वज्र की छाती ॥
प्रात साँझ दुपहर को जाई । परत हैं पानी महि अरराई ॥
ठाढ़े होइ रहत जल माहीं । पानी बेर पेर उछराई ॥
सिर पर हाथ घुमावत कबहीं । नाक पकरि कछु गनत हैं तबहीं ॥
परि परि उठि उठिफिरिफिरि गावत । सूरज कौं कछु अधिक बिराजत ॥
पोहि पोहि हाथन सब लीया । फेरत है काहे के बीया ॥
धरत है छोरि छोरि गठिया सो । बड़ो बेर षेलत हैं तासों ॥
सबहीं अंग लगावत मांटी । काधौं करत बजावत थांटी ॥
पानी तनक लेत कर मांहीं । पढ़ि पढ़ि मंत्र ताहि पी जाहीं ॥
कबहुँकि आँषि मूंदि नहिं षोलै । बैठे गूंग होइ नहिं बोलै ॥
बारह मास सबहि घर बारत । बेर बेर कहि आग मैं डारत ॥
बिद्या और एक इन मांहीं । धोती अधर अकास झुराहीं ॥
हर हर हर हर घर घर करहीं । रम रम रम रम बकतहिं फिरहीं ॥
माटिन्ह के बिलना से बनावत । गाल बजाइ अरु मुंड नवावत ॥
द्योसहि दिया जरावत बोंघा । धूनो देइ बजावत घोंघा ॥
नदी सरोवर के कहु तीरा । सांझ सबेर लगावत भीरा ॥
बैठे लिषत रहत है लेषा । ऐसी भाँति सदा हम देषा ॥
चुगलन्ह जब इह बात सुनाई । तब रावन सुनि उठेउ रिसाई ॥
ल्यावौ पकरि बाँधि बनवासी । दंड देहिं तब करहु षलासी ॥

इन्दादिक मेरे दरवारा । टहल करत हैं सबहिं बिचारा ।।
नाग असुर सेवा सब लागैं । वे हैं कौन रहैं मो आगैं ।।
और कछू मैं चाहत नाहीं । सेवक होइ रहौं जग माहीं ।।
चोर भए पूजत हैं जाको । अब देषौ पकरत हौं ताको ।।
रहै भूमि मेरी सब माहीं । मोहीं को पुनि मानत नाहीं ।।
जहँ तहँ ब्राम्हन तहँ तहँ धावो । अबहीं जाहु बांधि लै आवो ।।
आयसु पाइ असुर भए बौरे । जनु बिग अजा बाग पर दौरे ।।
तपस्वी रिषि मुनि जहँ तहँ घेरे । जनु जमदूत लगे जम प्रेरे ।।
तिनहिं देषि सब बिप्र डराने । जहाँ तहाँ बन मांहि पराने ।।
घेरि बटोरि किए इक ठौरा । लागे ब्राम्हन करन निहोरा ।।
चाकर चोर मलेछ कसाई । तिनकैं दया कहौ कहँ पाई ।।
कारकून सिकदार करोरी । कोट बाल घर बार औ थोरी ।।
धीमर चिरीमार अरु दासी । इन्ह कै हृदय दया न प्रकासी ।।
गाड़ीवान ऊंट घसियारा । पीलवान बढ़ई बनजारा ।।
ठग सुनार फांसीगर कोई । इन्ह कै दया मया नहिं होई ।।
मागन दंड लंकपति देहू । बेगै चलहु भेंट कछु लेहू ।।
तब तपसिन्ह मिलि कीन्ह बिचारा । दोजै कहा असुर दुष डारा ।।
तब तन फारि रुधिर तिन्ह लीए । गागरि भरि रावन को दीए ।।
पूंछे असुर कहा घट हेरा । तब रिषि कहे काल है तेरा ।।
रावण कहे भली भई नाहीं । इन्ह के बचन वृथा नहिं जाहीं ।।
देषे रिषिन्ह कोप रिस भीनें । रावण प्रान गए करि चीन्हे ।।
ब्रम्ह तेज सबतें अति भारी । जासों डरै बिष्नु त्रिपुरारी ।।
जब जब क्रोध कीन्ह द्विज जाती । धरि धरि लए बिष्नु शिर छाती ।।
जाकै जगत कोटि ठकुराई । सोउ ब्राम्हन सों डरपत राई ।।
रक्षा मंत्र ढाल है जाकें । गायत्री तरवारि है ताकें ।।
बचन बान औ धनुष जनेऊ । पोथी तर्कस भरे अछेहू ।।
बांधत है षट कर्म कटारी । संहथी हाथ सदा कुशधारी ।।
नप हथ नाल क्रोध करि मारै । गोला श्राप भस्म करि डारै ।।
देव दनुज मानुष किन होई । द्विज सन्मुष होइ टिकै न कोई ।।
जैसैं अग्नि सबनि कौं जारै । तैसें ब्रम्ह तेज सब मारै ।।
बिष सो बिष कहियत है नाहीं । बड़ बिष ब्रम्ह अंश सब माहीं ।।
बिष जो षाइ सोइ मरि जाई । ब्रम्ह अंश संतति दुषदाई ।।

और सबनि कों पाप नसावै । ब्राम्हन पापहिं षाइ पचावै ।।
गुप्त अग्नि ब्रह्मन जग माहीं । जानहुँ जरे डरे जे नाहीं ।।
नमस्कार बिनु ही जजमानैं । आशीर्वाद देई सनमानैं ।।
तौ द्विज जानु ताहि क्षयकारा । आप होइ मर्कट अवतारा ।।
ब्राह्मन देषि बिलंब न कीजै । पद बंदन करि आशिष लीजै ।।
इह कहि रावण भय मन आना । मोर चुगल बुलाइ डराना ।।
रावण कबहू नास न होता । जो ब्राह्मण कह दुष नहिं देता ।।

दोहा— ब्राह्मण सो ठेना कियो जाने जैसे और ।
लाल असुर आंधर भयो अटकेउ आइ कुठौर ।। ३८३ ।।

चौ०— बात बिगार कियो अगताई । होइ कहा पीछै पछिताई ।।
रावण बिदा किए बनवासी । जाहु करौ बन में सुष-रासी ।।
भावी होइ गई हुनहारी । मुनि कलपे जबहीं जेहि बारी ।।
राषहु कलस कहूँ अस ठौरा । पावै नहीं कोउ किहि ओरा ।।
मंदोदरी सुनी इह बानी । भीतर लयो भगाइ सयानी ।।
देष्यो षोलि कलस मुष तावा । कन्या[१] एक अनूपम पावा ।।
रानी डरी रहे दिन कोई । मो पर सौति अवसि इह होई ।।
राषे जाहि भली नहिं बाता । याके रहे कहाँ कुशलाता ।।
मंदोदरी कहै अकुलाई । दीजै जाइ समुद्र बहाई ।।
आगम सदा करब मनमाहीं । पीछैं सोच किए भल नाहीं ।।
मारें याहि दोष अति होई । हत्या बाल कहै सब कोई ।।
मारै जानि गऊ दस पापी । ब्राह्मण एक ताहि सम थापी ।।
ब्राह्मण दश मारें अपराधा । मारें त्रिया एक होइ बाधा ।।
लागै पाप त्रिया दश मारे । पातक बालक एक संघारे ।।
दश बालक जो हतै अज्ञानी । जती एक मारे सोइ जानी ।।
दश कोउ जती मारि फल पावै । बिष्नु भक्त जो एक सतावै ।।

दोहा— बिप्र चोर कन्या अधम जती भ्रष्ट गउ नारि ।
एते शत्रु अमारने दीजै लाल निकारि ।। ३८४ ।।

चौ०— इह कहि एक मंजूस बनावा । ता भीतर धरि सिंधु बहावा ।।
भली भई रावण नहिं देषा । याके जतन करत बिनु लेषा ।।

दोहा ३८४ के अन्तर्गत——

१ कन्या=कवि ने सीता के जन्म की कथा की ओर संकेत किया है । लंका से जनकपुरी तक आने की यह कथा अत्यन्त रोचक है ।

बहुत बहुत तिरहुति तर आई । दैव जोग बस भूमि समाई ।।
कन्या जुक्त मंजूसा साजा । भोगवती के तीर बिराजा ।।
ता ऊपर मृत्तिका गई पूरी । जोजन तीनि जनकपुर दूरी ।।

दोहा— पूरब पश्चिम होहु कहुं स्वर्ग मृत्यु पाताल ।
आइ मिलै संशय नहीं भावी बस कहै लाल ।। ३९५ ।।
कहँ तिरहुति लंका कहाँ कहाँ राह केहि जानि ।
बिन बाहन पायन्ह बिना भावी राषी आनि ।।३९६ ।।

चौ०— और[1] एक बिधि कहूँ सुनाई । जा बिधि सिया जनकपुर आई ।।
जब उन रिषिन्ह कमंडल लीना । भरेउ रुधिर रावण कहं दीना ।।
रावण उठेउ कमंडल धारा । गयो जनकपुर कीन्ह बिचारा ।।
जो कछु मांहि कमंडल आहो । प्रगटिहै जहाँ मारि है ताहो ।।
रावण जनक परसधर रामा । पढ़त रहे शिव के निज धामा ।।
बिद्या बाद दोउन्ह मिलि ठाना । जनक कीन्ह रावण अपमाना ।।
तब तहँ अगन जनक कछु भाषा । असुर भाव हिय मैं धरि राषा ।।
गुरु की कानि मानि नहि बोला । रावण उहइ बैर मन षोला ।।
गाहि कमंडल रावण आए । अपनों मरण बीज जनु बाए ।।
उत्तम क्रोध छिनक रहैं मानी । मध्यम प्रहर दोइ लगि जानी ।।
अधम दिवस अरु राति रहाई । वर्षन्ह रहै महा अधमाई ।।
साधु क्रोध जल चोटहि देषा । क्रोध असाधु पषा नहिं रेषा ।।
जो कोउ षाड़ षनत है आनै । परत है आपु अंध नहिं जानैं ।।
जो करै काहूँ भलो बुराई । सों ताकों आगम होइ जाई ।।
जैसे दरपन लै कर कोई । जस मुष करै तहाँ तस होई ।।

दोहा— कबहूँ कहूँ कीजै नहीं अपने लाल बसात ।
उलट परत है आप पर बुरी बिरानी घात ।। ३९७ ।।

चौ०— बहुरि एक बिधि और सुनीता । जा बिधि जन्म भयो जग सीता ।।
तपस्वी दोइ करत तप कामा । एक मंद इक उदर सुनामा ।।
बन के कंद मूल फल षाहीं । रहैं एकांत तपोबन माहीं ।।
तिन्ह को भई अकासहिं बानी । अब तुम अन्न करहु मुनि ज्ञानी ।।
करहु अहार तजहु कंद मूरन । अब तुम्हार तपसा भइ पूरन ।।

दोहा ३९७ के अन्तर्गत—

१ और एक......बीज जनुबाए=सीता की उत्पत्ति की दूसरी कथा का उल्लेख कवि ने किया है। यह कथा रावण के मरण बीज से सम्बन्धित है।

सुनतहिं गगन बचन उठि धाए । भिक्षा काजन गरभहिं आए ।।
इक तो मुनि कहुं दूधहि पावा । जल के तट बट द्रुम तर आवा ।।
सर्प चील्ह मुष तें बिष डारा । परेउ आइ ता दूध मझारा ।।
मिजुकी एक देषि पछितानी । ब्राह्मण मरै मन्त्री नहिं जानी ।।
पर उपकार आनि मन माहीं । औटत दूध परी दुष नाहीं ।।
दूसर मुनि चाउर लै आवा । देषा दूध बहुत मन भावा ।।
बहुत दिवस की भूषहि हरिहैं । भोजन आजु खीरि कौ करिहैं ।।
देषा दूध मांहि मुनि ताही । कोपे बहुत छुधा अकुताही ।।
मुनि बोले भोजन बिनु रैहैं । करि सर जीव श्राप यहि दैहैं ।।
तब मिलि ताहि कहैं मुनि दोऊ । होंहु सर जीव नारि नर कोऊ ।।
धरि त्रिय रूप महा द्युति बाढ़ी । हाथ जोरि आगें भई ठाढ़ी ।।
तब रिषि जानि कीन्ह उपकारा । नित नव जोबन रहै तुम्हारा ।।
मंद उदर मुनि को वर पायो । तबहि मंदोदरी नाम धरायो ।।
सेवा करत बहुत दिन बाते । सत ब्रत धरे रहति मन जीते ।।
लगि गइ मुनि धोवति की गंधा । रहि गयो गर्भ बिधाता बंधा ।।
देषि देषि मुनि करै बिचारा । कन्या दुष्ट भई बिभचारा ।।
कोपे मुनि तहि कीन्ह निराली । बरु चांडाल जाहु चांडाली ।।
रावण जात रह्यो कैलासा । मुनि के बचन श्रवन परकासा ।।
देषी रूप अपार सयानी । रावण कहै करब यहि रानी ।।
होइ चांडाल रूप तहँ आयो । धरि रथ पर तेहि घरहि सिधायो ।।
खबरि भई ब्राम्हण तब दौरें । कोपे बहुत जात लिए को रे ।।
तब रावण कहै तुम निह कामी । अपनो बचन संभारहु स्वामी ।।
हम चंडाल चंडालिनि सोई । याको कौन दोस अब होई ।।
यह सुनि बचन बिप्र फिरि आए । रावण अपने घरहिं सिधाए ।।
पंथहि माहिं गर्भ दुष घाला । रथ तें उतरि जनत भई बाला ।।
कन्या देषि देषि पछिताता । भारै असुर भलो नहीं बाता ।।
तिरहुत देस जनकपुर पाई । दाबि भूमितर रथ पर आई ।।
मंदोदरी रावण सन भाषी । इहइ जानि सीय महल न राषी ।।

दोहा— लाल भेद बहु ग्रंथ के जानें बहु श्रुत जान ।
एक कथा या भांति कहि सिय को जन्म बषान ।।३९८।।

चौ०— सोमबस के बंश उजागर । राजा जनक ज्ञान के सागर ।।
सतानन्द उपरोहित आही । पुत्र हेत पूछत भए ताही ।।
सतानंद कह संतति पइए । पुत्र इष्ट जें जज्ञ करइए ।।

दोहा ३९८ के अन्तर्गत—

सीता की उत्पत्ति का इतना विस्तार कहीं एक ग्रन्थ में अन्यत्र नहीं पाया जाता। कवि ने रक्तजा सीता रावणात्मजा सीता और भूमिजा सीता की विभिजा कथाओं का उल्लेख किया है ।

तब के एक पुत्र के कारन । बीस उपाइ करत रहे तारन ॥
अब कहु बीस पुत्र जों होई । एकउ जज्ञ करै नहि कोई ॥
राजा बचन मानि मत थभा । उत्तम दिवस जज्ञ आरंभा ॥
बागवती के कूल सुहाई । भूमि पवित्र तहाँ मन भाई ॥
गुप्त रहो जहाँ श्री हरि प्यारी । जज्ञ काज सोइ ठौर बिचारी ॥
कंचन हर जब कर गह राजा । सावकरण घोरे करि साजा ॥
अथवा राजा रानी होता । बिप्रहि होत भयो हर जोता ॥
जज्ञ भूमि जोतत हर अटका । कंचन कलस फार जा हटका ॥
चलत न घोर कहा घौं आहो । आवहु बिप्र देखिए ताहो ॥
देषा भूमि षनाइ बनावा । लहं तिन्ह कनककलश इक पावा ॥
कन्या एक रहो ता माहीं । जा सम रूप अवर कोइ नाहीं ॥
सतानंद तब जज्ञ उठाए । बिनु ही जज्ञ जज्ञ फल पाए ॥
हल मुष सिता प्रगट भई जोई । सीता नाम कहो सब कोई ॥
कन्या नृप इह होइ बिचक्षन । याके हाथ आहि शुभ लक्षन ॥
राजा मन मनहो पछिताई । मांगेउ पुत्र कन्यका पाई ॥
उपरोहित अंतरगति जानी । बोले बेद बिहित मृदु बानी ॥
कन्या धर्म मूल जग माहीं । और धर्म कन्या सम नाहीं ॥
जा माता सत बिप्र समाना । कन्या कोटि गऊ सम दाना ॥
जे कोऊ दश कूप षनावें । सो फल एक बावली पावै ॥
दश बापी सम एक तड़ागा । दश सर सम इक कन्या भागा ॥
गज तुरंग[१] जो देइ हजारा । भूमि ग्राम देइ सहित बजारा ॥
अंन प्रान दोउ सम करि भाषा । अंन्न दोन्ह तिन्ह प्राण है राषा ॥
कन्या के जहाँ पाइ न फिरई । गोबर मुत्र गऊ नहिं करई ॥
जा घर होम जज्ञ नहि दाना । सो घर है स्मसान समाना ॥
सालिग्राम साधु नहि सेवा । ते घरु अंध कूप बिनु देवा ॥
बेद पुरान कथा जहँ नाहीं । बसें पिशाच समान तहाँ ही ॥

दोहा ३९९ के अन्तर्गत—

१ गज तुरंग······बजारा=गज तुरंग से सहित बजारा' के बाद ब० प्रति में निम्न लिखित पंक्तियाँ पाई जाती हैं ।

कनक कोटि महिसी देई कोई । कन्या एक दिए फल होई ॥
दान अनंत अंत बिस्तारा । अन्न दान कै वार न पारा ॥

दोहा— जूठि[2] मलिनता मूत्र मल धर्म न बोलें सांच ।
सुन्य जीर्ण गृह लाल कहि तहाँ करें बास पिशाच ।।३९९।।

चौ०—बिनु कन्या कछु होइ न काजा । ब्याह गौन मंगल शुभ साजा ।।
कन्या रत्न खानि बिधि बानी । हीरा पत्र देहिं जग जानी ।।
कबहूं राम भक्त जौ होई । तारै पित्र कोटि कुल दोई ।।
कन्या पुत्र नहीं कछु अंतर । जौ सत धर्महिं बहै निरंतर ।।
कन्या गुण को कहै अपारा । कन्या ते उपजेउ संसारा ।।
आदि पुरुष जब रहेउ अकेला । कन्या पुरुष दये करि मेला ।।
तब उपज्यो इह जग सब ठौनो । जानि लाष चौरासो जोनी ।।
नव लष जीव जोनि जल माहीं । दश लष जोनि पंक्षि उड़ि जाहीं ।।
ग्यारह लाष कीट क्रमि जाना । बीस लाष त्रण रूप बषाना ।।
तीस लाष पशु जोनि बषानी । चारि लाष बिधि मनुष्यहि जानी ।।
या विधि ए चौरासी लाषा । बेद पुराण कथा कहि भाषा ।।

दोहा— दक्ष कै कन्या साठि रहि और और कहं दीन्ह ।
लाल सृष्टि कैं कारनैं तेरह कश्यप लीन्ह ।। ४०० ।।

चौ०—अदिति देव दिति दैत्य उपाए । दनु दानव पशु सुरभी जाए ।।
बिनता अरुण गरुण प्रसुता । पक्षि अरिष्टा नाग कद्रूता ।।
सुरसा सर्पसि चाना सेनी । काकी काक पुत्र कहं देनी ।।
उलुक उलूकी गृद्धी गीधा । अश्व उष्ट्र षर ताम्रा दीधा ।।
कन्या जो पतिब्रतहि संभारै । आप तरै दोऊ कुल तारै ।।
रेषा एक अनूपम आही । याको पति सर्वोपरि चाही ।।
धर्मशील सुंदर सुषदायक । नित्य अनुकूल सकल गुण नायक ।।
जस निधान बल ज्ञान अपारा । ऐश्वर्य धन को नाहिन पारा ।।
दान कृतज्ञ दीन पर नेहू । न्याय निपुण शीतल हृद एहू ।।
शक्ति अनंत होइ बहुनामी । याको भयो चाहिए स्वामी ।।
इह पतिब्रता जानि सत्य होई । या पर सौति और नहिं कोई ।।
जाके घर इह रहब दुलारी । तहं आए चहिए जु सुरारी ।।
सुता मान सेवा करै जेई । ताको इह बहुतै जस देई ।।
यामें एक और गुण भासा । जहं इह तहं सब धन को बासा ।।
भाई एक लिष्यो बिधि फेरी । देवर तीनि सास बहुतेरी ।।

२ जूठि मलिनता…'पिशाच'=प्रस्तुत दोहा व० प्रति में नहीं है ।

ससुर सेव याके कर नाहीं । जस बहुतै याको जग माहीं ।।
कहत हौं सांच सुनो सब कोई । याको ब्याहु स्वयंबर होई ।।
मंगल होतउ दंगल नाना । बहुतन्ह के होइहैं अपमाना ।।
औगुण एक हाथ है लागा । गर्भ सहित पति करिहैं त्यागा ।।
विपति याहि परिहै इक काला । बन के मुनि करिहैं प्रतिपाला ।।
संतति दोइ होंहि बन माहीं । एक हो बेर फेर कछु नाहीं ।।
दोउ बलवंत महा अहंकारी । विद्यावंत पितावलहारी ।।
वर्ष चारि दश प्रथम बिवाहृत । पिय कें संग फिरत बन गाहत ।।
कंद मूल फल भक्षण करिहैं । पर्ण कुटी त्रण सेजहि परिहैं ।।
याके निमित्त कलह बिस्तारा । होइहैं बहुत असुर संहारा ।।
कष्ट एक है लिष्यो बिकारा । पति देषत परै अग्नि मंझारा ।।
जो कछु लिष्यो सु तो सब कहिए । सागर पार गई इह चहिए ।।
एक हाँथ रेषा अस होई । राक्षस याहि हरै कहुँ कोई ।।
कहै कौन याके गुण कैसे । लक्षण सबै लक्ष्मी जैसे ।।
लक्षण बेद बतीस बषाना । सो यामें सब हैं मनमाना ।।
मनुष्य रूप इह है कोउ देवा । संतति जानि करौ नृप सेवा ।।
यहि सेवत सरिहै सब काजा । प्रगटे भाग्य तुम्हारे राजा ।।
इह कहि सतानंद दई हाथा । जनक चढ़ाइ लई तब माथा ।।

दोहा— जो होनी है बात कछु आगम लाल प्रकास ।
अवध बिलासहि नाम महि भलो नहीं बनवास ।।४०१।।
सदा राम सीता सहित रहत हैं अवधिहि माहि ।
लाल लंक बन बंक महि आए गए कहुँ नाहि ।।४०२।।
बनोबास सीता हरण लंक दहन नृप काल ।
ए माया के ष्याल हैं राम हैं लाल निराल ।।४०३।।

चौ०— राजा दई रानी कौं बाला । हृदय लगाइ लई जनु माला ।।
अति सनेह भयो हिए हुलासा । मानहुँ गर्भ रही दश मासा ।।
माया महा लगी मन भोरा । दूध प्रवाह चलै तेहि ठौरा ।।
दुलरावति मुष चूंबति रानी । पूत पूत कहि कहि मृदु बानी ।।
या विधि मंदिर सिय लै आई । मानहुँ रंक महानिधि पाई ।।
कन्या एक और भई ताकें । नाम उर्मिला सिय सम जाकें ।।
कुशध्वज नाम जनक के भाई । द्वै कन्या ताकैं घर जाई ।।
श्रुतिकीर्ति अरु मांडवी एका । रूप शील गुण ज्ञान अनेका ।।
वहँ श्रीपति भए चारि प्रकारा । इहाँ श्री चारि रूप तन धारा ।।

दोहा— रंचक शोभा जासु की तीनि लोक रहि छाइ ।
ठकुराइन बैकुंठ को बसी जनकपुर आइ ।।४०४।।

चौ०— तिथि नोमी अरु मास बैसाषा । शुक्ल पक्ष सिय जन्म सुभाषा ।।
करै कीर्तन कथा सुनाई । दिन मध्यान्ह समय जन्माई ।।
सीता दिवस जन्म जो जानैं । ता दिन मंगल उत्सव ठानैं ।।
भोजन विविधि करै पकवाना । पूजै भक्त बिप्र सनमाना ।।
तापर लक्ष्मी होइ प्रसन्ना । पावै सुष संपति गो धन्ना ।।
सतानंद आगम कहि बानी । राजा जनक सत्य करि मानी ।।
सामुद्रिक जोतिष जिन्ह जाना । जानैं भूत भविष्य वर्तमाना ।।
श्रुति स्मृति दोउ नैंन विष्याता । ताकरि रिषि देषैं सब बाता ।।
पशु के नैंन नासिका मानें । नृप के नैंन दूत परमानें ।।
बिप्र वेद करि सब कछु लेषै । और जीव सब आँषिन्ह देषै ।।
चंद्र सूर ग्रह बसैं अकासा । बिप्र भूमि पर करैं तमासा ।।
ग्रहण होइ जेतो जेहि बारा । वेद दृष्टि करि कहैं अपारा ।।
जिन्हकें वेद महा ·बल जानो । ब्राह्मण वचन सत्य करि मानो ।।
जनककुमारि ध्यान मन आनों । लरिकाईं संक्षेप बषानों ।।
बालक बढ़त एक दिन जाहीं । सीता बढ़त घरी इक माहीं ।।
और बरष लगि शिशु तन चड़ई । सीता एक मास महँ बढ़ई ।।
तनु छबि चढ़त होत सुषदाई । जैसे चंद्र कला अधिकाई ।।
रूप शील गुण लाज सु अंगा । जनु दिन बढत ब्याज धन संगा ।।
षेलत बहुत सखिन्ह में बाला । मनु शशि द्वीज गगन उड़माला ।।
गूडा गूडि करति जब लीला । रामाकृति स्वाकृति गुण शीला ।।
देषि रीझि कहैं और कुमारी । अस हम कहँ करि देहु दुलारी ।।
सिय करि देति और तिन्ह लायक । जिनि हुइ जाहिं राम बहु नायक।।
कृष्न शुक्ल पक्ष जानि न पारी । जनक भवन नित हो उजियारी ।।
सिय मुष चंद उदय तेहि ठौरा । सबहि त्रियन के नैंन चकोरा ।।
मुष पर अलक ललित इहि भावक । जनु शशि पर षेलत अहि शावक ।।
गौर अंग कछु बिधि अस कीना । चंपक कंचन लगत मलीना ।।
कटि कृश सुघट सुदेस कुमारी । जनु बिधि निज कर संचय ढारी ।।
कर पल्लव पर नष अस राजे । कमल दलनि पर नग गण भ्राजे ।।
सहज रंग कछु अस रहैं राते । मिहदी देत बग न सुहाते ।।
सइसवता सिय वरणि न जाता । बय किशोर कस होहि बिधाता ।।
कोमल चरण लाल रंग भीनें । नाउनि कबहुँ न जावक दीने ।।
नैन बिशाल सहज कजरारे । काजर कबहुँ न देत निहारे ।।
कदली अर्भ गर्भ की ओभा । बिनु मंजन रंजन तनु सोभा ।।

बोलति कुंवरि जबहिं मुष खोली । कोइल होइ रहति अनबोली ॥
कोमल मधुर बचन सुषदाई । कोइल रीझि सुनत मन लाई ॥
बैठति आइ महल पर नित हीं । चितवति सिय तन बोलन हितहीं ॥
कन्या[१] बहुत षेल संग करहीं । गोरीगोरीभोरीभोरीदौरीदौरीफिरहीं ॥
केउ सषि कुंवरि कुंवरि गुहरावै । केउ कहि जनक किशोरि बुलावै ॥
सबनि के नैंन प्रान सिय माहीं । रहैं लुभाइ देषि मुष छाहीं ॥
जस यहि रूप दीन्ह करतारा । दइ अस कहुँ मिलिहैं भरतारा ॥
और षेल सषि संग षिलावति । एक षेल सिय को बिलगावति ॥
बैठति नैन मुंदावति बाला । सषि कर लघु सिय नैंन बिशाला ॥
कन्या दुरत भवन अवकासा । सिय तन जोति होत परकासा ॥
पकरत हंसि हंसि दौरि कुमारी । हंसत होति अधिकै उजियारी ॥
तब रिसाइ झहरावति ताही । तो कहं कौन षिलावति आही ॥
कन्या और सिया सम नाहीं । दामिनि सी दमकत तिन माहीं ॥
जहं जहं कुंवरि फिरत परकासै । तहं तहं अवनि कनकमय भासै ॥
देषि देषि सिय कहत है धाता । इह केहि रचि कोउ आन बिधाता ॥

दोहा— नष सिष[२] शोभा देह की लाल अनूपम जाहि ।
सीता माता जगत की कैसे बरणों ताहि ॥ ४०५ ॥

चौ०— सबही बहिनि सुभग सुषदाई । रूप निधान अधिक अधिकाई ॥
चारों चतुर प्रवीण सयानी । विनहीं पढ़े सबै गुण जानी ॥
देषि भूप कहै इन्हहि पढ़ाई । होइहैं पढ़े बहुत सुषदाई ॥
नारि पुरुष सेवक कहा राजा । विद्या बिना रूप केहि काजा ॥
रूपहीन कों विद्या रूपा । रूपवंत को अधिक अनूपा ॥
त्रिय मूरष होइ पंडित नाहा । सोइ अनबन भयो जानि बिवाहा ॥
एक सिंह अरु पाषर साजै । एक रूप अरु गहना राजै ॥
एक पंडित अरु राग बषानैं । एक वनिता अरु विद्या जानैं ॥
एक ऊष अरु फलइ सभागा । इक चंदन अरु फूलै लागा ॥
गंगाजल चरणोदक कीना । इक ब्राम्हण हरि भक्त प्रवीना ॥
इक तपस्वी अहंकार न होई । इन्हतैं और भला नहिं कोई ॥

दोहा ४०५ के अन्तर्गत—

१ कन्या बहुत......भरतारा = प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।
२ नषसिष...ताहि = कवि ने जगतमाता के रूप में सीता के सौन्दर्य वर्णन में असमर्थता व्यक्त की है । लालदास सौन्दर्य चित्रण में अत्यन्त ही निपुण कवि प्रतीत होते हैं किन्तु वे कवि के अतिरिक्त श्रेष्ठ रसिक भक्त भी हैं इसी लिये उनका सौन्दर्य विधान लोक मंगल से मंडित है ।

इक सोना पुनि होइ सुगंधू । संख औ क्षीर सनेहो बंधू ॥
बिद्या सबहि पढ़ै इह लेषा । राजन्ह को गुन आहि अनेका[१] ॥
इह कहि रानिन्ह लीन्ह बुलाई । बिटियन गुरु गृह जाहु लिवाई ॥
आज्ञा पाइ उठी तेहि बारा । महाराज भल कीन्ह बिचारा ॥
देव बिमान समा सुष पाला । तापर बैठि चलीं सब बाला ॥
सोहति मुष अति भए अनंदा । मानहुँ चारि चले मिलि चंदा ॥
कहति जाति तिन्ह सों महारानी । देषो बहुत पढ़ै को बानी ॥
लरिका लै रिषि आगें राषे । हांथ जोरि रानी अस भाषे ॥
ए जस पढ़िहैं राजकुमारी । रिषि तस होइ बड़ाइ तुम्हारी ॥
मुनि गणेश पूजा करवाई ; दक्षिणा आपु बहुत कछु पाई ॥

दोहा— प्रथमहिं[2] बाला व्याकरण सार्धनिका करै लागि ।
सुमिरि सरस्वति लै षरी लिषन लगी अनुरागि ॥४०६॥

चौ०— पंच हैं[१] सन्धि आठ हैं वर्ग । संज्ञा स्वर हल प्रकृति विसर्ग ॥
कु चु टु औ तु पु ए वर्ग हैं नामा । नव स्वर पुनि लागत हैं तामा ॥
सप्त विभक्ति कहूं सुनि स्वादिहि । एक अमादि टादि ङे आदिहि ॥
ङसि ङस आदि ङी आदि श्रमै तै । प्रथमा द्वितीया.जान अनुक्रम तें ॥
लिंग है तीनि कहत सब सूंमक । स्त्रीलिंग पुल्लिंग नपुंसक ॥
तीनि लिंग पुनि दोइ प्रकारा । एकहु सांत स्वरांत विचारा ॥
कर्ता क्रिया कर्म पुनि जाना । भूत भविष्य वर्तमान बषाना ॥
सूत्र औ वृत्ति साधनिका तुलता । स्वर व्यंजन दीरध लघु पुलता ॥
इक वच द्वै बच पुनि बहुवचना । सात विभक्तिन के करि रचना ॥
मात्रा एक सो ह्रस्व कहावें । दीर्घ दोइ मात्रहि पावै ॥
मात्रा तीनि सो पुलत बषाना । व्यंजन अर्ध मात्रा जाना ॥
शव्द औ बिधि आदेश जु करना । युष्मद् अष्मद् अव्यय बरना ॥
स्त्री प्रत्यय षट कारक कहिए । आँखि मूंद पानी को थहिए ॥
कर्ता कर्म करण सम्प्रदाना । अपादान अधिकरण बषाना ॥

दोहा— षट समास है द्वंद इक अर्थ प्रकाशक पाव ।
कर्मधार द्विगु तत्पुरुष बहुव्रीहि अव्यय भाव ॥४०७॥

दोहा ४०६ के अन्तर्गत—

१ विशेषा (ब० प्रति)

२ प्रथमहि......अनुरागि=प्रस्तुत दोहा ब० प्रति में अनुपलब्ध है।

दोहा ४०७ के अन्तर्गत—

१ पंच हैं संधि......पुराण अनंत=प्रस्तुत पंक्तियाँ ब० प्रति में नहीं हैं।

चौ०— पद प्रयोग तद्धित आष्याता । अव्यय पुनि है अर्थ बिष्याता ॥
भाव कर्म उपसर्गा अर्था । पद जु विवस्था परीक्षा गर्था ॥
जग लगंत जग अंत कृदंता । धातत्वादि जमंत अनंता ॥
हैं उपसर्ग बीस तहँ जानी । जनक कुंवरि पढ़ि लीन्ह सयानी ॥
अक्षर स्फुट तालब्बी दंती । व्यक्त व्यक्त बोलति गुणवंती ॥

दोहा— मूलइ है सब ब्याकरण लाल सुरस्वती मंत ।
बावन अक्षर माहँ है बेद पुराण अनंत ॥४०८॥

चौ०— जो लिषि देइ सोइ पढ़ि लेही । गुरु कहँ कहुँ अवकास न देही ॥
पाठ फेरि पूंछन को नाहीं । बिद्या धरी हिए सब माहीं ॥
बेद चारि षट अंग बिचारा । पिंगल काव्य पुराणहुँ धारा ॥
बावन मत्स्य कच्छ वाराहा । अग्नि विष्नु नरसिंह जु आहा ॥
वायु भविष्य ब्रम्हांड सुजानी । लिंग नारदी स्कंद बषानी ॥
मारकंड वैवर्त प्रसंसा । पद्म भागवति शिव निरसंसा ॥
ए अष्टादश नाम पुराणा । सीता पढ़ी बहुत मनमाना ॥

दोहा— रामायण भारत पढ़े मुनि स्मृतीऊ और ।
सीता सुनि हरषित भई राम चरित सब ठौर ॥ ४०९ ॥

चौ०— शिक्षा जोतिष कल्प दृढ़ाए । निरुक्त छंद व्याकरण पढ़ाए ॥
ए षट अंग वेद के भाषा । नाम षडंग बेद को राषा ॥
ऋग यजु साम अथर्वण वेदा । इनको जानि लीन्ह सब भेदा ॥
बिद्या पढ़ी चारि दश बानी । चौंसठ कला भेद लिए जानी ॥
नव रस पढ़ि संगीत बषाना । तब गुरु को कीन्हो परनामा ॥

दोहा— जिनकी बानी सहज हो बानी ते अधिकाय ।
लाल सुबाला पढ़ि भई सो कासन कहि जाय ॥ ४१० ॥
जौवन के आगम बदन फिरे वर्ण गति चाल ।
जैसे अंबर रबि उदय भई लालिमा लाल ॥ ४११ ॥

चौ०— कन्या भई सयानी जानी । बर चिंता राजा मन आनी ॥
अस को घर वर है नर पालक । दीजै ताहि सिया सम बालक ॥
सोच करत रह बैठ भुवाला । नारद आइ गये तेहि काला ॥
करि प्रणाम नृप आसन दीन्हें । जानें रिषि चिंता रस भीनें ॥
आजु कहा मन महि कछु आई । कौन सोच हमहूँ सुनि पाई ॥
जनक कहत हौं चहेउ बुलाए । भली भई तुमहीं चलि आए ॥
तुम सर्वज्ञ सबनि के स्वामी । जानत सबहिं सकल दिसि गामी ॥
चिंता और कछू मन नाहीं । वर प्राप्त कन्या घर माहीं ॥

सातइ बरष कहावत कन्या । ताहि बिवाहि देत सोइ धन्या ।।

दोहा— कन्या[1] बेगि निकासिए बधू राषि घर माहिं ।
अंन संग्रह कीजिए दिन प्रति दान कराहिं ।। ४१२ ।।

चौ०— इह मत वड़े कहैं सब कोई । तातें मन महिं चिंता होई ।।
रूप शील गुण सिय सम लायक । है कहुँ जान तुम्हारे नायक ।।
रिषि नारद बोले मुसिकाई । सीता जनम कहेउ समुझाई ।।
राजन सिय लक्ष्मी इह होई । नारायण बर और न कोई ।।
बैठे रहौ सुनैं नर नाहा । होइहै बिनुहीं जतन बिवाहा ।।
सुनि निह्चित भए नृप रानी । मुनि के बचन जानि सति मानी ।।

दोहा— जनक छिनक मन चित करि बैठे होइ बिदेह ।
होवे है सो होइगो करै कौन संदेह ।। ४१३ ।।

[इति श्री अवध विलासे बुद्धि प्रकासे सब गुन रासे भक्त हुलासे पाप विनासे कृत लालदासे सीता .जन्म प्रकास नाम द्वादस विश्राम]

दोह ४१२ के अन्तर्गत—

१ कन्या बेगि··············चिंता होई—प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में नहीं हैं ।

==

:—: अथ त्रयोदश विश्राम :—:

दोहा— बाल चरित लीला ललित कहूँ राम के गाइ ।
लाल भक्त भगवंत की आज्ञा होइ सहाइ ।।४१४।।
सुनो सयाने राम के लरिकाई के ख्याल ।
कहत हैं सबैं सुहावने समय समय के लाल ।।४१५।।

चौ०— बरष तीनि लगि शिशुता जानी । बरष पांच कौमार बषानी ।।
बरष जु नव पौगंड[1] रहाई । सोरह बरष किशोर कहाई ।।
सुंदरता ताहि देषत रहिए । रूप माधुरी सब सुष लहिए ।।
षोडस पर नायक जो होई । ताकों जुवा कहत सब कोई ।।
अब कछु बाल कुमार बषानों । पुनि किशोर के गुन मन आनों ।।
राम स्याम तन लक्ष्मन गोरे । भरत शत्रुघन मध्य अंगोरे ।।
पतरे राम मनोहर अंगा । मोटे कछु इक लछिमन संगा ।।
अरिसूदन[2] कछु रामहिं सोहैं । भरत बहुत मोटे मन मोहैं ।।
राम भरत कछु लागत ऊँचे । लक्ष्मन रिपुजित सब तन सूचे[3] ।।
राम चपल कछु बचन सुधीरा । भरत शिथिल गति शव्द गंभीरा ।।
लक्षिमन सकुचि सोचि कछु करहीं । समय समुझि बोलैं पगु धरहीं ।।
तेज औ तुजक शत्रुघन करना । बात बहुत चंचल अति चलना ।।
रामहि पीत बरन रुचिकारी । लक्ष्मण नील बसन तन धारी ।।
भरतहि स्वेत समाज सुहावैं । रिपु सूदन सब रंग बनावैं ।।
सोवहिं राम सेज बड़ि बेरा । जागहिं लक्ष्मण बहुत सबेरा ।।
लक्ष्मन भरत अदब कछु मानैं । नैंकु न शंक शत्रुघन आनैं ।।
वे दोउ रहहिं राम तें हेठैं[4] । रिपुजित राम बराबरि बैठें ।।
रामहि नृप हिये चहैं लगाई । इह हंसि दौरि अंग लपटाई ।।

दोहा— ४१६ के अन्तर्गत—

१ पौगंड=बाल्यावस्था । आप्टे हिन्दी शव्दकोष में ५ से ९ वर्ष तक की आयु को 'पौगंड' कहा गया है, किन्तु लालदास ने ६ से ८ वर्ष तक की आयु को 'पौगंड' कह कर नूतन वर्गीकरण किया है ।

पाठान्तर : २ रिपुसूदन (व० प्रति)

३ सूचे=सुष्ठ

४ हेठें=नीचे

तब तहँ लाल कहै समुझाई । बाबू राषहु लहुर बड़ाई ॥
नृप एहि भांति पुत्र सब देषी । सब सो करत सनेह बिशेषी ॥

दोहा— धनुष बाण मणि धातु पर पुहुप तुरग सुषपाल ।
अपनें मन भाए करैं नित नई लीला लाल ॥४१६॥

चौ०— रामहिं भूष प्यास कछु नाहीं । माता देइ बुलाइ सु षाहीं ॥
पूरण ब्रह्म राम अविनासी । नित्यानंद परम सुषरासी ॥
शीत उष्न अरु भूष पियासै । हरि कै भक्त भाव करि भासैं ॥
लक्ष्मण भरत शत्रुघन भाई । मैया देहु कछू हम षाई ॥
औरहु वस्तु जु होइ पियारी । माँगि लेहिं कहि कहि महतारी ॥
फल मेवा पकवान मिठाई । ग्वैयन्ह[1] देहिं बहुत मन भाई ॥
वय सुंदरता सब सम शीला । राजकुमार करैं संग लीला ॥
हाट[2] घाट चौहट कहुँ डोलैं । मैंना कोकिल मोर से बोलैं ॥
मृग छौना छिगरा शिशु स्वाना । षेदत फिरत ष्याल करि नाना ॥
लक्ष्मण भरत शत्रुघन धाई । काहू सों हास करैं बरिआई ॥
रहहु[3] कुँवर रहु बाबू भइया । इहई तुमहिं सिखाए है मैया ॥
देषहिं अतिहिं करत लंगराई । मनै करैं तब राम रिसाई ॥
सुक सारो तूती[4] सब साथा । सषा संग ठाढ़े लिए हाथा ॥
शिकरा बाज कुही मन भाए । फिरत बझावत[5] पंक्षि सुहाए ॥
छुटे छुटे गूढ बाल सुषकारी । दौरावत सोषत असवारी ॥
संग षवास दास मनमाने । सावधान भए रहत सयाने ॥
पटुका पाग चोलना राजै । अंग अंग गहना मणि भ्राजै ॥
कोमल भीज फुलेलन्ह केसा । सोहत पेंचन्ह बीच सुदेसा ॥
मयूराकृत कुंडल अति लोला । कल कपोल पर करत कलोला ॥
भाल गाल पर दीन्ह दिठौना । जिनि कहुँ नजरि लगे कछु टोंना ॥
चाबत पान हैं ज्ञान अयाने । पीक मुषन्ह बाहेर लपटाने ॥
अलबल गल बल बात कहांहीं । कछु समुझी कछु समुझि न जाहीं ॥
कंचन माल रतन मनि माला । मुक्ता माल विशाल रसाला ॥

दोहा— ४१७ क अन्तर्गत—

१ ग्वैयन्ह—खेल के साथी ।

२ हाट=बाजार

३ रहहु कुँवर…………रिसाई=प्रस्तुत पंतियाँ व० प्रति में नहीं हैं ।

४ तूती=एक छोटी चिड़िया जिसकी बोली बहुत मीठी होती है ।

५ बझावत=बझाते हुये (फाँसते हुये)

सोहत बच नष मणि घन भितर । अर्ध चन्द्र जनु उडगन अंतर ।।
राजत जंत्र मंत्र जुत भूषन । अंग अंग कछु लगैं न दूषन ।।
मंत्रि महांतन्ह दीन्ह सुपारी । लै लै गर बांधिन्ह महतारी ।।
कटि किंकणि पैंजनियाँ राजै । धावत चलत मनोहर बाजै ।।
छुटे छुटे हांथनि धनुहिन मोटी । छुटि छुटि कटिन्ह कटारी छोटी ।।
छोटे छोटे तीर तरकसी सोही । लघु तरवारि ललित मन मोही ।।
छोटि छोटि ढाल स्याम रंग जोती । कनक फुलन्ह पर नग मणि मोती ।।
चरण कमल पनहीं अस छाजे । मनहुँ हंस सुत आइ बिराजे ।।
तजि तजि धाम काम त्रिय पेषन । धावति राजकुमारन्हि देषन ।।
जोइ देषै सोइ संग रहाई । तजत न बनत रूप अधिकाई ।।
देषत बाल ष्याल मनमानें । लोगन्ह जन्म सफल करि जानें ।।
जे रघुवंश बधू कुल शीला । ताकति चढ़ी झरोपन लीला ।।
बोलत बचन तोतरे भाए । मनु मोहनि के मंत्र चलाए ।।
षेलत षेल षोरि जेहि जाहीं । नौछावरि उतरति ता ताहीं ।।
देहिं असीस जगत प्रतिपालक । जीवो बड़े होइ ए बालक ।।
चकरी जरित जराय छबीली । फेरत ललितन्ह हाँथ रंगीली ।।
भंवरा लट्टू घुमाइ नचावत । कबहुँक गोलिन्ह षेल मचावत ।।
गूली दंडा गेंद चौगाना । दास संग लिए फिरहि-षिलौना ।।
कबहुँक फूल गेंद कर धारे । मार परस्पर करहिं दुलारे ।।
रत्न जरित हाथन्ह लवलासी । फेरत छिति चमकत चपला सी ।।
जहँ तहँ जाहि तहाँ तहँ सोहैं । देषि देषि नर नारि बिमोहैं ।।
रंग अनेकन्ह चंग बनाई । स्याम पीति डोरिन्ह छबि छाई ।।
उड़त अकास ऊँच अस जाहीं । देव बिमानन्ह सों उरझाहीं ।।
पकरति तजति देति सुरझाई । देव बधू षेलति सुष पाई ।।
केशरि मृग मद चंदन चोवा । छिरकति चंगन्ह रंग सँजोवा ।।
चंगन्ह कै गहना जु बनावति । माला हार फूल पहिरावति ।।
उड़त उतार राम जब लेहीं । छोरि छोरि लरिकन्ह कहँ देहीं ।।
तेइ गहना लरिकन्ह जु निहारिन्ह । हँसि हँसि जाइ देत महतारिन्ह ।।
या बिधि लगे रहत[६] कहुँ लीला । लेति बुलाइ मात कौशीला ।।

दोहा ४१७ के अन्तर्गत—

६ करत (व० प्रति)

बड़ी बेर षेलत केहि घाहीं । राम लला आए घर नाहीं ।।
दौरे सषी दास तहँ धावैं । बल करि करि धरि धरि लै आवैं ।।
मैया कहति लेति हिय लाई । महलनि महँ षेलहु बलि जाई ।।
बाहर जात करत हठु षेला । जोगिया धरि करिहै पुनि चेला ।।
बगिया[२] मैं बंदरा हैं आए । लरिकन कों फारत मुँह बाए ।।
नदिया मैं घोंघर हैं व्याने । तहँ जिनि जाहु कहूँ बिनु स्याने ।।
हाथन्ह छुरी तुरिक दढ़ियारे । कटिहैं कान जाहु जिनि द्वारे ।।
अबहिं कहति हीं बात लुगाई । एक कहूँ डाइनि है आई ।।
कहत हैं ठग आवत हैं दौरा । लरिकन्ह बेचि लेत हैं घोरा ।।
बाबू केउ जाहु जिनि काटी । बाहर तो बिगवा है बाटी ।।
कूकर एक फिरत बौरानों । काटत दौरि दौरि मनुसानों ।।

दोहा— डरयावति है प्रेम बस बालक लषि मन माहिं ।
राम[३] काल के काल हैं माता जानति नाहिं ।। ४१७ ।।

चौ० – पुनि पूंछति षैहो कछु पूता । आजु कहाँ रहे बेर बहूता ।।
बार बार मुष चुंबति मैया । मनु अमृत पीवति सुष दैया ।।
हित सों सुत बैठति लै कोंरा[१] । भात षिवावति करति निहोरा ।।
फेनी दूध कंद जुत मेवा । अपनें कर मुष देति कलेवा ।।
एक[२] जो और कौर लेहु भैया । अत बड़ अबहिं बढ़हु बलि मैया ।।
बेर बेर शिर पर कर फेरै । कोमल शिषा परसि मुष हेरै ।।
देषि देषि छवि रूप अपारा । किए न जात हिए तें न्यारा ।।

---

२ बगिया मैं..............मनुसानो=वात्सल्य प्रेम से आपूरित शिशु रक्षा एवं आँगन से बाहर खेलने की वर्जना में तत्कालीन बालकों के अपहरण, बालकों को बेंचकर घोड़े खरीदने की प्रवृत्ति, दाढ़ी बढाये हुये छूरी लेकर घूमने वालों के चित्रण के द्वारा कवि ने युगीन परिस्थितियों का संकेत किया है। बालकों के पेड़ों में चढ़ने, नदी में नहाने तथा घर से बाहर रहने की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को नियंत्रित करने का मनोवैज्ञानिक उपचार किया है ।

३ राम काल के काल हैं=कवि ने राम को महाकाल (शिव) के रूप में चित्रित करते हुए उनके विराट स्वरूप को काल के काल की संज्ञा दी है ।

दोहा ४१८ के अन्तर्गत—

१ कोंरा=गोद

२ एक जो......................न्यारा=प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

गहे खिलौना हाँथनि मांहीं । षातहूँ षेल तजत हैं नाहीं ॥
द्वारें[३] सषा बुलावैं सनेहीं । रानी षेदि षेदि तिन्हैं देहीं ॥
एतो सुठि सबही षिलवारे । रंच न घर रहि पावत बारे ॥
तब अकुताइ उठहिं झहराई । राषत पकरि पकरि बहराई ॥
मारैं माइ कबहुँ रिसियाहीं । तोरैं माल हार छैलाहीं ॥
दाँतन्ह चीर फारि गरियावैं । चोटी धरि धरि चोट चलावैं ॥
तब कोउ आवति धाइ सहेली । पकरि छिड़ाइ लेति अलबेली ॥
देषत[४] लाल तमासे ठाढ़े । हंसि हंसि परत प्रेम अति बाढ़े ॥
लुटि लुटि रोइ रोइ तब बूटे[५] । जनु पंक्षी पिंजरन्ह ते छूटे ॥
क्रीडा फेरि करैं जु सुहाती । गुइयन्ह जाइ मिलैं एहि भांती ॥
मैया साढ सात सय लेषो । बालक महल सबनि कै देषो ॥
ते सब सों दाई कहैं दाई । बै सब पूत पूत गुहराई ॥
लषि न जात कछु प्रीति निन्यारी । काके पूत कौन महतारी ॥
कहिबे कहँ तीनिन्ह के तेई । देषियत पुत्र सबन्ह के एई ॥

दोहा— मंदिर घट भए जल जुवति रामचन्द्र भए चंद्र ।
चक्रित चकोर नृप के नयन देषि लाल आनंद ॥ ४१८ ॥

सो०— रघुबर लीला बाल मात भ्रात संग तात के ।
सदा बसहु हिए लाल मन भावन पावन पतित ॥ ४१९ ॥

चौ०— कबहुँ कि नृप बैठत सुष पाला । चारौं ओर चारि लिए बाला ॥
देषत लागत सबनि सुहाए । मानहुँ चारि मुक्ति मध्य आए ॥

---

३ द्वारे सषा..........अलबेली=क्रीड़ा के प्रति राम की रुचि और कौशल्या के मातृ हृदय की रसात्मक अभिव्यंजना लोक जीवन की सामान्य भाव भूमि पर चित्रित होकर अत्यन्त विशिष्ट एवं लोकग्राही है ।

४ देषत लाल..............प्रेम अति बाढ़े=रसिक साधना के संत कवि लालदास भी राम की इस कीड़ा में खड़े होकर लीला का रसास्वादन कर रहे हैं और आनन्दित होकर हँस रहे हैं तथा प्रेम की अभिवृद्धि हो रही है । लीला जगत में प्रवेश करने वाले रसिक संत का कैसा रसपूर्ण भाव-लोक है ?

५ बूटे=भगे (भागना)

जाहिं कहूँ बन बाग बिहारा । देषि देषि कहैं सब संसारा ॥
धन्य धन्य राजा धनि रानी । जीवन्मुक्त भए सुष मानी ॥
जो सुष इन्हहिं देषि मन होई । अस सुष मुक्ति माहिं नहिं कोई ॥
धनि वै जीव सराहिए तिन्हहीं । देषत सदा रहत जे इन्हहीं ॥
आवत है मन माहिं सु कहिए । देषन काज दास होइ रहिए ॥
सोभा मुष छवि दिषि सुष लीजै । भरि भरि नैन रूप रस पीजै ॥
या बिधि काँह देषैं पुरबासी । राजकुमार रूप की रासी ॥
ज्ञानी देषि देषि सन्यासी । निर्गुण तजि भए सगुण उपासी ॥
परवी पंच आइ जब परहीं । बिधि सों दान न्हान सब करहीं ॥
पूछहिं पंडित बिप्र बुलाई । कौन दिवस का कर्तव्यताई ॥
पावक[१] तिथि परिवा जल त्यागै । बिधि तिथि दुइज कंद सों भागैं ॥
गिरिजा तीज लोन नहिं षाना । चौथि गणेश न मधु छुइ जाना ॥
नागपंचमी दधि नहिं लीजै । छठि स्कंद तेल तजि दीजै ॥
सप्तमि रवि अंवरा नहिं षाई । अष्टमि शिव मछि मांस त्यजाई ॥
दुर्गा नौमी तजि नारेरा । जम तिथि दशमी दूध न नेरा ॥
हरि वासर अंन मै अघ जाना । विष्नु द्वादसी मृगहि न षाना ॥
तेरसि मदन दिवस तजि भंटा । छौर कर्म शिव चौदसि हूंटा ॥
शशि पूनिम इक्षु रस में थापा । रजनि अमावस मैथुन पापा ॥
पावहिं बिप्र कनक गौदाना । देहिं असीस औ करहिं बषाना ॥
जीवहु नृप सुत चारौं भ्राता । ए कछु अधिक होहिंगे दाता ॥
धनि दसरथ के पुत्र सभागे । बालहिपन ते धर्महिं लागे ॥
तन वहि क्रम दिन बाल जड़नि के । चलन स्वभाव प्रभाव वड़नि के ॥

दोहा— पूरणमासी अष्टमी चौदसि मावस जानि ।
लाल और संक्राति ए पर्वी पंच बषानि ॥४२०॥

दोहा ४२० के अन्तर्गत—

१ पावक तिथि······मैथुन पापा— ये पंक्तियाँ व० प्रति में नहीं हैं।

तेल त्रिया अरु मांस मुक पर्वहि जो नर होइ ।
मल मूत्रन्ह के कूप महि जाइ परत नर सोइ ।।४२१।।
लाल[1] और कहते बहुत लरिकाई की बात ।
बहुत कहत पोथी बढ़त पढ़त लोग अलसात ।।४२२।।

चौ०— जस जस होन सयाने लागे । तस तस षेल षिलौना त्यागे ।।
भए पौगंड जु राजकुमारा । नृप गुरु मिलि तब कीन्ह बिचारा ।।
करि व्रतबंध जनेऊ दीना । विद्या वेद पढ़ावन लीना ।।
अत्र मंत्र जुत तंत्र सिषावा । राजनीति बहु भाँति दिषावा ।।
साम दाम दंड भेद बताए । शत्रु मित्र बस होहिं सुहाए ।।
साम सनेह बहुत विधि कीजै । दाम जो षान पान धन दीजै ।।
भेद अनेक भाँति समुझाई । दंड मार दुष त्रास दिषाई ।।
ए गुण चारि होहिं जिन्हैं माहीं । अनमिल मिलहिं मिले नहिं जाहीं ।।
और कला गुण ज्ञान जहाँ लौं । दीन्ह पढ़ाइ कहूँ जु कहाँ लौं ।।
विद्याध्येन किए जहँ आही । विद्या कुंड[1] नाम भयो ताही ।।

दोहा— जद्यपि हैं सर्वस हरि लाल ज्ञान घन मास ।
काछ जौन नाच्यो चहैं पढ़त भये गुरु पास ।।४२३।।

चौ०— एक दिवस राजा मन भाई । भरत शत्रुघन लीन्ह बुलाई ।।
आवहु पुत्र जाहु ननिबरहीं । पढ़हु जाहु दोउ भाइ सुधरहीं ।।
जहँ मुलतान देस सुषदायन । नर हरि रूप भए नारायन ।।
नगर नाम कैकेइ विशाला । देव लोक तैं अधिक रसाला ।।
पंडित एक महा तहँ आई । बिद्या बेद सराहत ताही ।।
जो गुरु पहिं बिद्या कहै राजा । पढ़ि लीजेहु आलस तजि लाजा ।।
वर्णाश्रम षट दरसन जेते । कर्म धर्म सबहिन्ह के तेते ।।

दोहा— ४२२ के अन्तर्गत—

१ लाल............अलसात=कवि ने वाल्यलीलाओं अति के विस्तार से कथा वस्तु को बचाने का संकेत किया है । कथा भावकों की अरुचि की दृष्टि में रखते हुये कवि ने कथावस्तु के विस्तार को औचित्यपूर्ण नहीं माना । इस प्रकार के निर्देश कवि के प्रबन्ध काव्य कौशल की ओर संकेत करते हैं ।

दोहा ४२३ के अन्तर्गत—

१ विद्याकुंड=कवि ने राम के अध्ययन पीठ को विद्याकुंड की संज्ञा दी है, जो सर्वथा नूतन है ।

गुरू बशिष्ठ सोधि दिन दीने । पश्चिम दिसा बिदा सुत कीने ॥
भाई भरत शत्रुघन दोई । पढ़े जाइ ननसारहि सोई ॥
चोदह बिद्या पढ़े सयानें । चौंसठि कला भेद सब जानें ॥
ब्रम्ह ज्ञान स्वर भेद रसायन । जोतिष बेद व्याकरण पठायन ॥
धनुष बान जल सरन सधाए । कविताई पिंगल मत पाए ॥
कोक काव्य बाहन असवारी । नट बिट बोध चातुरी धारी ॥
साधतु ताहि चतुर नर केई । विद्या नाम चतुर्दश एई ॥

दोहा — चौदह विद्या सब कहत पंडित लाल बषानि ।
विद्या सोइ हरि पाइए और अविद्या जानि ॥४२४॥

चौ०— पढ़े काव्य षट पाठ सयाना । नव व्याकरण पढ़े मनमाना ॥
इंद्र चंद्र इकु कृष्न कहायन । रुद्र देवदत्त अरु सकटायन ॥
अग्निकलाप पाणिनिय बरना । कहियत नाम ए नव व्याकरणा ॥

दोहा— रघु कुमार औ मेघदूत नैषध माघ किरात ।
ए षट काव्य बषानिए पढ़त बुद्धि बढ़ि जात ॥४२५॥

चौ०— पढ़े चरित्र जगत के जेते । त्रिया चरित्र विशेष कहेते ॥
चारों चतुर भए हरषाहीं । मुजरा करन बाप कहँ जाहीं ॥
कछु कछु अब दरबार संभारा । बैठे आइ बांधि हथियारा ॥
मुष पर हाथ फेरि भुज टोवैं । वक्र पाग करि दर्पण जोवै ॥
उन्नत अंस हृदय शिर ग्रीवा । रूप प्रताप तेज बल सोवा ॥

दोहा पाग चलनि चितवनि कहनि अंकुश भौंहें जुद्ध ।
एते ए टेढ़े भले लाल भले मन शुद्ध ॥४२६॥

चौ०— भए किशोर कुंवर सब भाई । देषि देषि छवि काम लजाई ॥
लागी सभा भरी अब भारी । दुस्मन डरे बंधु सुषकारी ॥
ऐंचैं धनुष बान करि ऊंचे । बैरिन्ह जाने काल पहूंचे ॥
राजा देषि देषि मन माँहीं । निर्भय भए लोक दुहु धाहीं ॥
करखे धनुष बाँह भरि तानै । मारैं पहिलेहिं चोट निसानैं ॥
लागै तीर तीर पर ऐसैं । जनु गुरिया गुरिया पर वैसैं ॥
तोलैं काढ़ि काढ़ि तरवारी । परषैं कौन तेज[1] अति भारी ॥
देषैं ढालनि सांगि मंगाई । कवच औ चाप चोप अधिकाई ॥
राषहिं तौबा ढाल करि जोरैं । मारै बाम पात जेउँ फोरैं ॥
साधैं बान दुहूँ कर केझा । मारहिं पीठि पीछु के बेझा ॥

दोहा ४२७ के अन्तर्गत—

1 तेज कौन (व० प्रति)

दृष्टि पताल मूंठि असमाना । मारैं दौरि अकास निसाना ।।
धरहिं कुहार चाक पर कौड़ी । देत उड़ाइ बैठि भर गोड़ी ।।
राषत सात कुंभ तिरछौहैं । एक बान निफरावत जोहैं ।।
ऐंचि धनुष एहि भांति चलावैं । बानहि बान अकास लरावैं ।।
कागद पात देत उधिराई । उड़त पवन महि मारत जाई ।।
लागत चोट निसानैं नीकी । करत दुहाई राजा जी की ।।
सांगि तोलि एहि भाँति चलाई । लोह बांस भुइं मैं गड़ि जाई ।।
लोह कराह सार कै दंडा । मारहि षड्ग होइ दुइ षंडा ।।
मूंदहि आँषि बुलावहिं काही । मारहिं तीर काठ के ताही ।।
डारहिं गेंद कुवां के माहीं । बान बान सों बेधत जाहीं ।।
या बिधि काठि लेत तब ताही साधैं धनुष बान अस वाही ।।
बैठे पशु पक्षी ना मारैं । देत उड़ाइ उड़ाइ प्रहारैं ।।
दाबि जंजीर चरन अटकावैं । माते गज चलनें नहिं पावैं ।।
पकरैं बांह मलन्हं को झटकैं । देहिं गिराइ आप नहिं मटकैं ।।
देषैं सूर सुभट बलताई । लगे लजान अबहिं लरिकाई ।।
जब ए जुवा होहिंगे बारा । मिटिहैं बल सन्मान हमारा ।।
वीरासन बैठैं गरुताई । चितवन लगे नैंन ठहराई ।।
बैंठे नृप सनमुष अस लागैं । जैसे सिद्धि सिद्धि के आगैं ।।
मुजरा करहिं लेहिं सब धांती । जो जस होइ ताहि तस भांती ।।
चरचा राग रंग कछु होई । सुनै कान दै दै सब कोई ।।
इह वह राग रागिनी आही । इहाँ तान ऐसो नहिं चाही ।।
तब सुनि गुनी संक मन आनैं । सावधान होइ करैं जु गानैं ।।
बक सनु जरी जरावन्ह लागा । पटुका पाग साल अरु बागा ।।
लै लै मौज रोज धन लोहे । चाकर सब ठाकुर से सोहे ।।
बीरा पान बाप जब देहीं । करि करि सबै सलामनि लेहीं ।।
फेरैं घोर जोर नए ताते । बैठैं उछरि कंध गज माते ।।
रत्न जटित अंकुश कर राजै । इंद्र सहित ऐरावत लाजै ।।
पीठि पेट गर तर लगि फिरहीं । घोरन्ह पर दौरत नहिं परहीं ।।
षेलत चपल चतुर चौगाना । फेरत घोर करत गति नाना ।।
धावत तुरग चपल असवारी । गिरै बान तरवारि कटारी ।।
तब ताहि लेहि उठाइ चढ़ेई । अस कछु लाघव ताहि ढ़ेई ।।
बरषा ग्रीषम सीत समय ही । मंदिर महल समाज सबय ही ।।

कहुँकि सेज सिंहासन सोहैं । चौकी चारु बिछौंना जो हैं ।।
संध्या होत भवन अवकासा । कहुँ दीपक कहुँ रतन प्रकासा ।।
बाजन बजत अनेकन्ह भाँती । राग रंग बहु भाँति सुहाती ।।
गूढ़ा अर्थ कहानी गाहीं । षेलत हंसत जाम निज जाहीं ।।
तब कोउ सषी मात कहैं आई । आवहु सोइ रहो बलि जाई ।।
मिश्री जुत मेवा पय आना । सयन समय पोढ़त करि पाना ।।

दोहा— प्रात ऊठि सरजू निकट सघन विटप की छाँहि ।
संग सषा रघुवंशमणि सरों करन नित जाहिं ।।४२७।।

छंद— कछैं[1] काछ अक्षौं अषारे जु स्वर्क्षौं । उरू बाँह ठोकैं सुनै शुत्रु चौंकैं ।।
करैं दंड पेला उठा बैठि षेला । करैं कंड हत्था सरों ज्वान सत्था ।।

फिरैं चक्र दंडा जनु च्चाक चंडा ।
करैं व्योम भारी अषारे मझारी ।
पिवैं दूध कच्चे मनू बाघ बच्चे ।
हुँकारै भनक्कैं ज्यों बाघा ठनक्कैं ।
भुजा पेट मीजैं ह्वै गरमी पसीजैं ।
ताडैं चटाका जो बाजैं पटाका ।
करैं लोट पोटा ढरैं जानु गोटा ।
श्रोटेक चाला कि पाई दिवाला ।
करैं सिंघ तोला फिरैं षंभ दोला ।
उठावैं निहारैं कि मुगरा सुभारे ।
करै नाल नाचा जु लेजम्म षांचा ।
करैं फांद धावा न ऊठैं उठावा ।
कहों कोउ आगैं हैं तारी दै भागैं ।
गहैं दौरि ताही महा जोर आही ।
करैं पेंच झारा उभै भाँति न्यारा ।
करैं बाँह कस्सी अंगहि अंग षस्सी ।

दोहा ४२८ के अन्तर्गत

१ कछैं..................लाल जाना=कवि ने विभिन्न भारतीय खेलों का उल्लेख किया है । सरयू तट की क्रीड़ाओं के माध्यम से विभिन्न क्रीड़ाओं का वर्णन कवि के प्रबन्ध नैपुण्य के अतिरिक्त क्रीड़ा जगत के प्रति विशेष अभिरुचि का द्योतन करता है ।

लरैं दंड चटकी अरै गोड़ अटकी ।
घरै हाँथ झटकी यों मारैं संपटकी ।
चलैं बोछु चाला औ फांदैं सुनाला
गहैं रूष डारैं औ दाबै उछारैं
चढ़ैं जाइ ऊँचे न पंक्षी पहूंचे
गिरै ऊँच जाई रहैं भूमि आई ।।
नटा हल्लुकाई छु देषैं लजाई
गिरह षाहि एवा कि जैसे परेवा[२] ।
औ बैठें उठावैं न बाहैं नवावैं ।
लत्ती लपेटा चलावैं चपेटा
बढ़ै राजबेटा मुदौरें न भेटा
मारैं उलत्था रहैं भार भत्था ।।
नवै अंग तोरै औं जाघैं मरोरैं ।
घसैं देह मट्टी पसीना संहट्टी ।।
बनों बीर बाना कहैं लाल जाना ।

चौ०—कुल्हवा[३] लाट ढोढा कस करहीं । इक दस्ती करि पुस्तक लरहीं ।।
इक लिंगी रई दस्त बषानी । पट्टा गोत टिंड इक जानी ।।
गुद बाहू अरु आड़ हैं षोची । मोजा त्रंद झटक बल पोंची ।।
इक कल सरो तीरकस बंगरी । बांह चोर गरदन कस अंगरी ।।
गुस्ती कमर गांठि चपरासा । बालसांगरा होत तमासा ।।
असवारी हिरना कुश होई । बैठक बाहर भीतर दोई ।।
इक [illegible]इढ़ कसा होत कछु दांवा । धोबीपाट ढाक बल पांवा ।।
साही चतुर लपक छरकाई । कलाजंग मोढ़ा घइलाई ।।
कैंची एक लबेदा उलटा । मुगला दाब जफ़ी बंद पुलटा ।।
गंड हत्था सांड़ी है एका । कुस्ती और हैं दांव अनेका ।।
देषि शरद निसि सुषद सुहाई । बखत षेल रचत मन भाई ।।

छन्द— एहि भांति सरौं करि ज्वान अरैं ।
छल सों बल सों मल्ल जुद्ध करैं ।।

---

२ परेवा=कबूतर

३ कुल्हवा..........दांव अनेका=भारतीय मल्ल कला (कुस्ती) के विभिन्न दांवों का वर्णन करके संत लालदास ने सर्वथा उपेक्षित विषय को काव्य में प्रतिष्ठित किया है ।

झटकैं लटकैं पग हाँथ धरैं ।
अटकैं पटकैं फटकैं न डरैं ॥
इक इक्क कों पंच लगैं कबहूँ ।
नहिं राजकुमार गिरैं तबहूँ ॥
उझकैं झझकैं झहराइ चलैं ।
झुरिकैं मुरिकैं तर डारि मलैं ॥
उलटैं पलटैं छटैं धर सों ।
नहिं जानि परैं निकसैं कर सों ॥
कहों होंहि तरैं उपरैं बरसों ।
करि दाउँ गिराइ उठैं कर सों ॥
पसरैं पछरैं उछरैं दबटैं ।
म्रगराज से बा से ह्वै झपटैं ॥
डकरैं हुकरैं बकरैं लटकैं ।
गहि छाग से लै बिग ज्यों पटकैं ॥
छिटका छरकैं पटुका तरकैं ।
गड़ि डार बिलारि कला लरकैं ॥
गज ज्यों म्रग ज्यों मल्ल मार धकैं ।
लरतैं अरतैं नहिं लाल थकैं ॥
पुनि शीतल छांडनि जाइ परैं ।
चहुँ ओर तैं दास बतास करैं ॥

दोहा— सरों करैं कुस्ती लरैं चारौं मिलि जब भाइ ।
छल बल करि मल्ल जुद्ध कय अरिसूदन अधिकाइ ॥४२८॥

चौ०— सकल सुगंध साजि मन भाए । नाऊ तेल उबटना ल्याए ॥
अगर कनकमय चौकी सोहैं । मर्दन होंहि बैठि मन मोहैं ॥
रत्नन्ह जरित कटोरन्ह मंहियां । घीव तेल देषहिं मुष छहियां ॥
छाया दान ग्रहन्ह के होई । राजा सदा करत हैं सोई ॥
सरजू शीतल नीरहिं न्हाए । करहिं दान अपने मन भाए ॥

छन्द— पान पके मगही पियरे ।
पुनि लौंग कपूर मिले शियरे ॥
कलडब्ब सुरंग जराय जरे ।
मुष आगैं षवासन्ह आनि धरे ॥
अपने अपने बल सों हुलसे ।

पहिरे कपरा हंथियार कसे ।।
मुष पान चबावत लाल लसे ।
कोउ हारे षंसे तिन्हको जु हंसे ।।
कोउ हाथी तुरी सुषपाल चढ़े ।।
तब भाटन्ह गीत कबित्त पढ़े ।।
असवारी भई मल भूमि कढ़े ।
छरिदार पयादे चले जु बढ़े ।।
एहि भांति सदा रघु के वर जू ।
बन बाग बिहार करैं सरजू ।।
धनुहीं अरु तीर लिए कर जू ।
सुर साधु के रक्षन के गरजू ।।

कवित्त— ताते ताते ता जिन्ह के माते माते हाथी पीछे
चढ़ि चढ़ि रथनि चौगानन्ह दौरावहीं ।
कोइल चकोर मोर चातक करत सोर
बोलि बोलि ठौर ठौर पंक्षिन्ह बिरावहीं ।
आछे आछे फूलनि के आछे आछे हार लाल
दौरि दौरि माली लै लै माला पहिरावहीं ।
चंचल तुरंग गति षेलत बसंत रितु
ऐसी बिधि बागन्ह तै राम घर आवहीं ।

दोहा— दान सरो स्नान करि आवहिं घर श्री राम ।
लाल संग के करि बिदा करैं महल[1] बिश्राम ।।४२९।।

छन्द— सज्जन आए जे मन भाए बोलि पठाए हितकरना ।
चोपरिवारे षेंल पसारे बाजी डारे दुखहरना ।।
सतरंज गंजा षेलत रंजा हंसि हंसि पंजा गहि भारे ।
पासासारी मारामारी दाव हंकारो गुन गारें ।।
बैठि इकट्ठा मारहिं ठट्टा सबहीं पट्ठा निहसंका ।
गावैं तानैं गुनी सयाने जे मनमाने स्वर बंका ।।
पुस्तक आनैं अर्थ बषानैं गाहा ठानैं चतुराई ।
वाक बिलासा करै तमासा गीत कहानी कविताई ।।

दोहा ४२९ के अन्तर्गत—

१ महल विश्राम—महल विश्राम का उल्लेख रसिक साधना के अनुकूल है ।

सो०— चाकर षासा लाल अपने राषे राम जी।
समय समय के ष्याल संग सदा देषत रहे ॥४३०॥

चौ०— भोजन मात हाथ करै जाई। नृप जेवहिं तब लेहिं बुलाई॥
आवहु राम भरत अउ लछिमन। आवहु जेंवन पुत्र शत्रुघन॥
दासी गोड़ धोइ मुष दरसैं। कोमल चरण परसि सुष बिलसैं॥
पीढ़ा अगर चंदन के देहीं। जलझारी आगे करि लेहीं॥
बैठहिं भ्रात चारि एक संगा। राजा जाय होइ देषि अंगा॥
कोउ गोरे कोउ स्याम सलोने। मम सुत अस भू पर नहिं होने॥
मात हिये अति होइ हुलासा। जनु रबि देषि कमल परकासा॥
कंचन थार धरहिं मुष आगें। ब्यंजन मात परोसन लागें॥
मुषि तो चारिहिं भांति अहारा। तिन्ह महँ होंहिं अनेक प्रकारा॥
तिन्हके चारिहि नाम बषाना। चोसि भक्ष्य लेहय औ पाना॥
रस षट मधुर कषाय षटाई। कटुक व्यक्त अरु लवण बनाई॥
सत्व रज तम गुण जुक्त हो होई। तिन्ह की रुचि कहियतु हैं सोई॥
सरस स्निग्ध पवित्र सुवरना। स्थिर मधुर होइ सुष करना॥
नहिं अति उष्न न शीतल लहिए। भोजन ताहि सात्विकी कहिए॥
अति हो कटुक त्यक्त लुनछारा। आंबिल उष्न रूक्ष अति जारा॥
ए जु अहार रजो गुण ष्याता। दुःख शोक भय रोग प्रदाता॥
बासी निषिध उक्षिष्ट गंधानें। भोजन मलिन तामसी जानें॥
भोजन सबहिं सात्विकी करहीं। अमृतमय देवन्ह मन हरहीं॥

दोहा— प्रहर[१] में कछु बन षाइए दुपहर देवन जान।
प्रहर में षाए रस बढ़ै दुपहर पर बल हान॥ ४३१ ॥

चौ०— समय समय भोजन करवाई। रानी सावधान सुषदाई॥
छप्पन भोग छत्तीस हैं सालन। राजन्ह के घर होहिं सुचालन॥
ते सब नाम हैं ग्रंथ बषाने। कहतें लाल कछुक जे जानें॥

दोहा— ४३१ के अन्तर्गत
१ प्रहर में.........................बलहान—प्रस्तुत दोहा व० प्रति में
अनुपलब्ध है।

भोजन गीत— षाझा घेवर फेनि रेवर अम्रती औ बूँदिया ।
मोतीचूर पिराक षिझले सोहार गूझे गोंदिया ॥
पुवा पेठा पाक हुवा पुड़े पेरा तिन गिनो ।
गुलगुला पुनि गोल पपरी गद्दी जलेबी अति बनो ॥
पटषरी बावरपिनो पापर गला षुरमा गुपचुपा ।
गटा बजका दोउ दानें बनें बतासे अति रूपा ॥
षीरि रूरी लिचुइ पूरी कंद पस्मा अति बनें ।
भोग मोंहन बनें सोहन और घृत पकु को गनें ॥
षांड चीनी मिश्रि लीनी सहत सोरा सोहई ।
बरा अष्ट प्रकार के करि दधि कचौरी मोहई ॥
षोवा साढ़ी दूध बाढी भात उज्ज्वल राजई ।
पहिनि पियरी धरी नियरी देषि कंचन लाजई ॥
कन्ही सिषरनि रूप षोरनि बरी रोटी भांवती ।
लै पकौरी दधि झकोरी देषि रुचि उपजावहीं ॥
पिटोर पिंडरा डुभकि चुररा रमाज भुरकुल कीजिए ।
रिकौंक्ष इंडहर केरा कटहर मुगोरि मिथोरि लीजिए ॥
सेव सिवईं षीचरी औ परा बढ़ेउ इंदरसा ।
भंटा करेला पोइ चिचिड़ा औ करोरा डींडिसा ॥
चूक फाफर बथुआ परवर सोवा पालिक गुरषुले ।
लवकि कुंहड़ा मेथि सूरन अरुई कुंदरू बनें भले ॥
रायता चौराइ तुरई सेव भरिता कीजिए ।
आंब अमिलो पना मोठे तीत बुकनो लीजिए ॥
आंब बेल कूरोंद अंबरा नींबुवा जु सुहोंबना ।
आदि कमरष आंवली औ बने संधाने रुचि घना ॥

दोहा— भोजन व्यंजन पाक सोइ जो भक्तन्ह मनमान ।
भोग न लागै राम कहँ तौ सब पाक[1] समान ॥ ४३२ ॥

चौ०— जेंवत सुत दिषि नृप कह बानी । बहुत अहार मरद सोइ जानी ॥
करत हौं सरौं पै षात कछु नाहीं । पुरुषइ कौन करब रण माहीं ॥
जब हम सरौं करत लरिकाई । सब तुम्हारे जत तत हम षाई ॥

दोहा ४३२ के अन्तर्गत—
१ षाक (छ० प्रति)

रानी कहहिं शत्रुघन नीके । षात हैं हाल हाल रुचि जीके ॥
हंसहिं सुमित्रा भल हहिं छोटे । होत हैं सुष देषि भरत कमोटे[1] ॥
बाताबर्त भए[2] विस्तारा । कहैं कौन होइ ग्रन्थ अपारा ॥
अचवन करि करि पान चबाहीं । अब अपने महलनि सब जाहीं ॥
कोमल सेजन्ह लेहिं करौटैं । कोउ बिजना कोउ पाइँ पलोटैं ॥
तब कोउ सषी करै कल गाना । भोजन राम के लाल बषाना ॥
मेवा पान सबनि के आवैं । मात बहुत सुत चारिइ षावैं ॥
किसमिस गरी बदाम छुहारा । आव जोस अरु दाष अनारा ॥
अनंनास पिस्ता अषरोटा । सेव सिंघारे कमल के गोटा ॥
बिही चिरोंजी कटहर जाना । आततूत षीरी हिंदवाना ॥
षूबानी षरबूजा केरा । आंब अंजीर बैर बहु तेरा ॥
झोमा तेंदु करोंदी फरसा । पौंडा ऊषि पौनारि जु सरसा ॥
करहरि बडहर पीलु षजूरी । नारंगीं नीबू बिजपूरी ॥
चिलगोजा सहालु मषाना । जरदालू अंगूर बषाना ॥
आडू एक अनास है पाती । मेवा और बहुत हैं जाती ॥
सज्जन दास सषा मनमाने । षाइ षाइ सब लाल मुटाने ॥
सषी पठाइ पठाइ सयानी । पल पल षबरि लेत रहैं रानी ॥
तन घर महिं मन रामहिं पागी । ध्यान समाधि रहैं सब त्यागी ॥

दोहा— राजन्ह के घर की रहसि जानैं आप भुवाल ।
कै कोउ जानैं निकट रहि रीति भांति गति लाल ॥ ४३३ ॥

चौ०— करै सनान सरौं जब जाहीं । जल क्रीड़ा ग्रीषम रितु माहीं ॥
कोमल गिरा बोलि रघुराई । लेत हैं नृप सुत सषा बुलाई ॥
आवहु सरजु पार कर लीजै । नीर तीर लीला कछु कीजै ॥
कांछ बांधि पैरैं रघुबीरा । षेलैं पार सरू के तीरा ॥
बूडैं मीन उरग की नाईं । निकसै जाइ दूर दरसाई ॥
बीचिन्ह बिच जलचर ज्यों डोलैं । पैरत फिरत जु करैं कलोलैं ॥
हाथन्ह नीर हनै नहिं डरहीं । मिलैं परस्पर जल जुध करहीं ॥
बुडकी देहिं जाहिं जल अंता । षेलत फिरैं जहाँ जल जंता ॥
भुजबल करैं तरैं अति दूतर । जनु जल भ्रमर फिरत जल ऊपर ॥

दोहा ४३३ के अन्तर्गत—
१ वकोटे (छ० प्रति)
२ करत (छ० प्रति)

सीतल कोमल रेतन्ह* महियाँ । लोटत परत उठत गहि बहियाँ ॥
रेत बटोरि ऊंच करि डारें । लातन्ह दौरि उछरि तहि मारें ॥
इह सुष देषि देवता जाहीं । बालक होइ षेलत तिन्ह माहीं ॥
कबहुँकि बालू कोट बनावहिं । करि करि फौजन्हि चढ़िचढ़ि धावहिं ॥
केउ हाथी केउ घोरे होहीं । केउ असवार पियादे सोहीं ॥
केउ हिरना केउ चीता कीजै । केउ बालक कूकर करि लीजै ॥
केउ चाकर केउ ठाकुर मेलैं । या बिधि लाल ष्याल करि षेलैं ॥
केउ नृप दुष्ट होइ फिरि रहई । कर नहिं देहिं राम को कहई ॥
तब लै सैन्य चढ़े तिन सोहैं । मारै दौरि दौरि गढ़ मोहैं ॥
बंदि बढ़े कछु द्रव्य न लेहीं । पुनि तहि राज्य तहाँ को देहीं ॥
जोरावर को पकरि मिलावे । राम राज के पाइं लगावे ॥
राम दुहाई फेरि सयानें । आवैं अपने औधि ठिकानें ॥
कबहुँ बिचित्र बनाइ नारा । नावन्ह ही पर करहिं बिहारा ॥

दोहा— बालू कोट बनाइ कै करि बालक संग फौज ।
षेलत सरजू तीर मैं भई राम की मौज ॥ ४३४ ॥

[इति श्री अवध विलासे बुद्धि प्रकासे सब गुन रासे भक्त हुलासे पाप विनासे कृत लालदासे बाल लीला वर्णनो नाम त्रयोदश विश्राम]

:—: अथ चतुर्दश विश्राम :—:

चौ० – जाको[1] राज सकल ब्रम्हंडा । चौदह भुवन प्रथो नव षंडा ।।
गढ़ बैकुंठ अजीत अभंगा । चाकर सकल देव रहैं संगा ।।
अली उजीर सबै सिरताजा । साहिब पूंछि करैं सब काजा ।।
हांथी द्वार बंधे दिगपाला । पानी भरहिं मेघ गन माला ।।
ऐरावत वामन पुंडरीका । अंजन पुष्प दंत सुप्रतीका ।।
कुमुद औ सार्वभौम बलधामा । आठउ दिसि दिग्गज के नामा ।।
ब्रम्हा से दीवन हैं जाके । स्वायंभू मनु मंत्री ताके ।।
फौजदार शंकर सिर दारा । जाकै इंद्र बली शिकदारा ।।
कोतवाल जमराज हैं जोरा । भैरव ताको फिरत करोरा ।।
धर्मराज पुनि रहत अमीना । ग्राम देव कानूनगो कीना ।।
चित्रगुप्त सब कर्मनि लिषई । मुस्तोफी भए कागद दिषहीं ।।
पोतदार नव निद्धि करारी । भरत भंडार कुबेर भंडारी ।।
हैं गणेश मुंशी बुधमंता । लिषत किताब कि रहत अनंता ।।
चारि षानि चौरासी लाषा । ते सब कारषान करि राषा ।।
परारब्ध भुगतावत भोगा । रहत सबनि पर कर्म दरोगा ।।
देन लेन निसि दिन अति होई । लिषि न जाइ मुसरिफ नहिं कोई ।।
है सतसंगन की बतयारा । करत फिरत सबकों हुसियारा ।।
अहदी नवग्रह रोग अनंता । करत जगीरि तगीर फिरंता ।।
दूत औ भूत पयादे फिरहीं । राम विमुष ताही को धरहीं ।।
बिना वेद जो प्रति ग्रह धारी । ते सबहीं जानौं बेगारी ।।
चंद सूर कासीद सुचाली । संवत आइ जात अविताली ।।
है जम लोक जानु बंदीषाना । धर्म पोत बिनु बंधे दिवाना ।।
सुकृत जमान देत जे जानी । ते निहशंक रहत हैं प्रानी ।।

दोहा — ४३५ के अन्तर्गत

१ जाको राज..............तहसीलदार हैं ताकै = रामराज्य के वर्णन में प्रकारान्तर से कवि ने अपने युगीन देशकाल के प्रसंगों को भी व्यंजित किया है। मुगलकालीन शासन के रूपक से प्रशासकीय व्यवस्था का चित्रण किया है।

सहना पवन फिरैं चहुँ ओरा । घर घर अग्नि जसूस सजोरा ॥
पर्वी पंच ग्रहण दिवसा कै । ए तहमीलदार हैं ताके ॥
पित्र और कुल देव जु भाषें । ए तपदार तपे पर राषें ॥

दोहा— रूप तेज धन अति जहां राज्य करत है कोइ ।
गीता लाल विभूति कहि तहाँ आपु हरि होइ ॥४३५॥

चौ०— ग्राम परिगना बार न पारा । सिद्ध लेत हैं देस इजारा ॥
कारकून रिषि मुनि मन लाई । लिषि लिषि कर्म देत समुझाई ॥
मोदी अंनपूरना माता । देत अहार सबनि कहँ दाता ॥
है वकील समरथ हनुमाना । काज सुधारत फिरत सयाना ॥
बकसी गुरु कहियतु हैं आही । देत रषाइ जो भक्त सिपाही ॥
जो कर भाव उसीला जागै । ताको अवसि चाकरी लागै ॥
बावन वीर कहावत जेते । ए सब पेशदस्त हैं तेते ।
सषा समीप रहैं सामाना । जो सारूप मुहाहिब जाना ॥
षिजमतिगार भक्त जे जनहीं । सेवा करत रहत निस दिनहीं ॥
सेषनाग से साहिब सूवा । बलि ध्रुव सेनानायक हूवा ॥
तीरथ रहैं षालसे जेते । देवलोक जागीरो तेते ॥
जहँ तहँ होइ षबरि कहुँ जैसी । नारद बाका करै न वैसी ॥
न्यावत पावस बातैं गहरी । धर्मराज का लोक कचहरी ॥
चाकर होन चहै कोउ आवै । दाग द्वारका जाइ दगावै ॥
जब लगि छाप दाग नहिं साचा । तब लगि भक्त सिपाही काचा ॥
जाकी अरज होइ कहै जाई । अर्ज बेगि तहाँ प्रेम रहाई ॥
भुमियाँ असुर दैत्य बहुतेरे । द्वंद मचावत फिरैं अनेरे ॥
मारत काल हुकम जब करई । जरा दंड सब ऊपर फिरई ॥
दान पुन्य जप तप व्रत करहीं । ते जानों नर पोते भरहीं ॥
गुण प्रधान तहँ तीन कहावत । राज काज सब तेइ चलावत ॥
रैयति जीव जहाँ लों जेते । बपुरे पोत भरत हैं तेते ॥
मन बुधि चित्त चौधरी जानों । पंच तत्व महँतो करि मानों ॥
जती सती जे बड़े कहाए । दंभ चुगल ते सबै बंधाए ॥

दोहा— बानी तुरकी[1] हिंदुई[2] अनाचार आचार ।
लाल[3] प्रेम प्रिय राम कैं इह कछु नहीं बिचार ॥४३६॥

चौ०—इकयत काम क्रोध अहंकारा । लूटत फिरत सकल संसारा ॥
कल्प साह गाड़ी जुग जाकै । हासिल भरे चलत हैं ताकैं ॥
मुक्ति षजाने अंत न पाहीं । केते परे षबरि कछु नाहीं ॥
और धर्म तावीन करारा । भक्ति धर्म सो बड़ सरकारा ॥
नौवति अनहृद नाद नगारे । घोरे बंधे रहत गन तारे ॥
जोतिष आगम काल जनावैं । घरीवाल घरियाल बजावैं ॥
बारह मास सदा हुशियारा । चौपदार ए रहत तयारा ॥
जय अरु बिजय रहैं दरबाना । ग्रंथ अनेक चलै परवाना ॥
मिक्षुक जिते बराती धाई । लेत हैं दान बरात भराई ॥
सबके मानसरोवर गुजरा । बैठे तहाँ लेत हैं मुजरा ॥
जाको होइ चाकरी जैसी । देत भराइ ताहि है वैसी ॥
कहें सुनें न भरोसा मानैं । नेकी बदी आप सब जानें ॥
जाइ फिराद करै जो कोई । करै तपा वस आपुहि सोई ॥
कटरा भरत षंड बाजारा । होत अनेक कर्म व्यापारा ॥
झंडा गड़ा सुमेर पहारा । उरदू लगा रहत संसारा ॥
चौरासी लक्ष जोजन ऊँचा । पर्वत बीच सुमेर हैं सूचा ॥
द्वीपरु षंड सराइ बसाए । सातो समुद तलाब षनाए ॥
तिन्हके नाम कहूँ सुनि जे हैं । सप्त द्वीप नव षंड रचे हैं ॥

दोहा — जंबू प्लक्ष औ कुश क्रौंच शाक सालमल ठाम ।
लाल एक पुष्कर कहे सप्त द्वीप के नाम ॥४३७॥

दोहा— ४३६ के अन्तर्गत—

१ तुरकी=तुर्कों की भाषा (अरबी-फारसी)

२ हिन्दुवी=हिन्दुस्तानी

३ लाल..............विचार=संत कवि लालदास ने 'तुरकी' और 'हिन्दुवी' दोनों भाषाओं के प्रति समान आदर व्यक्त किया है । ऐसा प्रीतत होता है कि कवि स्वयं इन दोनों भाषाओं का अधिकारी था । भाषाओं के प्रति समान अभिरुचि एवं आदर कवि की अत्यन्त विशिष्ट उपलब्धि है, साथ ही भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में समन्वयमूलक है ।

चौ०— ए जे सप्त द्वीप हैं भाषा । सागर अंतर अंतर राषा ॥
क्षार क्षीर दधि मधु मदि राता । एक इक्षु जल सागर साता ॥
इलावर्त इक षंड बषाना । रम्यक एक हिरण्य मय जाना ॥
एक भद्र श्रव पुनि हरि बरषा । केतुमाल अरु इक किंपुरुषा ॥
भरत षंड इक षंडन्ह नायक । कर्मभूमि सबही फलदायक ॥
एक षंड भूमध्य बिबेका । इक पूरब पश्चिम कहुँ एका ॥
उत्तर तीन तीन दक्षिणायन । या बिधि ए नव षंड बनायन ॥
लोक बजार माँहि जो जाई । सो तहँ हो रहैं देषि लुभाई ॥
प्रभुता माया मान बड़ाई । ए गणिका तिन्ह पर सब जाई ॥
भार अठार बनस्पति जैसा । जाकें लगे बगेचा ग्रैसा ॥
होत फूल फल कछु बनराई । छहरति मालनि देति पठाई ॥
चह बच्चा सरवर सब सोहैं । सारनि सरित बहति जल जो हैं ॥
बड़े जज्ञ बहु भाँतिन्ह होई । सोइ जानहुँ उह राज रसोई ॥
जन्म मरण कहुँ परत न अंतर । राज पंथ दोउ चलत निरंतर ॥
बिजुरी बाघ सांप महामाई । असनि दुकाल ए नाल हवाई ॥
पर्वत चहूँ ओर के जेते । ठाढ़ो बनी कनातैं तेते ॥
लगे तनाव दशहि दिशि ताना । तंबू तना रहत असमाना ॥
रिद्धि सिद्धि दासी घर जाको । महिमा अवर कहैं को ताको ॥
विद्याधर गंधर्व जे आही । गाय बजाय रिझावत ताही ॥
लाल बेंद बंदीजन मानें । नेति नेति कहि ताहि बषानें ॥
भक्ति मुक्ति द्वै दान सदाही । दानाध्यक्ष भक्त जन आही ॥
पंडित ब्यास रहैं दरबारा । बाचैं कथा पुराण अपारा ॥
वैद्य धन्वंतर रसनि कमावै । सुरगुरु नित तिथि बार सुनावैं ॥
जाको त्रिया लक्ष्मी रानी । सारद सषी सहेली भवानी ॥
शुक सनकादि जोगेश्वर षोजे । लाल षवास हजूरि षरो जे ॥
राषति दूरि सकामिन्ह लेगी । सिद्धि अठारह उरदा बेगी ॥
कहूँ कहां लगि राज्य बिहद्दी । काज अनंत अनंत मुसद्दी ॥
ऐसी बड़ी छांड़ि ठकुराई । कांधों कौन बात मन भाई ॥
एक देस को दसरथ राजा । ताके पूत भए नहिं लाजा ॥

दोहा— कोटि कोटि ब्रम्हांड हैं रोम रोम मिति नाहिं ।
ऐसे रामहिं जे अधम नर करि मानत माहिं ॥४३८॥

लाल साहिबो राम की जस इह कीन्ह बषान ।
तस अब लौं संसार मैं रिषि मानुष नहिं जान ॥४३९॥

[इति श्री अवध विलासे बुद्धि प्रकासे सब गुन रासे भक्त हुलासे पाप विनासे कृत लालदासे ईश्वर ऐश्वर्य वर्णानानाम चतुर्दशो विश्राम ।]

:—: अथ पंचदश विश्राम :—:

चौ०—एक समय इक दिन रघुबीरा । बैठि एकांत रहे होइ धीरा ॥
उपज्यो मन बैराग्य उदासा । भ्राता सषा दूरि किये दासा ॥
काहू जाइ कह्यो नृप पाहीं । आजु राम बोलत कछु नाहीं ॥
तब राजा गुरु बोलि पठाए । बैठे सभा बशिष्ठ जु आए ॥
करे प्रनाम नृपति शिर नावा । प्राणनाथ को कथा चलावा ॥
शील सुबुधि सबको सुषकारी । रोस न रिस कबहूँ न निहारी ॥
पूछहु जाइ राम लरिका सौं । आजु रिसाइ रहे कहौ कासौं ॥
मुनि उठि गए रहे जहँ रामा । गुरुहिं देषि उठि कीन्ह प्रनामा ॥
बोले मुनि कहों गये न षेलै । आजु कहाँ रहे बैठि अकेलै ॥
कहत राम मन मैं कछु हइए । तुम सों ज्ञान कौन अब कहिए ॥
जीवन अल्प देह छिन भंगी । मिथ्या सब झूठे धन संगी ॥
नर तन पाइ बिलंब न कीजै । मुक्ति हेत साधन करि लीजै ॥
धन जोवन[1] जीवन तन जेते । दामिनि सम चंचल सब तेते ॥
बालकपन पढ़िए ब्रह्मचारी । जुवा बिवाह होहि घरवारी ॥
पुत्र भए तब बन मन माना । बानप्रस्थ होइ जप तप ठाना ॥
पुनि सन्यास गहै वृध बैसा । वेद पुरान कहै बिधि ऐसा ॥
इह कछु नेम सदा नहिं कोई । मरण जन्म कहँ धौं कब होई ॥
ब्याहु किये बनिता जब आई । पग बंधन भयो निकसि न जाई ॥
पुनि बिटिया बेटा भए नाती । लग्यो मोह छूटै केहि भांती ॥
ताही तैं इह भलो बिचारा । धर्म भजन कछु करै कुमारा ॥
भली बात प्रह्लाद बिचारा । बालक हो हरि नाम संभारा ॥
जप तप ध्यान ज्ञान अनुरागे । सनकादिक लरिकाई लागे ॥
देवदत्त सुनियत गिरिवासी । बालापनहिं भए सन्यासी ॥
ब्यास पुत्र शुकदेव सयाना । जन्मत हीं बन कीन्ह पयाना ॥
रिषभ देव सुत नव बड़ भागी । बालक हीं सब भए बिरागी ॥
दक्ष प्रजापति के सुत जेता । चेते बालक दर्सहिं प्रचेता ॥
पिता बहुत कह्यो मनहिं न भाए । नारायन हठ करि घर ल्याए ॥

दोहा ४४० के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ जोवत (व० प्रति)

बालखिल्य भए बालक जोगी । माया रहित ब्रह्म रस भोगी ।।

दोहा— साठि सहस्र हैं बालखिलि ब्रह्म पुत्र सब जान ।
बीत राग माया रहित देह अंगुष्ठ प्रमान ।। ४४० ।।

चौ०— नारद मुनि बिधि सुतहिं सराही । औगुन जानि नारि नहिं ब्याही ।।
बुद्धि ज्ञान बल तप तन रंगा । ए सब जात है नारि प्रसंगा ।।
कपिलदेव जड़ भरत बिबेकी । रहे असंग संग तजि एकी ।।
एक रहै सो ब्रह्म कहाई । दोइ भए माया तहँ आई ।।
तातें[1] साधु अकेला षेलै । मुक्त भयो दुष द्वंद निपेलै ।।
सुत बनिता सुष विषय कहावै । जेहि जेहि जोनि जाइ तहँ पावै ।।
और देह के और हैं काजा । धर्म काज नर देहहि साजा ।।
भुक्तिमुक्ति के साधन जोई । सो नर देह बिना नहिं होई ।।
बांछत देव न पावत ताही । मूरष बृथा गमांवत आही ।।
कबहुँकि सोइ रहैं अज्ञानी । कबहुँ कि षेल बिससन मनमानी ।।
कबहुँकि फिरतहि रहैं गंवारा । कबहुँकि बात करै बिस्तारा ।।
कबहुँकि बैठि रहैं होइ राजा । कबहुँकि वृथा पसारैं काजा ।।
कबहुँकि सोच मनोरथ करई । मन भटकावत कछुव न सरई ।।
या विधि आयु गमावत प्रानी । तिन्ह कों महा मूढ़ करि मानी ।।
नहिं हरि भजन न गुरु की सेवा । नहिं सतसंग न पूजै देवा ।।
नहिं तप तीरथ ब्रत कछु दाना । मेरि मेरि करत काल नियराना ।।
जहाँ के तहाँ परे रहे साजा । पकरि बांधि मार्‌यो जमराजा ।।
जा तन सो मूरष मन लाया । झूंठ साँच करि षाइ मुटाया ।।
ताकी भई तीनि गति प्रेरी । बिष्टा क्रमी भस्म की ढेरी ।।
ऐसी भांति बहुत दिन मूवा । जोव ज्ञान बिनु मुक्त न हूवा ।।
तातें प्रभु मो पर हित कीजै । राजहि कहि आज्ञा अब दीजै ।।
तीरथ अटन करत सब कोई । साधन प्रथम भूमिका होई ।।
बिनु तीरथ पातक नहिं जाहीं । अन्तहकरण शुद्ध होइ नाहीं ।।
बिना शुद्ध भए अन्तःकरना । उपजै ज्ञान न छूटै मरना ।।

दोहा— लाल चारि चंचल मलिन हिय महँ रहत लुकान ।
मन बुधि चित अहंकार ए अन्तःकरण बषान ।। ४४१ ।।

दोहा ४४१ के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ यातें (व० प्रति)

चौ० — सुनी वशिष्ठ राम की बानी । जग उपकार काज मनमानी ॥
ए ईश्वर इन्ह को का चाही । धर्म मजादा बांधत आही ॥
जो अवतार होइ हरि करिहैं । सोइ सोइ कर्म जीव बिस्तरिहैं ॥
उठे गये मुनि राजहि भेंटा । ज्ञानी भयो तुम्हारो बेटा ॥
कहत हैं मैं आयसु जो पाऊँ । एक बेर तीरथ फिरि आऊँ ॥
सुनि दशरथ कछु उतर न आए । कहा धों भयो चहत पछिताए ॥
कौन जतन करि करि सुत बाने । सोइ ए भयो चहत बौरानें ॥
को उपदेस भयो अस दाता । माता पिता बिछाहत भ्राता ॥
बालक जुवा बृद्ध जस वैसा । अधिकारी प्रति है उपदेसा ॥
इह कहि नृप गुरु कों संग लीने । गये राम पहिं बदन मलीने ॥
भल हमार सेवा सुत कीएहु । बूढ़ भयो बन को मन दीएहु ॥
भल बिवाह करि पूत षिलाए । करि दिग्बिजय राज्य सुष पाए ॥
भल महतारी मोर सिरावा । भल पतोहु सौं पायं धुवावा ॥
भल भाइन्ह महँ लीन्ह बड़ाई । देस ग्राम भल सुबस बसाई ॥
भल मवास गढ़ तोरेइ बंका । भल रिपु जीति कीन्ह निहसंका ॥
इह तो चही हमारो काजा । हम बन जाहिं होहु तुम राजा ॥
अस कहुँ बात सुनी कहि लागी । राजा बाप पूत बैरागी ॥
पूछहु ब्यास बशिष्ठ बुलाई । बापहिं तजि बेटा कहों जाई ॥
घर ही महिं तीरथ फल पावै । माता पिता सेव होइ आवै ॥

दोहा— माता तीरथ पुनि पिता तीरथ भ्राता लाल ।
बचन बचन तीरथ गुरु तीरथ जति प्रतिपाल ॥४४२॥

चौ० — बोले राम पिता भल भाषा । परमारथ को समय न राषा ॥
तीरथ जात करत तप दाना । मनैं न करत जो लोग सयाना ॥
जप तप ब्रत पूजा मन भाई । लागत दोष मनैं करै ताई ॥
कन्या देत लेत हरि नामा । वापी कूप करत बिश्रामा ॥
पानी पियत जो गाइ बिडारै । लागै पाप बिघ्न जो कारै ॥
माता पिता साधु बिष्याता । जोतषि बैद्य मित्र जे जाता ॥
जो ए हित उपदेस न करहीं । तौ जिव कौन भाँति निस्तरहीं ॥
इह जब बात मात सुनि पाई । धावत डरत राम पहिं आई ॥
सुंदर[1] बदन निहारि निहारी । भरि भरि नैंन कहत महतारी ॥

दोहा---- ४४३ के अन्तर्गत

---

१ सुन्दर बदन········हिए लगाए=तीर्थाटन प्रसंग में मातृ हृदय की कोमल भावनाओं की अभिव्यंजन मौलिक है ।

अब अस ज्ञान कहाँ ते पायो । किनि तोहि पूत धूत भरमायो ।।
जो तूं पुत्र छांड़ि मोहि जाइब । तौ का जियत आइ पुनि पाइब ।।
का अब मोहि देत दुष भैया । जीयति हौं मुष देषति तहिया ।।
जौं मोहि छांड़ि जात है आहो । राम राम कहि बोलिब काहो ।।
इक तो दई दीन्ह दुष आदिहि । बिना पुत्र दिन बहु गये बादिहि ।।
तोहि पाइ हौं भई सनाथा । अब का फिरि कियो चहत अनाथा ।।
हम जीयत षेलहु घर षाहू । हमरे मुए कहूँ पुनि जाहू ।।
जब तब तुहि गति करब हमारी । तीरथ हाड जाइ कहुँ डारी ।।
कस न अबहिं अपने संग लाई । तीरथ माता पितहिं कराई ।।
धन्य पुत्र जो धर्म संभारै । आपहु तरै पुत्र कुल तारै ।।
सुनतहिं राम नैंन भरे पानी । मायामय माता की बानी ।।
जननी आंसु पौंछि समुझाए । रहहु जाहु जिनि होए लगाए ।।

दोहा— राम चलत व्याकुल भए सज्जन बांधव लोग ।
लाल दुसह नहिं सहि सके दुष दहि राम बियोग ।।४४३।।

चौ० — माया[1] राम ऐंचि लई जबहीं । दशरथ कहेउ जाहु किनि अबहीं ।।
राजा जान राम मत संचय । तीरथ कीन्ह चहत हैं निश्चय ।।
तब कह्यो पुत्रहि अवसि सिधावहु । कुशल क्षेम बेगे घर आवहु ।।
औरउ लोग चले तजि भवने । लक्षिमन संग साजि रथ गवने ।।
जेहि जेहि तीरथ राम अन्हाएैं । पाप हरन बल अधिक से पाएैं ।।
तीरथ कहहिं कृपा अब कीजै । प्रभु हमारि बिनती सुन लीजै ।।
जो कछु पाप करत जग प्रानी । हत्या ब्रह्म आदि सब जानी ।।
पतित अन्हाइ आइ हम मांहीं । पातक डारि डारि सब जाहीं ।।
ते पवित्र होइ जात इहांती । हम प्रभु शुद्ध होहिं केहि भाँती ।।
तब कहै राम सुनहु अघहरना । मेरे भक्त धारिहैं चरना ।।
ते मम कथा कीर्तन करिहैं । पाप ताप संतापहि हरिहैं ।।
करत बोध सबके सब गामी । दहिनावर्त दीन्ह भू स्वामी ।।

दोहा---- ४४४ के अन्तर्गत

१ माया राम······किन अबहीं=राम के द्वारा माया को खींच लेना तथा दशरथ का यह कथन कि राम तुम तीर्थों के लिये अविलंब-जाओ । यह प्रसंग सर्वथा नवीन हैं ।

बृहद वशिष्ठ[२] ग्रंथ महि पाई । सोइ इह कथा लाल कहि जाई ॥

दोहा— गुरु नृप आयसु पाइ कै लाल राम संग भाइ ।
तीरथ करि आए घरहिं बाजो अवध बधाइ ॥४३४॥

चौ०— वेदन्ह जोग गम्य कहि गायो । सो बिनु जोगहि लोगन्ह पायो ॥
ज्ञान ध्यान बिनु इरस न होई । दसरथ घर देषहिं सब कोई ॥
समदमादि साधन करि जाहीं । षोजैं गुफा बैठि मन माहीं ॥
मन बुधि चित अहं अंतहकरना । ए सब होहिं ताहि सम बरना ॥
दम जो इंद्रिय दमन कहावै । जोग दोइ कहँ एक मिलावैं ॥
और जोग सब जानि उपाधी । जोगी पर कहि मनहिं समाधी ॥
अब सुनु जोग जुक्ति की बाता । साधत मुक्ति निमित सुषदाता ॥
यम अरु नियम जो प्रथमहिं बरना । आसन प्राणायामहिं करना ॥
प्रत्याहार धारना धारै । पुनि करि ध्यान समाधि बिचारै ॥
तब जोगी लय माहिं समाई । होइ लय लीन ब्रह्म होइ जाई ॥
सोइ समुझाइ कहौ मन धरिए । जा बिधि जोग साधना करिए ॥
प्रथमहिं यम लक्षण वहि धारै । करै अहिंसा जीव न मारै ॥
बोलै सत्य झूठ नहिं कोई । रहै अस्तेय चोर नहिं होई ॥
ब्रह्मचर्य मैथुन सब त्यागै । रहै अपरिग्रह संग्रह भागै ॥
ह्वै अक्रोध कलह नहिं गारी । बोलै बचन मधुर सुषकारी ॥
सूया तजै असूया आनै । निंदक चुगल होइ नहिं जानै ॥
देषै सुखी संपदा काही । भल मानैं हिय मैं हरषाहीं ॥
संजम बचन मौन गहि राषै । बोलै अलप बहुत नहिं भाषै ॥
निंदि करत लज्जा मन आनैं । अभय रहै भय देइ न जानैं ॥
धीरज धरें रहैं मन माहीं । अति अकुताइ करै कछु नाहीं ॥
आस्ति सबै नास्ति नहिं देषै । क्षमा असंग रहै एहि लेषै ॥
ए लक्षण यम के कहि गाई । अब कहौं नियम सुनों समुझाई ॥
तपसा करै न तन कों पोषै । प्रात न्हांन ब्रत करि करि सोषै ॥
शीत उष्न अरु भूष पिपासा । इनि तैं कबहुँ न होइ उदासा ॥

---

२ वृहद वशिष्ठ—कवि ने राम के तीर्थगमन की कथा का आधार वृहद वशिष्ठ ग्रंथ को बताया है । तीर्थाटन से कवि का विशेष लगाव रहा है । तीर्थों के महत्व को प्रतिपादित करने हेतु इस प्रकार की कथाओं का संयोजन लालदास की मौलिक विशेषता है ।

रहै सदा स्वाध्यायी सद्या । सिषै सुनै अध्यातम बिद्या ।।
जथा लाभ संतोष रहाई । असंतोष करि मरै न धाई ।।
शौच देह जल म्रतिका लागै । राग द्वेष मन के सब त्यागै ।।
अब बिधि शौच कहत हौं तैसी । बेद पुराण कही कछु जैसी ।।
मल अरु मूत्र जबहिं जब त्यागै । जल मृतिका लै सौचन लागै ।।
लिंग एकई बेर प्रकारा । धोवै पंच बेर मल द्वारा ।।
फिरि दश बेर बाम कर धोवै । बेर बेर माटी जल होवै ।।
धोइब बेर तीन दोउ चरना । मंजन सप्त हाथ दोउ बरना ।।
साधै मौन कछू नहिं भाषै । सूर्ज दाहिने ओरहिं राषै ।।
षट द्वादश कुरुला तहँ बरना । अचमन तीन वैष्नव करना ।।
कटि स्नान करै पुनि सोई । फेरै काक्ष पहिरि करि धोई ।।
या बिधि शौच करै घरबारी । तासों दुगुन करै ब्रह्मचारी ।।
त्रिगुन पवित्र होइ बनवासी । चौगुन शौच करै सन्यासी ।।
माटी भार हजारक होवैं । कोटि कुंभ पानी लै धोवै ।।
लाषन शौच करै जो कोई । बिनु हरि भक्ति शुद्ध नहिं होई ।।
जो हरि भक्ति लाल नहिं आहीं । तौ गज शौच जानिए ताहीं ।।
पावन होइ अपावन केऊ । सबहिं अवस्था ब्यापत तेऊ ।।
पुंडरीकाक्ष भजहिं जे प्रानी । बाहर भीतर शुचि सो जानी ।।

दोहा— न्हावन धोवन लोपनो ब्रथा करै जंजाल ।
शुद्ध होहिं हरि भक्ति तें तन मन के मल लाल ।। ४४५ ।।

चौ०—पूजा करि षोडस उपचारा । संध्या तर्पण बिधि ब्यौहारा ।।
आवाहन आसन जो बरना । अर्घ पाद्य .मधुपर्काचमना ।।
पुनि स्नान बसन पहिरावन । यज्ञोपवित गंध पुहुप चढ़ावन ।।
धूप दीप नैवेद्य प्रदक्षिन । एक विसर्जन षोडस लक्षण ।।
जप अरु होम वेद विधि चालै । श्रद्धा सहित अतिथि प्रतिपालै ।।
उपकारी संतोष अभेवा । तीरथ अटन करै गुरु सेवा ।।
ए यम नियम कहै सब कोई । इन्ह बिनु जोग सिद्धि नहिं होई ।।
साधव जोग लोग मनमानें । यम अरु नियम के मरम न जानें ।।
औरहु शुभ लक्षण हैं जेते । साधै तजै अशुभ हैं तेते ।।
आलस तजि आसन सब करई । अरु षट कर्म प्रात मन धरई ।।
स्वस्तिक गोमुष कुर्कट आसन । इक उतान कूरम वीरासन ।।

पृष्टि मक्षेंद्रा पश्चिम ताना । मयूरासन अरु भद्र बषाना ॥
सिंह पद्म सिद्धासन करना । धनुषासन शव आसन वरना ॥
चौरासी आसन हैं भाषा । सब महिं आदि चारि दस राषा ॥
आसन रोग देह के नासै । पातक प्राणायाम विनासै ॥
प्रात्याहार मनो मलहारी । यम अरु नियम जोग सिधिकारी ॥

दोहा— धोती बस्ती नवलिका गज कर नेती जान ।
भाथी साधन देह के ए षट कर्म बषान ॥ ४४६ ॥

चौ०— नेती डोरि नासिका पोवै । धोती बसन लीलि मल धोवै ॥
नवली नर फेरै जु उठाई । उदर मध्य गुरु तें लषि पाई ॥
भाथी करै नाक स्वर ऐसे । धवैं सुनार धातु कों जैसे ॥
ऐंचे एक एक स्वर छांड़ै । अति ही बेग बेग हठ माड़ै ॥
बस्ती मूल द्वार जल करषैं । गज करनी गज ज्यों जल बरषैं ॥
अब सुनु प्रणायाम बषानों । जोग ग्रंथ के मत मन आनों ॥
साधै साधु जोग जो कोई । रहै देस जहँ द्वंद न होई ॥
सदा सुभक्षि रहैं जा ठौरा । धर्मराज कहुँ धावन दौरा ॥
राषै संग एकहो एवा । सारति समुझि करै सब सेवा ॥
रहै जाइ एकांत बिचारी । जहां नहीं बहुतै नर नारी ॥
छांड़ै सब जंजाल समेता । रचै सुमठ सुठि द्वार संकेता ॥
नहिं अति नीच नहीं अति ऊँचा । आसन रचै भूमि कर सूचा ॥
प्रथमहि कुश ता ?र मृगछाला । पुनि कंवल ऊपर रुमाला ॥
अति कोमल सम रचि सुषदाई । पद्मासन बैठत •मन लाई ॥
ऊठ बैठ इत उत नहिं डोलै । बल नहिं करै बहुत नहिं बोलै ॥
कटि अरु ग्रीव सीस सम राषै । नाशा अग्र दृष्टि अभिलाषै ॥
सूक्षम कछुक राषि मुष आगै । देषै ताहि पलक नहिं लागै ॥
जब लगि नैन सजल भरि होई । त्राटिक ध्यान कहत हैं सोई ॥
अंग न्यास रक्षा करि तन के । टीका करैं कपट तजि मन के ॥
जज्ञ दान जप तप ब्रत पूजा । होम पाठ श्राद्धादिक दूजा ॥
जोग ध्यान औ दानहूं दीयें । निहफल होइ तिलक बिनु कीयें ॥
प्राणायाम करै तेहि ठौरा । ऐंचै पवन दाहिने ओरा ॥
इला पिंगला करै बिचारा । बाएं दाहिने नाक दुवारा ॥
इला पिंगला सुषमन नारी । नाशा मध्य रहत सुषकारी ॥

दक्षिन पुट नासा स्वर जाना। ताहि पिंगला कहत सयाना ॥
बाएं इला जानिए सोई। मध्य सुषमना नारी होई ॥
तिन्ह के तीन देवता गाए। सूरज चन्द्र ब्रह्म तहँ छाए ॥
तिन्ह के भेद गुरु सों जानैं। जोतिस सगुन सबहि पहिचानैं ॥
भिन्न भिन्न जो कहौं बनाई। बातहि बात ग्रन्थ बढ़ि जाई ॥
षोड़स बेर प्रणव मन माहीं। पूरत जपै अधिक कछु नाहीं ॥
राषै मूंदि पवन नहिं जाई। चौसठि मंत्र जपै जब ताँई ॥
बाएं स्वर छांड़ै तब सोई। बेर बतीस मंत्र जप होई ॥
ऐंचे पवन जो पूरक कहिए। राषै रोकि सो कुंभक कहिए ॥
छाड़ै ताहि सो रेचक जानी। तासों प्रायाणाम बषानी ॥
प्राणायाम भांति दोइ राषा। एक अगर्भ सगर्भ है भाषा ॥
मंत्र सहित तेहि कहत सगर्भा। बिना मंत्र सोइ जानि अगर्भा ॥
राषै आनि प्राण भूमाहीं। त्रिकुटी ध्यान काल भय नाहीं ॥
प्राणायाम करै गति रोधन। प्राणायाम होइ अघ सोधन ॥
शनैः शनैः साधै एहि भांती। करै अभ्यास दिवस अरु राती ॥
पूरत तजत रोकि जब धरई। पंच सात रस रस तब करई ॥
जैसे नए घोर गज होई। दौरब चालि सिखावै कोई ॥
एकहि बेर करै हठ ठानी। सो जोगी रोगी होइ जानी ॥
प्राण अपान वायु सम धारै। नाशा मध्य मध्य संचारै ॥
मन अरु पवन त्रिकुटि करि मेला। रहे उन्मनी ध्यान अकेला ॥
जोगी जहाँ करै निज बासा। देषै परम जोति परकासा ॥
अनहद सुनै जोति मन लावै। अजपा जपै बहुरि नहिं आवै ॥
काल कर्म की काटै फांसी। सो जोगी कहिए अविनासी ॥
दिन दिन मन तन मैं बिलमावै। राषै रोकि रोकि जहँ धावे ॥
तन चंचल तो चंचल पवना। पवन चपल तें मन कौं गवना ॥
मन के चले बिंदु चलि जाई। बिंदु चले बल बुद्धि नसाई ॥
बुद्धि गए होइ सबै बिगारा। नित्यानित्य बिबेक विचारा ॥
बैठे बारह अंगुल बाई। निकसैं दश भीतर कौं जाई ॥
द्वै द्वै अंगुल तूटत स्वासा। तातैं होत देह को नासा ॥
सोवत चलत अठारह जाहीं। चौसठि धावति मैथुन माहीं ॥
साधै पवन जोग करि केई। राषै रोकि जान नहिं देई ॥
सो जोगी जीवै बहु काला। देषै लाल जगत के ष्याला ॥

हलुका अल्प अहार कराई। भूषै मरै न पेट भराई ॥
आँविल लवन मिठाई छाड़ै। केवल दूध भात अकि माड़ैं ॥
जगत हो रहै न बहुत हो सोवै। बैठहि रहै न फिरतहि षोवै ॥
राषै बिंदु जतन करि लेई। अपने जानि जान नहिं देई ॥

दोहा— कंडु कलह मैथुन सयन तृष्णा भोजन संच।
घटे घटाए पंच[1] ए बढ़ै बढ़ाए पंच ॥४४७॥

चौ०— प्राणायाम करै जब जानै। तब षट चक्र भेद पहिचानै ॥
अब षट चक्र कहौं समुझाई। अंग देव दल रंग बताई ॥
मूलाधार चक्र दल चारो। रक्त वरण गणपति अधिकारी ॥
स्वाध्यष्ठान लिंग धर कर्मा। षट दल हेम बरन तहँ ब्रह्मा ॥
मनि पूरक नाभी मध्य जानी। दश दल नील बिष्नु तहँ मानी ॥
चक्र अनाहृत हृदय बिराजा। द्वादश दल शित शंकर राजा ॥
कंठ विशुद्ध दल षोडस माहीं। रंग फटिक रहै जीव तहाँहीं ॥
दल द्वै भ्रूमनि रंग महातम। आज्ञा चक्र देव परमातम ॥
सब सों लगी सुषमना नारी। रहति बक्र गति चक्र मझारी ॥
ताहि पवन वल करि सुध करई। दशयें द्वार वायु लै धरई ॥
मूल चक्र तैं पवन उठावै। मेरु दंड होइ शीश चढ़ावै ॥
तब तहँ अनहद नाद है कोई। गरजै गगन मगन मन होई ॥
देषैं तेज पुंज तहँ जोती। रवि शशि कोटि कोटि मणिमोती ॥
जोगी बांधे रहत तीन घर। मूल उड़ान बंध जालंधर ॥
पीवै[1] पवन उदर भरि जोगी। भूष न मरै अमी रस भोगी ॥

दोहा— ४४७ के अन्तर्गत-
१ लाल (छ० प्रति)

दोहा— ४४८ के अन्तर्गत
१ पीवै पवन............भोगी = योगी पवन को पीकर अमृत का पान करता है और प्राणायाम करने वाला योग साधक निराहार रहकर भी नहीं मरता। संत चंददास जी ने भी निराहार रह कर प्राणयाम साधना करने का अनुभव प्रदान किया है—
'क्षुधा मिटै तन पवन अहारी'
'शिवसिद्धसारंगाध्यावली, चंददास, (हस्त० चंददास सा० शो० सं० प्रति)'

मूल बंध संकोचन कहिए । ऐसै नाभि उडान सु हैए ।।
दावे दंत रहै दृढ पावै । जालंधर सोइ बंध कहावै ।।

दोहा — खेचरी भूचरी जलचरी एक अगोचरी होइ ।
लाल ए मुद्रा जोग की जानै जोगी सोइ ।।४४८।।

चौ० — खेचरी गगन पंथ उड़ि जाई । भूचरी भूमिहि मध्य समाई ।।
जलचरी जल पर चलै सो जानो । गुप्त अगोचरी नाहि बखानो ।।
ए षट पट मन हठकौं बरना । मन बस भयो तब कछुइ न करना ।।
ज्यो दुष्मन पर कटक बटोरा । आयो हाथ गये सब घोरा ।।
प्रत्याहार कहूँ मुनि ताही । इंद्रिन्ह प्रति प्रतिकूल सदाही ।।
त्वक चक्षु जीभ नाशिका श्रवना । राखै रोकि विषय प्रतिगवना ।।
चंदन माल तेल आभूषन । कोमल पट बनिता सुष दूषन ।।
ए बिष विषय देह के होई । साधै जोग छुवै नहि सोई ।।
सुंदर होंहि नारि बर बेषै । तिन्ह के रूप नैन नहि देषै ।।
मीठे तिक्त कटुक लवनाई । षाटै मोलि स्वाद नहि पाई ।।
चंदन अगर फूल कस्तूरी । करै सुगंध अरगजा दूरी ।।
बनिता बचन तंति स्वर बाजन । मैथुन बान सिंगार बिराजन ।।
साधु सुनैं नहि मनहारी । जानै बिषय जोग भयकारी ।।
जो इंद्रिय बस हायन आही । मूरष करै कलेश वृथा ही ।।
बैठे हाट घाट जहँ भोगी । जानै नाहि पाषंडी जोगी ।।
मन कों एक ठौर ठहराई । धारै रहै ध्यान टक लाई ।।
तन मन एक करै ब्रत धारै । और अनेक बिक्षेप निवारै ।।
धारन शक्ति मनहि करि लहिए । ताको नाम धारना कहिए ।।
हृदय कमल द्वादश दल ताहीं । मूरत ध्यान करै मन माहीं ।।

दोहा— जोग जज्ञ ब्रत दान तप हरि बिनु फलै न आसु
नौ लष ग्राम है कामरू द्वार एकई तासु ।। ४४९ ।।

चौ०— देषै प्रथम चरण जुग रेषा । अंकुस कुलिस ध्वजादि बिशेषा ।।
पुनि निहारि देषै नष पांती । रवि समान मणि गण की भांती ।।
देषै पाद पृष्टि सुष मूलनि । अर्चित केशरि चंदन फूलनि ।।
देषै गुल्फ गोल ता ऊपर । कनक रत्न जुत पैंजनि नूपुर ।।
पिंडुरी पुष्ट सुघट की सोभा । देषै जनु सुषमा के गोभा ।।
जंघ नीलमणि षंभ सुहाए । पीतांबर छादित मन भाए ।।
कटि किंकणि कटि ऊपर राजै । मणि गण रत्न हेम मय भ्राजै ।।
उदर अल्प त्रिवली युत देषा । मध्य रोम राजी की रेषा ।।

ललित नाभि गंभीर सोहानी । मानहुँ रूप रत्न की षानी ॥
बक्षस्थल आपूर बिशाला । मुक्ता पुहुप तुलसिका माला ॥
लंबी भुजा ललित मन हरनी । आयुध चारि चारि जुत बरनी ॥
अंगद बलय मुद्रिका बाना । केशरि चंदन लगे सुहाना ॥
यज्ञोपवित बिराजत कांधे । सोभा सिंधु पालि जनु बांधे ॥
श्रीवक्ष लंक्षन भृगुपद होएँ । कंठ कौस्तुभ मणि है लोएँ ॥
देषै चिबुक चारु सुषकारी । अधर दंत नाशा मन हारी ॥
कल कपोल कुंडल जुत श्रवना । कुटिल केश अलिगन मनु रवना ॥
आछे बड़े नैन रतनारे । बरुनी पलित ललित रतनारे ॥
बांके भौंहैं धनुष समाना । तिलक काम जनु बान संधाना ॥
ललित ललाट बिशाल बिराजै । तापर मुकुट जनित नग छाजै ॥
ऐसे अंग अंग मन धारै । नष सिष बारंबार निहारै ॥
मूरति अल्प किशोर बनावै । लावनि रूप माधुरी ल्यावै ॥
चितवनि हंसनि हिए महँ आनै । अंग चपल चैतनि गति जानै ॥
देषै दरस परस्पर ऐसें । हलत चलत महबूबहि जैसें ॥
जोगी ध्यानस्थ इक पाला । हरै कोटि पातक ततकाला ॥
जो कोउ ध्यान करत मन लाई । तापर प्रभु रीझत अधिकाई ॥
ध्याता ध्यान करत कहु ज्ञाना । ताको नाम समाधि बषाना ॥
ध्याता ध्यान भाव मिटि जाई । रहै एक अद्वैत समाई ॥
तन मन पवन बिषय शब्दादी । ज्ञान ध्यान अनहत अहंवादी ॥
कबहूँ कछु स्मरनहिं होई । भयो लयलीन जानिए सोई ॥

दोहा— तीनि भांति को ध्यान है सगुन नाद निरुपाधि ।
बिकलप औ संकल्पना है द्वै भांति समाधि ॥ ४५० ॥

चौ०— साधे होइ जोग जे कोई । कीजै गुरुहि समुझि कर सोई ॥
जो कछु बात होत जग माहीं । गुरु उपदेस बिना कछु नाहीं ॥
जानैं गुप्त प्रगट सब बाता । क्षमावंत शीतल सुषदाता ॥
कृपावंत हरि भक्ति सुहाई । गुरु सोई जामहि गुरुताई ॥
विद्या गुन साधन कछु भावै । गुरु उपदेस बिना नहिं पावै ॥
दश अवतार भए हरि जानें । तिन्हऊं गुरु करि करि अरु मानें ॥
जोग जिहाज सरित संसारा । केवट गुरू उतारै पारा ॥
शिष्य सोई जाके जिज्ञासा । श्रद्धा भक्ति जुक्त विश्वासा ॥
आचारज आचरण सिषावै । बिधि निषेध कहि कहि समुझावै ॥
जो भजनीक मुक्ति पथ गामी । गुरु ज्ञानी चहिए निहकामी ॥

ज्ञान ध्यान संजम तप होई । तारन तरन गुरु है सोई ॥
गुरु बिनु ज्ञान ध्यान नहिं पाई । गुरु बिनु मन संदेह न जाई ॥
हरि तें बल गुरु मैं अधिकाई । बाँधै हरि गुरु देत छुड़ाई ॥
ज्ञानहीन गुरु मूरख चेला । अंधहि अंध भयो दुह मेला ॥
लोभी दंभ धूत अहंकारी । बिषई लंपट गृह बिवहारी ॥
नाम अतीत धराइ विगारा । करै प्रपंच अनेक प्रकारा ॥
झूंठ सांच करि द्रब्य बटोरे । हरिहाई गाई ज्यों दौरै ॥
करै महौछा लोग बुलावै । मालहि कारन माल लगावै ॥
जासों कछु पावै तेहि देई । निस्प्रेही को षबरि न लेई ॥
माला मोल बहुत लै आवैं । घर घर बांधत फिरैं झुलावैं ॥
शिष्य करि लेहिं टका द्वै चारी । ते गुरु नहिं जानैं व्यापारी ॥
गुरहर मोट ऊँच त्वंबारा । चेला बहुत संग लिए भारा ॥
बैठि पषावज बहुत बजावै । ऐसा गुरु सबके मन भावै ॥
पंडित क्रिया ज्ञान गुन जानै । मूरष दंभ देषि मन मानै ॥
सूधा साधु होइ कृश देही । ज्ञान ध्यान जानै निस्प्रेही ॥
साधै जोग प्रमोध न कासौं । रामौ राम करै नहिं तासौं ॥

दोहा— वैद्यक[१] तांत्रिक दोइ मत लाल गुरू उपदेस ।
बैद्यक जो बेदहि कह्यौ आगम तांत्रि कहेस ॥ ४५१ ॥

चौ०— सुनि आगम गुरु शिष्य विधि आनों । जोग ज्ञान इन्ह बिन जिनि जानों ॥
शिषि को नाम राशि गुरु धारै । छठि आठइ गण अगन बिचारै ॥
मंत्र शोध करै गुरू बिचक्षन । सिद्ध सुसिद्ध साध्य अरि लक्षन ॥
गुरु शिषि मंत्र के अक्षर गिनई । करै शिष्य जब सब ए बनई ॥
संस्कार करि पंचइ मंत्र । रिषि छंद देव बीज सत्य जंत्र ॥
मुद्रा तिलक भाल मंत्र नामा । पंच ऐ संस्कार के कामा ॥
काल औ अर्गल कीलक कवचं । सहस्र नाम आसन जप सवचं ॥
इह स्वाभाविक पूजा भाषी । भूत सुद्धि करि जप विधि राषी ॥

दोहा— शौच मौन मन संहरन चिंतवन मंत्रार्थ ।
अनिर्वेद अविग्रचित्त जप हित तापनी[२] ग्रंथ ॥ ४५२ ॥

दोहा ४५१ के अन्तर्गत—

१ बैद्यक तांत्रिक............जप तहं ए चाही=प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में अनुपलब्ध हैं ।

२ हित तापनी=ग्रंथ विशेष

चौ०— पंच तत्व करि पिंड उपावै । मनहीं करि तब ताहि नसावै ॥
करन्यास हृद नासहि देया । मात्रिकादि न्यास सब ज्ञेया ॥
प्राण प्रतिष्ठा पुनि करि जानैं । पूजा बाहर भीतर ठानैं ॥
देव गायत्री संध्या मुद्रा । तीनि बर्ण कौं नाहीं सूद्रा ॥
मुद्रा नाम कहूँ समुझाई । ब्रह्म गायत्री कीजै पाई ॥
शम संपुट वितंत बिस्तीरन । इक मुष द्विमुष त्रिमुष चतु दीरन ॥
पंच मुष षटमुष अधमुषहीं । अंजुलि शकट पाश जम सुषही ॥
ग्रंथि उन्मुषं प्रलंवं आहा । मुष्टि मत्स कूरम बाराहा ॥
सिंहा क्रांता पुनि महाक्रांता । मुदगर मुक्त पल्लवा ख्याता ॥
सुरभि ज्ञान वैराग्यहि जानी । सूर पंकज जोनि लिंग मानी ॥
निर्जन मुद्रा पुनि इक आही । गायत्री जप तहँ ए चाही ॥

दोहा— लाल साधु जो कोउ करै ध्यान जोग या विद्धि ।
ताहि डिगावत देवता दै अष्टादश सिद्धि ॥ ४५३ ॥

चौ— अब तिन्ह के कहौं नाम बषानों । कृष्न कहेउ उद्धव सोंइ जानों ॥
अणिमा जो सूक्षम तन होई । देषि न परै जु काहूँ सोई ॥
महिमा जो दीरघ बढ़ि जाई । शीश अकास लगै भू पाई ॥
गरिमा गरू होइ तन ऐसा । पर्वत हलै चलै नहिं तैसा ॥
लघिमा सिद्धि होइ तन पाई । रज समान लघुता हलुकाई ॥
सिद्धि प्रकास्य नाम एहि आसय । प्रगट करै ऐश्वर्य प्रकासय ॥
बसित्वं सबै जगत बस करई । एक अकाम कामना हरई ॥
इक अवसाइनि सिद्धि कहा है । नाश करै जाको कियो चाहै ॥
एक अनूरमि सिद्धि है जानी । षट ऊरमि तहँ रहति बषानी ॥

दोहा— अशन पिपाशा शोक अरु मोह जरा मृत्यु जानि ।
लाल एई षट ऊर्मी ग्रंथन्ह माँहि बषानि ॥ ४५४ ॥

चौ०— दूर श्रवण इक सिधि बिख्याता । देशान्तर की सुनैं जु बाता ॥
दूर दरस इक सिद्धि अपारा । बैठा सब देषै संसारा ॥
मनोजवा इक सिद्धि बषानैं । मन के बेग जाइ जहँ जानैं ॥
एक है काम रूप सिधि ऐसा । चाहैं भयो रूप होइ तैसा ॥
सिधि परकाय प्रवेश कहावै । मृतक पिंड महिं पैठि जिवावै ॥
एक स्वछंद मृत्यु मन लागै । जब जानैं तबहीं तन त्यागै ॥

देवानंतन[१] क्रीडा गाई । देवन्ह सों षेलै मिलि आई ।।
जथा संकल्प कहावै सोई । मन मैं घरै सोई सब होई ।।
आज्ञा इक[२] प्रतिहता बषानै । जाको कह्यो करै सब मानै ।।
ए अष्टादश सिद्धि कहावै । जो अष्टांग करै सो पावै ।।
जोइ जोइ सिद्धि होत जेहि साधन । सो मैं कहत सबै आराधन ।।
परि इह आजु काल है षोटा । पापहि वृद्धि धर्म है तोटा ।।

दोहा— जोग है लाल पपोल मत ज्ञान विहंगम जान ।
दोऊ पावत मुक्ति फल गावत वेद पुरान ।। ४५५ ।।

[इति श्री अवध विलासे बुद्धि प्रकासे सब गुन रासे भक्त हुलासे पाप विनासे कृत लालदासे अष्टांग जोग साधना नाम पंचदश विश्राम ।।

दोहा ४५५ के अन्तर्गत—
पाठान्तर १ देवानां सह (व० प्रति)
२ इक आज्ञा (व० प्रति)

—:अथ षोडश विश्राम—:

दोहा— नांनि बात पर होत हैं छहों शास्त्र-संवाद ।
जोव जगत ईश्वर विषय को केहि विधि प्रतिपाद ॥४५६॥

चौ०— कपिल[1] सांष्य पातंजलि शेषा । करता व्यास बेदांत बिशेषा ॥
न्याय बशिष्ठ मोमांसा जैमिनि । वैशेषिक कर्त्ता गौतम मुनि ॥
अब कहां सांष्य ज्ञान समुझाई । जानति जाहि भर्म मिटि जाई ॥
ब्राह्मण स्वपच होहि नर नारो । होहिं मुक्त सब सांख्य बिचारो ॥
साधन सुगम न करत कलेसा । देस न काल न फिरव बिदेसा ॥
त्याग न क्रिया न तीरथ मरना । केवल एक बिचारहिं करना ॥
जोग सांष्य जे दोउ बताए । अधिकारो प्रति कहि समुझाए ॥
बिनु अधिकार करै कछु प्रानो । सोहै न ताहि होइ फल हानो ॥
जे मतिमंद करमी वारे । तिन्ह कहँ कर्म जोग बिस्तारे ॥
होहिं शाँत मति[2] संत बिरागी । सांष्य जोग तिन्ह कों प्रिय लागी ॥

दोहा— जथा अर्थ आतम स्वरूप जहाँ निरूपन होइ ।
अरु सब संष्या तत्व कों सांष्य कहावै सोइ ॥४५७॥

चौ०— आदि ब्रह्म माया उपजाया । माया तै महतत्व बनाया ॥
तातें त्रिविधि भयो अहंकारा । सत रज तम गुन जुक्त प्रकारा ॥
मात्र पंच तामस अहं कीने । तिन्ह तै पंच भूत महां लीनें ॥
पंचभूत तैं प्रकृति पचीसा । चैतन्य परम तत्व षट्बीसा ॥
पंचीकृत मिलि जग बिस्तारा । रंग रूप आकार अपारा ॥
रज अहं कृत दश इंद्रिय भेवा । सात्विक अंतहकरण अरू देवा ॥
ते माया परिनामहिं पाई । जैसे दूध दहो होइ जाई ॥
ईश्वर है अबिछिन अज्ञाना । बुधि अबिछिन जीव कों माना ॥

दोहा— जैसे उपजे तत्व सब ता बिधि होत हैं लीन ॥
बोज रहत माया बिषै लाल सांष्य कहि दीन ॥४५८॥

दोहा ४५७ के अन्तर्गत—

१ कपिल······गौतम मुनि=संत लालदास के अनुसार सांष्य के कपिल, शेष (योग) के पातंजलि, वेदांत के व्यास, न्याय के वशिष्ठ, मीमांसा के जैमिनि और वैंशेषिक के गौतम आदि संस्थापक आचार्य हैं ।

पाठान्तर : २ बुधि (व० प्रति)

चौ०— कहत हौं न्याय शास्त्र जो भाषा । सोरह सूत्र द्रव्य नव रांषा ॥
सूत्र हैं सुनों न्याय के जेते । कहत हौं अर्थ सहित सब तेते ॥
जथा अर्थ अनुभव सप्रमानं । है प्रमेय सत असतहि जानं ॥
संसय जानु संदेहहि जुक्तं । कार्य अदिष्ट प्रयोजन उक्तें ॥
तद्वत ताहि दृष्टांत बषाना । अंते सिद्धि सिद्धांत सो जाना ॥
अवयि अंग अनुमान तर्क गुनि । करब बिचार सो निर्णय है पुनि ॥
बादहीन उत्कृष्ट जो कहिए । जल्पसु बहु भाषण ता हइए ॥
जानि बितंडा पर पक्ष मारन । हेत्व है काहे तें इह कारन ॥
कारण बिरुध आभासहि जानव । छल कहि बंचकताई ठानव ॥
जाति है ब्राह्मण आदि जो वरना । निग्रह भाषण ग्रहणहि करना ॥
साध्य है परम तत्व ही जानी । ज्ञान तें मुक्ति है निगम बषानी ॥
प्रथि जल अग्नि औ वायु प्रमाना । आरंभ वाद अकासहि ठाना ॥
दिग अरु काला आत्म मन लेई । लाल न्याय द्रव्य नव हैं एई ॥
आरम्भवाद नैयायिक ठानें । जग उतपति घट प्राय बषानें ॥
पूरब ही घट रह्यो अभावा । मृतिका सकासात होइ आवा ॥
मृतिका दंड चक्र जल तागा । आरंभ करि घट होत बिभागा ॥
आदिहि नहिन रह्यो संसारा । मिलि नव द्रव्य भयो बिस्तारा ॥
पृथ्वी जल कणिका अणुधारी । एक तें दोइ दोइ तें चारी ॥
बढ़त हैं तत्व क्रमहि क्रम जबहीं । होत स्थूल रूप सब तबहीं ॥
सबके चारि प्रमाणहि संचा । तिन्ह कर इहि सब होइ प्रपंचा ॥
कालहि जगत करत अरु हरता । ईश्वर रहत असंग अकरता ॥
प्राक अदिष्ट पाइ बुधि जैसा । होत है ज्ञान कर्म पुनि तैसा ॥

दोहा— इहऊ मत नाहिन बनत जड़ प्रमाण करि सोइ ।
घट कुम्हार चैतनि बिना लाल कौन विधि होइ ॥४५६॥

चौ०— कर्ता भोक्ता जीवहि आही । शुभ अरु अशुभ कर्म फल ताही ॥
जीव अपर परब्रह्म हैं भाषा । ईश्वर मध्य भाग है राषा ॥
नित्य ज्ञान जुत माया संगा । कारण भूत अलिप्त असंगा ॥
ब्रह्म एक अहै ईश्वर एका । घट घट जीव है जानि अनेका ॥
हर्ष सोग दुष सुष जे होई । भिन भिन व्यापत हैं सोई ॥
सुष अत्यन्त जुक्त सोइ मुक्ता । अति सुष रहित बद्ध दुष जुक्ता ॥
जहां धूम तहं अग्निहि जाना । या बिधि न्याय करत अनुमाना ॥
आतम मन दिग काल अकासा । ए कहे पंच नित्य परकासा ॥

वायु अग्नि जल प्रथिवी धारी । नित्यानित्य ए चारि बिचारी ।।
सांष्य मतैं माया जग कारन । ब्रह्म अद्वैत अकर्ता धारन ।।
पातंजल कारन जग भाषे । माया ईश्वर ए दोउ राषे ।।
जैसे त्रिया पुरुष ब्योहारा । करि संजोग सृष्टि बिस्तारा ।।
मीमांसा जग उतपति करना । कर्म द्वार कारन जिव बरना ।।
कर्ता हर्ता कर्म है ताहीं । ईश्वर हरत करत कछु नाहीं ।।
कर्म मिमांसा मत एहि लेषा । बिना किए कछु होत न देषा ।।
स्वर्ग नर्क शुभ अशुभइ कर्मा । तातें बरन करों सब धर्मा ।।
जग कारन परमान है न्याई । बैशिषहू इह मत कह्यो गाई ।।
मत वेदांत है कहत सुहांती । ईश्वर जग कारण सब भांती ।।
आस्तिक ए सब ही हैं जानी । चार्वाकादि नास्तिका मानी ।।
तीन वेद ऋग्वेद भनंदा । एक प्रमान ब्रह्म आनंदा ।।
यजुर्वेद के तीनहिं बचना । अहं ब्रम्ह अस्मि इति रचना ।।
सामवेद के वाक्य हैं तीनें । तत् त्वं असि या बिधि कहि दीनें ।।
अयं आत्मा ब्रह्म कहेई । बेद अथर्वण के बच एई ।।
चारि बेद एहि भाँति पुकारा । द्वादस वाक्य इह ब्रह्म बिचारा ।।
बेद पुरानन्ह शास्त्र जो लेषी । औधपुरी मैं चलन बिशेषी ।।

दोहा— लाल शास्त्र के मत बिना कछू करत जे कोइ ।
तिन्ह के कृत सब ही बृथा दंभ मात्र है सोइ ।।४६०।।
नर नारी पुर औध के संस्कृत ही भाषंत ।
लाल राम सीता सदा ध्यान हिए राषंत ।।४६१।।
बिना काव्य बिनु व्याकरन बिना कोश पढ़े बाल ।।
समुझें बोलें संस्कृत[१] सो अब कहत हैं लाल ।।४६२।।

चौ०— अद्भुत और जुक्ति सुनि कातैं । बोलैं बचन संस्कृत जातैं ।।

दोहा— ४६२ के अन्तर्गत—

१ कवि द्वारा संस्कृत के हिन्दी अनुवाद प्रकरण के अन्तर्गत दिये गये शब्द और वाक्यांशों का क्रम उचित एवं सुव्यवस्थित नहीं प्रतीत होता । एक तो यह अनुवाद ही प्रबंध योजना के अन्तर्गत अभीष्ठ नहीं था परन्तु यदि कवि इसको सामान्य जानकारी के रूप में देना आवश्यक समझते थे तो शब्दों का वर्गीकरण संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण एवं अव्यय शीर्षकों के अन्तर्गत करना चाहिये था । छोटे-छोटे वाक्यांशों का अनुवाद एक साथ देना चाहिये था ।

अर्थ एहि इहाँ अत्र कहाए । कुत्र कहां जु तत्र तहँ गाए ।।
उतः उहां कहि तत्र तहां के । तत्र जहां पुनि कुत्र कहां के ।।
क्वासि है कौन तिष्ठ कहि बैठो । ऊपर ऊर्ध्वं कहत अध हेठो ।।
जैबे कहा क्व यास्यसि कहिए । आवत कहाँ तें एति कुतः है ए ।।
गयो गतः कहि है अस्ति मानौं । किन पठए केन प्रेषित जानों ।।
या को अस्य जु जानि जाको यस्य । ताको तस्य मानि काको कस्य ।।
केन कार्येण कौनें काजा । भल समीचीन सोहत भ्राजा ।।
कब आइव आगम्यस्यसि कहि । गच्छ जाहु तोपै कहि तहि ।।
आवहिंगे आगम्यते होई । आगतं आए यः कहि जोई ।।
बैठे है जानि स्थितास्मि । स्थातव्यं बैठव जास्मि ।।
उठ उत्तिष्ट जाहु गम्यतानां । गंतव्यं जाव जगो गये नां ।।
गत गतौ जु गयो सु गयोई । गता गतै सुत्रिया प्रति होई ।।
ब्रूहि कहो जु कहत है ब्रुवन्न । कहे जगाद् कहत है श्रणुवन्न ।।
कहे को किमर्थं कह्याई । क्वाचित कहूँ इक किंचित कोई ।।
तव तुम्हार अरु मम जु हमारे । ए तस्य इन्ह के दृष्ट निहारे ।।
काके कस्य ए असो इदं कहु । अयं इह है जानि कथय कहु ।।
लेहु ग्रहाण जु देहु ददातु । ददौ दीन्ह लीन्ह ग्रहितातु ।।
ल्याउ समानय इतने एते । उतने इमें कियतः केते ।।
दायितं जानु दिवावा काहो । लै गयो ग्रहित्वागतः ।।
गतो वर्तते जानि गया है । जाति नहीं न प्रयाति कह्या है ।।
अहं ममत्वं तुम मदीया मेरे । ए नं याहि जु त्वदीया तेरे ।।
नीके कुशल न सम्यक भल नहि । नास्ति नाहीं बाहर है वहि ।।
आगे अग्रे पज्चात् पीछे । सन्मुष पुरह देखव निराक्षे ।।
अभ्यंतर भीरत रहै जानो । दूरंतर अति दूर बखानो ।।
निकट समीप लग्यो कहि लग्नं । तरिव तरति औ बूडत मग्नं ।।
उन्नत ऊँच निम्न कहि नीचे । टेढे वक्र निसेचन सीचे ।।
भगव पलाय न तिष्ठन् ठाढा । छिनं घटेव कहि वर्छित बाढा ।।
उठा उत्तिष्ठ जु परा पतन्ना । बैठा त्यष्ठन्न सोवत स्वपन्ना ।।
गिरत है पतति राखि रक्षितां । ब्रूहि कहो सुनिये श्रृणतां ।।
पहुँचे प्राप्त लब्ध पावा । गीयतां गावो गीयतं गावा ।।
ग्रहणन्न गच्छति जात है लीए । गक्ष ग्रहीत्वा जाहु लै इऐ ।।
बहुत बहुतरं स्वलां थोरा । फूट सभग्नं जुक्तं जोरा ।।
दाबि गोपय उगदम उलटा । सौंहे अभिमुक्ष उन्मुष पलटा ।।

कपरा वसन पहिरि परिधेहि । लाऊ अभिगय लेपय एहि ॥
कार्ज काज जु कियते कीया । जात भया पान जो पीया ॥
एतस्मै जे इन्हं कहं कहना । अग तै प्राक जो सोढ़ सहना ॥
कह अहम् हमि कामै वड़ सोई । भल जु साधि सम्यक ए होई ॥
बहुतेरे के तीन कहाये । सरल शुद्ध कुंचित उलटाये ॥
जैसे जथा तथा कहि तैसे । उक्त कहव अरु अमुना असे ॥
गो गौ महिषि भैंसि कहाई । बृषभ वरद अश्व घोर भाई ॥
वारग हाँथी हथिनी करनी । खर रासभ सीढी निहसरनी ॥

दोहा— घर गृह महल प्रसाद कहि उटजि चौतरा नाम ।
छादन छप्पर भीति कुड़ि शहर नगर गवइ ग्राम ॥४६३॥

चौ०— क्वास्ते कहाँ रहत हौ कहिये । उद्यम जो उद्योगहि लहिये ॥
किंचित कछू जीविका वृत्तिहि । चलत प्रचलत है धीरज घृत्तिहि ॥
गली वीथिका बीची लहरी । भार्या दारा कहिए मिहरी ॥
बहुत समूह किवाँर कपाटा । दाल द्विदल औ चूरण आटा ॥
घीव आज्ज कहि तेल स्नेहा । भाजन वासन वपु है देहा ॥
मूरष अपढ पढे विद्वाना । व्याही सो परिणीता जाना ॥
कोपि कोउ कहि गीत अतीता । हारि पराजय विजित कहिजीता ॥
देषा दृष्टि आलिंगन मिलना । शीघ्र है बेगि चपल कहि हलना ॥
उष्ण तपत कहि तात जु होई । तुर्यः चारि उभय कहे दोई ॥
कहि तुम्हार भवतां ऐसा । तादृश तस है चादृश जैसा ॥
अस्मयादि हम सरषे जाना । युष्मदादि जे तुमहि समाना ॥
अयं पुरुष ईयं त्रिय काजे । गायन गान वाद्य कहि बाजे ॥
क्षेत्र है षेत कृषी है षेती । गाडी शकट लांगुल हर एती ॥
पेषणि जांत षाट अष्ट शल्या । गगरी कुंभ उदक जल भरला ॥
बढ़नि मार्जनी ऊषरि कंडनि । काष्ठ है काठ शला शिल मंडनि ॥
आंजु अद्य रहो स्थीयतां । इहां इहैव आमुस्मि उहातां ॥
भई अबेर अतिकालो भवतिहि । प्रचलति पंथा राह न चलतिहि ॥
किमपि भोजितां रुक्षं शुष्कं । रुषा सूषा भोजन करुकं ॥
रहौ राति चले जाहु बिहाना । स्थितां रात्रौ उषसि गम्ततां ॥
नो रक्षयोजे राषिव नाहीं । यस्मात् जातें कस्मात् काही ॥
महद भाग्याद्यागमनं बभूवह । बड़े बषत तें आवन भयो वह ॥
धन्य हो तुम धन्योसि कहना । अलंकार सोइ कहिए गहना ॥
तव अस्माकं यशो ददासि । तुम हमको जस देत हो आसि ॥

बड़े शिष्ट ईदृशो ऐसो । होत भवति यादृशा जैसो
किं भोक्ष्यसि का भोजन करिहै । सूप पहिति भात ओदन धरिहै ॥
कृषरा खिचरी भाजी शाकं । रोटी करपटिका भंटा वृंताकं ॥
डारि क्षिप्यतां प्रथमहिं आदौ । धोवहु पांव प्रक्षाल्यतां पादौ ॥
कृष्न श्याम अरु श्वेत शुभ्र कहि । बादर कहिए जलद अरु अभ्र हि ॥
लंबा दीर्घ ह्रस्व है छोटा । कृश दूबर स्थूल है मोटा ॥
दृष्टि नहिन नवा सूझै किनाहीं । आयु दीर्घ पुरः पश्य माहीं ॥
मारति हंति जु काटति छिनत्ति । डरत बिभेति औ फोरत भिनत्ति ॥
राज्यं कस्य जागीरी चाकर । कोष भंडार खानि है आकर ॥
पथिक बटोही उप कहि नियरे । मन मैं मनसि है हृदये हियरे ॥
इतः इहांते प्रात बिहाना । बधिर बहिर गूंगा मूक जाना ॥
लंगरा खंज एकाक्षि काना । कुबरा कुब्ज वृद्ध बूढ़ जाना ॥
है न मन्यते मानत नाहीं । कति वारं कै बेर कहाहीं ॥
यदा तदा कहिए जब तबहीं । यदा कदापि इदानी अबहीं ॥
ज्ञातं ज्ञान जो समझे बूझें । योधा भट लराई युद्धं ॥
जाइब गमन फिरब कहि भ्रमणं । होइ उलंघन कहि अतिक्रमणं ॥
क्षीर दूध दधि दही कहाई । तक्र छाछ नवनीत नैनू पाई ॥
छूटे मुक्त बद्ध कहे बांधे । किम संधान बान जे साधे ॥
दग्ध है जरे जु पाचित रांधे । पीठि पृष्ठि स्कंध है कांधे ॥
नाक घ्राण कहं श्रोत्र जु काना । मुख कहि बदन दंत रद जाना ॥
निसृत निकरा पैठ प्रवेशा । वेष स्वांग शिक्षा उपदेशा ॥
कृतं कीया कर्तव्यं करना । किमर्थं कारन हौ कि कहा बरना ॥
नवत सुनम्र स्तब्ध करेरे । दक्षिन दहिनें बाम मुडेरे ॥
जूप जुवां सु चौर्यं है चोरी । चतुराई चातुर्यं है जोरी ॥
या सा एषा इयं नारी । यो सो असौ अयं नर भारी ॥
येषां तेषां केषां आहीं । येषु तेषु केषु लोगी माहीं ॥

दोहा— यस्य कस्य तस्य अस्य जानिए जाकर ताकर केउ ।
जेन-केन अरु तेन ए जाकरि ताकरि तेउ ॥ ४६४ ॥

चौ०— यं कं तं जो कहत कहुं लहिए । जा कहुँ ता कहुँ काहि कहिए ॥
अमुक फलाना कहियत काहो । देव प्रणाम जानिए ताही ॥
यस्मात् तस्मात् कस्मात् कहना । जातैं तातैं कातैं ए लहना ॥
किं किं भुक्तं कहा कहा खायो । किं किं लब्धं का का पायो ॥
सुवाव स्वापय जगाव बोधए । क्रुध करि जानि सुधारि सोधए ॥

पूर्ण भरे रिक्त कहि रीते । आएँ न अनागत बीत अतीते ।।
सौरभ जानि सुगंध सुहाई । सूँघब कहु आघ्राण बनाई ।।
झरत श्रवत रस द्रव कहि नामा । घर्षण घसब पीठ पृष्ठ कामा ।।
मा जिनि डर भय मन्यते माना । प्राप्त पहूँचे आनय आना ।।
ग्रास कवर उद्‌गार डिकारा । लीलनि गीरन असन अहारा ।।
चणिका चना उरिद कहे माषा । गोहूँ लै गोधूमा राषा ।।
चाउर तंडुल सर्करा षांडा । लोन लवन है इक्षु कहि गांडा ।।
त्वया तैं मया मैं एनं याही । कौतुक तमाशा उच्चित चाही ।।
आन के परकीय स्वकीये अपना । ठहर स्थान है बोलव जल्पना ।।
छितरायव प्रस्तारण जाना । है बटोर एकत्र बषाना ।।
गुरु गंभीर बजार है हट्‌टा । आधिक्य बढ़ब न्यून कहि घट्‌टा ।।
उड़त सु उडीयमान कहि ताही । धोती धोत्री जानों आही ।।
टाठी स्थाली चषक कटोरा । भृंगा कंउ कहत हैं भौरा ।।
पानपात्र लोटा मन भाए । पाक पाल तौली कहि आए ।।
तापक तौवा दर्वी करछी । कटाह् कराहि कुंत कहि बरछी ।।
चिमटा ग्राहक परइ सरावा । करवा करक तृसकार बरावा ।।
श्वेत शुभ्र कहि पीत है पियरे । कारे कृष्न हरित जे हरियरे ।।
सेर सेट है तुला तराजू । परिस्तरण है बिछौना साजू ।।
आच्छादन ओढन है सोई । षइवे जोग्य भक्ष कहि ओई ।।
काहे किमस्ति इत्थं ऐसै । केन प्रकारेण कथं कैसै ।।
मोर मयूर कोइल पिक बोलैं । इहां उहां इतस्ततः डोलैं ।।
एतावत इतनों कछु होई । जे मौताज प्रमान कह्योई ।।
गोमय गोबर लेपन लीपा । मांजव मार्जन दीया दीपा ।।
जावत तावत जतना ततना हीं । ज्ञानी प्राज्ञ अज्ञानी अज्ञहीं ।।
केवल एक विकीर्ण बिषरे । निर्मल अमल स्वच्छ कहि निषरे ।।
सूत सूत्र कर्पास कपासा । तूल रुई वस्त्र कपरा सा ।।
महंग महार्घ समर्घ है सस्ता । विपुल बिस्तार संकीरण कस्ता ।।

दोहा— सुभिक्ष लाल सुकाल है दुर्भिक्ष जानि दुकाल ।
सुषिया जे धनवंत कहि निर्धन जानि कंगाल ।। ४६५ ।।

चौ०— परिश्रम व्याम नाम कहि संज्ञा । शांतवतान प्राथितं मंज्ञा ।।
बिक्रय बेंचव क्रय कहि लैना । लाभ लब्धि कहि मौल्य मोलैना ।।
चक्रवाक चकवा अलि भौंरा । कमल पद्म कोमल मृदु कोरा ।।
दाढ़ी हनु औ कूर्च बषानी । ओठ अधर मूंछ समश्रू जानी ।।
आत्मज पुत्र नाप्ति कहि नाती । कन्यासुत दौहित्र कह्याती ।।
महिमानहिं जामात है नामा । आजा पितामह मातुल मामा ।।
भाग्नेया भयने भाइ भ्राता । आजा पितामह जननी माता ।।
सीप सुक्तिका मौक्तिक मोती । दीपक दीप ज्योति कही ज्योती ।।
माला श्रक मुद्रा कहि छापा । टीका तिलक हरै तन पापा ।।
किं करोमि का करौं सनेही । कुत्र गच्छामि जाउ कहं ऐही ।।
किं त्यजामि का छाड़ों कहिए । किं ग्रहणामि गहूँ कहँ हैए ।।
जानव वेत्तिऔ जानो सुवेता । वेद्य सो जानिय जोग्य कहेता ।।
हंता मारणहारहि जानी । मृत जु मुवा रक्षक रषै आनी ।।
पत्र पात पल्लव .नइ फुंनगी । कलिका कली स्फुलिंग चिनगी ।।
मूषक मूष मार्जारि बिलारी । माषि मक्षिका मध्य मंझारी ।।
छुरिका छुरी सूचिका सूई । असि तरवारि धनुहि धनु हुई ।।
स्मरण ‧यादि विस्मरण बिसारे । लेहु बुलाइ आहूयकारे ।।
ईटं इष्टिका अस्म पषानं । माटी मृतिका अग्नि कृशानं ।।
दत्त औ दीन्ह कर्त्तव्यता करनी । रीझि प्रसंन श्रेष्ठ बड बरनी ।।
होउँ भवामि भवसि त्वं होई । अमुक फलान देवदत्त ओई ।।
पठक पढ़त पाठक जु पढ़ावै । परुसै परेषक पाचक पकावै ।।
मांगि प्रार्थय दास्यति दैहै । नास्ति नाहि कथयिष्यंति कैहै ।।
बदति कहति बदकहु द्वै दोई । ब्रवीम कहत हो अहं मैं होई ।।
बहु बहुधा सकृत एक बारा । सत कहि सय जु सहस्र हजारा ।।
अपर और उत्तम कहि आछा । कुक्कुट मुरगा वत्स कहि बाछा ।।
कर्पट चिथरा भाजित भूंजे । षराऊँ पादुका अर्चित पूजें ।।
लोह लोष्ठ पुनि अय कहि ताही । दंड लष्टिका लाठी आही ।।
पांष पाष दोउ भक्ष्य कहि शब्दं । बचन वाक्य वर्षहि कहि अब्दं ।।
शाली धान मुग्द मूंग पाए । अरहर नाम आढकी गाए ।।
अम्ल खटाई मधुर सुमीठे । तीक्षण व्यक्त कटुक करु दीठे ।।
मर्दन मींजव भक्षण षाना । सोयव सयन तांबूल है पाना ।।

कौडी वराटिका महिष जो भैंसा । मुद्रा रुपइया ढबुकं पैसा ॥
छेद छिद्र छत घाव कह्योई । नवका नाव केवट नाविकोई ॥
पानि हाथ करतल जु हथेरो । मृदु कोमलता बज्र करेरो ॥
षदिर षयर कहि चूर्ण चूना । पूग सुपारो द्विगुनं दूना ॥
हरदो हरिद्रा पीपरि स्यामा । सहनागर है सोंठि सुनामा ॥
हरं हरीतकी मरिच मरीचा । कदली केरि कर्दम कहि कीचा ॥
अनित्य न सदा सदा नित्य आही । नित्यानित्य विवेक जो चाही ॥
बूसो तुष पयरा सुपलालं । षर कहि तृणहि चर्म कहि ढालं ॥
पात पत्र दल पुहुप हैं फूला । बदरी बेर पेड है मूला ॥
अंस विभाग मिलन संजोगा । निरुज निरोगा आमय रोगा ॥
बहव प्रवाह निरोध जु रोका । चौपद पशु कहि लोग हैं लोका ॥
सपरस छुवब प्रछालन धोयव । प्रगट प्रत्यक्ष है गुप्त सो गोइव ॥
सूषे शुष्क आर्द्र है गोले । दृढ़ मुहकम जु सिथिल कहि ढोले ॥
जेवरी रज्जु कुठार सुटांगा । झूलत लंवित नग्न है नांगा ॥
ऐंचिव कर्षण प्रेरि चलावन । हन ठोंकिब मारन प्रहरावन ॥
झंगा हइ कंचुक पनहिं उपानह । उष्णीय पगरी जानहु तानह ॥
स्वर्ण सोन रूप रज बरना । ताम्र है तांव रांग बंग करना ॥
भगिनीं बहिन औ बिटिया दुहिता । स्नुषा नाम पतोहहि कहिता ॥
बनियाँ वणिक नापिता नाऊ । है अहीर आभीर कहाऊ ॥
उतरव अवतर चढ़ आरोहन । बैठे चढ़ि आरुढ़ है सोहन ॥
तम अंधियार प्रकाश उजासा । न्यारे पृथक मिश्रित मिले तासा ॥
दिवा दिवस है राति निसा है । जाम प्रहर घरि घटिका आहै ॥
रोइव रुदन हास कहि हसना । चक्षु आँषि कहि जीभ है रसना ।
पेट उदर अरु पावक आगो । प्यास तृषा क्षुत भूष है लागो ॥
घर्म घाम छाया कहि छाहीं । मस्तक मूंड भुजा हैं बाहीं ॥
बूढ़ बृद्ध शिशु बालक बोले । जुवा ज्वान कहे मुक्त सु षोले ॥
कुवां कूप है ताल तडागा । रुष बृक्ष कह बाटिका बागा ॥
पीपर अश्वत्थ बर वट भाषा । तितिनी अमिली डार है साषा ॥
माली मालाकार कहीजै । नाम कुलाल कुम्हारहि लोजै ॥
इतः उतः कहि इह तै उहं तै । तदनंतरता पोछैं बातैं ॥
तो सरषे मो सरषे अहिए । तब सदृश मम सदृश कहिए ॥
भृत सेवक भृत्या कहि दासी । क्रीडा षेल हास कहि हासी ॥
परिकर कमरि निबद्धतां बांधो । गार्ध सहित निजोजितां नांधो ॥

दोहा— इदं कही सब वस्तु कहँ जीव औ जंतु बराय ।
ठाढ़ा उत्थित एष एह सानिधि समीप कहाय ।।४६६।।

चौ०— भला बना है सम्यक जातं । कसकस किमिति किमिति कहि बातं ।।
बड़ा ढीठ है महा भ्रष्ट असि । डरत है नाहि न भेति कही तसि ।।
अहं न जाने मैं जानत नाहीं । उक्तवानस्मि मैं तो कहाहीं ।।
कोप्यागक्षति कोउ आवत है । पश्यतां देषु अरोचि न भावत है ।।
भीति मेडुक चौतरा चत्वर । पूछव प्रश्न जवाब है उत्तर ।।
बितता इव सोइ विग्र कही जै । आहूय जाहि बुलाइइ लीजै ।।
लहंगा अधोपट साटी सारी । कंचुको अंगिया जुवती नारी ।।
फुफुदी नीवी बलय जु चूरी । कुंकुम केसरि रज कहि धूरी ।।
दूब है दूर्वा गड़हा गर्त । चंदन श्रीषंड धूत है घूर्त ।।
धावंतु दौरि लेव आदाई । बायू वात सुषद सुषदाई ।।
देव एक देवौ द्वै बचना । देवा बहुत जानि ब्युह रचना ।।
कृत जो करिब किया क्रत बरना । रहसि एकांत प्रसर कहि सरना ।।
करि विश्राम जात है कोई । विश्रम्य गच्छति कहिए सोई ।।

दोहा— लाल कछुक इह संस्कृत पैंड़ा[1] दीन्ह बताइ ।
औरउ लीजेहु सोधि सुनि पंडित संगति पाइ ।।४६७।।

।। इति श्री अवध विलासे बुद्धि प्रकाशे सब गुन रासे भक्त हुलासे पाप विनाशे कृत लालदासे शास्त्र संवाद संस्कृत भाषा वर्णनो षोडश विश्राम।।१६।।

दोहा— ४६७ के अन्तर्गत —
१ पैंडा=मूल

:—: अथ सप्तदश विश्राम :—:

चौ०—राम बरेषी[1] किनहुँ न कीना । सिय मन भयो दिषवार प्रवीना ।।
सुर नर असुर नाग पुर माहीं । राम समान आन बर[2] नाहीं ।।
रूप शील गुन बल भल जाना । घर बर जनकि कुंवरि मनमाना ।।
वेद पुराण स्मृति ऊ भाषा । सबके राम शिरोमणि राषा ।।
गुन सुनि सुनि जानकि अनुरागी । पूजन गौरि गनेसहि[3] लागी ।।
विनये करति कहति कर जोरी । देहु राम बर शैल किशोरी ।।
कातिक[4] माघ अन्हाति बैसाषा । होइ रघुबर बर यह अभिलाषा ।।
तीज आदि ब्रत त्रियन के जेते । सीता करन लगी बिधि तेते ।।
पूरब प्रीति जगी सुधि आनो । मिलै बेगि पिय सिय अकुतानो ।।
उहाँ राम सब अंतरजामी । समुझि प्रेम सत कीन्ह जु स्वामी ।।
सदा रही सिय मम हिय लागी । दरस परस निस दिन अनुरागी ।।
कबहुं न भयो बियोग प्रिया सों । सोरह बरस बिछुरि भए तासों ।।
अस कहि भक्त भाव मन हरषा । मुनि को मन रघुबर आकरषा ।।
प्रेरे असुर देहिं दुष जाहीं । रिषि मुनि जहाँ रहैं बन माहीं ।।
जप तप होम जज्ञ जब करहीं । राक्षस देषि देषि जरि मरहीं ।।
बिप्र बहुत असुरन्ह सताए । विश्वामित्र अवध कौं आए ।।
सुने बशिष्ट गाधिसुत आए । राजा मिलि सन्मुष गृह ल्याए ।।
बैठे मुनि नृप आदर कीना । पग बंदन करि आसन दीना ।।

दोहा— मुनि मन लषि नृप जकि रहे पुछत न रह्यो न जाइ ।
आयसु माँगत लाग भय का धों कहैं रिषिराइ ।।४६८।।

दोहा— ४६८ के अन्तर्गत—

१ बरेषी=बर देखने वाला ।

पाठान्तर २ अवर बर (छ० प्रति)

३ गौरि गनेसहि=गौरीगणेश । मांगलिक कृत्यों में लोकजीवन में गौरी गणेश की बंदना की जाती है । विवाह के अवसर पर आज भी प्रायः सभी अंचलों में "बेटी पूजैं लागी गौरि गनेस मनावैं लागी सुरसतिया" का लोक गीत गाया जाता है जो इसी पूजा का संकेत है । कवि ने लोक मानस की आस्था को व्यक्त किया है ।

४ कातिक अभिलाषा=क्वाँरी कन्याएं श्रेष्ठ वर की प्राप्ति की कामना से कातिक, माघ वैशाख माह में स्नान करती तथा ब्रत रहती है । लोक जीवन की इसी मान्यता के अनुसार सीता भी जन साधारण की भाँति ब्रत रहतीं हैं ।

चौ०—बोले नृप मुनि तुम निहकामी । आए केहि कारन कहो स्वामी ।।
रहित प्रपंच ममत्व नहि माया । बिषय भोग तजि तप मन भाया ।।
धन्य तुम्हार जन्म सब होते । करि सुभ कर्म स्वर्ग सुष जोते ।।
सेवक मोंहि मानि मुनि लीजै । आयसु देहु कवन बिधि कीजै ।।
कहै रिषिराज भूप समुझाई । राजनीति की कथा चलाई ।।
निर्बल को बल कहियत राजा । बालक कें बल रुदनहि साजा ।।
त्रिया चरित्र जुवति बल राषे । तस्कर बल अंधियारहि भाषे ।।
मृग कें बल घन बन भगि जाई । मीन महाबल नीरहि पाई ।।
बिप्र वेद तप बल अधिकारा । क्षमा महाबल सब संसारा ।।
मिथ्या छल बल होइ जुवारी । गनिका बहुत रूप बलधारी ।।
मूरष को बल मौन गहाई । जाचक कें बल गुन कछु पाई ।।
दाता कें बल धन होइ हाथा । क्षत्री सूर खरग बल भाथा ।।
पावक पवन पाइ बलवंता । पक्षि पंष बल उड़त अनंता ।।
जंत्र मंत्र बल जोगी मानैं । बैद्य महाबल नारी जानैं ।।
बिप्र गऊ बिन नाथ बिचारे । तिन्हके चहि राजा रषवारे ।।
कंचन लिए फिरै कहुं कोई । बाट घाट चिंता नहि होई ।।
जाकी भूमि राज्य होइ जहँ लो । रक्षा षबरि करत हैं तहं लों ।।
दुर्बल दुषित होइ ताहि संभारै । राजा दुष भय दोष निवारै ।।
करै न्याउ सबकें मन मानैं । शत्रु मित्र नहि पुत्रहि जानै ।।
कर्म अजुक्त करै नहि पावै । जैसे गुरु शिषि को समुझावै ।।
बांधै नीति मजाद सुहांती । जो जस होइ रहै तेहिं भांती ।।
देब अतिथि तीरथ जहं पावै । पूजा करि सन्मान बढ़ावै ।।
जस जस प्रजा बढ़त धन पाई । राजा देषि देषि हरषाई ।।
पूरन भयो निरषि जिमि चंदा । बढ़त समुद्र होत आनंदा ।।
राजा जथा प्रजा होइ तैसी । धर्म अधर्म भावना जैसी[१] ।।
बडे होई आगें कछु करहीं । तैसें लघु पीछें अनुसरहीं ।।
दाता सूर होइ सत्यवादी । धीर गंभीर स्वधर्म मजादी ।।
राजा बेनु राज्य करि गाजे । धर्म साधि पुनि स्वर्ग बिराजे ।।
लोभ दंभ अभिमान निवारा । बेना बोनि औ कीन्ह अहारा ।।

दोहा ४६९ के अन्तर्गत—

१ पाठान्तर: धर्म अधर्म भावना जैसी । राजा जथा प्रजा होइहै तैसी । (व० प्रति)

संजम करै भोग कछु नाहीं । तपस्वी भए रहैं घर माहीं ॥
बिषय भोग के औगुन जानें । मुषि सुष पुनि दुष होत बषानें ॥
सात समुद्र जहाँ लगि धरती । राजा बेनु भए चक्रवरती ॥
तैसी जो धर्मात्मा रानी । सतब्रत पतिब्रत धरें सयानी ॥
सदा सरोवर प्रात अन्हाई । पुरइनि पर पग धरत सुहाई ॥
सर मधि मंजन करत निहारी । धन्य धन्य कहैं सत्र नर नारी ॥
धर्म प्रताप न बोरत पानी । जल पर फूल ज्यों फिरत है रानी ॥
या बिधि बहुत दिवस गये बीती । रहैं निरलोभ रिषिन की रीती ॥
कबहुँ कि पुन्य काल भए पर्वे । तीरथ जाइ जुरे जन सर्वे ॥
धन संपति सब बडे समाजा । समुझि न परत प्रजाहि न राजा ॥
नष सिष लों गहना त्रिय साजे । कंचन रत्न जराव बिराजे ॥
बनि बनि बनिता पुरवहिं रानी । रानी तिन्ह कों देष लजानी ॥
चेरी देषि देषि मुसिक्यानी । तुम रानी किधों ए ठकुरानी ॥
षान पान पहिरन सब सूचे । चहियत तुमहिं सबनि तें ऊँचे ॥
सुनि दासी के बचन अयानी । रानी कछु जिय मैं ललचानी ॥
आई भुवन शिथिल गति हीना । देषी पति मन बदन मलीना ॥
राजा कहत पूँछि कुशलाता । कस मन आजु कहो कछु बाता ॥
पति सों प्रिया जो अंतर राषैं । लागै दोष बेद अस भाषैं ॥
पति त्रिय के दुष नहिंन निवारें । सो अपनो परलोक बिगारें ॥
पूछो बात भली महाराजा । बिनु सिंगार त्रियन केहि काजा ॥
राजा बहुत भाँति समुझाई । पतिब्रत बिनु त्रिय कोंन बड़ाई ॥
इह तप तेज सुजस नहिं रैहै । निंदा अपकीरति को लैहै ॥
अस कहि मंत्री लीन्ह बुलाई । ग्रेह ग्रेह कौड़ीं एक लाई ॥
राजन्ह कैं धन अंत न आयो । इन्ह नृप दंड दोष समुझायो ॥
या बिधि देस दंड करि लीना । ता धन के गहना करि दीना ॥
गहना पहिरि गुमानहिं भूली । गई नहान सरवर मन फूली ॥
बूडेउ धरत पात पर पाऊ । लीन्ह उठाइ चरन बहिराऊ ॥
डरी लजान हसै जिनि कोई । दइसत छूट कवन गति होई ॥
राजा बात जानि पछितावा । रानी बहुत भाँति पतितावा ॥
क्षमा करहु कहि अंचर ओडी । जिन्ह की तिन्हहिं दीन्ह नृप कोडी ॥
रघु हरिचंद बेनु नृप आदी । दाता सूर भए सत्यवादी ॥

दोहा— केहु तन केहु धन राज्य केहुँ सुत बनिता केहु दीन्ह ।
लाल दान सनमान करि जग बहुतन्ह जस लीन्ह ॥४६८॥

चौ०— तातैं तुमहुँ नृपति जस लेहू । राम लषन दोउ बालक देहू ॥
जिय जिनि डरहु करव नहिं जोगी । देवैं आनि अधिक करि भोगी ॥
हनैं असुर ए पुत्र तुम्हारा । तुमकों जस होइ काज हमारा ॥
राजा सुनत चौंकि दुष पागे । मुनि के बचन बान से लागे ॥
किनि कीन्हे ब्राह्मन कहै राजा । माँगत लेत डरत नहिं लाजा ॥
अपनों काज सुधारेउ चाही । आन की रहो बिगरि क्यों न जाहीं ॥
छांड़हु मोहि मैं देहुँ न वारे । मुनि जु गहत हौं पाइ तुम्हारे ॥
राजपट माँगों देउँ जेई । मेरे तौ जीवन धन एई ॥
राषै निकट सदा रहै पकरी । जैंसे होइ अंध की लकरी ॥
पुत्र न देहुँ सहब बरु गारी । देहै श्राप लेव शिर धारी ॥
पाए पुत्र बहुत बय बीतैं । रिषि दिए जात नहीं ताहीं तैं ॥
पुत्र सबहि मम प्रान अधारे । करहु न राम हीए तैं न्यारे ॥
मुनि कहै काज एक अब कीजै । गुरू तुम्हार कहैं तौ दीजै ॥
देहु पुत्र सोचहु जिनि माहीं । जहँ मुनि तहँ इनको भय नाहीं ॥
भक्त काज भू भार उतारन । इन्ह के जन्म आहि एहि कारन ॥
लछिमन भरत शत्रुघन भाई । इन्हके जन्म कहे समुझाई ॥
बहुत बली किन होइ सयाने । जाको पै काज सोई करि जानैं ॥
संकट धर्म परेउ महाआई । राम लषन नृप लीन्ह बुलाई ॥
धनुष बान असि कटि कसि तूनों । भइया आइ ठाढ़ भए दूनों ॥
गहि कर कमल अंक बैठाए । चुंबन करि मुष हीएं लगाए ॥
पूत जुद्ध सन्मुष होइ कीजो । मुनि कछु कहै मानि सोइ लीजो ॥
बाट घाट शंकर रषवारे । बिधिहरि होहु सहाइ तुम्हारे ॥
या विधि बिदा भए दोउ बारे । करि प्रनाम मुनि संग सिधारे ॥
राजा समुझि सोचि पछिताई । कीन्ह कहा दीए पुत्र बहाई ॥
देषहु कुमति भई दुष दाते । मैंहूँ न संग गयो जहं जाते ॥
बिश्वामित्र नाम जग पायो । मो कहँ तो बिषहा होइ आयो ॥
आयो जटा[1] झुलावत दाढ़ी । लै गयो जीव प्रान से काढ़ी ॥
ठग ज्यों मोहि ठग्यो अचकाईं[2] । लै गयो पूत दूत की नाईं ॥

दोहा ४७० के अन्तर्गत—

१ आयो जटा......दूत की नाईं =कवि ने दशरथ के द्वारा विश्वामित्र के प्रति जो व्यंग्योक्ति की है उसमें एक सहज ग्रामीण पिता की हार्दिक भावनाओं की झलक मिलती है ।

२ अचकाईं =अचानक

सुने जग्य रक्षा के काजा। राम लषन रिषि कों दए राजा ।।
रानी[३] आइ कहो झुकि बाता। बूढ़ भए बुद्धि हरी विधाता ।।
कंचन ग्राम गाइ गज होई। सुने हैं न पूत दान[४] देइ कोई ।।
अपनींय बात आपु ही मानों। पूछत हौन काज करि जानों ।।
कौन भाँति षाइ कहँ रैहैं। सय सालन अब को करि देहैं ।।
पौढ़िहैं कहाँ भूमि निषरोरैं। कहते फूल गड़त हैं मोरैं ।।
माँगि न लीन्ह कबहुँ सकुचाते। हौंहीं देति तबहिं कछु षाते ।।
उपटन तेल तपत जल धरिहैं। तहँ को जतन पूत के करिहैं ।।
दइ अस काज करत हैं केऊ। होत हैं जड़ मूरष नहिं तेऊ ।।
दए हुते संग सुभट सयाने। वै लरिका कहो लरि कहा जानैं ।।
धूनति सीस मीजि कर दूनों। भल दइ मोंर कीन्ह घर सूनों ।।
मंत्री सुमतउ कहां सिधाए। उहुँ दइमार न नृप समुझाए ।।
डोलहु जाहु बकहु जिनि कोई। अब तो हरि करिहैं सोइ होई ।।
जौं काहू को न कीन्ह बिगारा। हमरोउ काज न होइ विकारा ।।
चले तुरंत हरषि मनमाना। कारज सिद्धि होइ मुनि जाना ।।
सुंदर बाल किशोर कृपाला। देषि देषि मुनि होत दयाला ।।
चितवनि चलनि चपल मन भावनि। बनचर मयुर मृगन्ह संग धावनि ।।
पादप सिषर उतंग निहारनि। पल्लव पुहुप सीस पर धारनि ।।
गहि तरु-डार नवाइ झुलावनि। लछिमन हो एहि भाँति बुलावनि ।।
कबहुँकि उमगि अलापनि गावनि। कबहुँ कि कटि पर कसनि बनावनि ।।
कुहकि कुहकि कोइलहि बिरावनि। लैलै फल कर मुनि तन आँवनि ।।

---

३ रानी ......गड़त हैं मोरै=पार्वती की तपश्चर्या और उसके सौकुमार्य में "महार्घशय्यापरिवर्तनच्युतैः, स्वकेशपुष्पै या स्म दूयते, अशेत सा बाहुलतोपधायिनी, निषेदुषी स्थंडिल एव केवलम्" 'कुमार संभव' कालिदास) पार्वती के सहज आंगिक सौकुमार्य एवं तज्जन्य विषम परिस्थितियों का चित्रांकन विरोधाभास के माध्यम से महाकवि कालिदास ने अनेक श्लोकों द्वारा कुमार संभव में किया है। अभिव्यक्ति की उसी विधा को ग्रहण करते हुए महाकवि लालदास ने भी राम और लक्ष्मण के वनवास जन्य पीड़ाओं को अभिव्यक्ति दी है। इस प्रसंग में लालदास ने वात्सल्य की कोमल संवेदनाओं को विस्तार एवं गांभीर्य प्रदान किया है।

४ पूत दान =पुत्र का दान। कवि ने कौशल्या के माध्यम से पुत्र विछोह की मातृ-सहज भावनाओं को विस्तृत अभिव्यक्ति दी है। 'पुत्रदान' लोक जीवन में न तो स्वाभाविक है, और न ही परम्परा से पुष्ट है। कवि की यह तर्क पूर्ण उक्ति उसकी स्वयं की वाग्विदग्धता है।

इह फल फूल कवन प्रभु आही। पूछि लेत देषत कछु ताही ॥
मुनिमन[५] मगन पग न परै आगै। बिसरे मग कौतुक रस लागै ॥
कबहुँकि कहत चलहु तजि षेला। आश्रम दूरि भई बड़ि बेला ॥
भूष न प्यास त्रास गइ छूटी। मुनि बन माँहि रूपनिधि लूटी ॥
सपरस दरस करत संभाषन। चले जात पुरवत अभिलाषन ॥
ब्रह्मादिक तरसत आभा कों। देषत मुनि संपूरन ताकों ॥

दोहा— रही पिचासी ताडिका तेहि बन पहुँचे जाइ।
मुनि ताके गुन करि कथन रामहिं दीन्ह बताइ ॥४७०॥

चौ०—प्रभु यहि मारि तारि गति कीजै। हम कहं अभय करो जस लीजै ॥
राम बान जब धनुष सुजोरी। गरजि घोरि संमुष दोइ दौरी ॥
हृदय बान मारेउ धनुधारी। सुन्दर तनु भई जक्ष कुमारी ॥
श्रापित रही मिटेउ दुष शोका। राम स्तुति करि गई सुर लोका ॥
गंगा उतरि गए मुनि धामा। सिद्धाश्रम जाको है नामा ॥
पूरब ओर अवधि तें जाही। दद्री तैं दक्षिण दिसि आही ॥
गंगा निकट महासुष करना। द्वितीय जानु नंदन बन बरना ॥
बोले राम कहो रिषि जेता। कहँ वै दुष्ट तुमहिं दुष देता ॥
मुनि कहैं जज्ञ करब हम जबहीं। दक्षिण तैं आवत हैं तबहीं ॥
डारत अस्थि चर्म मल रुधिरा। करत उच्छिष्ट औ बरषत मदिरा ॥
भए बिप्र इकईश हजारा। जज्ञ वेद बिधि जाननिहारा ॥
और अनेक जुरे श्रुतिधारी। गणै कौन भोजन अधिकारी ॥
दिषि होम धूम बेद सुनि बानी। आए दैत्य होत जज्ञ जानी ॥
बड़े बीर मारीचि सुबाहू। महाबली मानत नहिं काहू ॥
आए असुर राम जब जाना। गहि कर धनुष बान दोउ ताना ॥
वायुवान मारीच बिकारी। सौ जोजन डारेउ फटकारी ॥
पावक बान सुबाहु संघारे। और दैत्य लक्ष्मण सब मारे ॥
आए बिप्र जज्ञ मैं जेते। राम स्तूति करत भए तेते ॥
जय जय राम हरन दुष द्वंदा। दीनदयाल सच्चिदानंदा ॥

---

५ मुनिमन·········रस लागै=वात्सल्य ही गृही जनों के आनन्द का मुख्य स्रोत है। कवि ने मुनि के साथ बन पथ में दो किशोरों की बाल्य सुलभ चापल्य एवं विविध रसात्मक क्रीड़ाओं का मनोहारी चित्रण किया है। गृही जनों की तो बात छोड़िये। वीतराग विश्वामित्र का मन भी इन लीलाओं में रस मग्न होकर आत्म विस्मृत हो गया। प्रभु की ऐसी लीलाओं का प्रस्तुतीकरण एवं लीलाएँ भक्तों की रसमग्नता रसिक साधना का आधार है।

अचरज कवन असुर किए अंता । शक्ति अनंत जुक्त भगवंता ॥
बैर प्रीति तुम्ह सों जिन्ह लाई । रीझि षीझि[1] दोऊ गति दाई ॥
उलटे बीज सोझ परो कैसे । जामै फलै दोउ सम जैसे ॥
दरसन संभाषन बहु कीने । रहि दिन तीन सबनि सुष दीने ॥
पुनि दोउ भ्रात प्रात गहि पाया । आयसु देहु करव प्रभु दाया ॥
जो अब घर हम बेगि न जैहैं । कहं धौ बहे गये नृप कैहैं ॥
चिंता[2] मात सुमित्रा करिहैं । कोशल्या अति दुष करि मरिहैं ॥
चित जिनि धरहु अकेल हैं वारे । जैहैं चले प्रताप तुम्हारे ॥
जिन्ह कें माथ हाथ तुम धारे । तिन्ह के भय दुष दोष निवारे ॥
जब कछु काज परै प्रभु आनो । आज्ञा करत रहब जन जानो ॥
बोले न मुनि कछु उतर न आया । करत न बनत बिदा लगि माया ॥
दुहुँ कर परसि कपोल सुहाए । पुनि दोउ बीर हृदय लै आए ॥
सुनियत एक जनकपुर आहू । कौतुक होत देषि तेहि जाहू ॥
और एक है काज तुम्हारा । गोतम त्रिय को करहु उधारा ॥
इह कहि मुनि तेहि मग मन दीना । गए जा ।बन गोतम तप कीना ॥
बैठे तहँ मुनि कथा चलाई । जा बिधि शिला अहिल्या गाई ॥
ब्रह्मा की कन्या गुन धामा । या किउ मुक्ति करो अब्र रामा ॥
इहाँ बिस्तारि कहि न मैं तोई । कथा याहि जानत सब कोई ॥

दोहा— गए जहाँ रहि मुनि बधू श्रापित शिला अचेत ।
तारी चरन छुवाइ कै केवट[3] कुटुंब समेत ॥४७१॥

दोहा ४७१ के अन्तर्गत—

१ रीझि खीझि=राग-द्वेष । कवि के इस कथन में तुलसी के निम्नांकित दोहे का प्रभाव सुस्पष्ट है—

"तुलसी अपने राम को रीझि भजौ चहै खीज ।
उलटो सूधो जामिहैं खेत परे को बीज ॥
—दोहावली, तुलसी

२ चिंता मात.........जन जानी=संतान को अपने माता पिता के लिए ऊब लगना स्वाभाविक ही है, कवि की यह उद्भावना मौलिक है ।

३ केवट कुटुंब समेत=संत लालदास ने केवट संवाद का मात्र संकेत ही किया है, प्रसंग के विस्तार में नहीं गये ।

चौ० — बिनु साधन जिज्ञासु बिहीना । जोरावरी मुक्त तोहि कीना ॥
पैड़उ[१] चलत राम अस तारै । लाल भजै नहि कस न उधारै ॥
ठाकुर और बहुत हैं आही । सेव कराइ देहि कछु ताही ॥
लाल हमार राम भल राजा । मुक्ति देत बिनु ही कोएँ काजा ॥
ऐसे प्रभु तजि औरहि धावै । करै कलेग कछू नहि आवै ॥
जैसें धान छाँडि बुष कूटै । फोटक परै हाथ दुष लूटै ॥
अपनों भल कीयो चहै कोई । रामहि लाल भजहु सब कोई ॥
चलत पंथ बतरस अनुरागे । जानि बूझि पुनि पूँछन लागे ॥
कौन चरित्र होत जहँ जाई । मुनि जू षबरि सुनी कछु पाई ॥
मैं कह चरित कहूँ जस आही । तुमही करिब देषिहौं ताही ॥
महादेव[२] जब त्रिपुरहिं मारा । जाहि धनुष करि बान प्रहारा ॥
सोइ उह चाप जनक के भवना । शंकर राषि गये गिरि रवना ॥
हरहि जनकही अति रस रीती । पूजत बहुत भाँति करि प्रीती ॥
पूजा पाठ जाप नृप करहीं । पर्‌यो पिनाक रहत ता घरहीं ॥
षेलत कुँवरि गयी मन केंही । लीपब आज सुधारिब मैं ही ॥
रानी मनै करत भई आई । गहिहै हाथ कछु जिनि इतराई ॥
लीपति पोतति हरषति भारी । आजु धौं काहे कहति महतारी ॥
धनुष बाम कर लीन्ह उठाई । लीपे पर फिरि धरेउ बनाई ॥
सियबल अतुल जानि जब लीनों । तब लों जनक धनुष प्रण[३] कीनों ॥

दोहा ४७२ के अन्तर्गत—

१ पैड़उं = रास्ते में चलते ही ।

२ महादेव जब त्रिपुरहिं मारा = शिव के द्वारा त्रिपुर का विनाश । इस घटना का उल्लेख भट्टिकाव्य, बाल रामायण (४,५४) अध्यात्म रामायण (१,६,७०), आनन्द रामायण (१,३,५६) पद्म पुराण के वंगीय उत्तरखण्ड तथा रामकियेन (अध्याय १२) आदि में भी प्राप्त होता है ।

३ धनुष प्रण = जनक ने धनुष तोड़ने वाले के साथ सीता का विवाह करने का प्रण किया । सीता ने लीपते-पोतते सहज ही धनुष को वाम कर से उठा कर लीपे-पोते स्थान पर रख दिया था । सीता के इस कार्य से जनक ने सीता की शक्ति को पहचान लिया था । लोक में सीता के धनुष उठाने की प्रचलित कथाएँ इस प्रकार हैं—

(१) सीता ने सखियों के संग खेलते समय धनुष उठा लिया ।
(२) खेलते समय सीता की ओढ़नी में लगकर धनुष हट गया ।
(३) सीता ने धनुष को पिता की पूजा हेतु पूजा गृह के निकट उठा कर रख दिया ।
(४) सीता ने धनुष के स्थान की पूजा के निमित्त लीपना चाहा और उसे हटा कर चौकोर चौका लगा दिया । बहुत संभव है लोक में प्रचलित इस मान्यता का आधार लालदास का अवधविलास ही रहा हो ।

जो इह धनुष चढ़ावै कोई । कन्या देहु ताहि •पगु धोई ।।
देषन देव दनुज मुनि जैहैं । राजा बहुत देश के ऐहैं ।।
गए जनकपुर दृष्टि परेरी । औरउ कथा कहत बहुतेरी ।।
ऊँचे महल अनेकन्ह आही । धवलागिरि किधौं अभ्र सराही ।।
कंचन कलस घरन्ह पर राजे । तोरण ध्वजा पताक बिराजे ।।
सरज सरोवर बाग अलेषा । देवल देव अनेकन्ह देषा ।।
घाट अनेक हाट बाजारा । गज तुरंग रथ देष अपारा ।।
जुवति अनूप भरति जल जोहैं । गागरि कनक कमल कर सोहैं ।।
गावति हँसति चलति हरषानी । बोलति मनहुँ कोकिला बानी ।।
देषति राम लषन छबि जोही । बिसरि गई घर के मग मोही ।।
जिन्ह के ए वै आहि धों कैसे । धन्य देश जहँ के नर ऐसे ।।

दोहा — लाल चरन कर कटि हृदय नैंन कपोल सुरंग ।
जहँ जहँ मन जाको गड़ेउ रहि गयो तेहि तेहि अंग ।।४७२।।

चौ० — केउ[१] कहै चलहु तहीं मत कीजै । ऐसे पुरुष देषि सुष लीजै ।।
केउ कहैं पूछि लेहु रस रसहीं । जैहैं चले किधौं इहँ बसहीं ।।
पूछिए इहाँ जाहिंगे काकें । फिरि कहुँ होइ देषिए ताकें ।।
केउ कहैं बड़े भागि ए देषे । नैन सफल भए जन्म बिशेषे ।।
भइ बस रूप देषि अति जातैं । लज्जा छाँड़ि छाड़ि कहैं बातैं ।।
ब्याही देषि देषि पछिताहीं । दइ अस बर हम कहँ दए नाहीं ।।
कन्या कहैं कहा अब करिए । कौन भाँति ऐसे बर बरिए ।।
गौने की रहीं मौनहिं सबरी । अब तो होनहारि होइ निबरी ।।
जे लरकोरि रही कहैं तेई । पइ अस पूत विधाता देई ।।
केउ कहैं बहुत देश हम पेषे । अस सुन्दर नर कबहुँ न देषे ।।
केउ कहैं सब बनै जु बनाई । रूप विधाता के दए पाई ।।
केउ कहैं माघ अन्हात है कोई । होत है रूपवंत अति सोई ।।
केउ कहैं जहाँ रहे कहूँ ऐसे । घर तैं ए निकसन पैहैं कैसे ।।
हाथी न घोर संग रथ ल्यायन । कैसैं धौं पंथ चलत हैं पायँन ।।

दोहा ४७३ के अन्तर्गत—

१ केउ कहै·········बिधाता देई—जनकपुर में राम के सौन्दर्य को देख कर कुमारियों और पुरवधुओं ने जैसी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं वे रसात्मक हो कर भी वैचित्र्यमूलक है। कवि की सौन्दर्य सृष्टि की ललित उद्भावनाएँ मंजुल एवं मनोहारी हैं ।

अद्भुत राम लषन की जोरी । जोइ देषै लगि रहै ठगोरी ।।
कोउ कहैं इह बम्हना जो आयो । बूटी डारि भगाइ है ल्यायो ।।
अद्भुत एक बाग फुलवारी । छह रितु सदा रहत सुषकारी ।।
स्वाद अनेक रंग फल फूला । कंद मूल अमृत सम तूला ।।
सुनि बन राम मनहिं अनुरागे । लक्षिमन मुनि पह आयसु मांगे ।।
आज्ञा पाइ गए दोउ भाई । ताही समय जानकी आई ।।
पूजा करन देवि के हितहीं । जनक कुंवरि आवत तहं नितहीं ।।
जाको मन जासों रहै राता । देत है ताहि मिलाइ बिधाता ।।
जोइ[2] सूरत हिय मैं रही रेषी । सोइ मूरति नैनन्ह करि देषी ।।
मुष तकि जकि थकि रहीं किसोरी । जैसे चंदहि देषि चकोरी ।।
पुनि कस हरष भयो हिय माहीं । दिनकर उदय कमल विकसाहीं ।।

दोहा— अली ओट दै लाडली[3] देषति रूप निधान ।
बदन कमल जनु नैंन अलि लाल करत मधुपान ।।४७३।।

चौ०— सुधि बुधि[1] राम निरषि गई भूली । तोरन लगी कली बिनु फूली ।।
हिय की लगनि प्रगट होइ निसरी । तोरति पात फूल फल बिसरी ।।
कछु की कछुहि कहन लगी बातैं । लषि गई सषी संग की जातैं ।।
चितवति सषि सनमुष दृग जोरा । पुतरी चली जात बिह ओरा ।।
सषि को कुंअरि कुंअर तन राषति । सन्मुष होइ हसत कछु भाषति ।।
लैकर पहुप जो करति बषाना । पियहि सराहति फूल बहाना ।।
पाई अस फूल सदा रस चाषी । हार बनाय हिए पर राषी ।।
बात कहति मन मैं जोइ आवति । पुनि कबहूं लै देति बहावति ।।

---

२ जोइ सूरत········ करि देखी = जिस सौन्दर्य मूर्ति को हृदय में धारण किया जाता है वही मूर्ति नेत्रों के समक्ष दृष्टिगोचर होती है । अनुराग की मानसिक दशाओं का उद्घाटन अत्यन्त भावपूर्ण एवं मार्मिक है । तुलसी की 'मन जाहि राँच्यो मिलहि सो वर सहज सुंदर सांवरो' की छबि कवि की इस पंक्तियों में परिलक्षित होती है ।

३ लाडली=सीता के लिये लाडली शब्द का प्रयोग रसिक साधना की परम्परा के अनुसार किया गया है ।

दोहा ४७४ के अन्तर्गत—

१ सुधि बुधि·········बहाना=पूर्व राग की विविधि मानसिक दशाओं का अनुभावमूलक चित्रण साहित्यशास्त्र के चिंतको एवं रसिक भावकों के लिये आनन्द प्रदान करने वाला है । ललित मनोभावों की महत्तम अभिव्यंजना में लालदास, कालिदास और तुलसी की भाँति रससिद्ध कवि के रूप में सामने आते हैं ।

भरि भरि भेंटति बाँह सुभागी । झूलति सषि कें हिय गर लागी ।।
फुलवा लैन कतहुँ नहि जाइब । याही बेर प्रात पुनि आइब ।।
त्रियनि तै अगम न निकसति जाना । फिरि फिरि चितवति याहि बहाना ।।
मुष करि झुकति नैंन रस माहीं । मोहि कहति चलु चलति है नाहीं ।।
पीत पितांबर साँवरे अंगा । घन दामिनि जनु सोहत संगा ।।
बरषत सुधा रूप धुनि हासा । नाचत सियमन मयुर हुलासा ।।
जैसे कृपन राषि धन बन मैं । आवत तन घर मन वहि धन मैं ।।
फुलवा लीन्ह बैठि जेहि छहियां । मुंदरी मोरि गिरी तेहि ठहियां ।।
छल करि फिरी कीन्ह चतुराई । देषे प्राननाथ पुनि आई ।।
चितवनि चलनि कहनि मृदु सोही । लीला ललित देषि सिय मोही ।।
बन मृग षग बैठे तिन्ह धाई । देत उठाइ उड़ाइ भगाई ।।
तिय तहँ देषि देषि मृग देहीं । जाहि समीप बहाने एहीं ।।
बेर बेर एहि मिस लग आवत । करि करि चरित चोप चित लावत ।।
धावनि नवनि उठावनि कर की । चितवनि तकनि चलनि मनहर की ।।
देषि राम छवि रीझि कुमारी । विह्वल होय गिरी न सँभारी ।।
संग की देषि सहेलि डरानी । दई का कहिब पूछिहै रानी ।।
केहु कनियाँ केहु बाँह गहाई । देवी के मंदिर लै आई ।।
जुवतिन जतन करे कछु जानी । सावधान हावै पूजि भवानी ।।
मांगि मनोरथ कीन्ह बड़ाई । या विधि जनक कुँवरि घर आई ।।

दो० — सुंदरता अरु बान बिष बिरह बियोग बिहाल ।
जे लागे नहिं जानिए जब लगि गिरै न लाल ।।४७४।।

चौ० —लछिमन मोर होत मन ऐसा । कहत हौं तोहि सुनहुँ कछु जैसा ।।
चढ़हि न धनुष और पै काही । तोरब मैं हि बिवाहब याही ।।
जो पै कोऊ अवर बली आवै । लेहु छुड़ाइ आन नहि पावै ।।
सिय प्रन कीन्ह मनहिं मन भारी । रामहिं बरब कि रहब कुमारी ।।
काहे न धनुष चढ़ावहु कोई । मेरे तो वर राम भयोई ।।
जनकहु को प्रन रहु किन जाहू । राम बिना बर करिब न काहू ।।
तजै सिंह समरथ सरनाई । जंबुक के सरनहिं रहै जाई ।।
पारस को तजि पकरै कंकर । पूजै प्रेत छांड़ि हरि शंकर ।।
गंगा जल अन आदर करई । कूपोदक मूरष घट भरई ।।
गज मुकता मनि मूढ़ निवारै । गुंजा कांच सीस लै धारै ।।
कनक राशि तजि धूरि बटोरै । गज तजि सठ रासभ चढ़ि दौरै ।।
कामधेनु तजि अजा बिसाहै । बोइ बबूर आंव फल चाहै ।।

कस्तूरी केसरि तजि रंगा। अज्ञ कीच लपटावत अंगा ॥
अमृत कंद छाँड़ि रस भोजन। षाय जाय विष है अस को जन ॥
देषति जौन होत कछु जोई। अब तो आन बात नहिं होई ॥
चातक आस मेघ की जीवै। तजै कि प्रान स्वाति जल पीवै ॥
जन्म जन्म के होत सुनीता। बर रघुबीर दुलहिनी सीता ॥
याहि तै बारहि बार निहारै। बहुत दिवस तै मिले पियारै ॥

दोहा— लाल राम दृढ़ प्रण कियो देष रूप छबिमान।
मन बच क्रम करिना करव जानुकि बिनु त्रिय आन ॥४७५॥

चौ०— जागत सोवत ध्यानहिं धीता[1]। सीता राम राम मय सीता ॥
आये बहुरि दरश मुनि लीने। करे प्रणाम पुहुप फल दीने ॥
राजा जनक सुने मुनि आए। सभा सहित दर्शन को धाए ॥
बड़े बड़े सोमबंश संग सोहै। पंडित चले गुनी जन जोहै ॥
नमस्कार करि करी प्रदक्षिन। देषे बालक जनक बिचक्षन ॥
मुनि ए कौन कहाँ के वासी। काके पूत रूप की रासी ॥
सोभा सिंधु मध्य से जाये। तुम ए रतन कहाँ कब पाए ॥
देषत इन्हहि हरत भव पीरा। परम जोति वै रागर[2] हीरा ॥
किधौं हरि हर यह होहिं छबीला। निकसे आइ करत कहुँ लीला ॥
की तुम कछु तप बल करि वाने। की बल मंत्र देवता आने ॥
की माया तन धरे अनूपा। मोहत फिरत मोहनी रूपा ॥
किधौं ये कहूँ के राजकुमारा। पढ़िबे को गहे संग तुम्हारा ॥
कस वै मात पिता मति हीने। जिन ए घर बाहर कर दीने ॥
जिन के रूप देषि सुष दीजै। तिन को पलक ओट किमि कीजै ॥
अंग अंग शोभा अवगाहै। बार बार नृप देषि सराहै ॥
की ये अगुण ब्रह्म सुषदाई। परषन मोंहि सगुण भै आइ ॥
बिषय रहित निःकाम निरासी। सदा रह्यो मन मोर उदासी ॥
निरस असार असत जग जाना। इनहि देषि अब सति करि माना ॥
जहँ अस दरस सद्य सुषदाता। मुक्तिउ होत केतियक बाता ॥
पूछे मुनिय कवन कुल यातैं। रींझे देषि भले वर तातैं ॥
प्रण न करत तौ सिय इन्हैं देतो। करि यह काज जगहि यश लेतो ॥
जाति नाम घर पूछि तो लेई। कबहुँ कि धनुष चढ़ावै एई ॥

दोहा ४७६ के अन्तर्गत—

१ धीता=अध्ययन

२ रागर=तराशे हुये (रगड़े)

इह अभिलाष करत भए राजा । भाग्य हमार होइ अस काजा ।।
मुनि बोले सुन जगन भुवाला । ये दशरथ नृपमणि के बाला ।।
पूरब कथा कही समुझाई । जा बिधि मुनि ल्याये दोउ भाई ।।
जे तुम बात कहो मनमाहीं । है सब सत्य अन्यथा नाहीं ।।
सुने जनक हर्षे मनमानें । आदर करि बहुतें सनमाने ।।
करे जतन सेवा बिधि जैसे । नृप अपने मंदिर जाइ वैसे ।।

सोरठा— गौर[3] श्याम छवि पंक मृदुल मनोहर माधुरी ।
नृप मन गज निहसंक गिरे गरु निकसे नहीं ।।४७५।।

चौ०— सेवा करि मुनि कों सुष दीनें । करि निति नेम औ भोजन कीनें ।।
पुनि दोउ भाइ जनकपुर देषा । जिन्ह देषे तिन्ह जन्म विशेषा ।।
कोटि काम छवि रूप दिषाए । सब के मोंहि मन संग लगाए ।।
घर घर सभा सबहि नर नारी । चरचा राम लषन की धारी ।।
निरषैं हरषि हरहिं मन पीरा । जहँ जहँ जाहि होत तहँ भीरा ।।
कुलवहि क्रम गुन रूप सुशीला । मिलि गए बालक लगि गए लीला ।।
राजा सबहि देषि रस पागे । राम लषन कौतुक रस लागे ।।
केउ नृप देषि कहैं मन मनहीं । कन्या होइ दीजिए इन्हहीं ।।

दोह— सन्यासी निर्गुन कहैं वासुदेव कहैं भक्त ।
लाल ज्योति जोगी कहैं काम रूप त्रिय लग्त ।।४७६।।

चौ०— वाल अनेक सषा संग लीनें । पग बंदन मुनिवर के कीनें ।।
बाग सरोवर पुर बाजारा । बहुबिधि नितप्रति करहिं बिहारा ।।
षेलत करत बिनोद बिलासा । सब कैं होत हिएं देषि हुलासा ।।
शुभ दिन देषि जनक जब भाषा । धनुष मंगाइ सभा मधि राषा ।।
पांच हजार जोध मिलि आना । कठिन गंभीर पहार समाना ।।
धरतहि धरनि धमक अस षाई । जनु भूकंप भयौ मन आई ।।
केउ तकि रहे न मुष कछु बोले । केउ भय मानि सभा तजि डोले ।।
केउ सकुचे अगमन मन माहीं । उठिहै न धनुष रहे भल नाहीं ।।
कोउ कहै कितिक बात इह आहीं । तोरिहौं मैं न छुअन देहुं काही ।।
कौतुक देषहिं देव समाजा । बैठे बिमल बिमान बिराजा ।।
राजा जुरे सिंधु ज्यों बाढ़े । तब तहँ भाट आइ भये ठाढ़े ।।

---

३ गौर श्याम···निकसे नहीं = प्रस्तुत सोरठे में रूपक के माध्यम से सौन्दर्य को अन्तर्व्याप्ति का पुष्ट चित्रण किया गया है ।

हाँथ उठाइ कहेउ तिन्ह ऐसा । सुनु भया जनक कीन्ह प्रन जैसा ॥
जो इह धनुष उठाइ चढ़ावै । कन्या ताहि देउ सोइ पावै ॥

दोहा— ए भाटन्ह के वाक्य सुनि सबही लाल महीप ।
कसि कसि कटि ठाढ़े भए आये धनुष समीप ॥४७७॥

चौ०— लिषि लिषि मंत्र भुजन्ह लिए बाँधी । जपि जपि मंत्र वीर आराधी ॥
पूजा[1] मानि मानि पगु धारे । अपने अपने इष्ट सम्भारे ॥
धनुष चढ़ाइ बिवाहि जो ऐहैं । बलि दै कैं घर कों तब जैहैं ॥
ठाढ़े राम लषन मुनि संगा । गौर श्याम सुन्दर सब अंगा ॥
वय किशोर सुकुमार निहारी । देषि परसपर कहैं नर नारी ॥
कहै कौन जनकहि नर नायक । बर भल रहे वैदेही लायक ॥
दुहुनि मैं काहि बिवाहि जो देते । सबनि सोहात जगत जस लेते ॥
रानी कहै कौन पन धारा । सरिहै न काज जंजाल पसारा ॥
धनुषहि[2] रावन से जु चढ़ैहैं । तौ का सिय राक्षस को दैहैं ॥
जाके करत दोष कों लहिये । सो उह कौन धर्म कहो कहिये ॥
वेद मंत्र सूद्रहिं मुष जैसा । शालिग्राम मलेक्षहि तैसा ॥
कौन दान इह कपिला लीजै । बिप्रहि छाँड़ि कसाइहि दीजै ॥
बिना राम सीता चहै कोई । मम जीयत अस कबहुँ न होई ॥
कहँ इह धनुष कठोर अभंगा । कहँ ए बालक कोमल अंगा ॥
केउ कहै काजु भए तनु छोटे । चहिये पाराक्रम गुन मोटे ॥
दीपक सिह कहत लघु होई । नासत तम गज कों जिमि दोई ॥
जिन्ह जिन्ह दान पुण्य तप कीने । रामहि सबनि समर्पिहि दीने ॥
इन्ह को फल हम कहँ इहि होई । राम लषन बल पावै दोई ॥
नृप महिमान ये होंहि बिशेषी । आवत जात सदा हम देषी ॥
रीझे देषि रूप को रासी । भए पुनीत जनकपुर वासी ॥

दोहा—४७८ के अन्तर्गत—

१ पूजा मानि·········सब अंगा—प्रस्तुत पंतियाँ च० प्रति में अनुपलब्ध हैं । इनका पाठ व० प्रति से लिया गया है ।

२ धनुषहि······कहिये—सीता की माँ का यह तर्क कि यदि धनुष को रावण चढ़ा दे तो क्या सीता का विवाह उसके साथ हो सकता है अर्थात नहीं । कठोर व्रत का निर्वाह ही धर्म नहीं है, धर्म की मूल चेतना शिवत्व है । कवि ने इस प्रसंग में कोमल हृदय के साथ ही धर्म की प्राणवत्ता का संकेत भी दिया है ।

बर माला[3] सीता लिए ठाढ़ी । निरषि राम पुनि अतिरति बाढ़ी ॥
पूरन काम जासु को नामा । देष्यो प्रेम प्रसंन भए रामा ॥
सिय कहै बल हरि हर इन्हैं देई । अस कछु होइ चढ़ावैं एई ॥
बिनुहीं धनुष बरन मन कहई । समुझि पिता पनु सकुचि रहै ई ॥
और सृष्टि अपने बस कीनी । बनिता बिधि परबस कर दीनी ॥
जौ बर करौं अपने मत रोपी । धर्म मजाद जाइ जग लोपी ॥
माता पिता करैं तस होई । अबला नाम धर्‌यो त्रिय तोई ॥

दोहा— बाल पिता भर्ता युवा बृद्ध पुत्र रक्षपाल ।
कबहुँ न होत स्वतंत्रता त्रिय परबस कहै लाल ॥४७८॥

चौ०— असि कहि जकि थकि रहि लियें माला । चित्र लिषी पुतरी जनु बाला ॥
राजीव नैन मदन मद मोचन । चितये सिय तन शोक बिमोचन ॥
प्रफुलित बदन उमगि मुसिक्याने । तोरिहैं धनुष राम सिय जाने ॥
कारज कछु जे करत सयाना । मन उत्साह होत भयो जाना ॥
आदिशक्ति मन मनहिं बिचारै । देउँ महाबल तोरिहि डारै ॥
सषि जब सगुन करहिं मन भावै । तोरैं राम धनुष इहि आवै ॥
देषें महलनि पर चढ़ि रानी । बैठि झरोष गवाक्षन्ह आनी ॥
सबके नैन राम की ओरा । चंद देषि जनु रहे चकोरा ॥
पंडित मुनि मंत्री कहैं एई । है इह चाप चढ़ावै केई ॥
झूठे रंक मनोरथ जैसे । उठैं न धनुष हारि सोइ वैसे ॥
केहुँ[1] गहि धनुष बहुत बल बिहुरे । गइ करिहाउँ लचकि रहे निहुरे ॥
केहुँ धनु आइ तेज करि पकरे । उठत न तजत जानु किहुँ जकरे ॥
केउ अति आतुर होइ पहूँचे । किये बल बहुत मुरकि गए पौंचे ॥
काहू के गर्व रह्‌यो मन माहीं । हल्यो न धनुष उषरि गई बाहीं ॥
केउ चातुर आतुर होइ छूट्यो । चाप सों अढुकि टेहुना फूट्यो ॥
आयो कोउ बकत झुकत लगि सुषरी । धनुष छुअत पुतरहंडी उषरी ॥
आयो कोउ कहत दूरि हो सबहीं । टँगरी टूट बैठि गयो तबहीं ॥

---

३ बरमाला...... सकुचि रहै ई=स्वयंवर के समय सीता का यह कथन कि यदि अपने आप मैं राम को वरण कर लूँ तो पिता का प्रण टूट जायेगा तथा धर्म मर्यादा विनष्ट होगी । सीता का यह अन्तर्द्वन्द कवि की मौलिक उद्‌भावना है ।

दोहा—४७९ के अन्तर्गत—

१ केहु गहि......ठाड़ो=शिव धनुष को चढ़ाने में राजाओं की असमर्थता का तथा उनकी शारीरिक दुर्गति का चित्रण मौलिक एवं हास्य-व्यंग मूलक है ।

रह्यो कोउ बात कहत बल अगरी । गहतहि धनुष उतरि परी पगरी ।।
भरि दोउ भुजा केऊ बड़ राजा । उचकत धनुष मूंड़ई बाजा ।।
रह्यो अंडिलात केउ बल बेढो । धनुष न उठत होइ गयो टेढ़ो ।।
सरों करत रह्यो बल अति बाढ़ो । छाती दरकि गई रह्यो ठाढ़ो ।।
जानते अस जो कहत केउ रोते । काहे कों आइ फजीहति होते ।।
काहू सों न धनुष जव ऊठे । जाने यंत्र मंत्र सब झूठे ।।
आयो महावली चलि रावन । बीस भुजा बहि लग्यो उठावन ।।
हल्यो न धनुष महा अति भारी । सबही हंसे सभा दइ तारी ।।
आए 'सहस्रबाहु महराजा । करि अहंकार चढ़ावन काजा ।।
कहैं संसार जबहि इह गहिहैं । अब का धनुष पर्योई रहिहैं ।।
हांथ[२] हजार उठावन लागो । धनुषहि पर खसि पर्यो अभागो ।।
और जे रहे दोइ भुज वारे । बीचहीं रहि गए सकुचि बिचारे ।।
उठै न धनुष हंसै ताहि सोई । लज्जा मरत छुवै नहि कोई ।।
रानी जबहि देषि पछितानी । सीता रहौ कुंआरी जानी ।।
भई पट छींक सुषेतहि माहीं । होइ काज चिंता कछु नाहीं ।।
तब दोउ भाइ धनुष लग आए । एउ का चहत हैं धनुष उठाए ।।

दोहा— जैसे सिंहहि देषि गज गरुड़हि देषत नाग ।
इन्द्रहि देषि पहार जिमि तिमि धनु कंपन लाग ।।४७९।।

चौ०— तोरौं गहि लछिमन मन माहीं । सिय श्री समुझि अलग होइ जाहीं ।।
चितए राम अतुल बल धामा । चरन अंगुष्ट तें गहि कर बामा ।।
बहुरि उछारि भ्रमाइ निहारी । ऐंचत नेकु टूट दयो डारी ।।

दोहा— एक षंड गयो स्वर्ग कहं एक गयो पाताल ।
एक षंड भूपर परेउ तहं अबहूं है लाल ।।४८०।।

चौ०— सिर करि करि तर नृप सनमाने । सकुचि सकुचि चले मुष मुरझाने ।।
अलि मिलि जनक कुंअरि लै आई । बरमाला रामहिं पहिराई ।।
मोती मणि न्योछावरि बरषे । सबके मन भाए भए हरषे ।।
हरषे देव दुन्दभी बाजे । पुष्प बृष्टि करि आरति साजे ।।
तोरेउ राम धनुष सुनि पाए । हरष भए सबके मन भाए ।।
टूट्यो धनुष मुक्त भयो तबहीं । चौदह भुवन शब्द सुने सबहीं ।।
जोइ देषै सुन्दर दोउ भ्राता । अस जिन्है रचे सो धन्य बिधाता ।।

---

२ हाथ हजार......लखि सोई=प्रस्तुत पंक्तियाँ व० प्रति में नहीं हैं ।

केउ कहैं इह विधि किन चतुराई । विधि करै अस औरउ कहुँ पाई ।।
केउ कहैं सुनु भया बात हमारी । मनुज न होहिं आहिं औतारी ।।
शोभा जस लावनि[1] इन माहीं । अस छवि कोटि काम मैं नाहीं ।।
तोरेउ धनुष सुनत हीं दौरे । आए परशराम भए बौरे ।।
फिरि फिरि जैसे धनुष पर आवै । घर जरि जाइ देषि पछितावै ।।
कहां वै गए धनुष जिन्ह तोरा । नहिं कछु नाम सुन्यो तिन्ह मोरा ।।

दोहा— परसराम[2] अवतार है रामहुँ है अवतार ।
तातै मैं इहाँ ना करे लाल हास बिस्तार ।।४८१।।

छन्द— धनुष[1] देषि डोला जनक राज बोला । हंकारे पंसारी सुपारी सुपारी ।।
दसौंधो बुलाए दै न्योते पठाए । चढ़े तेज घोरे चहूँ ओर दौरे ।।
हैं रे कहूँ नाऊ बुलाइ लै आऊ । औ धावो सबेरे जहाँ दूर नेरे ।।
आए लिषहारी कचहरी हंकारी । लिषो बेगि चीठी हकीकति[2] मीठी ।।
बुलाए कहारा चढ़ाए पहारा । लगाओ न वारा बुलाए सुनारा ।।
सराफैं सयाने जे परषैं षजानें । दै सोने जराऊ लै बेगे बनाऊ ।।
बुलाए बजाजा कहै महाराजा । सबै बाब[3] आनो हैं पकरे जहाँ लौ ।।
चले छरीदारा पयादे अपारा । लै बानियां घेरा सीधा करो ढेरा ।।
लोये हलवाई बनाओ मिठाई । हकारो अहीरा करो दही क्षीरा ।।
कसेरे ठठेरे चलो बेगि घेरे । भरो पान चोली जे बरई तंबोली ।।
करो बेगि बारी होइ पतरी तयारी । रूई बाल बनिया बुलाए जु धुनिया ।।
कहां रंगरेजे रंगे कप्परे जे । चलो मोचि काजै सबै जोन साजै ।।
तयारी तयारी बेगारी बेगारी । चलो पाटवाला गुहो हार माला ।।

दोहा ४८१ के अन्तर्गत—

१ लावनि=लावण्यता

२ परशराम अवतार·········हास विस्तार=परशुराम और राम दोनों ही अवतार हैं । कवि ने इन दोनों के संवाद का वर्णन करके हास्य के विस्तार से काव्य को बचाया था तथा दोनों अवतारों के प्रति आस्था व्यक्त की है ।

दोहा ४८२ के अन्तर्गत—

१ धनुष देषि·········ले बाजा=सीता के विवाह की तैयारियों का बड़ा सजीव एवं स्वाभाविक वर्णन कवि ने किया है । जनक राजा होते हुए भी एक सामान्य गृहस्थ के समान वैवाहिक चिंताओं में व्यस्त हैं । विवाह के वातावरण का ऐसा जीवंत चित्रण कवि की लोक भावना की प्रतिबद्धता का सूचक है ।

२ हकीकत=सच्चाई

३ बाव=सामग्री

लहेरा चितेरा कुंदेरा कडेरा । चलो चूरिवारे कहा सूतहारे ।।
कहा राज[४] थवई[५] बनै महल अबई । करोरे कुहारा होइ भांडे तयारा ।।
तेली करो तेला करै रेल पेला । जे क्वैरी कबारी करो तरकारी ।।
है गए वारे करो दान दारे । हय घास हारा बुलाए लोहारा ।।
गडीवान गाजे रथनि लागि साजे । आए दौरि दरजी लगे ब्योंत गरजो ।।
कनातैं सिमानें औ बागै बनानें । लगे बेलदारा बगीचा सुधारा ।।
करो चलो साजा बजनिया लै बाजा ।

दोहा— लाल जनकपुर के जिते रहे लोग महाभाग ।
हरषे सीता राम की टहल[६] करन सब लाग ।।४८२।।

।। इति श्री अवध विलासे बुद्धि प्रकाशे सब गुन रासे भक्त हुलासे पाप विनाशे कृत लालदासे धनुष विभंजन नाम सप्त दशमो विश्राम ।।

---

४ राज=कारीगर

५ थवई=मिट्टी की दीवारें बनाने वाले

६ टहल=सेवा । रसिकोपासना में टहल (सेवा) का विशेष महत्व बताया गया है ।

—: अथ अष्टादश विश्राम :—

दोहा— लाल विप्र लिए वोलि सुर गुरु समान विद्वान ।
वर कन्या लागे गनन घटि बढ़ि किधौं समान ॥४८३॥

चौ०— चित्रा राम सतभिषा सीता । वारा राम द्वै नव सिय कीता ॥
तुला राम पंचम है रामा । सीता राम कुंभ राशि नव धामा ॥
हारि जीति दोउ सातइ साता । हस्ती राम मेढा जग माता ॥
बर्ण सूद्र दोउ एकहि जाना । राक्षस गन दोउ छहि छहि माना ॥
व्याघ्र जोनि तौ राम है चारी । अस्वा जोनि सिय चारि विचारी ॥
राम मध्य नाडी अठ जानो । आठै सीता अंत बषानो ॥
रासि अधिप सीता सनि पंचा । पांचइ सुक्र तुलाधिप संचा ॥
राम द्विपद वस्य द्वै गुन जीते । जलचर सिय वस्य द्वै हारीते ॥
नव कन्या वर पंचम राशी । राशि कूट[१] गनि लाल प्रकाशी ॥

दोहा— बरष मास तिथि सुभ नषत बेला योग बिचारि ।
लिष्यो लगन मिलि जोतिषिन्ह बहुत भाँति विस्तारि ॥४८४॥

चौ०—अगहन मास द्वैज उजियारी । मूल मिथुन थापे शुभकारी ॥
या विधि लग्न बिचारि लिषाए । अक्षत हरद दुवडवा[१] बनाए ॥
राखे रत्न मजीठ सुपारी । रोचन कुंकुम चरचि सुधारी ॥
मौली[२] लाल लपेटि बनाई । श्रीफल बसन द्रव्य अधिकाई ॥
पंडित बिप्र सुसेंदुर लीने । पढ़ि स्वस्तेन लगन तब दीने ॥
गावैं गीत सुमंगल नारी । सीता राम नाम सुषकारी ॥
बैठे सभा बहुत संग राजा । ऋषि मुनि गुरु कुल बंधु समाजा ॥

दोहा ४८४ के अन्तर्गत—

१ राशि कूट=राशियों का कूट । विवाह के प्रसंग में वर कन्या के गुणों का मिलान ज्योतिष के अन्तर्गत किया जाता है । कवि ने लोकरुचि को ध्यान में रखते हुए ज्योतिष विषयक राशि कूट की गणना प्रस्तुत की है । इससे कवि के ज्योतिष विषयक ज्ञान की पुष्टि भी होती है ।

दोहा ४८५ के अन्तर्गत—

१ दुवडवा=दुर्वा दल का वह समूह जिससे मांगलिक कार्यों में देवाभिषेक आदि किया जाता है ।

२ मौली=लाल तागा

बीरा पान दक्षिणा पाये । आशिष दै सब घरनि सिधाये ।।
दशरथ जन कहिं सबहि सराही । बड़ो बिबाह होइ जग माही ।।
होत सगुन शुभ चलत लै लगना । नाऊ बिप्र भए मन मगना ।।
फिरि गुरु मुनि पूछें नर नाहा । बर इह विधि कीजै अब काहा ।।
बोलै सबै तिलक इह कीजै । लग्न पठाइ अवधि को दीजे ।।
कागद लिषो बिलंब न कारो । सजि बरात बेगि पग धारो ।।

दोहा— प्रथम लग्न लिषि दीये नाऊ बिप्र चलाय ।
करे मटिछुहा पुनि स्थापन तेल हरदी चढ़ाय ।।४८५।।

छंद— कीन्हें पुनि लै माली पूजा चौक कलश जु कारिये ।
गौरि पुनि तृण तोरना करि भाल बंदन धारिये ।
महिर पूजा द्वारहो बधु धारपूजा कीजिये ।
अलक सपरस मिह सो अभ्युदयिक श्राद करीजिये ।
पुनि असनान कराइ दुलहिनि पीत बसन बनाइये ।
होइ नहछू[1] कंकना बंध गीत मंगल गाइये ।

चौ०— टीका विप्र लै सचिव सिधाए । रहे मुनि राम लषन तहँ आए ।।
करि उपचार सुमंगल कारे । बिप्रन्ह चौक पूरि बैठारे ।।
कलस स्थापि गणेशहि माने । पढ़ि स्वस्तेन तिलक तब ठाने ।।
टीका कर पूजे रघुनाथा । पूंगीफल मुद्रा दये हाथा ।।
दीने पान तिलक सब कोई । बिप्रन बहुरि दक्षिना पाई ।।
स्याम भाल पर तिलक ललाई । जनु धन पर मंगल दरसाई ।।
उज्वल अछत बिराजत मानो । कृतिका उदय स्याम निसि जानो ।।
प्रथमहि तो सुन्दरता रहई । दुलहा भए सो अब को कहई ।।
सोभा श्री जग महँ रही जेती । प्रभु तन आइ छाइ रही तेती ।।
नीम षार तीरथ जस जानी । मिश्रित आई भए सब पानी ।।

दोहा— लग्न चलाय अवध को सतानंद भए साथ ।
दए जाइ संुभ दिन घरी नृप दशरथ के हाथ ।।४८६।।

चौ०— देषि बिप्र नृप पालगि कीनी । सतानंद तब आशिष दीनी ।।
कस कागद कहँ कर इह आही । रहत कहाँ अब गए कहँ चाही ।।

दोहा ४८६ के अन्तर्गत—

१ नहछू=विवाह के पूर्व नाई द्वारा दूलह के नाखून काटने की रीति विधान ।
'रामलला नहछू' गोस्वामी तुलसीदास द्वारा बिरचित लोक मंगल पर आधारित काव्य है ।

बोले बिप्र सुनहु महराजा । पठए जनकराज जेहि काजा ।।
राम लषन जे पुत्र तुम्हारे । गाधिसुवन के संग सिधारे ।।
तिन्ह हते असुर महाबल बंका । साधु बिप्र मुनि कियो निसंका ।।
मुक्त कीन गौतम मुनि घरनी । केवट सहित तारि जल तरनी ।।
पुनि मिथुला पुर गए मुनि संगा । गौर स्याम सुन्दर बर अंगा ।।
कठिन बज्र गिरहू ते भाषा । तोरेउ धनुष जनक प्रणु राषा ।।
छिति पर के नरपति अरिमर्दन । सब के मान किये वलमर्दन ।।
अति बल बिदित भये जग जामे । बड़े बड़े बिरद बोलाउन लागे ।।
पंडित पान रत्न कस्तूरी । चंदन चीर तुरग गजमूरी ।।
ए जस जाहि दूरि देसांतर । तस तस मोल बढ़त इतनेकर ।।
राजा जनक बिदेह सयाने । भए प्रसंन बहुत मनमाने ।।
जाको नाम राम अस आही । टीका करि कन्या दई ताही ।।
जनक लग्न पठए तुम पाहीं । आवहिं बाल बिबाह लै जाहीं ।।
करि अब कौन तुम्हारि बड़ाई । हमहिं पवित्र करब इहँ आई ।।
पंथ विषम रहें सुगम सुरचना । षान पान बिश्राम के सचना ।।
दशरथ समाचार सुनि हरषे । अवधि बधाइ भई सुष बरषे ।।
पत्री जब रानिन्ह में आई । केहु सिर केहु गर हिए लगाई ।।
कस हम पर तब भुकतहि रानी । अबका षबरि हँसी मुसुकानी ।।
जौ उपकार होइ अब आवै । सुषी होइ दुष कबहुँ न पावै ।।
लगन कीन मन अति उत्साहू । किय पुनि बिदा बिप्र अरु नाऊ ।।
पूत बिबाह सुनत सुषमानी । हरषि उठीं कौसिल्या रानी ।।
बोलि बसिष्ठ कहै जब राजा । कहो कब होइ बिबाह के साजा ।।

दोहा— मटि छुहथनि पूजा कलस गौरि औ अन कर माल ।
महिर श्राध बसुधार पुजि कियो ब्याह बिधि लाल ।।४८७।।
तेलौ हरदी पीत पट पूजा कंचन ओइ ।
नहछू मौर स्नान ए जहँ दुलहा तहँ होइ ।।४८८।।

छंद— रची और अनेक शोभा चौक मंडप जो बने ।
गावै मंगल गीत कामिनि राज रीतिन्ह को गनै ।
जिये केते जीव तेते करि भोजन भाँतिन्ह भली ।
पूजि कूपहि दाहिनो दै वनि बरात जा बिधि चली ।।

दोहा— अश्व पाइक गज रथ सजे बजे निशान अनेक ।
भये सगुन चले शुभ घरी पंथ नगर भए एक ।।४८९।।

चौ० — नृप आयसु सबहिन शिर धारे । करि बरात बहु भाँति सिधारे ॥
बनि बनि ज्वान पान मुष षाते । भरे उमंग तुरंग नचाते ॥
राजकुमार अनेकन्ह सोहैं । शोभा[1] देषि देव मन मोहैं ॥
चले सब अगमन भरत शत्रुघन । देषन मिलन राम अरु लछिमन ॥
चले अस तेज रथनि दौरावत । जनु घर तरु गिरि सन्मुष धावत ॥
उहँ पुनि राम लषन सुनि पाए । राजा आपु बरात लै आए ॥
गे रथ सजि अति आतुर धाई । मिले परस्पर चारिउ भाई ॥
रामहि जे संमुष भए जानौ । रामहुँ तिन संमुष भए मानौ ॥
ज्यों दरपन नर लेइ कर कोई । सन्मुष पीठि करै तस सोई ॥
मिले वशिष्ट गुरु गुण दीना । रथ ते उतरि दंडवत कीना ॥
जेइ जेइ पुरुष राम ही भेटे । मुक्त भए भवसागर मेटे ॥
पूँछ कुशल मिलि स्वजन समाजा । आइ. गए रथ चढ़ि महराजा ॥
बिछुरे पुत्र मिले भयो चैना । उमगेउ हिय जल भरि लिए नैना ॥
जैसे रंक महानिधि पावै । नैन[2] प्राण गए पुनि फिरि आवैं ॥
लिए दोउ कंठ लगाइ निहारी । मनु मणि कनक भाल नृप धारी ॥
मिले जाइ राम बरातहिं जानी । बिनु दुलहा कैसी अगवानी ॥
सुनि जब निकट बरात अवाई । पहुँचे बहु पकवान मिठाई ॥
पुनि संमुष सब लोग सिधारा । भइ अगवान करै शुभचारा ॥
हाथी बड गजराज सुनामा । तापर बर बैठाए रामा ॥
संध्या समय भयउ गौ वासा । परिछन द्वारचार जनवासा ॥
दए जनवास निवास धनिन के । रंग महल रचे कनक मणिन के ॥

छंद— पूजि बर जनवास दोए दूलह चरण प्रछालिए ।
लभकौरि करि पुनि पान जुवतिन्ह पूंगफल दल आ लिए ।
अन्हवाइ कन्या जाइ धोवइनि जाँचि षार छिड़ावई ।
बहुरि करि स्नान दुलहिन तेल उबटन लावई ॥

चौ०— छत्र बितानन्त छिति भई शुभ्रा । जो व्यापत आकाश सअभ्रा ॥
कुंड सरोवर सरिता रामा । करे विश्राम मनहुँ सुर धामा ॥
देषि बरातिन्ह नारि सुमुषही । नयन चकोर चंद जिमि सुषही ॥
गए पुनि मुनि मिलि नृपहि बडेरे । बड़े भाग्य आए इहँ मेरे ॥

दोहा ४६० के अन्तर्गत—
पाठान्तर : १ जानि न परैं दुलहा धों को है । (व० प्रति)
२ नैन नैन गये पुनि फिरि आवै । (व० प्रति)

दसरथ जनक मिले दोउ ऐसे । बिछुरे मित्र मिलत कोउ जैसे ।।
हँसे परस्पर समधी नाता । बहुत भाँति पूँछो कुशलाता ।।
विश्वामित्र मिले मुसुकाने । आशिष दीन्ह बहुत गुन माने ।।
भल बालक गुन भल इन्हके बल । भल भए अब जब मुनि भाषे भल ।।
भए कृतारथ अब ए देवा । पहुँचे जबहि मुनिन की सेवा ।।
जे तुम मुनि मन में कुछु धरहू । होइ सोइ समरथ सब करहू ।।
लागे सृष्टि करन तुम जवहीं । होन लगी जानत सब तबहीं ।।
कुपित होइ नइ सृष्टि बनाई । देवन्ह तबहिं मने कियो आई ।।
मिले मुनि विश्वामित्र बसिष्ठा । भए सनमान सिष्ट इ सिष्टा ।।

दोहा— केउ कहै दशरथ राइ कहँ नृप जनवास दिवाइ ।
राम लषन मुनि संग लै तब भेंटे तहँ जाइ ।।४६०।।

चौ०— राजा और मिले सब हाती । करि मनुहारि जतन बहु भाँती ।।
राषे जन जहँ जनक अनेका । एक एक प्रति सेवक एका ।।
जेहि कछु चाहि सोई लै धावै । अगतहि[१] देइ कहन नहि पावै ।।
लक्ष्मी सिय मन माहि संभारो । रिद्धि सिद्धि सब सुष बिस्तारो ।।
आए देव रहे केउ जेते । गुप्त रूप देषत सुष लेते ।।
राजा और बहुत तहँ आए । जनकराइ देइ न्योत बुलाए ।।
भई बरात भीर न्युतहारा । सुधि न परै कछु वार न पारा ।।
दुलहिनि हित दुलहाहि रिझाउन । देव वधू नाचन लगी गाउन ।।
गाइ बजाइ रिझाइन रामा । सोगुन अगुन जानि केहि कामा ।।
समय समुझि सबकी होइ सेवा । पहुँचे पान फुलेल औ मेवा ।।
देस देस दूरन्तर केरे । राजा आइ भए एक ठौरे ।।
आवहि जाहि फिरहि महिपाला । रथ चढ़ि गज चढ़ि चढ़ि सुषपाला ।।
मिलत जोहारत भूपहि भूपा । एक ते एक अधिक छबि रूपा ।।
राजपुत्र बहुते तहँ आए । देषहि केउ कहँ बर मन भाए ।।
केउ कह न्याय अन्याय बिचारी । देहि मिलाइ बिरोध निवारी ।।
चंदवा छत्र सराइ रचि छाए । मानहुँ घटा मेघ होइ आए ।।
तकिआ गिलम दुलीचे राजे । मानहुँ देव विमान बिराजे ।।
केउ चौपरि केउ सतरंज षेला । गावत गुनी समाजी मेला ।।
जरहि मसाल अनेक बिसाला । मोम कपूर होइ उजिआला ।।
पाए सुष मन भाय प्रफूले । देस ग्राम घर को सुधि भूले ।।

दोहा ४६१ क अन्तर्गत—

१ अगतहि—आगे ही (अग्र के अर्थ में प्रयुक्त)

देषन जनक भरत लघु दोऊ । लछिमन हू मन में धरे ओऊ ॥
कन्या और तीनि रहु तेई । काहे न अब इन्हहीं कह देई ॥
औरो तो काहू षोज न जाता । घर बैठे वर दीन्ह विधाता ॥
एकही ठौर एक ही बारा । देव बिबाह न आन बिचारा ॥
राजा कहै रानिन्ह मन माना । हरष भयो अति कीन्ह बषाना ॥
काहु न[2] बिछुरि जैहैं केहु ओरी । रहिहैं सबहि मिली एक ठौरी ॥
तिन्हहु के ब्याह जनक ठहरावा । फिरि दशरथ पहि बिप्र पठावा ॥
राजा कहै सगुन भले आए । लगे बैपार चौगुने पाए ॥
दुलहा भाइ भए सब दूजा । हरदो तेल चढ़े भइ पूजा ॥
जुवती जन जनवासिहि जाई । गारी दै लभकौरि षिआई ॥
मुररउ पान सुपारी पाई । जुवतिन्ह को दिये बहुत मँगाई ॥
रानी कहै[3] करो काज सबेरा । जाते होइ न काज अबेरा ॥
समधी लेहु बरात बोलाई । जैबे सब कहँ बिलम्ब लगाई ॥
नाऊ भाट बिप्र चले बारी । जलो भया जेंवन भई तयारी ॥
मनहरनी तरनी त्रिय गोरी । हरषत करहि टहल फिरि दौरी ॥
पीढा धरहिं सुधारि सुधारी । भरि भरि करि राषे जल झारी ॥
चौकी कनक अनेक संजोवैं । बैठहि नृप सेवक पगु धोवैं ॥
जेहि जेहि पाँति ठौर जेहि लायक । बैठे आइ आइ भूनायक ॥
धोती त्रिबिध बसन पवितारे । षीरोदक पीताम्बर धारे ॥
भूषन मनि मुकता रतना जे । सूरज इंद्र चन्द्र से राजे ॥
दीपक चहूँ ओर धरि बारै । रतन रतन पर किरनि पसारे ॥
तैसेइ कनक रूप के थारा । रतन कटोरा नेक प्रकारा ॥
मध्य राम नारायन वैसे । चहुँ दिसि भूप पारषद जैसे ॥
देषति कहु सिय सोहै सभागी । छाया मनि परि हिय जनु लागी ॥
देषहि देव बिमानन्ह मोहे । मनु बैकुंठ जनक घर सोहे ॥
सालन भोग जे छपन छतीसा । षट रस रस पकवान बनीसा ॥

---

२ काहु न बिछुरि...एक ठौरी—जनक ने भाइयों की पुत्रियों के एक ही स्थान पर व्याहने के औचित्य को स्वीकार करते हुये कहा कि एक ही स्थान पर व्याहने से पुत्रियों को बिछोह की पीड़ा अधिक नहीं उठानी पड़ेगी। कवि के इस कथन में अभिज्ञान शाकुन्तल की 'पीडयन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेष दुःखैर्नवैः ।' की छाया आभासित होती है।

पाठान्तर : ३ कहैं रानी करोकाज सबेरा । पुनि विवाह को होत है बेरा (व० प्रति)

गोरस जे आचर्ज[4] अनंता । भक्त भाव जेंवत भगवंता ।।
लेहु लेहु कह लोकेउ षाहीं । परसत जाहिं करत नहिं नाहीं ।।
जेंवत रामप्रसादहि आसा । करत बतास[5] लाल तहं दासा ।।
षात सराहत जात सुजाना । देषो बड़ी भाँति मुसुकाना ।।
बिंजन वै जे सहा हमारे । परि कछु रस एह भले सुधारे ।।
गावन लगी जुवति सुषकारी । भइ रस मगन हंसे दै गारी ।।
केउ केउ पुरुष बचन चटकारे । बिच बिच तर्क करहिं गुनबारे ।।
भोजन भए आचमन कीना । बारा पान सबहिं कहं दीना ।।
अपने अपने जहां निवासा । जे महराज गए जनवासा ।।

छंद—

लाल किए बहु भांति असन जनक राज सनमान ।
आदर ही ऊदर भरे षाइ कवन पकवान ।
दूब जनेऊ सब करे भोजन गारी दीन्ह ।
लाल बिप्र दुहुँ ओर के लग्न लेइ निर्णय कीन्ह ।
सुनु अब छंद प्रबंध तो ब्याह रचाइए ।
विप्रहि लेव बुलाइ औ मंगल गाइए ।
मोतिअन्ह चौक सुदेस पुरोहित पूरही ।
नाऊ परिछन डाल चढावा कू रही ।
गहना बसन अनेक सिंगार जो आनिए ।
तब गनपतिहिं चह्लार के दुलहिन बानिए ।
पुनि दुलहिन कहं गहने बसन पहिरावहीं ।
मिलि तब जुवति समाज चौकपर ल्यावहीं ।

गहना नाम

छंद—

पाएल जेहरि गुजरि औ घुंघरू बनाइए ।
क्षुद्र घंटिका कुथरि तो कोक्षि सुहाइए ।
मुदरी जाही जुहि कि नंदलि सुधारिसी ।
छल्ला छबि के पहिरि अगुस्ता आरसी ।
ककना गजरा पहुँचि सलोनि पछेलिया ।
मणिन के जग मग जोति बनावै सहेलिया ।

---

४ आचार (व० प्रति)

५ करत बतास लाल तहं दासा=रसिक भक्त लालदास भी अपने आराध्य राम के विवाह के अवसर पर भोजन के बीच हवा कर रहे थे । देश काल की सीमाओं को तोड़कर रसिक भक्त का यह लीला प्रवेश स्वाभाविक ही है ।

छंद टाड बाजूबंध बांह बिराजई ।
चंद्रहार धुक धुकी हिये पर राजई ।
कंठ माल कसरपो औ चौकी ढोलना ।
ताइति औकलि चंप छरा छबि ओलना ।
मोहनमाला पहिरति सोहत दुलहिनी ।
सुंदर सरि की पालि मनहुँ चहुँ दिसि बनी ।
कर्ण फूल बिचकनिया पुटिला बनाव के ।
सोहत श्रवण सुदेस जो बीर जराव के ।
टीका बंदो सीसफूल बेंदी बनी ।
बेनी फूल ओ मंगल मोतिन्ह सोभनी ।
चोटी झालरि लाल रतन हीरान्ह की ।
गठिया कला पर धारि बिराजति जानकी ।
दुलहिनि के एहि भाँति सुधारि सिंगारिए ।
पुनि गणपतिहिं चढ़ाइ तौ मौरो धारिए ।
बाजै बाजन जुरै साजन बरहिं बुलाइ पठाई ।
होइ नहछू तबहि दुलहा लाल मंडप आवई ।
करै परिछन राज नारी कनक थार कर धारहीं ।
पुष्प मणिमय रत्न अक्षत हरषि वर पर बारहीं ।।

दोहा— नहसुत अनवट पलानि अरु बिछिया बेसरि जेहि ।
चलै न लाल चढ़ाव में नैहर के करि देहि ।।४८१।।

चौ०— कन्या के बापहि अन्हवावै । ब्रह्मचर्य होइ बेदी आवै ।।
पक्षिम मुप होइ ठाढ रहाई । पूरब मुष वर राघव आई ।।
ससुर सों वर पूजा करवाइव । पर्नहिं छुआइ औ आसन धाइव ।।
पोठा गणपति देव छुवाई । मन्त्र जुक्त करि दुलहहि देई ।।
विष्टर[1] पाद बेद विधि भाषा । कुस नारा चरणन्ह तर राषा ।।
द्रव्य राषि थारी लेई धरना । तब बर चरण प्रछालन करना ।।
प्रथम दक्षिण पुनि बामहि धोवै । सिर बंदन करि ससुर संजोवै ।।
धोइब प्रथम बिप्र पद दहिना । आन वर्ण के बामहिं कहना ।।

चौ०— करि बिष्टर तब साधहि दीजै । आचमनी मधु पर्कहिं लीजै ।।

दोहा ४८२ के अन्तर्गत—

१ बिस्टर=आसन, कुश आदि घास का बिछौना ।

दही मिठाई बरहि षिआवै । आम्रपात मुष सुघहि करावै ॥
अंग न्यास तृण गोप प्रसंसा । करि तृण छिन्न मंत्र पढ़ि अंसा ॥
तहँ पुनि पाप छमापन करना । नाऊ सो शुभ वाक्य उचरना ॥
भूमि शुद्ध करि अग्नि स्थापव । बर कन्या कहँ ल्याइ बैठारव ॥
कन्या दहिने ओर पिता के । पश्चिम दिसि बैठारिव ताके ॥
पाइ धोइ सिर बंदन करई । अक्षत पुनि पगतर लै धरई ॥
सूत बंध ब्रह्मन के रक्षा । बस्त्रहि देइ दोई तब अक्षा ॥
पुनि आचमन कराउब सोऊ । संमुष होइ परस्पर दोऊ ॥
द्रव्य तांबूल कछुक तब लेई । दुलहिन के हाथन पर देई ॥
पुरषा तीन तीन तिहराई । ब्रह्मन सो उच्चार कराई ॥

दोहा— कन्या के माता पिता गाँठिबंधन करि आषि ।
बनिता दहिने अंग रहै कन्या आगे राषि ॥४९२॥
अपने[१] कर पर पुत्रि कर वर कर पर कर धारि ।
माता जल झारी गहै पिता संकल्प सुकारि ॥

दोहा ४९३ के अन्तर्गत—

१ अपने कर पर.........धारि=कन्यादान का चित्र संक्षिप्त होकर भी अत्यन्त भावपूर्ण है । कन्यादान से करों की स्थिति, उसका कंपन और कन्यादान के समर्पण दर्शन का करुणा एवं भावमय चित्रण मेरे द्वारा लिखे गये 'अभिशप्त शिला' प्रबंध में किया गया है । कतिपय पंक्तिय द्रष्टव्य है—

"मेरे कर कंपन में व्रीड़ा
और तुम्हारे कर में क्रीड़ा
किन्तु पिता के कर कंपन में।
मां के आँचल की वह पीड़ा।

\+ + +

तीन व्यक्तियों के हाथों के मृदु कंपन से लगता था त्रिभुवन के तीनों गुण कम्पित थे ।
नारी के अनुराग, त्याग की करुण कथा से वेद ऋचाएँ, मंत्र, मनीषा सभी व्यथित थे ।"

—'अभिशप्त शिला', डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

चौ० — कुसा द्रव्य श्री फल धरि देई । दुलहा स्वस्ति बोलि तब लेई ॥
पाल गऊ महिषी कछु दाना । सोतहँ होन सुमेर समाना ॥
पुनि संकल्प प्रतिष्ठा कीना । को दाता कहि मंत्र प्रवीना ॥
कन्या के कर गहि बर जबहीं । नाम कहै दुलहिन को तबहीं ॥
वेदी के दक्षिन द्विज अहई । कलश एक काँधे भरे रहई ॥
बैठि परस्पर संमुष ई क्षन । दुलहिनि दुलहा करहि निरीक्षन ॥
तब दोउ अग्निहि करैं प्रदक्षिन । बर के दहिने ओर सुलक्षनि ॥
दुलहिनि दामिनि सम छबि साजै । तृण पूरा पर बैठि बिराजै ॥
आचारज बनवे तेहि ठामा । पंच वारुनी आदि सुनामा ॥
चौरासी है होम बषाना । रिता पाड जया आदि बिधाना ॥

दोहा— बर के विप्र कुस कंडिका आचारज दोउ कीन्ह ।
ब्राह्मण कन्या ओर के वर से पूजा लीन्ह ॥४८३॥

चौ० — सनमुष[1] अग्नि करे पुनि होमा । करि बिधान आहुति देइ ओमा ॥
कन्या के भ्राता तहँ आई । कलस के दक्षिण ठाढ़ रहाई ॥
लावा सूप लिये रहे आगे । लाजा[2] होम होन तहँ लागे ॥
वर आगे कन्या रहे भाषी । वर के हाथ पर हाथहिं राषी ॥
वेणुपात्र राषै दोउ हाथा । दुलहा दुलहिन होइ इक साथा ॥
अंजलि एक भ्राता देइ लावा । ताके तीन तहँ अंस बनावा ॥
बेर तीन ते लावा आही । पढ़ि पढ़ि मंत्र होम करै ताही ॥
कर अंगुष्ट वर दहिन गहावै । दुलहिनि चरन पषान छुवावै ॥
ब्रह्मा अग्नि प्रणीतहि बरना । पढ़ि पढ़ि मंत्र प्रदक्षिना करना ॥
चौथी बेर होम पुनि कारै । लावा सूप कोन करि डारै ॥
भाँवरि सात होत मनमानी । लाल विवाह भयो तब जानी ॥
तब पुनि सप्तपदी करै आषैं । द्रव्य अक्षत पूंगी फल राषै ॥
सात नाम करि ग्राम बसावै । तापर वर दुलहिनिहि चलावै ॥
विष्नु चंद्र सूरज रितु आही । वेद पंच त्रैलोक दै साषी ॥
ब्राह्मन कंध स्थल जो धरिए । ता जल करि अभिषेकहि करिए ॥
रात्रिहि ध्रुव दिन सूरज पाइव । दुलहिनि कहँ दरसन करवाइव ॥
दुलहिनि हिय दक्षिण कर धरई । दुलहा तबहि सुमंगली करई ॥

दोहा ४९४ के अन्तर्गत—

१ सनमुष अग्नि......अभिषेक जु होई = कवि ने वैवाहिक विधि विधान को, लोकरीति और मांगलिक कृत्यों का समावेश करके लोक संस्कृति की मान्यताओं और विश्वासों को जीवन्त बनाया है ।

२ लाजा = धान के लावा

३ वेणुपात्र = बाँस की टोकरी (बेनी सेजी)

तब तहँ तिलक सबनि के करना । होइ बिवाह संज्ञा संपुरना ॥
बर को पिता सिंदूर गहाई । औ गणपति कुल देव चढ़ाई ॥
सो तहँ दैइ पुत्र ताहि लेई । दुलहिनि मंगल दुलहा देई ॥
पुनि वर के बांये होइ अंगा । गठिबंधन दुलहिनि के संगा ॥
सुष्टक होम करव आचमना । आचारज पीछे चिब दमना ॥
वहुरि आचमन दक्षिना दीता । बिदा करै ब्राह्मण परनीता ॥
पुनि जल लेइ करै बिप्र बिबेका । दुलहिनि दुलहा कै अभिषेका ॥
वरहिं होम सब कुसहिं बटोरी । वर कन्या ठाढ़े कर जोरी ॥
दुहुन के हाथ छुआइ जु धरई । आचरज पूर्णाहुति करई ॥
होम भस्म बंदन करै दोई । जज्ञांतक अभिषेक जु होई ॥

दोहा— सावित्री सिंदूर दै मंगल गीत सुहाहि ।
सबके देइ भूरि दक्षिणा तब कोहवर को जाहि ॥४६४॥
मंत्र वाक्य जे संस्कृत लाल इहां नहि आन ।
व्याहु करत होइ विप्र के अन आदर अपमान ॥४८५॥
ब्रह्म दैव आरष असुर प्रजापती गंधर्व ।
राक्षस पुनः पिसाच एक अष्ट व्याहु है सर्व ॥४८६॥
राम विवाहे[1] जानकी लषन उर्मिला दीन्ह ।
श्रुति कीरति भरतहिं दई रिपुहन मांडवी लीन ॥४६७॥

चौ०— जाही विधि एहि भांति सुधारी । दशरथ पुत्र बिआहे चारी ॥
बेदी कनक रतन के षंभा । देषत देवन्ह लगे अचंभा ॥
रत्नन्ह मय प्रतिबिम्ब बिवेका । दुलहिनि दुलहा भए अनेका ॥
रति रंभा उर्वसि लजि तरुनी । मूर्छित होइ मदन परे धरनी ॥
देसाचार कुला व्योहारा । यह मैं कछु नहि धरेउ बिचारा ॥

छन्द— बने दुलहा होइ आगे पीछे सोहति कामिनी ।
चले हरषत रूप बरषत मनहु घन संग दामिनी ।
जाइ महिहर द्वार जब लहकौरि आनि षि आवहीं ।
देषि[2] परस्पर रूप रासिन्ह नारि गारि सुगावहीं ।

दोहा ४६७ के अन्तर्गत—

१ राम विवाहे..............मांडवी लीन=राम सीता से, लक्ष्मण उर्मिला से, भरत मांडवी तथा शत्रुघ्न श्रुतकीर्ति से विवाह करते हैं। प्रायः सभी राम कथाओं में ऐसा ही वर्णन मिलता है ।

दोहा ४६८ के अन्तर्गत—

पाठान्तर १ करै अनेक विनोद वनिता गीत गारी गावहीं । (व० प्रति)

दूलह दुलहिनी दुधा भाँति मोद मन हँसि षेलहीं ।
देषि देषि सषि परत हँसि हँसि रूप रस सुष रेलहीं ॥

चौ०— पुनि चौथे दिन होइ चतुरथी । बुकवा तेल करहि त्रिय अरथी ॥
जुगल काठ पर वैठि बिधाना । दुलहिन दुलहा करैं अस्नाना ॥
बसन पवित्र पहिर छबि पावै । दंपति तब मंडप में आवै ॥
पूरव मुष वैठे वर तरुनी । विप्र करै कुश कंडिका बरनी ॥
तहँ पुनि होम होइ बिस्तारा । षीर षांड होमै घिव धारा ॥
विधिवत बेद होम जब होई । भोजन षीर करै तब दोई ॥
पात्र एक एकहिं संग हूवा । षाहिं परस्पर षेलै जूवा ॥
गावहिं गीत कामिनी लोभा । होइ हास रसं देषै सोभा ॥
मुष सुद्ध कीन्ह कीन्ह आचमना । दुलहा विदा भए गए भवना ॥

छन्द— बहुरि दुलहा विदा कीजै ताहि दायज दीजिये ।
जाइ जब जनवास बैठे बहुरि बीनती कीजिये ॥
कौन धन अस आहि काके आगे राषि सुहाइए ।
ताहि दै कै भलो रावर जौन भांति मनाइए ।
थोरे ही भल मानिए नहिं और हित मन में धरी ।
जानि सेवक आपने पगु धारि आइ कृपा करी ॥

दोहा— सूरज दीपक शंभु जल सूत्र चंद होइ पुष्ट ॥
लाल प्रीति मन माँ नहीं होहि बड़े संतुष्ट ॥४९८॥
सिय पतोह समधी जनक धन जन अश्व गज गाव ।
सोमवंश मोहित भयो का नहि दशरथ पाव ॥४९९॥

छन्द— दए अर्ब सर्ब धन रासी ।
दै लक्ष तीन सैइ दासी ।
दए दस हजार रथ साजे ।
दए दसइ सहस गज गाजे ।
दए घोरे बीस हजारा ।
सोनें जड़े पाषर धारा ।
दए हीरा मणि नग अनेका ।
दए मोती रत्न अनेका ।
दए गहना बहुत बनाऊ ।
दए डेरा बहुत जराऊ ।
दए षड्ग अत्र बहु जाना ।
जे क्षत्री वर्ण के बाना ।

दए बसन अनेक अमोला ।
दए पात्र अनंत अतौला ।
दए सुतउ रेस्मी भांती ।
सुनों जरी कहूँ सब जाती ।
दए तास तिलाजर बफता ।
जरी की मइषता व नीलकता ।
दइ जरी मषमल कासानी ।
दरिआइ ताफता आनी ।
दए मुसज्जर एजदी कुतनी ।
दए चोरे जरे बहुतनी ।
दई मुदरसा जरी चोरेई ।
दई वादिल जरी चलेई ।
मषमल गुजरात बनेका ।
कासनी किनाफ अनेका ।
दई दुकरी बहुत सुहाई ।
लाहौरी औ दरिआई ।
दए सूसी इलाइचे सुथरे ।
जे मऊ भरोचे उतरे ।
दए पस्मी बाब बनाता ।
थिरमा पट्ट बहु मकलाता ।
दए पाँचरी पांषी भेटा ।
दई लोई परी बनोटा ।
दए परम नर्म कस्मीरी ।
दए साल विलायती भीरी ।
दए दाने केस पोस्तीना ।
पराकूव मुसब्बर[१] दीना ।
सूताउ दए बाब सुपेदा ।
तिन्हँ के कहूँ नाम विभेदा ।
श्रीसाफ औ दुषिनी सेला ।
षासे मऊ दीन्ह सुहेला ।
द मलमल भई उडैसा ।
ए बाफ दा सदा जैसा ।
मऊ मालदही भए रासे ।
पुरुषोत्तमपुरी दए षासे ।

दोहा ५०१ के अन्तर्गत

१ मुसब्बर = मुसव्विर, = बेल बेटे बनाने वाला ।

दई कमर बेलि घनबेली ।
दई कोंच को भैरु नवेली ।
तनजेव निछोल ददामो ।
मिर पेंच भूलना कामो ।
दई सिलाहटी गर्भ सूतो ।
महमूदी दीन्हे बहूतो ।
दए तनसुष औ चौतारा ।
दए भूना औ नरिआरा ।
दीन्हे बहु रंग बंगाला ।
गंगा जल दीन्ह बिसाला ।
बरबंद सुषंवर जेते ।
दए जई अघोतर केते ।
दए सालू छीट अनेका ।
चुनरी करै कौन बिबेका ।
दए आछे सुनो बिछौना ।
कालो कालोचा लोना ।
दई गेटम[2] गिलम सतरंजो ।
दए कमर गाव के तकिया ।
दई गलमसूरी नऊ अकिया ।
केउ हरित पीत सित नीले ।
केउ स्यामहो लाल रंगीले ।
दए सूगा सारो मयना ।
सिय बोलि बोल सुष दयना ।
जे दूधन्ह घोव घनेरी ।
दई गाइ भैंसि बहुतेरी ।
दए चौकी पीढ़ा आना ।
बै रतनन्ह जटित बिधाना ।
दए डवा रूप सोनहुली ।
संदूकैं दीन्हीं अमोली ।

दोहा— कस्तूरी केसरि अगर चोवा तेल सुबास ।
दये चौपरि चंदन चमर पंषा सुषद बनास ।।५००।।

---

२ गिलम=ऊनी कालीन, मोटा गद्दा

जे कछु है से अनादि है वस्तु चलन सब ठौर ।
लाल नाम के फेर हैं तब तहँ रहे न और ॥५०१॥

लाल कहे बिस्तार ए बड़ेन के बड़ व्यौहार ।
राजा पंडित रीझिहहिं दुषहहिं सूद्र गँवार ॥५०२॥

उत्तम बस्तु जो राम कहँ करै समर्पण भक्त ।
धन तैं लाल असक्य जो बातन में का लक्त ॥५०३॥

को दई जानै जनक नृप को कहि जानै लाल ।
को जानै जो लै गयो ओइ दशरथ भूपाल ॥५०४॥

[इति श्री अवधविलासे बुद्धि प्रकासे सबगुन रासे भक्त हुलासे पाप विनासे कृत लालदासे राम विवाह वर्णनो नाम अष्टादश विश्राम]

:—: अथ एकोनविंशति विश्राम :—:

दोहा— दुलहिन को चलते मिलन दुलहा सासु जो होइ ।
विदा होन अचरत जन जानि जाहु सब कोइ ॥ ५०५ ॥

सो०— कहँ राक्षस दुप कहाँ महा मुनि आश्रवन ।
कहा जनक पन कहाँ राम तिरहुत गमन ॥

चौ०— होत है होनहार जब कोई । मिलत है आइ सबइ विधि सोई ॥
पुत्र पतोहु देषि मनमानो । भए निचिंत नृपति अरु रानी ॥
दान पुन्य व्रत मन सब धरहीं । सर्द्धा सहित धर्म सब करहीं ॥
देव पित्र ब्राह्मनहि षिआई । बिना धर्म दिन ब्रथा न जाई ॥
सभा जो मानसरोवर जो है । हंस से हंस बंस जहँ सोहै ॥
कथा प्रसंग चले सुषदाई । रिषि मुनि देव कहत तहँ आई ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल प्रजंता । नारदादि सब षबरि कथंता ॥
होहिं चरित्र अनेक बिचित्रा । नृत्य गान वादित्र पवित्रा ॥
चली बात भले भए बिबाहा । केहु एक पुरुष दशरथहि सराहा ॥
कस न काज अस होइ रावरे । धर्म काज लगि दीन्ह डाबरे ॥
जिन्ह को हिये लिये रहे मनहीं । ते पठए पठई जस जनहीं ॥
राजा कहत कहा हम दीने । जस कछु दान बैस्य केहु कीने ॥
साहु एक केहु नगर रहंता । दयावंत धनवंत अनंता ॥
तिन कह्यो बृथा कहा पचि मरिए । अब कछु धर्म नेम धरि करिए ॥
जप तप दान न्हान ब्रत पूजा । नियम युक्त सम धर्म न दूजा ॥
सुनियत जहाँ तहाँ अस भाषा । साधन अतिथ धर्म बड़ राषा ॥
कहत है नेम लिए केहु ऐसो । बिमुख न अतिथि जाइ केउ कैसो ॥
भयो इक्ष्वाक बंस में सोई । नाम सुदरसन ताको होई ॥
अतिथ धर्म साधी सुष लीता । गृह में रहि मृत्यु को जीता ॥
ओघवती त्रिय रहै जिय प्यारी । कहि प्रिय बचन सो लीन्ह हँकारी ॥
सुनु प्रिय मृत्यु मारत सब प्रानी । मृत्यु काहु नहि जीती जानी ॥
आवहु मत हम तुम मिलि कीजै । मृत्यु को जीति बहुत दिन जीजै ॥
पर एह बात हाथ है तेरे । गृह के धर्म नाहिं बस मेरे ॥
पुरुष तो कहू जाइ तजि धामा । तिय को सदा ग्रेह विश्रामा ॥
अतिथ से चल्यौ ग्रेह तहँ आवै । गृहस्थ गयो ताहि कहँ पावै ॥

---

५०७ के अन्तर्गत

शकु १ डाबरे=डाभ (दर्भ),

तहँ त्रिय सावधान भै चाही । बिमुख न करै देइ कछु ताही ॥
जावै कछू दान सोइ वरना । देहौं देव विमुख नहिं करना ॥
मत्सर क्रोध कपट मन माहीं । सब सों करब अतिथ सो नाहीं ॥
त्रिया को धर्म अवर नहि कोई । जो कछु पुरुष कहै करै सोई ॥
जासों अतिथ कलपि दुष मानै । पित्र देवता जानि रिसानै ॥
सुकृत अनेकन्ह करै बनाई । अतिथ विमुष गए सबै नसाई ॥

दोहा— ए पिय के तिय सुनि वचन पूजि अतिथ करै प्रीति ॥
लाल धर्म या बिधि करत गए बहुत दिन बीति ॥ ५०७ ॥

चौ०— मृत्यु कहै दै कहा अब कारो । कवनी भाँति कबै इन्ह मारो ॥
द्वारे लागि रहे निसि दिनहीं । छूटे धर्म ग्रसो तब इन्हहीं ॥
मारि न जाहि गई मृत्यु हारी । काल पास तब जाइ पुकारी ॥
अहो अहो कालदेव बलवंता । तुअ प्रताप जग में है हंता ॥
जीव दोइ वै मारि न जाहीं । ताको दोष मोहिं कछु नाहीं ॥
वलु कहै काल देषावहु मोहीं । सत छिड़ाइ तिनके देउ ओहीं ॥
गए जहँ धर्म महा दुतिधारी । ओघवती जहँ बैठि दुलारी ॥
बोले द्वार वेद मृदु बानी । सुनि संमुष भइ आइ सयानी ॥
जोरे नमस्कार कर दोई । अज्ञा देहु करो प्रभु सोई ॥
कहि न जात छवि रूप विशेषो । धर्म काम व्याकुल भै देषो ॥
अवर न कछु मांगत जे हम हैं । अंग दान[1] जौ देहु हौ लेहैं ॥
भिक्षुक अवर बहुत हैं आहीं । हम तौ अंग दान के ग्राहीं ॥
रस गोरस धन अनहि न लीजै । प्रभु अस हठ सु ठि भल नहिं कीजै ॥
फरि चले अतिथ विमुष भयो जाना । पति के वचन हिए मैं आना ॥
आवहु फ़िरि जनि जाहु गोसाई । भिक्षा लेहु जोइ मन भाई ॥
आयो अतिथ भवन हरषाई । सेज्जा पर बैठो है ताही ॥
ताही समय सुदरसन आयो । पीछे लागि मृत्यु गोहरायो ॥
उपजै हृदय अभाव जो कबहीं । मुदगर मारि गिराऊँ तबहीं ॥
द्वारेहि भए त्रिया गुहराई । लज्जित भई न कछु कहि आई ॥
तब कहै धर्म जाहु तजि द्वारे । एहि रति समय न काज तुम्हारे ॥
जान्यो अतिथ सुदरसन ताहीं । सुरति सुषेन होउ भय नाहीं ॥
प्रभु यह ग्रह अपनो करि जानब । दासी दास हमहि अस मानब ॥
कहाँ अस भाग्य जहाँ तुम आवो । रहि बहु भाँति जहाँ सुष पावो ॥

दोहा ५०८ के अन्तर्गत—

१ अंगदान = योवन दान (संभोग)

जहँ कहुँ अतिथ न रहहिं सुषमाना । ते जनु घर है बिवर समाना ।।
धन्य धन्य तिय मोहि सुहाई । मेरे काज आजुहीं आई ।।
जानि संतुष्ट अतिथ भयो हरषा । पुहप सुदरसन पर भइ बरषा ।।
और दोष दुष क्षमा भवाई[२] । त्रिय बिभिचार सही नहिं जाई ।।
चितवै नारि ओर जो कोई । ता सम शत्रु और नहिं होई ।।
रीझे धर्म बहुत भल माना । किये सुदरसन के सनमाना ।।
होहु अमर जनि मरहु कदाही[३] । जाहु स्वर्ग सुष करहु सदाही ।।
बैठि बिमान स्वर्ग गए जाने । काल मृत्यु फिरि भए षिसियाने ।।
जो यह लाल कथा कहै गाई । काल अल्प मृत्यु ते बचि जाई ।।

दोहा— साहु रहै इतिहास सुनि नियम धर्म होइ धीर ।
अतिथ बिमुष करिही नहीं जब लगि स्वास शरीर ।। ५०८ ।।

चौ०— दाता साहु जानि सब आवै । जो कछु माँगि लेइ सोइ पावै ।।
कपरा अंन पानही घोरा । कवरी पान पात्र कछु औरा ।।
धन्य धन्य सबही कहै ताही । ईश्वर कहै देषो कस आही ।।
कुष्टी कुटिल कुरूप बनाए । परषन ताहि आपु ही आए ।।
बैठे साहु हाट पर देषा । लेन देन व्यापार अलेषा ।।
कुष्टी गयो चल्यो दरराने[१] । भग्यो लोग तेहि देषि डराने ।।
साहु देषि अति आदर कीन्हो । कृपा करी भल दरशन दीन्हो ।।
माँगहु कछू चाहिये जोई । हम तुम्हार सेवक एहि होई ।।
हाथ जोरि सन्मुष भयो ठाढ़े । दीन दुषित देषि छोह सो बाढ़े ।।
करौं कहा मम बल जो चलतो । तौ तुम्हार दुष दूरिहिं करतो ।।
कुष्टी कहै कर्म कहँ जाई । मरत हौं भूष देहु कछु षाई ।।
बोले साहु षाउ मनमाना । दूध भात पकवान बिधाना ।।
भोजन साहु आनि जब राषा । देषत ही कुष्टी अस भाषा ।।
देहु तिन्हैं इन्ह की जे षाहीं । हम तो अंन करत हैं नाहीं ।।
बोले साहु प्रभू का षइहो । माँगो कछू सोइ सब पइहो ।।
कुष्टी कहै मांस जो पावो । और को नहीं मनुष को पावो ।।
लोग तो हंसै साहु सकुचाता । हमरो आइ बनो अब बाता ।।
और तो सबै मोल लै आई । मनुष्य माँस अपने मुए पाई ।।

---

२ भवाई=होने के अर्थ में
३ कदाही=कभी भी

दोहा ५०९ के अन्तर्गत
१ दरराने=दड़दड़ाते (सीधे बिना किसी रोक टोक के)

सोच करत उठि चले सभागे । ए सब बात कहन घर लागे ।।
बनिता को बध करि नहिं जाई । स्त्री अवध वेद में गाई ।।
अपनो मांस मोहि अब करना । आषिर मोहि एक दिन मरना ।।
देह तौ मुए वृथा ही जाई । काहे न ईश्वर अर्थ लगाई ।।
कोढ़ी चल्यो गयो घर माहीं । काहे रे साहु देव की नाहीं ।।
उठे साहु आदर कर लीनों । गादी ताहि बिछौना दीनों ।।
रंचक बिलंबु करो बलि जाऊँ । रहो अवहिं जौ लो हन्हाऊ ।।
साहुनि कहति साहु सुनि लेहू । मही अन्हाऊ मारि मोहि देहू ।।
मो पर तो तुम को नहि जरिबो । तुम्हरे मुए मोहि तौ मरिबो ।।
काहे न एक रहै एक मरहो । दोउ के मुए जात है घरहो ।।
कुष्टो कहै तुहू बौरानो । काहे को वृथा मरत दोउ प्रानो ।।
अस को सठ तुमको जे षाई । है कोउ पूत तुम्हारे कि नाई ।।
कोमल मधुर स्वाद हम लेहो । भोजन करहि आसिषा देही ।।
सुनि अब लेहु न कहब सुहातो । भोजन हम करते जेहि भांतो ।।
माता धरे पुत्र कह रहई । पिता संग अपने कर गहई ।।
मारत ताहि न कोऊ रोवै । माता मांम बनाइ रिझावै ।।
ओषरि मूड़ कूचि करि डारै । अपने हाथ बनाइ सुधारै ।।
हंसि हंसि मोहि परोसि षिआवै । बैठो पिता बतास बहावै ।।
या बिधि भोजन होइ हमारा । होइ तौ करौ न लावहु बारा ।।
और जे सुनै कहै नर नारी । याहो[2] दाहीजार के मारी ।।
कोउ कह छुरी मारिया काहो । कस अब पीर होत है कि नाहीं ।।
फिरि अस काज करै न कहु आगे । याहि मारि को दोष न लागे ।।
कहां धों धर्म होत किन देषा । अबहो तौ पाप प्रत्यक्ष बिसेषा ।।
केउ कहै कछू साहु कहै ऐसा । हमरे तो परमेश्वर जैसा ।।
जो कछु कहत करब सोइ सोई । गति हमारि याही सों होई ।।
अस कहि पुत्रहि लीन्ह बुलाई । आवहु पुत्र अिवाउ मिठाई ।।
आयो हंसत अज्ञान अनारी । पकरो दौरि ताहि महतारी ।।
सुंदर बदन बड़े बड़े नैना । बोलत मधुर तोतरे बैना ।।
कोमल सुभग स्थूल तन गोरे । छांड़ि छांड़ि कहि करत निहोरे ।।
पी लेहु पूत दूधरोभरि पेटा । पुनि एहि दूध ते नाहीं भेंटा ।।
व्याधा ज्यों पक तजि माया । ठग जौ छुरी पिता लै आया ।।
काहे[3] को मारति माया गरहो । कहूं न जाब षेलब हम घरहो ।।

पाठान्तर :—२ यहि दहिजार कोठियहि मारी (व० प्रति)
३ काहे को माय मरोरत गरहीं (व० प्रति)

पेलहु पूत बहुत दिन भया। अब न पूव हौ ना तेरी मैया ॥
पेलव पूत तोहि जो भायो। तौ कत मोरे गर्भहिं आयो ॥
देषत कहँ कोढ़ी भयो ठाढ़ो। बज्रहु ते हियो कीन्हों गाढ़ो ॥
जेहि जेहि भांति कह्यो तम कीन्हा। लेइ सोइ माहु सतिथि कहँ दीन्हा ॥
मन मलीन कियो ना कछु भाष्यो। पुत्रौ मारि धर्म तिन्ह राष्यो ॥
मारो दीन अतीथ रिसाई। तुम बनिया किधौं होहु कसाई ॥
अग को अवर करत अधमाई। मारत पुत्र दया नहिं आई ॥
अगम कहत अतिहि अति रूठो। कंवरी कांध डारि चलो रूठो।
दौर जाइ पांय गहे साहू। अबका कहत विमुष कत जाहू ॥
होइ प्रसन्न देषि हँसि दीन्हों। तब हरि रूप चतुर्भुज कीन्हों ॥
मांगु मांगु जो कछु मन माहीं। तुम समान दूसर कोउ नाहीं ॥
पुत्र जिवाइ दियो हरि ताही। अद्भुत रूप बनाइ सुआही ॥

दोहा— नृप कहैं अस आगे भए दाता या जग माहिं।
लाल पुत्र एहि विधि दए तिन्ह में हम को आहिं ॥५०९॥

चौ०— औरो एक सुनो जस जाको। सिव[१] औसीन नाम रह्यो ताको ॥
यग्य बहुत कीनो तेहि राजा। पदवी लेन इन्द्र के काजा ॥
और दान कहि देव कहावै। जो जज्ञ करै इन्द्र पद पावै ॥
अंत यग्य रहे करत भुआला। भई तहि देषि इन्द्र केइ ज्वाला ॥
लियो बृहस्पति गुरू बोलाई। हमरी अंत अवस्था आई ॥
जोरि हाथ अस दीन होइ भाषा। जौ बल होइ कछू तौ राषा ॥
सुर गुरु कहत चल्यो तहँ जाई। यग्य करत तेहि देहि उठाई ॥
राजा दयावन्त सुनियत हौ। जो वह दया करत कछु अति हौ ॥
मै कपोत होइ चलत हौं आगे। तू सचान[२] होइ पाछे लागे ॥
परिहो जाइ सरन सो दैहै। मारत मोहि बचाइहि लैहै ॥
तब तू कहि अहि भक्ष हमारा। राजा देहु न करब बिचारा।
पक्षी होइ दोऊ उड़ि धाए। राजा जज्ञ करत तहँ आए ॥
झपटि सचान कपोत गिरावा। राजा के कोरा पर आवा ॥
ताको देषि दया जिय आई। रक्षा करो हिये लिए लाई ॥
कहत सचान नृपति तजि देहू। भक्ष आज पायो मैं एहू ॥

दोहा ५१० के अन्तर्गत—
१ सिव=राजा शिवि जिन्होंने अपना माँस देकर दानशीलता का आदर्श उपस्थित किया।
२ सचान=बाज पक्षी।

इह आहार पावै तौ करिहौं । या बिनु पंच जीव हम मरिहौं ॥
मेरे पंच एक ही रक्षा । इह कहो कौन धर्म है अक्षा ॥
राजा कहै और सब सजिहौं । सरणागत आयो नहिं तजिहौं ॥
एक ओर सब धर्मंहि कीजै । एक ओर जिव दानहिं दीजै ॥
जीव दया बहु भाँति बषाना । माँस अहारी एको न माना ॥
दृढ़ मति जानि सेन अस भाषो । अपनो मांस देहु येहि राषो ॥
अरे सचान भली कहो एतो । देहौं मास मानि चहै जेतो ॥
काहे क अधिक लेब हम राजा । देहु कपोत समान सो काजा ॥
राजा मन उत्साह बढ़ावा । अपनो माँस उतारि चढ़ावा ॥
लै तन छुरी काढ़ जो छोला । राम राम कहि सब तहँ बोला ॥
तब तहँ गुरु कपोत होइ बैठा । पलरा अधिक अधिक होइ हेठा ॥
ब्रह्मा विष्नु रुद्र तहँ आए । देव दनुज मुनि देषन धाए ॥
छोलि छोलि नृप माँस चढ़ाए । देषि देषि सब अचरज पाए ॥
अस को कहै अवर को कीन्हा । या विधि तन काहू नहिं दीन्हा ॥
जा तन सों तन लगे अनेका । अश्व गज नर को करै विवेका ॥
जा तन बहुत तपनि तपि पायो । सो तन पर तन लागि गमायो ॥
जा तन बहुत जतन करि राष्यो । राज देहु दुर्लभ इह राष्यो ॥
भूषन बसन अरगजा लागा । सो तन नृप तृण सम करि त्यागा ॥
सुन्दर तन जासो सुष मानी । बनिता बहुत रहत लपटानी ॥
जो तन रह्यो कोमल सुष सेजा । तापर छुरी चली अति तेजा ॥
देष्यो सत अति ही नृप थापे । ब्रह्मा इन्द्र चन्द्र रवि कांपे ॥
जज्ञ दान तप अग्निहि कीए । तब हम देव लोक ए लीए ॥
अति अति कष्ट कहाँ धौं पैहै । सकइ तौ विष्नु अभै पद देहै ॥
दयो सब माँस भये नहिं पूरा । बैठा तुला नृपति होइ सूरा
जय जयकार भए जस बाढ़े । दरस चतुर्भुज दए हरि ठाढ़े ॥
मांगि मांगि राजा मन भायो । जीव दान देइ मोहि रिझायो ॥
जीव रूप मोंहीं सब मांहीं । मोते जीव भिन्न कोउ नाहीं ॥
जीवहिं जो होते सुष दाता । सो सुष मोहि देत सब बाता ॥
जीवहिं पर जो दया न आनी । सो वै नरक परत हैं प्रानी ॥
सुर गुरु इन्द्र प्रगट भए जबहीं । अपनो कपट प्रकासो तबहीं ॥
करु अब राज बहुत निःसोका । जैहो अन्त ब्रह्म के लोका ॥
दिव्य शरीर दीन्ह हरि ताही । परम पारषद माना वाही ॥
पृथिवी आकास रहत संसारा । तिन्हके सन्त धर्म आधारा ॥
लाल मेघ तरवर सर सरिता । उपकारी होइ परदुष हरता ॥

इह करि जगत रहनि है थंभा । ए हैं चारि विश्व के थंभा ।।
इह इतिहास कथा नृप भाषो । लाल दया धर्मन पर राषो ।।

दोहा— जो यह धर्म कथा सुनै दया सरन प्रतिपाल ।
ताको संकट दूरि होइ सदा सुषी है लाल ।।५१०।।

चौ०— जो पै[१] कृपा करै हरि राई । तौ सबही बनै बिना बनाई ।।
ईश्वर करन चहै मन धरही । तृण ते बज्र बज्र तृण करही ।।
मंगन होइ क्षत्र शिर धारी । क्षत्रपती को करत भिषारी ।।
ब्रह्मादिक जेहिं काज असमर्था । प्रभु क्षण माहिं करहिं सब अर्था ।।
जल ते अग्नि अग्नि करै पानी । थल तहाँ सिन्धु सिन्धु थल जानी ।।
अरि ते मित्र करै भगवन्ता । हरि के करत मित्र होइ हन्ता ।।
नर ने नारि नारि नर होई । एक ते बहुत बहुत ते सोई ।।
राई करि हरि मेरु दिषावै । मेरुहि राई माहि समावै ।।
अभय कियो चाहै हरि काही । अस को और करै भय ताही ।।
चिंता जीव वृथा लेइ माथा । करन हरन ईश्वर के हाथा ।।
मैं यह कीन्ह करत हौं मैं हो । पावहि दुषहि जीव याते हो ।।
तृष्णा करि माया मन भाषो । जो हरि हरै सकै कोउ राषो ।।
भक्ति इहै प्रभु कृत सब जानै । भक्त सोइ आपुहि नहिं मानै ।।
नृप के बचन सबहि शिर धारै । सभा उठे मन्दिरहि सिधारै ।।

दोहा— गुन गावत हरि के भ्रमत देषत सब जग भाव ।
राम जहां बैठे रहे मुनि नारद तहँ आव ।।५११।।

चौ०— बीना बाम अंश पर सोहै । बाजत गावत सुर नर मोहै ।।
जज्ञोपवीत माल बहु रंगा । दश द्वै[१] तिलक सुभग शुभ अंगा ।।
कोमल मधुर मनोहर बैना । सुन्दर बदन कमल दल नैना ।।
जटा मुकुट सिर रचित सुदेसा । उज्ज्वल बसन बिराज सुबेसा ।।
नूपुर चरन बजत मनहरना । नृत्यत उमगि चपल गति चरना ।।
राग रागिनी जति स्वर ताला । होत मूर्छना गान रसाला ।।
ब्रह्मपुत्र[२] आए सब बाढ़े । दरसन देषि राम भए ठाढ़े ।।

दोहा ५११ के अन्तर्गत—

१ जो पै कृपा……करत भिषारी=प्रस्तुत पंक्तियों में महाकवि सूर के— "चरण कमल वंदो हरिराई । जाको कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कुछ दरसाई । बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई ।।" जैसी पंक्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

दोहा ५१२ के अन्तर्गत—

१ दश द्वै तिलक=१२ तिलक । रसिक साधना के अन्तर्गत श्री सहित ऊर्ध्वपुण्ड की रचना शरीर में बारह स्थानों पर की जाती है ।
२ ब्रह्म पुत्र= नारद ।

जानत सर्व धर्म रघुनाथा । जोरे हाथ नवाइसि माथा ॥
अति आदर कीन्हे रघुवीरा । आरति अर्घ पूजि मुनि धीरा ॥

दोहा— मनुष्य देह सबते दुलभ सो तन पुनि क्षण भंग ।
ताहू मैं बहुतै दुलभ साधू दरसन संग ॥५१२॥

अथ नारद स्तुति करषा राग आसावरी सिंधु रामकरी ।

छन्द— नमो राम रघुवंश कुल सर कमल धरण अवतार भू भार हारं ।
दत्त वर भक्त को सत्य पूरण करण धर्म के शत्रु संहारकारं ।
धन्य ए चरण भजत पातक हरण रहै बैकुण्ठ भूतल बिहारं ।
दरस औ परस संभाषन करत तव अधम अनेक भव करन पारं ।
नमो नाथ रघुनाथ संकट हरण मुनिराज के काज धनु बानधारं ।
ताड़का मारि कै असुर संहारि कै मुनि वधू तारि जस कारि भारं ।
चाप शिव भजनं भूप बल गंजनं जनक मन रंजन रूप सारं ।
जानकी वर भवं परसुधर बल दवं मात औ तात हरष चारं ।
अवधपुर आइ कै नाच गुन गाइ कै राम स्तुति विधि पुत्र कारं ।
राम लाल सिंहासनं राम दिअ आसनं नमस्कार करि बार बारं ॥

चौ०—राम बचन कहु मुनि इहाँ कहाँ भयो आवन । बहुत दयाल भए किए पावन ॥
धन्य वै धाम जहाँ पगु धरहू । पाप ताप आपद दुष हरहू ॥
धन्य वैं जिन्हहि दरस तुम देहू । होइ मुक्त जासो करो नेहू ॥
परवस जीव परे जग अंधा । माया त्रिगुण[१] कर्म रज्ज बंधा ।
अपने[२] बल बंधन नहिं टूटे । तुम्हरी कृपा बिना नहिं छूटे ॥
जैसे अंध कूप पशु डारै । अपने बस निकसे नहिं पारै ॥
तैसे ग्रेह कूप विष पारत । तिन्ह को तुम्ह प्रभु फिरत उधारत ॥
पुनि तुम्हार आवन इहँ कैसे । आलसि पर गंगा[३] बहे जैसे ॥

दोहा ५१३ के अन्तर्गत—

१ माया त्रिगुण=त्रिगुणात्मिका माया (सत्व, रज, तम वृत्तियों से युक्त)

२ अपने बल…निकसै नहि पारै=त्रिगुणात्मिका माया के बंधन से जीव ईश्वर की कृपा के बिना मुक्त नहीं हो पाता । अंधे कुएं में गिर जाने वाले पशु अपने आप नहीं निकल पाते । कवि ने जीव की निरीह अवस्था का कैसा लोकग्राही दृष्टांत प्रस्तुत किया है ।

३ आलसि पर गंगा=कर्म विहीन व्यक्ति के जीवन में पुण्योदय । कवि ने लाक्षणिक प्रयोग द्वारा एक नूतन मुहावरे का गठन किया है ।

जतन करत जलधर कहँ पाई । बरदेउ चहहु आप तहँ आई ॥
तैसे महा दुर्लभ तव दर्शन । आपुहि देहु होहु जो परसन ॥
अहं ममत्व विषधर इमे कारे । निर्विष मंत्र ग बचन तुम्हारे ॥
जे विषई ग्रह रत बिवहारी । तिन्ह तुम्हारि सेवा शुभकारी ॥
कर्म अनेक प्रकार न करई । गृहस्थ साधु सेवा करि तरई ॥
ताते प्रभु आज्ञा मोहि दीजे । जाते होहु प्रसन्न सो कीजे ॥

दोहा— नारद बचन अब बैठे का रहत हौ बिसरि गयो सुर बंध ।
उठो राम बैकुण्ठ को चलो तोरि दसकंध[४] ॥५१३॥

चौ०— जो कछु काज कियो कछु चहिए । आलस तजि करिए नहिं रहिए ॥
कौन धौं काल कहां होइ जाई । करै बिलंब तौ काज नसाई ॥
सुनि वै असुर अधम दुष दैना । मारे बिना कहाँ मोहिं चैना ॥
पूरण भई आयु अब ताकी । बाँकी कछुक रहत है बाकी ॥
यातैं मैं न करत आतुरई । आयु अक्षत मारे नहि मरई ॥
जस उन्ह असुर कीन्ह है पेला । दिषिहौं अलप काल मैं षेला ।
एती तुम[१] मानत कहँ चिंता । मोहो को जो बहुत है मिता ॥
जब लगि देव बंदि नहिं छूटै । रावण के दश शीश न टूटै ॥
जब लगि कुम्भकरण नहि मारे । तब लगि जीवन कौन हमारे ॥
बहुत अनीति असुर करि लीनी । शंकर के बल ते उन कीनी ॥
मारि असुर सुर बंदि छुड़ावौं । तौ दशरथ को पुत्र कहावौं ॥
नारद विदा भए गये डोली । पीछे राम कैकेई बोली ॥
सीय स्वयंबर तो करि आए । देव काज कियो चाहत भाए ॥
एक समय रघुनंदन रामा । बैठ उदास होइ निज धामा ।
दास षवास पास नहिं कोई । बांधव सषा दूरि किए सोई ॥
करत विचार सोच रघुनायक । कासों कहौं कवन मत लायक ॥
कवन भाँति लीजै बनवासा । बिन बनवास न असुर विनाशा ॥
बन के वास हरन सिय होई । रावन कुम्भकरण मरै दोई ॥
बिनु अपराध न मारिय काही । वेद म्रजाद धर्म अस आही ॥
बिनु अपराध दोइ दुषदाई । होइ स्वभाव मलेक्ष कसाई ।
जौं महि जाउ लोग कहैं बागी । माता पिता राम भए त्यागी ।

---

४ दसकंध=दशस्कंध, श्लेषार्थ रावण ।

दोहा ५१४ के अन्तर्गत—

१ एती तुम…पुत्र कहावै=राम के द्वारा राक्षसों के विनाश का संकल्प राम के पौरुषेय रूप को रेखांकित करने वाला है ।

अस कछु होहि विचारहि कीजै । बन के गवन आन शिर दीजै ।।
तब केकइ के आयु अकर्षा । राम जहाँ आई मन हरषा ।।
बैठे देखि राम रुचि बाढ़ी । नैन मूँदि पीछे रहि ठाढ़ी ।।
तब कहे राम छाड़ि दे माता । मोहि आज नहि कछु सोहाता ।
बोली मातु उदास निहारे । राम भरत ते अधिक पियारे ।।
बाबू आपु अनमने काहे । केहू तुम्हैं कहेउ कछु आहे ।
माता सबै जीव जग माहीं । आपु स्वारथी परहित नाहीं ।।
जो परहित उपकार ह्वै आवे । तौ परलोक बहुत सुष पावै ।।
काहुक दुप कोउ नाहीं जानै । अपने सुष सबके सुष मानै ।।
कैकई कह अस जनि कहु कबहीं । तुमहीं को आराधत सबहीं ।।
जोग जज्ञ तीरथ ब्रत दाना । तुम्हरे हेत करत सब नाना ।।
जो सुकृत करि तुमहि न दीना । तौ तिन वृथा कलेसहि कीना ।।
फल तौ होत अल्प पै सोई । तुम कहँ दिए अक्षत फल होई ।।
तुम कहँ दुष कहो कौन गोसाई । भयहु उदास हमहु सुनि पाई ।।
बोले राम मोहि बनचारी । राजहि कहि करै सो हितकारी ।।
चौदह वर्ष अधिक नहि सोई । रावणादि असुर वध होई ।।
केकई[२] कहत जो दोष न आवै । सोइ मैं करौ जे तुमहि सुहावै ।।
राम कहैं मूरष नर जे हैं । माता तोहि अजस वे देहैं ।।
करता हरता मोहि न जानैं । आनहि के सिर औगुन ठानैं ।।
केकई कहत अजसि नहि डरिए । तुम संतुष्ट होहु सो करिए ।।

दोहा— लाज अजस डर छाड़ि के पुत्र भजत जे तोहि ।
ते सब निर्भय होत हैं लाल भरोसा मोहि ।।५१४।।

चौ०— एतौ भली कहत हौं बाता । तुम्हें की दुख जे होइहैं माता ।।
तोहि अजस अति होइ न परिहैं । मेरे बिरह पिता पुनि मरिहैं ।।
भरत भोग तजि जोगी होई । कौशल्या दुख करिहैं रोई ।।
साढ़े सात सैकरा रानी । विधवा सबै होइहैं रानी ।।
सोय मोहि तजि घरहि न रहिहै । लक्षिमन मोर संग लगि बहिहैं ।।
बालक छोट शत्रुघन भाई । सो मो बिनु मरिहैं बिलगाई ।।
सुबुधि साधु मम प्राण पियारो । मोते कबहुँ रह्यो न न्यारो ।।
मोहि गए बन जब सुनि पैहैं । दुश्मन दुष्ट देस दुष दैहैं ।।
पिता कहै अरु जो नहि करिए । लागे दोष अजस एह डरिए ।।

---

२ ककइ कहात···सुहावै—कैकेयी का यह कथन कि यदि मुझ पर दोषारोपण न किया जाय तो मैं वही करूँगी जो तुम्हें (राम को) प्रिय होगा। कैकेयी की यह अपराधचिंता सर्वथा मनोवैज्ञानिक एवं कवि की मौलिक उद्भावना है ।

दोहा— गुरु को शिष्य पति की त्रिया पुत्र पिताहि न मान ।
लाल जो आज्ञा न करै बद्ध कियो तिन्ह जान ॥५१५॥

चौ०— बहिनि[1] बिछोह छोह लगि बाला । होइहैं भएहु बहुत बिहाला ॥
चलत हसतहि रहि सुख मान्यो । नेहर छूटि नेक नहि जान्यो ॥
को मो बिनु नृप को कछु कहि है । दासन्ह दासी की सुधि लैहै ॥
मारे गये हहरि सब हूली । शिशु बुधि लाग जाहिंगे भूली ॥
पशु पक्षी गज बाजि बिचारे । मरिहैं बिरह बिना ही मारे ॥
अवधपुरी के वासी जेते । होइहैं सबै उदासी तेते ॥
यह कहि राम नयन भरि आए । कहत न करत बनत पछिताये ॥
एह बिचार करत रहे रामा । उहँ नृप दिष मुष दर्पन तामा ॥
राजै जब अपने मुष बेषा । पके बार दर्पन में देषा ।
तब बैराग भयो मन माहीं । राज्य करत शोभा अब नाहीं ॥
जब लगि जुवा रहत नर कोई । जे कछु करै छाजै तहि सोई ॥
भोग करन पहिरन असवारी । धावब धाव गहब तरवारी ॥
कहैं कछु अहंकार करि टेवा । दुश्मन डरै करै सब सेवा ॥
देषहि रीझि रहै सब अंगा । होइ प्रसन्न जुवती करै रंगा ॥
बूढ़हि अवर करब कछु नाहीं । माला लै बैठे बन माहीं ॥
जो कछु अवर करै कुटिलाई । तो सब हँसै ताहि गरिआई ॥
याते अब हमरो नहि काजा । यहि विधि अस जु राम होहि राजा ॥
रामहि राज देव मन आना । हम वन जाइ करब तप दाना ॥
कोरिन्ह बरष आयु होइ आवै । तीनि लोक के राजहि पावै ॥
मन भरि भोग करै जो रूरण । त्रष्णा होइ तौ नहि सम्पूरण ॥
तब कहु षबर देवतन्ह पाई । इह तो भली भई नहि भाई ॥
देवन्ह जान राम भए राजा । बिगरे सबै हमारे काजा ॥
तब शारद के शरण संभारा । सुर सब जाइ बात बिस्तारा ॥
मातु सरस्वति होहु सहाई । अब कछु करो राम बन जाई ।
बोध सरस्वती कीन्ह सोहाए । अब तुम्हार दिन भले जो आए ॥
जब दुर्दिन आवत हैं काही । निबरो नीच देत दुष ताही ॥
उत्तम दिन शुभ ग्रह भए जाके । सब सम्मुष सुष होत हैं ताके ॥

दोहा ५१६ के अन्तर्गत—

१ बहिनि...उदासी तेते = विराग के पूर्व राम का यह राग रसिक साधना का एक दूसरा छोर है। वस्तुतः राग और विराग दोनों एक ही रस के पूरक हैं ।

सुष दुष होत कर्म फल जानो । याको कछु संदेह न मानो ॥
अल्प काल महँ छुटि हो जानो । विधि गति सम-अउ विषम बखानो ॥
कैकेई को सषी सयानी । नाम मंथरा सब जग जानी ।
ताके[२] कंठ सरस्वती बैठी । कुमति कुवात कुविधि लै पैठी ॥
हरषे लोग दुन्दुभी बाजै । आजु राम सिर छत्र बिराजै ॥
राजा और अनेकन्ह आए । रामहिं सुनि अभिषेक सुहाए ॥
याचक हुते जगत के जेते । आए सुनि अभिषेकहिं तेते ॥
घर घर मंगल गीत उछाहा । राजा राम होत हैं चाहा ॥
भल विचार नृप कीन्ह सुजाना । भले भले कहि सबहिं बषाना ॥
रानी हरषि हरषि सब पागी । सामिग्री करनै विधि लागी ॥
रानिहि जानि शुद्ध मन आई । लौंडी लेइ कुवरी तहँ आई ॥
हरष देषि चहुँ ओर कोहानी । सांपिनि ज्यौं गई दौरि सुसानी ॥
जन्मी भले बड़े घर आई । आजुहि लो भलि रही बड़ाई ॥
अबहीं गीत भले तोहि लागे । गावति हहु पैरो इहु आगे ॥
भूलि रही ऊपर की माया । भीतर के तैं भेद न पाया ॥
जाकर भल मानै पति नीका । ताके पूतहि देत है टीका ॥
काहे तू छुटिकहु महरानी । कौशिल्या काहे अधिकानी ॥
रूपनिधान त्रियन्ह में सींवा । गुन लछिमन पूरन सब जीवा ॥
आछे पूत राजहीं लायक । बाप तोर राजन्ह कर नायक ॥
कौशिल्या राजा मनमानी । जानी आजु भई पटरानी ॥
जानत हौं मन में है जेठी । अब तो उतरि बैठि हैं हेठी ॥
काकर जौ करि हो सेवकाई । रामहि भूप जोहारिहि जाई ॥
पराधीन परबस भए रहिहौं । राम कछू देहैं सो पइहौं ॥
ई दुष कौन भांति सहि परिहै । सौति को उदय देषि जरि मरिहै ॥
मरन भलो जो होइ कहु काको । पै अपमान भलो नहिं ताको ॥
कबहुँ कछू बिगरी नहिं बाता । फिरै बात जो करै विधाता ॥
दोषो नहीं चरित्र त्रियन को । अपनै सो जिय जानि सबन को ॥
जाइ रिसाइ बैठि रहु अपने । भरतहिं राज होइहै थपने ॥

---

२ ताके कंठ सरस्वती बैठी = राम के राज्याभिषेक की कल्पना से राक्षसों का बिनाश न होने की संभावना से कैकेई के कंठ में सरस्वती का बैठना । इसका उल्लेख अध्यात्मरामायण २, २, ४४; आनंदरामायण १, ६, ४१, रामचरित मानस, चंददास रामायण (रामविनोद), कश्मीरी रामायण तथा भावार्थ रामायण में भी किया गया है ।

की कछु राज पाट है जेतो । लेहु बटाय आपनो तेतो ॥
कहति हों बात भले की तोरो । जो तू है ठकुराइनि मोरी ॥
जाको लोन पाइ जहँ रहिए । ता कर भलो होइ सोइ कहिए ॥
हम कहँ इन्ह बातन्ह का आहो । देषिए कछु कहो तस चाहो ॥

दोहा— कहे सुने फटि जात है चित को लाल स्वभाव ।
रस गोरस संग धातु के बिगरै लगै कसाव ॥ ५१६ ॥

चौ०— रानी जाइ महल में पौढ़ी । तौपि तापि तन चादरि ओढ़ी ॥
चेरी भल वपुरी हित मेरी । बिगरी बात सुधारिसि फेरी ॥
अस का अधिक राम मन माने । हमरे पूत आन के जाने ॥
छोटो बड़ो मानिअत पाए । एकहि दिवस घरी के जाए ॥
दइ कसकहि कहि छलत रहे मोही । मेरे प्रान जान मैं तोही ॥
का जो कहि मुष बात बनाई । कपट की प्रोति उघरि अब आई ॥
माया डारि दई बौराई । सुनि सुनि बात हँसत रघुराई ॥
देषहु कालि कहत रही कैसो । दुसमन होइ आजु का वैसो ॥
करिए न सोच दोच कहु याते । कौन[1] प्रतीति त्रियन्ह की बाते ॥
राजा गए मनावन रानी । बिगरै सब कैकेइ रिसानी ॥
जनि कछु कहो गहो जनि हाथा । राजा करो पूत रघुनाथा ॥
जाहु जहाँ कौशिल्या रानी । हम के होहि कवन पहिचानी ॥
कहब सुनब क्रीडब लषि पाया । हम सौं सब ऊपर की माया ॥
काजो हमहिं मनाइहि लेहो । आषिरि राज्य राम को देहो ॥
अबहीं कस न देत हो जाई । बिगरिहि कह हमरे जु रिसाई ॥
जनि हठ करहु उठहु नहि तरिहो । जोइ तो कछु कहव सोइ करिहो ॥
अबहीं माँगि लेहु चहि मोसों । रषिहौं नाहिं न मैं कछु तोसों ॥
लेहु अब चलहु दीन्ह तुम्हैं सबहीं । आपुहि ते न कहीं कछु कबहीं ॥
इह कछु सोच नाहिं न हमारे । हम सी बहुत वाटि गृह तुम्हरे ॥
देहो कहा अब जानि सनेहू । जो मोहिं देन कह्यो सो देहू ॥
तब ओइ दोइ बचन मन आनो । अगतहि बात विधातहि बानी ॥

दोहा ५१७ के अन्तर्गत—

1 कौन प्रतीति त्रियन्ह की बातै—कवि की इस पंक्ति में केशव की रामचन्द्रिका की निम्न पंक्ति का प्रभाव परिलक्षित होता है—

'कहि मुंदरी अब त्रियन की को करिहैं परतीत'

एक बेर नृप के कहु कबहीं । चरणांगुलि[२] पीड़ा भई तबहीं ।।
जतन अनेक करे न सिरानो । तब मुष में धरे केकई रानो ।।
पीड़ा गई बहुत सुष पाए । नृप रीझे माँगहु मन भाए ।।
केकइ कहति कृपा यह कोजै । जब माँगो तबहीं मोंहि दीजै ।।
अपनो अचल सोहाग बिचारी । लेव कबहुँ हिय में वर धारी ।।
अवर एक वर केकइ पावा । जुद्ध करत कछु नृपहिं रिझावा ।।
टूटेउ[३] रथ जब रण महि भाषा । रानी भुजा टेकि तब राषा ।।
राजा कह्यो माँगि वर गोरी । आजु सरम भलि राषी मोरी ।।
वे वर माँग केकई लीनो । भरतहिं राज राम बन दीनो ।।
कैकई उठि भए मन भाए । राजा सोच बहुत पछिताए ।।
राषो बोलि कि पूतहि भाई । बोलि जाइ तो सबहि नसाई ।।
पूत जाहु धन जाहु जीव किन । पुरुष के बोल जाहू कबहूँ जिनि ।।
अब लौ तौ हौं रह्यो सयाने । हरी बुद्धि त्रिय हाथ बिकाने ।।
सोइ पंडित सोइ चतुरस ज्ञानी । जोइ स्त्री बस होइ न प्रानी ।।
असि कहि रामहि लीन्ह बुलाई । बारह बरस रहो बन जाई ।।
कहत न पुत्र तोहि बन जाहू । मोरी मुकुति दोष नहिं काहू ।।

---

२ चरणांगुलि पीड़ा=चरण की अंगुलियों की पीड़ा । कैकेई को वर प्राप्ति का प्रथम कारण उसकी चिकित्सकीय निपुणता है । दशरथ की असह्य चरणांगुलि पीड़ा को वह मुख में रखकर दूर करती है। लालदास के द्वारा बताये गये पहले कारण की पुष्टि कृतिवास रामायण (१, ३३-३४) तथा असमिया बालकांड (अध्याय १६) से भी हो जाती है, जिसमें दशरथ के व्रण की पीव चूसने के कारण कैकेयी को वर मिलने का उल्लेख है। पाश्चात्य वृत्तांत न०३ में भी कैकेयी द्वारा दशरथ के अंगूठे की चिकित्सा करने का उल्लेख है ।

३ टूटेउ रथ=रथ का टूटना । कैकेयी को वर प्राप्ति का दूसरा कारण उसकी युद्ध वीरता है । किसी युद्ध में दशरथ के रथ टूट जाने पर कैकेयी द्वारा अपनी भुजा को लगाकर सहायता करना है। लालदास के द्वारा बताये गये दूसरे कारण की पुष्टि वाल्मीकि रामायण (२, ९, १५-१७) ब्रह्म-पुराण, अध्याय १२३, अध्यात्म रामायण २, १, ६६, आनंद रामायण १,१,८५ रामकिएन (अध्याय १४) । तुलसी कृत रामचरित मानस और चंददास रामायण (रामविनोद) से भी हो जाती है ।

यह निश्चय जानत मन माहीं । तुम बिनु मरब जियब मैं नाहीं ।।
पिता कृपा कीनो मोहिं भाई । रहिहौं दोइ और अधिकाई ।।
कह लहैं लाल राम गए बनहीं । सो मोहि कहत बनत नहिं तिनहीं ।।
बन बस्ती जल थल में जोई । आवै जाइ कहां कछु सोई ।।
करण हरण समरथ सब काजा । राम को कहा करै कोउ राजा ।।
रंचक बचन राम के पाई । कोटि ब्रह्मांड होइ बिनसाई ।।

दोहा— पिता बचन मन को गवन रावन बंस नसान ।
करे राम बैठे अवधि लाल लोग गए जानि ।।५१७।।

चौ०— जोइ कछु करत होत कछु पाया । आज्ञा पाइ राम की माया ।।
सीता राम होइ दिन रै है । माया असुर मारि घर ऐ है ।।
सबही करै अकर्ता होई । लाल जानु ईश्वरता सोई ।।
न्यारा रहै मिला सब माहीं । करम करै लागै कछु नाहीं ।।
मन अहं बुद्धि चित्त नहिं जाके । हाथ पाय इंद्री नहिं ताके ।।
वरणै ताहि कहा कहै कोई । सत्ता मात्र सत्य है सोई ।।
ऐसे राम सबनि के नायक । तिन की बात कहन को लायक ।।
अरु जो केकई कही अभाई । सो कैसे इहं कहौ बनाई ।।
एक ईश्वर अरु अति सुकुमारा । पुनि दसरथ के प्राण पियारा ।।
कौशिल्या के एकै होई । ताके देषि सको नहिं सोई ।।
अपनो हित स्वारथ ई लागी । छल करि वर पिय सो लिय मांगी ।।
अस दई दीन्ह कुमति मति नासी । भरतहि रज्या राम बन बासी ।।
पति को मरण दोष नहिं देषा । भई त्रियन्ह महं अधम अलेषा ।।
छांडव अवध राम बन जाना । दुसह बात को करै बषाना ।।
कहत हैं नृप दसरथ भल कीन्हों । बिछुरत राम देह तजि दीन्हीं ।।
कहौं कहां लगि बहुत बड़ाई । प्रेम प्रीति की रीति जनाई ।।
और प्रीति हैं रीति अनैसी । साँची प्रीति मीन जल जैसी ।।
चातक सती अरु कमल पतंगा । इन्हके मरण प्रेम के संगा ।।
जासों[१] लग्यो होइ जाको मन । तब तेहि हाथ भयो ताको तन ।।
जीवन[२] मरण प्रेम बस होई । जन्म मरण उत्तम है सोई ।।

दोहा ५१८ के अन्तर्गत—

१ जासो लग्यो......ताको तन=मानसिक प्रीति के साथ शारीरिक समर्पण भी हो जाता है। जिससे मन लग जाता है, उसी के हाथ तन भी हो जाता है। मानसिक प्रीति में दैहिक अंतराल नहीं रह जाता है ।

२ जीवन मरण......उत्तम है सोई=प्रेम ही जीवन-मरण का आधार है और प्रेम ही जन्म मृत्यु की सार्थकता का मानदंड है ।

जिन्ह के प्रेम बिरह नहिं पाई । तिन्ह की बात कवन कहि भाई ।।
बिरह प्रीति सूरा तन दाना । तिन्ह को गावत बेद पुराना ।।
मम मत[3] राम गए नहिं कतहूँ । और कविन्ह की कही कहत हूँ ।।
अवधि ते जब बन कीन्ह पयाना । सबके निकसि चले जनु प्राना ।।
मीजहिं हाथ लोग पछिताहीं । राजा काज कीन्ह भल नाहीं ।।
किन्ह अस अधम दीन्ह मत थापी । मारिए ताहि न छांड़िए पापी ।।
रोवहिं सबै कहैं नर नारी । हा दइ भई अब अवधि उजारी ।।
गारी देहिं रिसाइ रिसाई । केकइ तोहि कवन मति आई ।।
मरौं मंथरा दुष्ट कठोरी । श्रापहि ताहि अंगुरी[4] करि फोरी ।।
जिन्ह को राम लगे अनभाए । तिन अपने परलोक नसाए ।।
रामहि बन इन दुहुन दियोई । अगनहिं कहन लगै सुनै जोई ।।
श्रापहिं पशु पक्षी सर तरऊ । रोवहिं मरन करै परै धरऊ ।।
छटपटाहिं जल बिनु जिमि मीना । उछरहिं मीन होहिं जल हीना ।।
सज्जन सुषद मित्र रहे कोई । गिरै पछार षाइ सनु सोई ।।
हनहनाहिं घोरे दुष करहीं । नैन नीर भरि भरि गिरि परहीं ।।
रामहिं देषि जात पछिताये । हाथिन्ह तोरि जंजीर बहाये ।।
डारहि धूरि सीस गज धूरी । जिवब राम बिनु बात न हूनी ।।
कलश ध्वजा नहिं धीरज धरहीं । महलनि पर ते गिरि गिरि परहीं ।।
ठौर ठौर मुरचल भहराने । गिरे काठ रामहि गये जाने ।।
जिन जहँ सुने तहां ते धाए । केउ रथ केउ पग है चढ़ि धाए ।।
पंथहिं रोकि रोकि रहे ठाढ़े । चलन न देहिं मोह अति बाढ़े ।।
केउ कहैं कृपा परग जो देहौ । मारि हमहिं आगे तब जैहौ ।।
केउ महराजहिं कहै समुझाई । रामहि अजहुँ फेरि लेहु जाई ।।
परजा पंच राम संग जैहैं । का पर अमल भरत नृप कैहैं ।।

दोहा— लाल[5] सुभट सेवक कहै होहु केउ महाराज ।
हम न जोहारिहैं राम बिनु राजै कीन्ह अकाज ।।५१८।।

---

३ मम मत…कहत हूँ=कवि का मत है कि राम सर्वत्र बिहार करते हैं, वे कहीं नहीं गये । ये घटनाएँ मायावी हैं । रसिक साधकों का विश्वास है कि राम अयोध्या में नित्य बिहार करते रहते हैं ।

४ अँगुरी करि फोरी=अंगुलियाँ फोड़ना । लोक व्यवहार में अंगुलियों को फोड़कर श्राप देने का चलन ग्रामीण अपढ़ वर्ग में आज भी प्रचलित है ।

५ लाल सुभट……कीन्ह अकाज=राम वन गवन के अवसर पर सेवकों, दास-दासियों द्वारा यह कहना कि अब हम राम राजा के बिना किसी अन्य राजा को जोहार नहीं करेंगे । जोहार तो राम के लिये ही होगा । लोक जीवन में अब भी अभिवादन को 'रामजोहार' ही कहते हैं । राम के बिना 'राम जोहार' कैसा ? कैसी अद्भुत ध्वनि उत्पन्न की है कवि की व्यंजना शक्ति ने ।

चौ०— दासी दास कहहिं बिनु रामहिं । अब के अवर संभारिहि हामहिं ॥
गढ़त पढ़त रहे देन जो लेते । तजि तजि काज चले सब तेते ॥
भिक्षुक गुनी कहै कहँ जैए । राम समान दानि कहँ पैए ॥
लागत आजु अजोध्या कैसो । सून मसान भयानक जैसो ॥
केउ कहै राति देषि हम सपना । घर तजि सबहिं चले अप अपना ॥
पान पान सबहिन सुधि बिसरी । परदे रहति नारि तेउ निसरी ॥
जैहैं राम जाब हम जहँहीं । जहँवा राम अयोध्या तहहीं ॥
राजा परे सोक के सागर । रानी सबै भई दुष आगर ॥
ज्ञानी एक वशिष्ट सयाना । रामहिं कहो गये नहिं माना ॥
सरजू बिरहनि भई दुष आना । रहि गई बहतहि नीर झुराना ॥
थाके गज कटरा बाजारा । उठि गए बनिक भई हट तारा ॥
सबके सोच सोच भए एही । रहि है कौन भांति बैदेही ॥
सहसुन जक्ष सषी मिलि षेली । कैसे सिय बन रहब अकेली ॥
केउ कहै राम रहि न बन जैहै । कुशल क्षेम बेगि फिरि ऐहै ॥
जात हैं छाड़ बाप अरु मैया । ते का तहहिं रहिंगे भैया ॥
देश विदेश जात है कोऊ । तियऊ संग फिरत का तेऊ ॥
सीता कहति माय सुनु बाता । तिय को जिय पति कीन्ह बिधाता ॥
जिन्ह पतिबरत नेम करि लीवै । ते पिय बिनु कवनी बिधि जीवै ॥
सेवा[१] करै रहैं निति[२] संगा । आज्ञा कबहुँ करै नहिं भंगा ॥
पारवती लक्ष्मी ब्रह्मानी । पिय के संगहिं माँहि समानी ॥
पति के अर्ध अंग रहै सोई । अर्धंगी कहियत हैं सोई ॥
जज्ञ दान तीरथहिं पुराना । बनिता संग करि लेइ बिधाना ॥
बानप्रस्थ ग्रहस्थ आसर्मा । बनिता हो करि रहति है धर्मा ॥
राम कहत सिय चली सभागी । जैसे छाँह संग ही लागी ॥

दोहा— प्रीतम संग बनबास भल सहब सीत औ घाम ।
लाल पियारे पीय बिनु इंद्र लोक केहि काम ॥५१९॥

॥ इति श्री अवध विलासे बुद्धि प्रकाशे सबगुन रासे पाप विनासे कृत लालदासेन पिता वचनात राम वनगवंननाम एकोनविंशति विश्राम ॥

दोहा ५१९ के अन्तर्गत—
१ सेवा = अष्टयाम सेवा ।
२ निति संगा = नित्यलीलाओं के संग रहना ।

: अथ विंशति विश्राम :

चौ०— हाथ जोरि पाँइलागन कीन्हा । आशीर्वाद गुरु तब दीन्हा ।।
प्रभु अब कृपावंत भए रहिए । है कछु चूक अवज्ञा सहिए ।।
राजहिं ज्ञान ब्रिबेक सुनइयो । बहुत भाँति समुझावत रहियो ।।
राजा सोचि देषि मन मांही । सदा संग काहू को नाही ।।
बिछुरन[1] मिलन बात एह दोई । जब तक अवश्य होइ, पै होई ।।
अस कहि प्रभु मग मन द्रगलाए । बिछुरत नयन नीर भरि आए ।।
दक्षिण दिसा तामसा[2] तीरा । प्रथम दिवस तहँ बसे रघुबीरा ।।
दिवस तीनि रहि गए तहँ जल ही । ब्रत करि निराहार रहे सबही ।।
सबके हिए सोच होइ एही । कैसेउ फिरै चलै बैदेही ।।
बंधन और बहुत हैं नाना । तिय समान बंधन नहिं आना ।।
इनको रहब धर हि बनि आवै । नारि निराल न सोभा पावै ।।
और ठौर कछु बनै जहं ताहीं । जुद्ध करत त्रिय संग भल नाहीं ।।
प्रेम बिवस मत करै सयाने । हैं ए कौन भेद नहिं जाने ।।
सीता लषन राम है कोई । माया जीव ब्रह्म ए होई ।।
ब्रह्माश्रित रहैं जिव अरु माया । जैसे संग वृक्ष की छाया ।।
ईश्वर राम सेव्य हैं आही । जहां स्वामि तहं सेवक चाही ।।
जहँ लौं[3] पुरुष राम सब जानों । त्रिय सीता निश्चय करि मानो ।।
रहि कहै कथा बिरह रस भीने । चौथे दिवस फराहर कीने ।।
ब्रह्म हैं एक अंश कहै जाके । तौ संजोग वियोग कहाँ के ।।
कथा इतिहास बहुत बिधि सूचे । गंगा उतरि प्रयाग पहूँचे ।।
केवट[4] अरु भरद्वाज कहानी । ए मैं कहि न सबनि की जानी ।।

दोहा— गंगा तट बट पय जटा थापि धारि मुनि वेष ।
रथ सुमंत गुरु करि विदा राम पार भए देष ।।५२०।।

दोहा ५२० के अन्तर्गत—

१ बिछुरन मिलन···पै होई = जीवन में मिलन और विरह का नियति चक्र चलता रहता है संयोग से जो कभी मिलते हैं, आकस्मिक रूप में वे ही बिछुड़ जाते हैं। भाव सत्य का कितना सहज और मर्मस्पर्शी चित्रण है ।

२ तामसा = तमसा नदी ।

३ जहँ लौ···करि मानो = विश्व के समस्त पुरुषों को राम का और समस्त स्त्रियों को सीता का बिम्ब-प्रतिबिम्ब समझो ।

४ केवट···जानी = केवट और भरद्वाज की कहानी प्रख्यात है, इसलिये कवि उसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता ।

चौ०— फिरे सुमंत रथहिं लै आए । देषेउ ताहि सबनि पतियाए ।।
तजि तजि राज गेह बन माहीं । रामहिं लोग भजत जहँ जाहीं ।।
इह बड़ मंद भाग मति हीनो । रामहि छांडि विषय मन दीनो ।।
पंच ए दिवस अवध के गवने । पहुँचे चित्रकूट[१] बन रवने ।।
रोवन[२] मरन भरत की बातैं । कहि न उदास होत मन यातैं ।।
आए राम रिषिन्ह मुनि जाने । जीव जंतु सब के मन माने ।।
जोगी जोग ध्यान करैं जाहीं । षोजत पै पावत कोउ ताही ।।
कौन धौं सुकृत भए सुहाए । अनायास ईश्वर इहँ आए ।।
सीता राम रूप सुष पाई । देषैं बेर बेर ललचाई ।।
दरशन संभाषन करि जासै । दिन दिन ब्रह्म ज्ञान परकासै ।।
जीवन मुक्त भए अस जाने । निर्भय रहै न कछु भय आने ।।
जुक्ति एक कहों कबिन्ह सोहाती । राजा भए राम जेहिं भांती ।।
जो जस होइ जाहु कहु कोऊ । पावत सहित समाज हैं तेऊ ।।
सिला सिंघासन लता विताना । मंजरी चमर चलत तहँ नाना ।।
पुहप गुच्छ वरतुल आकारा । सोइ जनु क्षत्र शीश पर धारा ।।
पल्लव पात बिछौना साजे । कोमल गिलम दुलीचो राजे ।।
तरु तमाल के मूल सुहाए । तकिया देइ बैठे सुष पाए ।।
दिग कन्या चहुँ ओर सुहाई । करहिं बतास होहिं सुषदाई ।।
गिरि के श्रंग महल जनु बाढ़े । चंप कदंब रूप रथ ठाढ़े ।।
ध्वजा केरि निसान फरहारा । पर्वत कोट चहूँ आरारा ।।
बन पशु फ़िरत ओर बहु दौरा । सोइ जनु आनि फेरियत घोरा ।।
पक्षी प्रजा करत ब्यौहारा । चुहुल होत बन नगर मँझारा ।।
बन बिच बिच बीथी बिस्तारा । सोइ जनु हाट बजार अगारा ।।
हाथी उहैं भये बनवारे । गर्ज्जत ठाढ़ रहे मतवारे ।।
दीपक चंद्र नक्षत्र प्रकासा । चौकी बाघ सिंह चहुँ पासा ।।
चाकर आइ मिले वनवासी । भालु किरात वनश्चर रासी ।।

दोहा ५२१ के अन्तर्गत—

१ चित्रकूट = भारत का प्रसिद्ध आरण्यक तीर्थ । रसिक साधकों के लिए चित्रकूट का विशेष महत्व है । राम की बिहार स्थली चित्रकूट के 'कामद वन' और जानकी कुंड माधुर्योपासना के केन्द्र हैं ।

२ रोवन मरन···मन यातै—कवि ने दशरथ के मरण, अन्त्येष्टि रानियों के विलाप तथा भरत के रुदन का वर्णन न करने का कारण मन के शोक और उदासीनता से बचाने को कहा है ।

भोजन होहिं कंद फल मेवा । लक्षिमन आनि धरै करै सेवा ॥
पतरी थार है दोन कटोरा । रसन्ह अनेक भरे नहिं थोरा ॥
जेवहि[३] राम सिया रुचि मानी । प्यावै लाल गंगोदक आनी ॥
पुनि होइ राग रंग रस जेते । कहत हों सुनो सयाने तेते ॥
नाचत[४] मोर कोकिला गावत । तानै भाव अनेक दिषावत ॥
पीपर पात लाल सोइ बाजत । झरना झरत पषाउज राजत ॥
सुआ कपोत षूमरी जानैं । मरदुल गति संगीत वषानै ॥
मंदाकिनी माँहि सुष दीना । उडप तिरप गति लेत है मीना ॥
नूपुर दादुर धुनि संसारा । बाजत चटक शब्द कठतारा ॥
भेरों भ्रमर जंत्रदा साक्षी । बाजत कनक वरण धुनि आक्षी ॥
रितु बसंत तैसी अति राजो । सुष समाज संमुष भइ साजो ॥

दोहा— वन पक्षी[५] फल फूल जो राम भेंट के हेत ।
लाल रईपति हिय हरषि के राज अंश जनु लेत ॥५२१॥

चौ०— इह सुष देषि राम हरषाने । हम बन आइ कवन तप ठाने ॥
सहर तो फिरत संग हो लागे । सूरज वंश ठाढ़ सब आगे ॥
सेवक स्वजन बंधु मैं भाया । पीछे परे लगे बस माया ॥
कैसो भाँति कहाँ अब जइये । कौनो भाँति कहाँ होइ रहिये ॥
ध्यान समाधि अकेले होई । पोथी पढ़त चाहिए दोई ॥
गावत गीत तीन होइ रंगा । फिरत बिदेस चारि भल संगा ॥
पांच सात षेती भल करना । बहुत भले संग्रामहि बरना ॥
बसि एकांत बहुत सुष पाई । होत विक्षेप संग दुष दाई ॥

---

३ जेंवहि राम..............आनी=चित्रकूट में राम और सीता जेंवनार कर रहे हैं और रसिक भक्त लालदास गंगोदक पिला रहे हैं ।

४ नाचत मोर..........भइ साजी=प्रकृति का संगीतपरक मानवीकरण अत्यन्त भावपूर्ण बन पड़ा है ।

५ वन पक्षी..........जनु लेत=वन पक्षियों द्वारा राम को फल-फूल भेंट किये जाते हैं, मानो प्रजा द्वारा राजा को हर्ष पूर्वक राज्य अंश (राज्य कर) दिया जा रहा हो । हर्षपूर्वक अंश दान से यह भी ध्वनि निकलती है कि जैसे तत्कालीन राजाओं द्वारा बलपूर्वक कर लिया जाता रहा हो ।

साधक[1] एक ग्रंथ गुरु भाषे । प्रकृति स्वभाव मिलै तौ राषे ।।
प्रापत होइ पदारथ जोई । बंधन होत जानि सोइ सोई ।।
जोइ कछु गयो संग ते छूट्यो । बंधन ताहि जानि सो टूट्यो ।।
द्वइ कोपीनि एक मृगछाला । दंड कमंडल मुद्रा माला ।।
मुनि ब्रत धरनि ग्रहन इतनोई । देव निवाह मात्र तितनोई ।।
पहिरै साधु वेष मत सांचे । जैसो काछ नाच तस नाचै ।।
बहुत भाँति भरतहिं समुझाए । करिये राज अवधि मन भाए ।।
अवर जो संग रहे कोउ जेते । करि सनमान विदा किये तेते ।।

दोहा— जाति पाँति पकरे रहै करै सबै सुष भोग ।
लाल शब्द सच्चा कहै तब लगि सच्चा योग ।।५२२।।

रघुवर चित्रकूट तजि डगरे । जे कोउ रहे विदा कियो सगरे ।।
राजा भरत अवध रहो जाई । कीजेहु राज्य प्रजा सुषदाई ।।
तीनौ मिले चले मन लागे । पैहैं दर्शन बहुत सभागे ।।
ब्रह्म जीव माया बहु रंगा । इन्ह को सदा अनादि है संगा ।।
ब्रह्म[1] जीव बिच माया जैसे । राम लषन मध्य जानकी तैसे ।।
जहँ जहँ जाहि तहीं अघ नासै । ज्ञान विज्ञान योग परकासै ।।
जाके[2] जौन भावना आई । ताके तस होइ देइ देषाई ।।

दोहा ५२२ के अन्तर्गत—

१ साधक एक······राषे=साधक को एक ही गुरु रखना चाहिये। रसिक साधना के अनुसार दीक्षा गुरु ही सद्गुरु बन जाता है। लालदास ने दीक्षा गुरु अथवा मन्त्रगुरु के स्थान पर ग्रंथगुरु कहा है। रसिक संप्रदाय में साधकों को स्वभाव और रुचि के अनुसार ही गुरु को चयन करने की स्वतंत्रता है।

दोहा—५२३ के अन्तर्गत—

१ ब्रह्म जीव······तैसे=राम लक्ष्मण के मध्य जानकी वैसे ही प्रतीत होती हैं जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया हो। कवि की इन पंक्तियों में तुलसी का प्रभाव स्पष्ट है। "उभय राम सिय सोहत कैसे। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे।" (राम चरित मानस, तुलसी)

२ जाके जौन··········दिषाई=प्रस्तुत पंक्तियों में महाकवि तुलसी की निम्न पंक्तियों का प्रभाव स्पष्ट हैं—

"जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।"

पशु पक्षी नर नारि निहारी । देषि देषि रहै रीझि बिचारी ।।
भाइ ए कौन कहाँ के वासी । देषहु पूँछि रूप की रासी ।।
है कोउ राजवंश के जाये । इन्ह नहिं जान कहाँ ते आये ।।
सुनि सुनि छबि दौरे सब ओई । मग लगि रहे आइ सब कोई ।।
सिय संयोग जाहि संग लागो । देषहिं पूँछहिं बात समागी ।।
केउ गुंजा केउ मुक्ता माला । लिए दोना कर धरहिं रसाला ।।
केउ फल[२] फूल बीनि त्रिय लेहीं । सिय मुष देषैं बहाने एही ।।
सांवर गौर किशोर जो ए हैं । कहो बलि जाँउ रावरो को हैं ।।
कोउ त्रिय रही घरन्ह नहि आई । आपु आपु हित लीन्ह बोलाई ।।
आवहु देषि लेहु किन अवहीं । कहबे कस न देषाए हमहीं ।।

छन्द मोती दाम—

सुनै लोग आवैं । दरश काज धावैं । कहैं होइ ठाढ़े । रहों प्रेम बाढ़े ।।
बड़े भाग आए । दरश आजु पाए । चले कहूं आगै । हमहूँ संग लागे ।।
कीजै प्रवेसा । हमारे सुदेसा । कहौ आजु जैहौ । हमहिं दर्श दैहौ ।।
कहिए हमारा । सो सब ही तुम्हारा । बनो बास जेरे । सबै आइ घेरे ।।
लीजै समाजा । करो राम राजा । रहै राम आवै । तहाँ कुंज छावैं ।।
बन के सुमेवा । करहिं देह सेवा । प्रेमों रचा है । राघौ सराहै ।।
परो काज कीजै । जथा जोग दीजै । मनुष देह पाई । है याही बड़ाई ।।
अपनी कमाई । करै सोइ पाई । एही भाँति कहते । गए दूरि रहते ।।

---

२ केउ फल..........हमहीं=तुलसी की ग्रामवधूटियों ने वन पथ पर जाते हुए राम-सीता के सौन्दर्य का दर्शन करती हैं तथा सीता से "कहो साँवरो सो सखि रावरो को हैं" जैसे रसात्मक प्रश्न पूँछती है। लालदास की ग्राम वधूटियाँ चित्रकूट में सीता को देखने के लिये व्याज से फल फूल बीनने के बहाने जाती है तथा श्यामल गौर किशोरों का परिचय पूँछती हैं। कुछ ग्रामीण महिलाएँ जो घरेलू कामों से नहीं आ पाई थीं, उन्हें भी उनकी हितकारिणी सखियों ने राम-सीता के सौन्दर्य दर्शन हेतु बुला लिया जिससे वे भी सौन्दर्य के इस महत दर्शन के सुयोग से वंचित न रह जाँय साथ ही सखियाँ यह उलाहना न दे सकें कि उन्हें सूचना क्यों नहीं दी गयीं ? ग्राम्य जीवन के निष्कपट प्रेम की, सौन्दर्य के प्रति अनुराग की कैसी कुशल व्यंजना है ।

दोहा— दंडक बन गए राम जू लाल बरष षट माँहि ।
रावण भगनी सुपनषा[४] नासा नसि बिमि ताहि ॥५२३॥

चौ०— सिय[१] पर राम को सुनहु सनेहू । होइ अनुकूल पीव किए तेहू ॥
सिय तन राम चितै मुष मोरी । चितवनि गति छबि बदन किशोरी॥
धरत चरण कोमल जब जाही । अपने नैन राषि कहै ताही ॥
ए मब धरा मृदुल तन धरहू । सिय पद कोमल रक्षा करहू ॥
मग कंटक जे दुषद अनारे । ते मग ते लग होहु निन्यारे ॥
दीरघ पंथ होइ लघु धावो । सरन दूर नियरे रहे आवो ॥
रवि कर मंद तेज तपकारी । व्याकुल होत है जनक दुलारी ॥
गिरि लघु होइ रहो दुष मनिहै । सिय ते उतरत चढ़त न बनिहै ॥
शीतल मंद समीर बहावो । जानकी तन मन तपनि जुड़ावो ॥
कोमल सरज सरोवर जै है । आवहु निकट बिनय घन ते है ॥
सारस हंस मयूर तहं डोलै । चातक सुक कोकिल अलि बोलैं ॥

दोहा— लछिमन गिरि सर कूल तहँ दूब हरित तृण देषि ।
मृदुल ललित किसलय पुहुप आसन रचै विशेषि ॥५२४॥

करि नित नेम बसहिं तेहिं धामा । जा विधि अवर बनहिं चले रामा ॥
फल युत सघन सुषद बन देषा । जल थल अमल बिचित्र बिशेषा ॥
तहाँ राम मन में कछु आई । लछिमण रचि तृण कुटी बनाई ॥
मृगया करैं फिरैं चहुँ ओरा । लीला बाद बिनोद किशोरा ॥
इच्छा राम भई कछु ऐसी । सीता कहूँ रहैं थल वैसी ॥
तब रावण मारीच पठावा । देषतु राम लषन तहँ आवा ॥
तब मृग रूप धारि फिरि देषी । कनक रूप तेहि कीन्ह विशेषी ॥

---

४ सुपनषा=शूर्पणखा । शूर्पणखा के विरूपी करण की कथा का संकेत ।

मारेउ ताहि वाम लै दोया । सीता अंग कंचुकी[१] कीया ॥
सीता रहिं आयो तहँ बौरा । रावण खबरि पाइ तब दौरा ॥
रावण मूढ़ भली नहिं करी । माघ शुक्ल चौदसि सिय हरी ॥
सीता हरण भयो जब जाना । दशये मास संपाति बषाना ॥
षवरि कपिन्ह कहँ दीन्हेसि आई । दशमी मार्ग शुक्ल कहँ पाई ॥
हनूमान एकादशि संध्या । भए समुद्र पार मन बंध्या ॥
त्रयोदशि पुष्प बाटिका तोरा । चौदशि ब्रह्म शास्त्र करि जोरा ॥
पूनो हनूमान सुधि ल्याए । कही आई सबही सुधि पाए ॥

दोहा— बन तरु गिरि सर वास करि सिय लछिमन संग साज ।
बालि मरीच हति रावणहि राम करहिंगे राज ॥५२५॥

दोहा—५२४ के अन्तर्गत—

१ कंचुकी=चोली (अंगिया)। राम ने कनक मृग (मारीच) को मारा। सीता ने कनक मृग चर्म को अपने अंग (उरोजों) की कंचुकी बना लिया। विश्व की किसी अन्य रामायण में यह उल्लेख नहीं प्राप्त होता है कि सीता ने राम से मृग चर्म क्यों माँगा था ? यदि मृगया का उद्देश्य होता तो मृग चर्म पर क्यों बल दिया जाता ? संत लालदास ने इस प्रसंग में सर्वथा मौलिक कल्पना की है। प्रागैतिहासिक काल में मृग चर्म की कंचुकी होना स्वाभाविक है साथ ही सीता के द्वारा कंचुकी हेतु कनक मृग पर मुग्ध होना स्वाभाविक और यौवनोचित है। रसिक साधकों के सीता राम तो नित्य यौवन वय हैं। 'कंचुकी' शब्द से एक दूसरा भाव भी जाग्रत होता हैं। कंचुकी श्लिष्ट पद है, जिसका आशय माया के आवरण से है। वस्तुतः सीता राम की पराशक्ति और महामाया शक्ति है। महामाया सीता ही तो माया के कनक मृग को अपनी कंचुकी बना सकती हैं। महाकवि चंददास ने भी पदावली के एक पद में सीता के शृंगार वर्णन में इसी भाव को व्यक्त किया है—

"ऊपर कनक कंचुकी रहसन वसन दिव्यता दरसै री ।
शंकर वरन थाप महि मंडल मनो मानसा परसै री ॥"

जिसका आशय है कि सीता की कनक कंचुकी के मायिक (मायावी) वस्त्रों से दिव्यता प्रगट हो रही है मानों उरोजों के रूप वह शिव लिंग की स्थापना करके रति रूप में खोये हुए काम को प्राप्त करने के लिए शिव की मानसिक आराधना कर रही है।

दर्शन के क्षेत्र में कंचुकी का आशय मायाजन्य विकारों से है, साधक को विषय वासनाओं की कंचुकी को तोड़ना पड़ता है। इसका संकेत मैंने अपने 'अभिशप्त शिला' प्रबन्ध काव्य में किया है—

'राग भरी रति की गागर यह रहती अतृप्त
कंचुकि के बंध तोड़ता कोई प्रत्यभिज्ञ
काल अश्व करता त्रैलोक्य का प्रभंजन है
उस पर आरोहण करते है कवि कालजयी
या कि महाशक्ति कालिका ही कालकर्षिणी।"

—अभिशप्त शिला, डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

बन लँका की बात कों जानत सब संसार ।
याते लाल कहे नहीं असुरन्ह के संघार ।।५२६।।
केउ मारि केउ तारि के केउ निवाजि केउ मुक्त ।
बनचर अनुचर करि चमू बैठि अवध जस जुक्त ।।५२७।।
स्वर्ग थान है देवता हरषत हिए हुलास ।
धन्य मनुष्य जे लाल कृत सुनत हैं अवध विलास ।।५२८।।
ब्यास वशिष्ट को बालमिक शुकदेव शेष महेश ।
महिमा अवधबिलास की कहियत लाल सुरेश ।।५२९।।

।।इति श्री अवधविलासे बुद्धिप्रकाशे, सव गुनरासे भक्तहुलासे पाप बिनासे कृत लालदासे राम अवध आगमन वर्णनो विंशत विश्राम अवध-विलास सम्पूर्णम् ।।